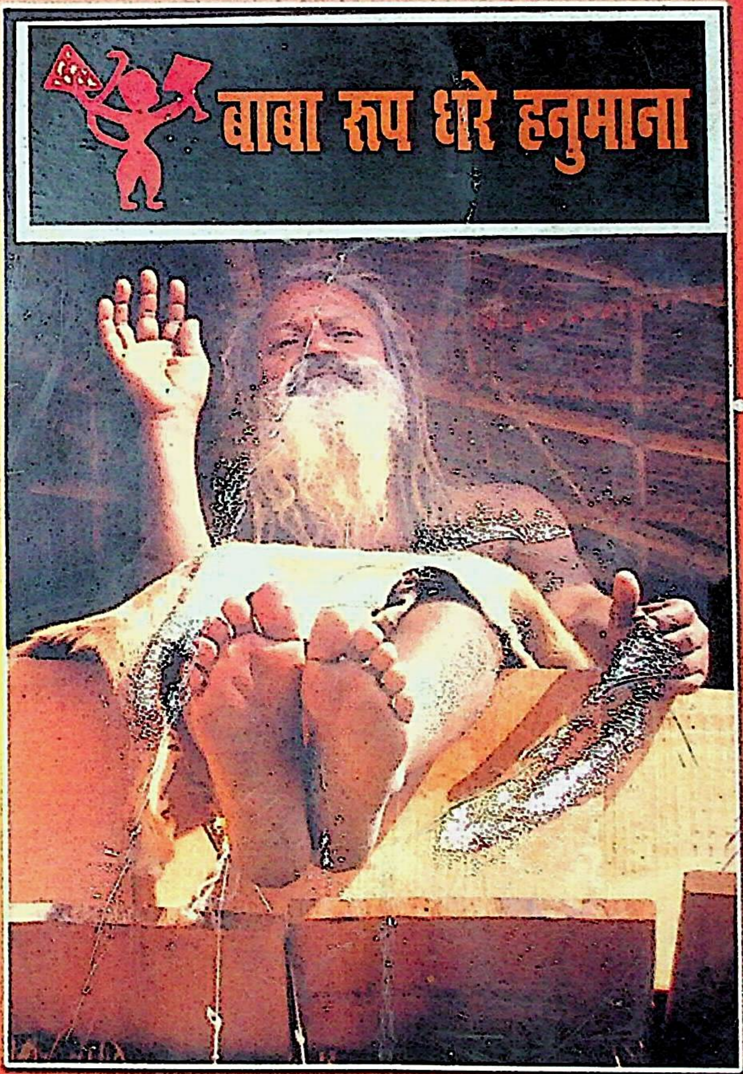
महायोगी का अवतरण



लेखक - शैलेन्द्र शर्मा

महायोगी का अवतरण

बाबा रूप धरे हनुमाना



शैलेन्द्र शर्मा

✻ प्रकाशक :
श्रीदेवरहाहंस परावाणी प्रकाशन
337, बाघम्बरी गृहस्थान योजना,
भरद्वाजपुरम, अल्लापुर, इलाहाबाद - 211 006
मो. 9451845653

✻ प्राप्ति का स्थान :
सम्पादक, श्रीदेवरहाहंस परावाणी,
337, बाघम्बरी गृहस्थान योजना,
भरद्वाजपुरम, अल्लापुर, इलाहाबाद - 211 006
मो. 9451845653

✻ प्रथम संस्करण : गूरुपुर्णिमा 2013

✻ आवरण
डी.जी. कम्प्यूटर्स, इलाहाबाद

✻ लेज़र टाइप सेटिंग :
डी.जी. कम्प्यूटर, 120, दरभंगा कालोनी,
इलाहाबाद फोन : 9807859674

✻ मुद्रक :
नागरी प्रेस, आलोपीबाग,
इलाहाबाद

₹ -200/-

प्रस्तावना

श्रीराम-लक्ष्मण की बलि देने के लिये अहिरावण ने उन्हें पाताललोक में देवी के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए, श्रीराम से कहा- "अब थोड़ी ही देर में तुम समेत तुम्हारा भाई देवी की भेंट चढ़ा दिये जाओगे। यदि तुम्हारा कोई त्राता हो तो उसका स्मरण कर लो।" तब श्रीराम ने अनुज लक्ष्मण से कहा- "भाई लक्ष्मण, विपदा, संकट और आपत्ति के समय सारे प्राणी मुझ त्राता को याद करते हैं, किन्तु मेरी आपदाओं का अपहरण करने वाला, मुझ त्राता का त्राता तो केवल हनुमान ही है। अतः अब हम उसीका स्मरण करें।" लक्ष्मण ने जब आशंका प्रकट की और कहा- "भैया, हनुमान यहाँ कहाँ?" तो भगवान राम ने आश्वस्त स्वर में कहा- "प्रिय लक्ष्मण, हनुमान कहाँ नहीं है। वह तो धरा के कण-कण में, पानी की हर बूंद में, आकाश और अन्तरिक्ष में, वायु के हर झोंके में, प्रकाश और अन्धकार में हर जगह विद्यमान है। मुझे तो सामने खड़ी देवी में भी उसीके दर्शन हो रहे हैं।" यह सुनकर लक्ष्मण ने देवी की ओर दृष्टि उठाई ही थी कि उनमें श्रीहनुमानजी ने घोर गर्जना की।

व्यास, बलि, अश्वत्थामा, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम और हनुमानजी चिरंजीवी हैं। परशुराम तो आह्वान करने पर आते भी हैं परन्तु श्रीहनुमानजी स्वयं केवल अपना ही नहीं, अपितु श्रीराम का भी स्मरण करने पर तुरन्त आ उपस्थित होते हैं। वे चिरंजीवी होने के साथ-साथ ही "अजर" और "संकटमोचक" भी हैं। बाबा हनुमानजी भक्तों को ढूंढ-ढूंढ कर श्रीराम के शरणागत कराते हैं। वे हमेशा, हर पल-छिन, सब दिशाओं में पूरी लगन और मेहनत से इस काम में जुटे रहते हैं कि धरम-करम करने वाले सज्जन साधु प्रवृत्ति के लोग भगवान की शरण पा लें। भक्तों को भगवान का दर्शन कराना तो उनका सहज स्वभाव है। ऐसे संकटमोचक और श्रीराम के भी त्राणदाता श्रीहनुमानजी हमें कैसे मिलें?

"बाबा श्रीहनुमानजी थे, हैं और रहेंगे- इसमें किंचित भी सन्देह नहीं"- इस बात को मन, बुद्धि और व्यवहार से मानकर ही उन्हें पाने की दिशा में जो पहला कदम हमें उठाना होगा वह है- 'श्रीहनुमन्नामजप'। इसके बाद जो समस्या हमारे सामने आयेगी- वह है उन्हें पहचानने की। नाम जानने और जपने से जब वे सामने आयेंगे तो उन्हें पहचानेंगे कैसे? इसके लिये उनके रूप को जानना-पहचानना जरूरी होगा। तुलसीदासजी नाम से परिचित थे, जपते भी थे, परन्तु घोड़े पर सवार श्रीराम-लक्ष्मण सामने से निकले तो तुलसीदास उन्हें पहचान ही नहीं पाये। तो अगर नाम के साथ रूप नहीं जानेंगे तो पहचानेंगे कैसे? ठीक है- नाम भी जानते हैं, रूप भी पहचानते हैं- तो क्या वे हमें मिल जायेंगे?

त्रेतायुग में बाबा हनुमानजी का जो रूप था, उसे उन्होंने द्वापर युग में धारण नहीं किया। द्वापर में भी जो रूप उन्होंने दिखाया- वह त्रेतायुग की अपेक्षा सीमित था। द्वापर युग में श्रीकृष्ण ने नन्दिघोष रथ की पताका पर बैठे बाबा श्रीहनुमान को आदेश दे दिया था- "हनुमान यह त्रेता नहीं है, द्वापर है। तुम गर्जना भी करोगे तो ये सब हृदय फटने से मर जायेंगे। अतः तुम केवल बैठे रहो।" त्रेता और द्वापरयुग में जो रूप था- उसे श्रीहनुमानजी ने कलियुग में कभी भी नहीं धारण किया। इसके अलावा एक ही युग में उन्होंने कई-कई रूप धारण किये। कभी भूधराकार, तो कभी ब्राह्मण, कभी बिल्ली तो कभी मच्छर, कभी बन्दर तो कभी तोता, कभी कोढ़ी तो कभी साधारण मनुष्य। तो ऐसे बाबा हनुमान के नाम और रूप का पता होने पर भी उन्हें पहचान पाने के लिये हमें उनमें रमना होगा। नाम से पुकारने पर वे रूप में आते हैं और तब रूप धारण करके वे लीला करते हैं। यह उनकी लीला ही थी कि तोता बनकर तुलसीदास को बताया कि जिनको चन्दन दे रहे हो वे ही श्रीराम हैं।

नाम से रूप में, रूप से लीला में और लीला से सचराचर धाम में बाबा श्रीहनुमानजी हर जगह हाजिर हैं।

बाबा श्रीहनुमानजी साक्षात परब्रह्म हैं। सद्‌गुरु बाबा ने कहा है- "बच्चा ! जब कोई दिन नहीं था, मास नहीं था और साल भी नहीं था- तब भी मैं था।" वे कहते और बताते हैं- "था मैं था मैं था मैं था, था था मैं था मैं था, था था था मैं ही तो था।" बाबा का वचन है- "बच्चा ! यह स्वरूप विराट है। मैं हर जगह हाजिर हूँ और यह वचन जो तुम सुन रहे हो- ब्रह्मवाणी है।"

हर युग का अपना धरम-करम होता है और उसी के अनुसार बाबा रूप धारण करते हैं और उनकी लीला होती है। हम कलियुग में रह रहे हैं तो अब मेरे बाबा श्रीहनुमानजी सिद्ध सन्त महायोगी के रूप में उपस्थित होकर लीला करते हैं।

बाबा श्रीहनुमानजी थे, हैं और रहेंगें- इसमें किंचित भी संदेह नहीं है। फिर भी होता यह है कि संसार की भूल-भुलैया में भटक रहे हम मनुष्य उनसे परिचय नहीं पा पाते। यदि पा जाते हैं तो प्रेरणा नहीं होती। यदि प्रेरणा हो भी जाती है तो हमारी मान्यता को स्वीकार्य इष्ट, सम्प्रदाय, मत, स्वरूप, हमारी किसी के प्रति विशेष रुझान तथा उसके प्रति प्रतिबद्धता के कारण अन्य को अपने मान्य से कम अथवा नगण्य समझने की प्रवृत्ति हमें उनके दर्शन लाभ से वंचित करा देती है। और एक बात यह भी है कि सिद्धसन्त महायोगी के रूप में बाबा हनुमान अपने सत्य स्वरूप को ऐसा बनाये रखते हैं कि लोग उन्हें पहचान-समझ नहीं पाते। इस तरह इस उहापोह में समय बीतता जाता है और बाद में पछतावा होता है। मैं अपनी ही बात कहूं कि मैं कितना अधीर और दुःखी होकर अपने भाग्य को कोसता हूँ कि मैं श्रीहनुमत्स्वरूप उन सन्तों-महायोगियों के दर्शन नहीं कर पाया जो मेरे जीवन काल में अवस्थित थे। काश ! मैं उनके दर्शन कर पाता। सन्त दर्शन के बारे में तो कहा गया है कि बिना हरिकृपा के उनका दर्शन मिलन नहीं होता। मन को समझाना तो चाहता हूँ पर सन्तोष नहीं मिलता और मैं सोचता हूँ कि क्यों नहीं हुई मुझ पर हरिकृपा कि मैं उनका दर्शन-मिलन कर पाता? मेरे ऊपर "हरिकृपा" हुई और १९७४ में ब्रह्मर्षि

योगिराज श्रीदेवरहाबाबा के दर्शन हुए और फिर आगे.... आज यह ग्रन्थ प्रस्तुत है।

सद्‌गुरु ब्रह्मर्षि योगिराज श्रीदेवरहाबाबा के श्रीहनुमत्स्वरूप को बाह्य और अन्तरंग में देखने वाले कई भक्तों से अनेक घटनाएं और अनुभूतियाँ मैं सुन, जान और देख चुका हूँ। दूसरों को हुए अनुभवों को सुनने-जानने से ही नहीं बल्कि अपने अन्तरंग और बाह्य अनुभवों में मैंने जो सारतत्व पाया, इस पाने को मैं आप सभी के बीच इस अनुग्रह और चेतावनी के साथ बांटना चाहता हूँ कि आपको अपने जीवन में कभी इस बात का पछतावा न हो कि आप श्रीहनुमानजी के दर्शन सिद्धसन्त महायोगी के स्वरूप में कर सकते थे परन्तु नहीं कर पाये। आप किसी को भी मानते हों, स्वीकार कर चुके हों या आप अपने मान्य को ही श्रेष्ठतम मानते हों, तो उनको ही आप श्रीहनुमंत्स्वरूप सिद्ध सन्त महायोगी में देखने पाने के लिए बाबा का दर्शन करें। मुझे विश्वास है कि यदि आप बाबा के दर्शन में पहली बार जो जिज्ञासा लेकर जायेंगे उसे आप स्वयं अपने अंदर विश्वास के रूप में लेकर लौटेंगे। कोई-कोई यह पूछ सकता है, और कई लोगों के मन में यह प्रश्न उठ भी सकता है कि "शर्माजी, आपको इससे क्या मिलेगा?" तो मैं इसके उत्तर में बड़ी साफ सुथरी यह बात कहुंगा कि यदि आपको कुछ मिला तो वह आपका ही होगा-मेरा नहीं। तो आप को कुछ मिले या न मिले इससे मुझे क्या लेना-देना? बस मुझे इससे यही सन्तोष होगा कि मैंने जो सच बात जानी वह आपको बतायी, आगे आपकी मर्जी।

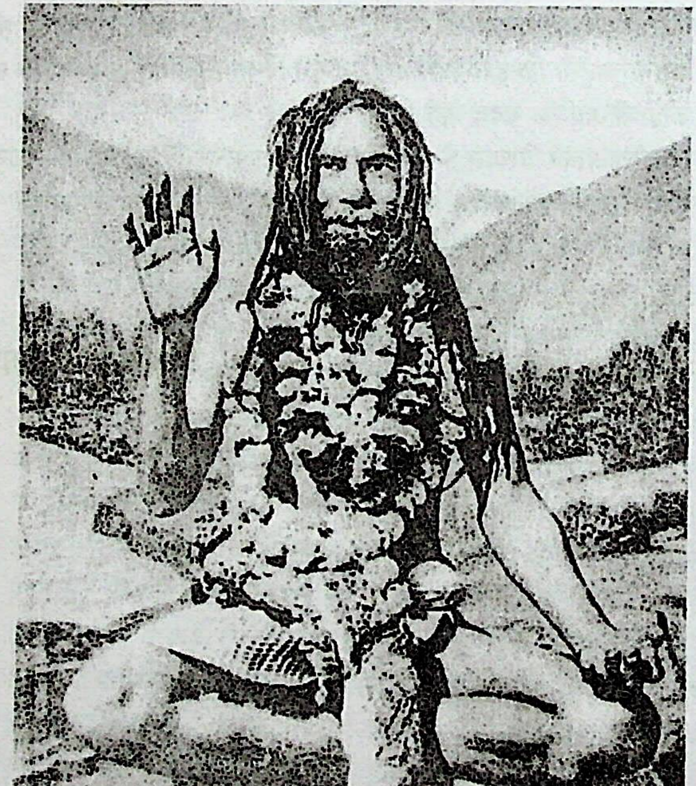
सच मानिये मैंने जैसे देखा, सुना, पढ़ा और जैसा मुझे मन में लगा वह मैंने इस ग्रन्थ में लिख दिया। मेरे लिखने में विद्वता और ज्ञान जैसी कोई चीज नहीं है। कई पाठकों को तो इस ग्रन्थ की भाषा भी बड़ी अटपटी सी लगेगी। एक बात और यह भी कह दूँ कि मुझे पता है कि कई बातों को मैंने बार-बार दोहराया (पुनर्रावृत्ति) है। मैं चाहता हूँ कि पाठक इसे दोष न मानें। नामजप की भांति पुनर्रावृत्ति को अध्यात्म में गुण माना गया है। एक बात

यह भी कहना चाहूंगा कि वे लोग जो हर चीज को आर्थिक लाभ-हानि के अन्दाज से देख़ते हैं, कृपया कोई ऐसा अनुमान न लगायें कि यह कार्य मैंने किसी व्यक्तिगत आर्थिक लाभ के लिए किया है। मैं स्पष्ट शब्दों में यह भी कहना चाहूंगा कि इस कार्य के लिये मैंने किसी भी स्त्रोत तथा व्यक्ति से कोई भी आर्थिक मदद नहीं ली है।

मेरा अटल विश्वास है कि मैंने जो कुछ आपसे निवेदन किया है- "उसे बाबा देख रहे हैं। उनका स्वरूप विराट है और वे हर जगह हाजिर हैं।"

गुरुपूर्णिमा
जुलाई 2013

शैलेन्द्र शर्मा

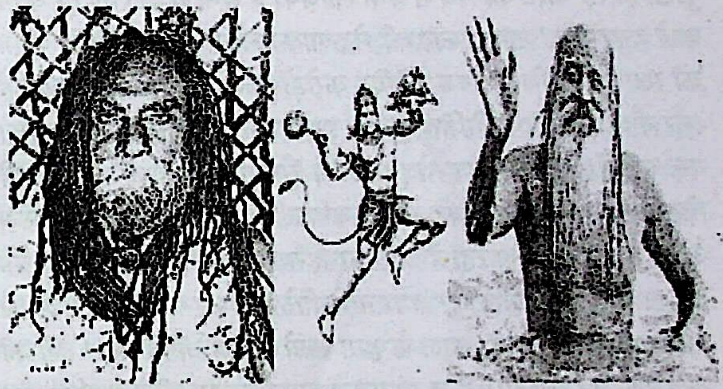


श्रीहनुमत्स्वरूप ब्रह्मर्षियोगिराज श्रीदेवरहाबाबा



श्रीहनुमत्स्वरूप ब्रह्मवेत्ता श्रीदेवरहाहंस बाबा

अनुक्रमणिका



श्रीहनुमतस्वरूप श्रीदेवरहाहंस बाबा से निवेदन...

श्रीगणेशजी को परमगुरु ब्रह्मर्षि योगिराज श्रीदेवरहा बाबा तथा ब्रह्मवेत्ता श्रीदेवरहाहंस बाबा में शत-शत प्रणाम निवेदित हैं। अब मैं बहुत ही सीधे-सादे शब्दों में अपने स्वानुभवों तथा अन्य अनेक भक्तों के अनुभवजन्य वक्तव्यों को सोचते हुए यह कहता हूँ कि हे हनुमानस्वरूप देवरहाहंसबाबा आप परमगुरु श्रीदेवरहाबाबा ही हो। आप सिद्ध सन्त महायोगी का रूप धरे श्री हनुमानजी हो, क्योंकि द्वापर युग में आप आश्वासन दे चुके हो कि कलियुग में आप सिद्ध-सन्तों के रूप में दर्शन दोगे। इसलिये कि कलियुग के लोग युग प्रभाव के कारण आपके मूल-स्वरूप को सहन न कर पायेंगे। मैं आपको बहुत ही सहज भाव से हाथ जोड़ रहा हूँ और आपको अपने बल-पौरुष की याद दिलाकर कलियुग में हुई अपनी दुर्दशा की बात बता रहा हूँ। हे बाबा! आप नित्यजीवी हैं, चिरंजीवी हैं। आज मनुष्य प्रसन्न होता हुआ शान्ति नहीं धारण कर रहा है और कातरवाणी में चिल्लाता हुआ मैं प्रार्थना कर रहा हूँ कि हे प्रभो! हम मुखरित होकर आपकी शरण में आये हैं।

बाबास्वरूप श्री हनुमानजी सरकार, हे दया कृपा के सागर! आप

दुःखी हो रहे भारत को भय से बचा लीजिये। हे सभी संकटों को दूर करने वाले दयासिन्धु! नाना प्रकार की भेद भावनाओं से बंट रहे अपने भारत की रक्षा कर लीजिए। आज प्रतिदिन क़रोड़ों–करोड़ों गायें मारी जा रही हैं और गौवों के माँस से मिश्रित धूलियां इस आकाश के पर्यावरण को दूषित कर रही हैं। हे बाबा! यह वेद प्रतिपाद्य सुन्दरप्रिया नष्ट हो गई है। ऐसे चिल्लाते हुए अपने भारत को आप ही बचा लीजिए। यह देश आतंकवादरूप अग्नि से निरन्तर जल रहा है और क्रूर हिंसारूप वज्र की मालाओं से यह घिर गया है और पापी दुष्ट तथा नीचे गिरे हुए भ्रष्ट–शासकों से इसका पालन हो रहा है। अतः काल के द्वारा खाये जा रहे अपने भारत देश की आप रक्षा कर लीजिए। आज सभ्यजनों द्वारा पालनीय शील अर्थात् चरित्र का सम्मान नहीं किया जा रहा है। हे प्रभो! पालनीय स्वभाव पापियों द्वारा नहीं पाला जा रहा है। हे पतित समूहों को पवित्र करने वाले मेरे बाबा! अब तो आप अनेक ब्रणों से व्याप्त अपने भारत को भ्रष्ट–शासकों से बचा लीजिए। जो भारत पहले आप द्वारा रक्षित हुआ और आपके द्वारा अपने धर्म की धुरा से सुरक्षित हुआ, वही भारत इस समय घोर संकट से घिर गया है। आप ही इसकी रक्षा करने में सक्षम हैं।

मेरे श्री हनुमानस्वरूप बाबा! आप ही माँ हैं, आप ही पिता हैं, आप ही देवता हैं और आप हमारे निजि देवता हैं। आप ही भाई हैं, आप ही मित्र हैं, आप ही पुत्र हैं, आप ही रक्षक हैं। आप श्रेष्ठमनरूप मन्दिर में विहार करने वाले हैं और आप दयालु देवता एवं सन्तों के भयहर्ता हैं। आप रक्षक हैं। आप ही पूज्य हैं, आप समर्थ हैं, आप त्राणदाता हैं। आप प्राणियों में स्वामी और रक्षक हैं आप हमारे सबकुछ हैं, आप गौ, ब्राह्मण और देवताओं के द्रोहियों को समाप्त करते रहते हैं और आप ही इस भारत–भूमि को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं। आप हमारे अन्तरंग देवता हैं। हे बाबा! आप राष्ट्र के कल्याण और आप ही राष्ट्र के मंगल हैं। आप सदैव अनाथों के नाथ और निर्बलों के भी बल हैं, आप ही इस राष्ट्र के सौभाग्य

के सर्जक हैं। हे बाबा! आप इस भारत देश की आन्तरिक और बाहरी भय से रक्षा कीजिए।

हे मेरे सद्गुरुदेव! आप स्थिर मन से पापियों से पीड़ित इस देश का ध्यान कीजिए। हम कहाँ जाएँ? हे श्री हनुमत्स्वरूप दिव्य विग्रह प्रभो! विलाप से लज्जित हमारा यह आवेदन स्वीकार कर लीजिए। हम आपको छोड़कर कहाँ जाएँ? हम जहाँ भी देख रहे हैं, वहाँ के समस्त प्राणी हाहाकार के ज्वर से युक्त असंतोष के ताप से तप्त और रोग से रुग्ण हैं। अब हम कहाँ जाएँ? हे वज्रांग बली आप संकटमोचन करने वाली अपनी कृपादृष्टि से देखिए। आपके इस बालक को श्वानों के समान दुर्जनों ने घेर रखा है, चारों ओर जलती हुई आग देखकर हम कहाँ जाएँ? यज्ञ की दीक्षा में दीक्षित अपने कर्मों में निरत हम लोग कल्याण कामना से जहाँ–जहाँ भी जाते हैं, वहाँ–वहाँ जलती हुई अग्नि को देखकर वानरों के बच्चों की भाँति हम व्याकुल हो रहे हैं। अर्धमृत हुए हम लोग भयंकर भय से भयभीत होकर अब कहाँ जाएँ? न तो कहीं शान्ति है, न ही कहीं शोभा और न ही कहीं सन्तोष। आतंकवाद मनुष्यों का निरन्तर शोषण कर रहा है। इस शिवप्रधान देश में शिवा अर्थात् पार्वती जी नहीं दिख रही हैं। यहाँ शिवा अर्थात् गीदड़ी रो रही है। हे अन्तर्यामी! आप ही बतायें हम कहाँ जाएँ?

मेरे बाबा सरकार! आप भारतवर्ष का भय दूर कर दीजिए। हे कामशत्रु शिवजी के अवतार तथा उनके मनरूप मानसरोवर के सुन्दर हंस श्रीहनुमत्स्वरूप बाबा! अब हंसमुख में दूध पिलाइये अर्थात् भारत को पालिये। भूख से पीड़ित रात और दिन चिल्लाते हुए कच्चे सुख वाले, पूर्व में स्वाहाकार में लगे हुए, वर्तमान में हाहाकार में तत्पर इस भारत देश की आप रक्षा कीजिए। हे कल्याणकारी! हे माता सीता के शोक का हरण करने वाले बाबा! क्या आप नहीं देख रहे हैं कि भारत श्रौत, स्मार्त–यज्ञों के धूम से सुशोभित आकाश वाला था। क्या आप नहीं देख रहे हैं कि वही

भारत आज 'गौमाता' के गरम-गरम खून से भर दिया गया है। आप जानकर भी इन देशद्रोही पापियों की उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?

जब राष्ट्र का नेता ही अनेता बन जाय और जब राजनीति अपराधीकरण की ओर बढ़ने लगे, जब दुष्ट शासन, दुःशासन, बनकर राष्ट्र-संस्कृतिरूप द्रौपदी का चीरहरण करने लगे, तो हे बाबा! उस परिस्थिति में मुझ जैसे लोगों को क्या करना चाहिए? हे श्री हरे! जब पुरुष ही नारी के वश होकर नमस्कार की पात्रता खो दे और जब रक्षक भक्षक बन जाये तथा साक्षर (पढ़े-लिखे लोग) मौनी बन जायें, जब हंस हँसते-हँसते निर्लज्ज होकर कौवा बन जाये, उस समय मुझ जैसे लोगों को क्या करना चाहिए? जब गंगाजी ही कर्मनाशा बन जायँ, जब चन्द्रमा जाज्वल्यमान अग्नि का रूप धारण कर ले, जब जलराशि महासागर ही बालू की ढेर बन जाय- तो उस समय मुझ जैसे लोग क्या करें? जब मित्र ही पापात्मा शत्रु बन जाय, जब माता ही पुत्र की हत्या करने वाली मृत्यु बन जाय, जब जन्मदाता पिता ही यमराज की भूमिका निभाने लगे- तो हे सरकार! उस समय मुझ जैसे लोग क्या करें? जब हाहाकार स्वाहाकार के द्वारा भी न भगाया जा सके, जब हिमालय अपनी बर्फ की राशि छोड़ दे, जब पृथ्वी अपनी स्वाभाविक क्षमा का त्याग कर दे, तो हे श्रीराम सेवक चिरंजीवी श्रीहनुमानजी स्वामी, तब मुझ जैसे विचारक क्या करें?

हे बाबा! हे संसार के रक्षक तथा सबकी निगरानी करने वाले! आप अपना देश देखिये, यहाँ मनुष्य का ही निधन हो गया है। हे संसार की उत्पत्ति और रक्षा करने वाले! आप चिंतन करके देखिये, आपका देश भारत अत्यन्त निर्धन हो चुका है। हे बाबा! लोक में कहीं भी मंगल का समाचार नहीं है, न दिन में सुख है और न ही रात्रि में आनन्द। न यहाँ यज्ञ है न अध्यात्म सुख। हे भारत के रक्षक! आप अपना देश देखिये, यह विपत्ति में डूब गया है। कहीं भी अग्नि में हवन नहीं हो रहा है और कहीं भी वेद ध्वनि सुनायी नहीं पड़ रही है। सम्पूर्ण संसार हाहाकार से विलसित

है, वह दुःखी है और व्याकुल हो रहा है। हे करुणाकृति श्री हनुमानस्वरूप बाबा! देखिये, आपका यह देश भेड़ों के समूह जैसे कीचड़ में फँस गया है। इस समय सन्तरूप योगी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे मंगलमते! आप गंभीरता से चिन्तन करें, आपका देश बहुत रुग्ण हो गया है। हे बाबा! इस समय आपका यह भारत–भारत नहीं रह गया अर्थात् यह 'भा' यानी ज्ञान में रत नहीं है। इस समय यह शोभा में रत नहीं, प्रत्युत् विकलांग और विखण्डित हो गया, अब अखण्ड भारत नहीं रहा।

हे मेरे बाबा। इस राष्ट्र का उद्धार कीजिए। अपने भारत को 'भा' 'रत' अर्थात् ज्ञान में रत कर दीजिए। इस देश का उद्धार कीजिए। हे प्रचण्ड शक्ति वाले, हे अभय मुद्राधारी, हे जड़ चेतन को प्रसन्न करने वाले श्रीसीतारामजी! यह महँगाईरूपी राक्षसी सब ओर से सन्तों और गौवों की छाती पर चढ़कर खून पी रही है। इस महँगाईरूपी दुष्टा को मार डालिये। दुष्काल रूप कालरात्रि से उत्पन्न हुई यह महँगाई रूपी दुष्टा नाच रही है और यह दुराग्रही दुष्ट अवर्षण इस पर बार–बार टूट पड़ रहा है। अपनी कृपा दृष्टि की वृष्टि से इस भुखमरी और अवर्षण को समाप्त कीजिए। हे संसार का भय हरने वाले बाबा! अपने भारत को 'भारत' बना दीजिये। यह भारतीय संस्कृति कदाचार द्वारा दूषित कर दी गई है और संत आतंकवाद से व्याकुल हो गये हैं। आप अहंकाररूप तथा क्रोधरूप वृत्तियों को नियन्त्रित कीजिए। हे पूर्णकाम बाबा! बाप संशय और मोह को दूर कीजिए, अपने भारत को फिर भारत बना दीजिए।

अब मैं अन्तर्यामी बाबा आप से कैसे कहूँ कि आप भारत के कल्याण के सम्बन्ध में सोचें, हे करुणा के सागर 'स्वभारतीय' अर्थात् अपने भजन में लगे हुये इस देश की श्री की रक्षा करें। हे सर्वव्यापक! इस देश को आप विनाथ और अनाथ रूप में देखें अर्थात् यह विगतनाथ हो गया है। इसका कोई स्वामी अब नहीं रहा और यह अनाथ अर्थात् अभी तक किसी समर्थ स्वामी को नहीं प्राप्त कर पाया। अपने गिरते हुये राष्ट्र को

बचा लीजिए। हे बाबा! आतंकवाद रूपी शासकों ने जहाँ मृत्यु और भय का वातावरण उपस्थित कर दिया है ऐसी पृथ्वी दरिद्र होकर सम्मानरूप कर्णाभूषण से वर्जित होकर बहुत दुःखी हो रही है। हे प्रभो! इस समय चोरी और दुर्निवार्य भ्रष्टाचार बढ़ रहा है और वह सत्ता की मूलस्रोत प्रजा के धैर्य को भी चुरा रहा है। इसलिए इस देश का पालन कीजिए। हे दीनों के बन्धु, शील के महासागर, श्रीराम, के जन्मस्थान के रक्षक, इस देश की भी आप रक्षा कीजिए।

श्री हनुमत्स्वरूप! हे कृपासागर बाबा! आज भारत माता चिल्ला रही है। इस भारत को शत्रुओं से बचा लीजिए, बचा लीजिए। क्योंकि आज नायक ही आग बनकर इस देश को भस्म किये दे रहे हैं और ये देश को निरर्थक क्षति पहुँचा रहे हैं। हे बाबा! इस राष्ट्र को इन दानवों से बचा लीजिए। आज भारत की जनता कदाचार से पीड़ित होकर काँपती हुई विनम्र असहाय महिला की भाँति आर्त्त होकर आपसे सहायता की अपेक्षा कर रही है। इस पालनीय भारत का अपनी भुजाओं से पालन कीजिए। आज मुद्रालोभ के कारण लोग अतिभ्रष्ट हो गये हैं और यह प्रजा भी आज के तथाकथित नेतारूप खूनी हाथी से डर कर नीतिहीन हो गयी है। अब आप पाप से अपने वैदिक सेतु की रक्षा कीजिए। आप दण्डनीयों को दण्डित कीजिए और हे प्रभो! सज्जन समाज से शोक को दूर कीजिए।

बाबा! यह भारतभूमि विकला अर्थात् कला से रहित और विकला अर्थात् व्याकुल हो चुकी है। हे विश्वक्सेन! आप भारत के भविष्याकाश की ओर देखिए। भारत माता बहुत ही विषादग्रस्त हो रही हैं। आज गंगा कर्मनाशा के समान हो गई हैं और उसमें विकृत भूतियाँ अपलाप करने लगी हैं। आप भारत का ध्यान कीजिए और उसे बचा लीजिए। आज नेता इस देश को अकल्याण की ओर ले जा रहे हैं। देश का ही वे विक्रय कर रहे हैं। जिस प्रकार कोई कामधेनु के पुत्र को कसाई के हाथों बेच दे, उसी प्रकार ये देश को बेच रहे हैं। राजनीति वारांगना के समान पापिनी और

भयपूर्ण हो गई है। आज बगुला हंस के आसन पर बैठ रहा है, गधी कामधेनु को ललकार रही है और गधा हवि खा रहा है तथा कुलटा कुलांगना के साथ ईर्ष्या करके उसकी हँसी उड़ा रही है। आज क्लान्ति के द्वारा शान्ति ढक गई है और भ्रान्ति से शोभा नष्ट हो गई है। स्वामी, इस समय भारत बहुत आर्त हो गया है। पापियों ने उसकी छाती का खून पी लिया है। भारत के बायाँ हाथ, बायाँ नेत्र, बायाँ जंघा काटकर स्वार्थी लोगों ने उसे विकलांग बना दिया है अर्थात् आपका भारत अब अखंड नहीं है। हे बाबा! इन तथाकथित रक्षकों से, जो कि अपने देश को ही खा रहे हैं, बचा लीजिए भारतभूमि को।

बाबा! यह भारत अत्यन्त दुर्बल हो गया है अतः शोकपूर्ण भारत की दुर्दशा आप देखिए। हे दीनानाथ! आज सुख उत्पन्न करने वाली गाय मारी जा रही है और दासों का भार ढोने वाली गधी सम्मानित हो रही है। हे दीनानाथ! यह भारत आलस्य से युक्त हो गया है। अतः इसकी दीन अलसायी हुई दुर्दशा देखिये। आज भारत का नेता तीनों प्रकार की साम, दान और भेद नीति से रहित हो गया है अथवा मंत्र शक्ति, प्रभावशक्ति और उत्साहशक्ति से रहित हो गया है। यह तो केवल प्रेतों के पाप-समूहों से ही मानों निर्मित हुआ है। यह भारत रसहीन हो चुका है। आज दरिद्र लोग सभ्यों का द्रोह कर रहे हैं और रात-दिन जागरूक होकर धर्म का दोहन कर रहे हैं। आज भारत बहुत भयभीत है। इस देश की रक्षा कर लीजिए और हे सर्वव्यापी आनंद देने वाले! इस भारत को बचा लीजिए।

बाबा! मैं नहीं जान पा रहा हूँ कि भारत का उद्धार कैसे होगा? मैं यह भी नहीं समझ पा रहा हूँ कि इस देश में सुख का निर्धारण कैसे होगा? हे नाथ! आज द्वारों पर गायों की रक्षा नहीं की जा रही है, वे काटी जा रही हैं और खायी जा रही हैं। दुष्टों का संहार कैसे होगा? मैं नहीं जान रहा हूँ। आज धर्म में प्राणियों की प्रीति नहीं है। चारों ओर कुनीति और भय व्याप्त है। कष्ट समाप्त कैसे होगा? आज का नेता भारत का भक्त नहीं है। वह

छली, स्वार्थी और धन में आसक्त हो गया है। इस देश का शृंगार कैसे होगा, मैं यह नहीं जान रहा हूँ? हे प्रभो! इस देश में स्वाहाकार नहीं दिख रहा है और जनता हा हा करके चिल्ला रही है। इस देश का संस्कार कैसे होगा, हे बाबा! मैं नहीं जान पा रहा हूँ?

यह भारत निश्चित ही उस चंद्रमा की भाँति लग रहा है जिसका अमृत दुष्ट राहु ने पी लिया है। आज इस देश की तथाकथित झूठी धर्म-निरपेक्ष्यता प्राणियों में व्यभिचार को जन्म दे रही है। यह हस्तिनी बहन और पत्नी के भेद रूप कमल को अपने पैरों से मसल रही है। यह राजनीति वारांगना बनती हुई अपनी दुष्ट जीविका को नहीं छोड़ रही है। यद्यपि कामधेनु का तालाब कुत्सित जल वाला हो गया है फिर भी इसको गधी नहीं छोड़ रही है। यज्ञ की अग्नि से पवित्र इस देश को आज धूम्रपाश अर्थात् कुत्सित धूम मलिन बना रहा है। सुख के कारणरूप प्रातः काल को पाकर भी सामान्य प्राणी का मन आज सो रहा है। हे बाबा! देखिए, आज यह भारत सुखहीन हो गया है। इसे शीघ्र बचा लीजिए।

हे बाबा! राष्ट्र की रक्षा नहीं हो रही है, तो हम कहाँ जाएँ? हमको शान्ति मिल रही है तो हम क्यों नहीं हाथी के समान मत्त हो जाएँ। यदि हम दिन-रात अभाव से युक्त हैं तो झूठ का बहाना क्यों न लें? यदि अग्नि हिमालय को जला रहा है तो हम अपना धैर्य क्यों न छोड़ें? स्वयं छाँछ की भीख माँगने वाले हम दूसरे को अमृत कैसे दें? स्वयं हम दुःखी होकर दूसरों के लिए सुख का सर्जन कैसे करें? यदि चरंण ही नहीं है तो हम देवपूजन के लिए कैसे जाएँ? हे बाबा! यदि हमारा स्वरूप राहु का है तो हम मंगल कैसे बन जाएँ? यदि हमको रोटी का टुकड़ा भी नहीं मिला तो हम दूसरों को कैसे दें? आप ही बताइये, आपको छोड़कर हम किस का भजन करें?

बाबा सरकार! आप हमारे अनन्य हैं। यदि आप कृपा का दान नहीं देंगे तो इस राष्ट्र में हम कैसे रह सकते हैं? यदि अग्नि ही हिमालय को

जला रही हो तो हम कहाँ निवास करें? हे जगदीश्वर! यदि सारा संसार रो रहा है तो हम कैसे हँस सकते हैं? सिंह के सोते रहने पर उसी सिंह के बच्चे हम सब, कुत्ते से क्यों नहीं डरेंगे? यदि वन ही कम्पायमान हो रहा है तो हम पक्षी कहाँ आनन्द करें? यदि सम्पूर्ण पृथ्वी रसहीन हो गयी है तो हम कैसे सरस हो सकते हैं? यदि गधा ही रसेश अर्थात् नमक का आस्वादन-ले रहा हो तो हम किसका स्वाद लें? यदि मरुस्थल तरुण अर्थात् सक्रिय है तो हम बल्कल कैसे धारण करें, क्योंकि यदि मरुस्थल में पेड़ ही नहीं तो उसकी छाल कहाँ से मिलेगी हाय?

हे त्रयक्ष्य! अर्थात् तीन नेत्रों वाले शिवजी के अवतार बाबा! आज राजनीति वारांगना ही हो गयी है और इसमें अब अविश्वास और भय ही शेष रह गया है यह नृत्यांगना जैसी हो गयी है। आज नेता बहुत बड़ा नाटकी हो गया है और वह पाप तथा अपराधों की रचना करने लगा है, उसका चित्त मुद्रा के अर्जन में ही लगा हुआ है, वह सन्तों को दण्डित कर रहा है। हे चतुर शिरोमणि बाबा! इस देश को धूर्तों की चतुरता के लिए मत उपलब्ध कराइये। ये अधर्मशील हो गये हैं, इनमें पाप की प्रचुर मात्रा आ गयी है। इनका पुरुषार्थ भी प्रतिबंधित हो गया है। यह नपुंसक और निश्चेष्ट हो चुके हैं। इनमें आलस्य की मात्रा भी बहुत आ गयी है। हे दीक्षाओं के दाता! इस देश को दुष्टों के लिए दीक्षा का विषय मत बनाइये। आज गौवों का समूह इन्द्रियों के रक्षा का हेतु नहीं बन रहा है क्योंकि आज यज्ञ की अग्नि नहीं दिख रही है। न तो यहाँ वैदिक धर्म सेतु की प्रतिष्ठापना है और न ही यहाँ यज्ञ-स्तम्भ दिख रहे हैं। हे शिक्षाओं के दाता! आप इस देश को शिक्षा दीजिए। भारत की दशा देखकर अपना धैर्य छोड़ता हुआ मैं बहुत दुःखी हो रहा हूँ।

हे हनुमत्स्वरूप श्रीदेवरहाहंस बाबा! भवभंजन राघव श्रीराम तथा उनके श्रीकृष्णरूप के परम सेवक! आप भारतवर्ष की भूमि का पालन कीजिये। हे रावण का अहंकार दूर करने वाले, हे राम सेवकों को सताने

वालों को दण्ड देने वाले, हे पृथ्वी के आभूषण सन्तों के अलंकार सज्जनों के आश्रय! आप भारतभूमि का पालन कीजिए। आज नेताओं का वर्ग जनता की रक्षा नहीं कर रहा है। न ही विनम्रतापूर्वक शान्ति प्रदान कर रहा है और यह तो निरीह, दीन प्रजा को ही और भयभीत नारी के समान अभ्रान्त इस पृथ्वी को ही खाए जा रहा है। हे दुष्टों को नष्ट करने वाले महावीर! आप भारतभूमि का पालन कीजिए। आप की यह भारत भूमि बहुत व्यथित हो रही है और यह कभी न तो शान्ति ही पा रही है न तो यह सुख प्राप्त कर रही है। अपमान, रोग, भय, विकृतशोक तथा कुत्सित योग की प्रचुरता को ही यह पा रही है। आज धर्मपथ का आदर नहीं हो रहा है। प्रकृति भी अपमानित और विकृत होकर जी रही है। प्रकृति दिनों दिन तिरस्कृत हो रही है और इस प्रकार वैश्विक भय प्राप्त करके मृत्यु को पाना चाहती है। हे भक्तों को आनन्द देने वाले बाबा! भारत की रक्षा कीजिए।

हे बाबा! भारत की प्रजा आपसे याचना कर रही हैं। हे नाथ! भारतीय प्रजाएँ आपसे आशीर्वाद माँग रही हैं। आज करोड़ों की संख्या में अपमानित होकर मारी जा रही गौएँ एवं विघ्नों से पीड़ित हो रहे निरभिमान सन्तजन आपसे प्रार्थना कर रहे हैं। हे प्रभो! मैं याचक विषादरहित होकर आपके चरणकमल के दर्शन करना चाहता हूँ और आपके चरणकमल का मकरन्द अर्थात् चरणामृत चाहता हूँ।

हे बाबा! आप राष्ट्रदेवता हैं। नित्य करोड़ों की संख्या में गौएँ मारी जा रही हैं और नीचों द्वारा सागरों में अनाज से भरी हुई नौकाएँ डुबो दी जा रही हैं। हे देवताओं के देवता आप राष्ट्र के युगदेवता हैं। हे प्रभो! आतंकवादियों ने इस भारत के पग-पग पर आक्रमण करके अगुवा कर लिया है और प्रमादी यवनों ने घुसपैठ करके इसे घेर लिया है। हे दीनों के नाथ! आप भारत के भार की समीक्षा कीजिए, सीमाओं का निरीक्षण कीजिए क्योंकि आप इस राष्ट्र के देवता हैं। आज नेता अभिनेता बनकर धार्मिक प्रजा को ठग रहे हैं और बिल्लियों की भाँति निरन्तर उसे रुग्ण करके नोंच रहे हैं।

आज नारियाँ रूप बेच रही हैं, किसी प्रकार की लज्जा नहीं रह गई है।

बाबा रूप धारण किये श्री हनुमानजी! आप शीघ्र दया कीजिए और भारत की दुर्दशा देखिये। आपकी प्रतीक्षा करता हुआ मैं बैठा-बैठा बाट जोह रहा हूँ और आपके चरणों का आश्रय लिये हुए विशिष्ट अवसाद से दुःखी भी हो रहा हूँ।

हे भय को नष्ट करने वाले संकटमोचक बाबा! आप भारत माता को भयंकर विपत्तियों से छुड़ा लीजिए। आप भारत माता को प्रकाशित कीजिए, माँ को प्रसन्न कीजिए, माँ को शीतल कीजिए। आप सन्ध्याकालीन पश्चिम सूर्य की भाँति ही पश्चिमी सभ्यता से नष्टप्राय एवं धूलि-धूसरित ध्वजा वाले आर्त्त इस भारत को देखिये। कमलिनी की भाँति मर्यादा को नष्ट करने के लिये पर्वत पर उत्पन्न हाथी जैसे इस भारत को देखिये और रात-दिन विपत्तियों से व्याप्त इस भारत को रक्षा के लिये स्वीकारिये। आप भारत माता को प्रसन्न कीजिए। आप उत्तराखण्ड की ओर देखिये, जहाँ गंगाजी का शरीर क्षीण हो गया है, जो गंगा उस चन्द्रिका के समान हो गई है जिसकी शोभा को अनेक बाँधरूप राहुओं ने ग्रस ली है। यह गंगा उस कमलिनी की भाँति हो चुकी है जिसका कमल कीचड़ से मलिन हो गया है। जिन गंगा की धारा अनेक लहरों के कारण व्याकुलित अर्थात टूट गई है। जो दीन हो गई है, जहाँ केवट धिक्कार रहे हैं अर्थात् बहुत कम जल होने के कारण नाव नहीं चला पा रहे हैं। जो गंगा गन्दे गटरों के जल से दूषित और श्याम हो गई है, जो गन्दे नालों की दुर्गन्धि से व्याप्त हो गई हैं। गंगाजी जिनके चरणों से निकली, ऐसे हे श्रीराम! आप अपने आश्रय से भारत माँ को प्रकाशित कीजिए। हे बाबा! पूर्व दिशा में भारत की दुर्दशा देखिये, जिसमें वैदिक संस्कृति नष्ट हो गई है, जिसका अन्त बहुत निकट है। जो अमावस्या की रात्रि की भाँति बहुत भयंकर है। जहाँ छोटे-छोटे बिना दाँत वाले दुधमुहे बच्चों का भी वध किया जा रहा है। जो स्वाहाकार से वर्जित हाहाकार से पूर्ण और दिशाहीन है। हे बाबा! आप पश्चिम की

ओर देखिए, वह यवनों से आक्रान्त और अनाथ हो गया है और उस भूभाग में सभी पश्चिमी वेश को स्वीकार कर चुके हैं। सभी नट के समान क्षण-क्षण में रंग बदलते हैं, जहाँ से धर्म बहुत दूर हो गया है जहाँ पाप अपना तांडव रच रहा है। कश्मीर का भाग उच्छृंखल खण्डित सीमा वाला और दुष्ट शासकों से युक्त हो चुका है। अब आप दक्षिण दिशा को देखिए जो ऋषियों और मुनियों से युक्त वन को रात-दिन कष्ट पहुँचा रहा है। जो उस वन को सता रहा है जहाँ पीड़ित महिलाओं और बालकों के चिल्लाहट से युक्त भयंकर विपत्ति है।

हे महावीर विक्रम वज्रंगी बाबा! आप संसार के लिये वज्र के समान कठोर बनिये क्योंकि पुष्प को भौंरा भी मसल डालता है और चन्द्रमा को सिरहीन राहु भी ग्रस लेता है। इसलिए पुष्प भाव को छोड़कर वज्रता स्वीकारिये और प्रतिपदा का चन्द्र न बनकर अब पूर्ण चन्द्र बन जाइये। संसार कोमलता का अपमान करता है और आप ही बतायें? हीरे को कौन तोड़ पाता है। इसलिये आप कठिनता को स्वीकारिये और अघोर शिव के समान घोर बन जाइये। आप कालरूप कृपाण को धारण कर लीजिए।

इस भारत में आज बहुत बड़ा भय व्याप गया है। कल्याण से नष्ट हुए निर्बल प्राण वाले व्याकुल इस ज्ञानमय भारत में भय व्याप्त हो गया है। यहाँ न स्वधा है, न स्वाहा और न वषट्कार। यहाँ प्रणवपूर्वक वैदिक उच्चारण भी नहीं है। यहाँ सदाचार भी नहीं है। इस प्रकार आचार से रहित अप्रशंसित भारत में आज भय व्याप्त गया है। यहाँ महिलाएँ वेष को ही जीविका का साधन बना रही हैं और पुरुष दूसरी स्त्री में आसक्त होकर लम्पट बन गए हैं। बालिकाएँ और बालक साँप के समान कुटिल और कुत्सित वस्त्र वाले हो गए हैं और मनुष्य अपने प्राणों को बेच रहे हैं। गर्भाशय तथा किडनी का भी व्यापार हो रहा है। इस प्रकार जहाँ प्राण पन अर्थात् सट्टा ही प्राण है, ऐसे भारत में भय व्याप्त हो रहा है। यहाँ न कोई माता है, न पिता, न भाई, न पुत्र, न पुत्री, न जमाई। यहाँ तो द्रव्य ही लक्ष्य

है। इस प्रकार सुखरहित भारत में भय ही भय व्याप्त है। यहाँ न शान्ति है, न शोभा, न क्षमा, न यहाँ भोग है, न योग है, न संयम। इसी प्रकार यहाँ न तितिक्षा है, न शिक्षा है और न ही कहीं दीक्षा की विधि है। इस भारत में आज भय ही भय है।

बाबा सरकार! मेरा भारत तो दुष्ट राहु द्वारा जिसके प्रकाश का पान किया गया हो, ऐसे चंद्रमा की भाँति प्रतीत हो रहा है। यह लोक हाहाकार से युक्त होकर शोक से चिल्ला रहा है। यह बिचारा दिन में न तो प्रसन्नता से भोजन कर रहा है और न ही रात में सो रहा है। यह हमारा भारत श्रौत-यज्ञ से रहित होने के कारण अपने को भी नहीं पवित्र कर पा रहा है। स्वर और पदों से हीन कुत्सित हव्य के समान इसको घोर कलियुग सता रहा है। यह भारत निरंतर आर्त है। यह सिर पीटकर-पीटकर मुक्के से छाती को मार रहा है। यह कुल की मर्यादा को छोड़कर अनाथ हुआ जैसा शम और शान्ति को छोड़ रहा है।

मेरे बाबा! यह भारतवर्ष इस समय संकटों से आवृत हो गया है। यह तो ग्रहणकालीन चंद्रमंडल की भाँति पड़ोसी शत्रुओं से घिरा हुआ है। पूर्व की ओर से नेपाल को वामपंथी बलपूर्वक सता रहे हैं और प्रचण्ड अर्थात् भयंकर कुशासन से वे भोले-भाले प्राणियों को सता रहे हैं। इसी प्रकार उत्तर की ओर से चीनांशुक धारण करने वाले दुष्ट चीनवासी बाण को भी मोक्ष की संज्ञा देते हुए भारतीय प्रजाओं को घायल कर रहे हैं। इसी प्रकार पश्चिम दिशा से यवन लोग लोगों को वेग से विकृत कर रहे हैं। दिन-रात निर्दोष भारतीयों की हत्या कर रहे इन आतंकवादी तथाकथित अल्पसंख्यकों को मत के लोभ से शासक भी नहीं दंडित कर पा रहे हैं। इसी प्रकार दक्षिण की ओर से मनुष्यों के नाश में निपुण रावणवंशीय राक्षस बहुत दक्षिणा देने वाली भारतीय प्रजा को निर्दयतापूर्वक भून रहे हैं।

हे बाबा के स्वरूप मे स्थित माता अंजनिसुत श्री हनुमानजी महाराज! आप भारत की दुर्दशा देखिये, हे संसार का भय नष्ट करने वाले! आप

भारत की दुर्दशा नष्ट कीजिए। भौतिकवाद की लिप्सा चुड़ैल की भाँति संसार की विभूति को पाना चाहती है और छल की प्रवृत्ति ललित नारी के वेष से कामज्वर का सर्वत्र और समस्त समय विज्ञापन कर रही है। जहाँ सूर्य भी अस्त हो जाते हैं ऐसे विदेशों की वस्तुओं की बहुमूल्यता से गरीब दिन-दिन गरीब होता जा रहा है। हे प्रभो! भारत की दिशा अंधकारमय हो गयी है। आज का नेता नाटकीय, स्वार्थैच्छु, अभिनेता- पापाचार में लग गया है। मुद्रा राक्षस ने उसकी दिशा ही नष्ट कर दी है। वह क्रूर हो गया है और वह अधर्म का आश्रय ले रहा है। आपकी भारतभूमि बहुत दुर्बल कर दी गयी है। इस समय मनुष्य पापात्मा हो गया है, वह दुष्ट होकर कुत्सित कर्मों में लग गया है और वह दानवी प्रवृत्ति का हो गया है, वह गंगाजी के जल को दूषित करने में लग गया है। वह दम्भी हो गया है तथा वह दोष का महासागर बन गया है। बाबा! आप विचार कीजिए, मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ।

मेरे बाबा! इस भारत का आप निरीक्षण कीजिए। इसके अनन्तर जो करणीय हो, वह कल्याणमय कार्य कीजिए। आज गौवें नहीं दुही जा रही हैं, स्वाहाकार से अग्नि में हवन नहीं सुना जा रहा है और खेद की बात है कि अग्निदेव में घी की आहुति भी नहीं पड़ रही है। हे भारत के ईश्वर! आज इस उद्विग्न भारत को देखिये। राष्ट्र की कृषि-संस्कृति आज यन्त्रों से काटी जा रही है और अपूर्व पूर्व में भी पश्चिम को लाया जा रहा है अर्थात् भारत देश में भी पश्चिमी विनिवेश किया जा रहा है। यह भारत देश आज शोभा से हीन हो गया है। आज पतिपरायणा, अच्छे कुल में उत्पन्न हुई स्त्री का भी यहाँ सम्मान नहीं किया जा रहा है। आज आतंकवादरूप द्वारा भारत का छेदन किया जा रहा है। भारत तप रहा है।

हे बाबा! यदि रक्षक ही भक्षक हो जाय तो फिर क्या किया जाय? यदि साक्षी ही गूँगा-बहरा और नेत्रहीन हो जाय तो क्या किया जाय? जिसको विधाता ने प्राणियों के लिए औषधियों के वितरणार्थ नियुक्त किया

था, यदि वही विष बांटने लगे तथा जीवों को खाने वाला बन जाय तो क्या किया जाय? जिस राजहंसिनी का कोमल मानससरोवर के कमलखण्ड पर लालन-पालन किया गया, यदि वही पाप-नेत्रा बगुली बन जाय तो क्या किया जाय? जिस चन्द्रमा की आर्त्त चकोरों ने बहुत कालपर्यन्त प्रतीक्षा की हो, यदि वही चन्द्रमा अमृत के बदले आग उगलने लगे, तो क्या किया जाय?

हे श्रीदेवरहाहंस बाबा स्वरूप हनुमानजी महाराज! आप अन्तर्यामी के समक्ष मैं क्या कहूँ क्योंकि आप चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यंत सबको जानते हैं और सभी लोकों के स्वामी आपसे मैं क्या माँगूँ? जबकि आप माँगने वाले को सब कुछ दे डालते हैं। इस भारत देश को सड़े हुये माँस मानकर गीध के समान क्षुद्र लालच में पड़े हुए धृष्ट विदेशी लोग इसे नोच रहे हैं और अपराध करने से बाज नहीं आ रहे हैं। हे बाबा! आज अशिष्ट शासकगण देश की अस्मिता से वेष का क्रय कर रहे हैं। ये दुष्ट शासक दुर्धर्श शासन करने वाले दूर देश के शासक के हाथ देश को बेच रहे हैं। हे कल्याणकारी बाबा, परम शोभावान! आज सभी लोग आतंकवाद से डर रहे हैं। शान्ति भारतभूमि से दूर चली जा रही है।

मेरे परम प्रकाशवान बाबश्री आप से ही भारत को रक्षा की अपेक्षा है क्योंकि कलियुग में आप पर ही धर्म की रक्षा और अधर्मियों के नाश का भार है और क्योंकि यद्यपि आप परम-समर्थ तथा परम-शक्तिमान हो, परन्तु आपको आपकी समर्थता का स्मरण कराना होता है अतः हे श्री हनुमत्स्वरूप श्रीदेवरहाहंस बाबा मैं आपसे भारत की रक्षा करने के लिये 'आपको अपना' स्मरण करने की प्रार्थना कर रहा हूँ।

अध्याय–दो

प्रणाम वन्दना

श्रीगणेशजी को सद्गुरु बाबा में प्रणाम है। श्रीसद्गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम है। माता भगवती श्रीसरस्वती को प्रणाम है। वे ही सद्गुरुदेव में से हमें परावाणी सुना रही हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश को प्रणाम है। कुलदेवता श्रीहनुमानजी को प्रणाम है। भगवान श्रीलक्ष्मीनारायण से प्रारम्भ होने वाली तथा नाथमुनि एवं यामुनमुनि जिसके मध्य में, सद्गुरुदेव जिसके वर्तमान में विद्यमान हैं उस गुरुपरम्परा को प्रणाम है। सद्गुरु बाबास्वरूप समस्त ऋषि-मुनियों, योगियों, सन्तों और अवतारों को प्रणाम है। उन को भी प्रणाम है जो इस ग्रन्थ की त्रुटियाँ, कमियाँ निकालकर आलोचना करेगें और इस तरह हमारे पापों का बोध करवाकर हमें पापमुक्त होने में सहायक होंगे। हम भक्तों, पाठकों और सहयोगियों को नमन करते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे एकाग्रचित होकर श्रीहनुमत्-स्वरूप बाबा को समर्पित हों।

बहुत ही सरल, सहज और सजीले उन बाबा के मैं पैर पड़ता हूँ जिनमें सब अच्छाइयाँ ही अच्छाइयाँ भरी हुई हैं, जो सदा अपने मन को सँभाले रखते हैं, जो सबको सदा बचाए रखते हैं, जो भलेपन से भरे हुए हैं। ऐसे बाबा सरकार को मैं उनके चरणों में दण्डवत् करता हूँ और फिर सिर झुकाकर सम्मुख खड़े होकर मैं बार-बार सच्चे जी से हाथ जोड़ ले रहा हूँ।

सरकार! जानने की सच्ची बातें किसी को देखनी हों तो आपको देख ले। आप जैसा न तो कोई था, न कोई है, न होगा। आप ही अपनी चमक से सारे गुण (सत्त्व, रजस् और तमस्) पैदा किया करते रहते हैं। जागते, सोते और सपना देखते हुए भी कोई बना रहता है तो आप ही रहते हैं। आप ही सब पापों को मिटा डालते हैं। सबके घट-घट में कोई रमा रहता है तो आप ही रमे रहते हैं। आप सदा अपना जी ठंडा (सम) किए रखते हैं। आपको कोई ठीक-ठीक समझ पा सकता है तो वही समझ पा सकता है जिसकी सूझ बड़ी खरी हो। न तो आपका

कोई नाम है, न रूप है, न आपमें नाम को भी किसी बात का घमण्ड है। जहाँ तक मेरी बात है, मैं किसी का हूँ तो बस आपका ही हूँ। बाबा! आप जो यह मानुसों वाला चोला अपना लेते हैं वह हमारा भला करने और हमको सीख देने के लिये बन खड़ा करते है। नहीं तो भला अपने ही आप में रमे रहने वाले, संसार के भीतर-बाहर बसे रहने वाले और सारे संसार को अपनी मुट्ठी में किए रहने वाले आपको इस सब झमेले से क्या लेना देना?

जो लोग आप में सच्ची लौ लगाए रहते हैं उनके तो जो कुछ हैं सब आप ही हैं और आप बाबा ही उनके बड़े प्यारे सबकुछ हैं। आप सबसे ऐसे अलग रहते हैं कि तीनों लोकों में कुछ भी ऐसा नहीं है जिससे आपका कोई लगाव हो। लोग कुछ भी कहते रहें पर आप न तो किसी के बिछोह में पड़े घुलने वाले हैं और न किसी को ही अपने से अलग करके अपने से बाहर निकालने वाले हैं।

चाहे कोई देवता हो, असुर हो, या मानुस हो, सबको यही चाहिए कि सदा आपके श्रीहनुमत्स्वरूप का ही भजन करता रहे, क्योंकि मानुस के चोले में आप भगवान् ही तो हैं। आप तो ऐसे अच्छे हैं कि आपके लिये कोई थोड़ा भी कर दे तो उसे भी आप बहुत करके मान लेते हैं। आप ही हैं जो सबकी भलाई के लिये नर और नारायण का बाना बनाकर छिपे छिपाए कल्प के बीतने तक बैठे तप किया करते रहते हैं। आपका यह तप भी ऐसा निराला है कि उससे सबकी भलाई होती रहती है, सब कुछ जान लेने की सारी बातें भी जान ली जाती हैं, सभी झंझटों से छुटकारा भी मिल जाता है, बढ़िया ठाटबाट, धन-दौलत भी हाथ आ लगती है, जी भी सुखी हो जाता है, सबसे नाता जोड़ने और तोड़ने की जुगत भी जान ली जाती है और आदमी पहचानने भी लगता है कि मैं हूँ तो कौन हूँ?

हैं तो बस आप ही हैं। आपको घमण्ड छू तक नहीं गया है। जिनका कोई सहारा नहीं है उनके सहारे कोई हैं तो आप ही हैं। आप बड़े भोले-भाले हैं। नर नारायण ऋषि भी कोई है तो आप ही हैं। आपको मैं सिर नवाकर हाथ जोड़ता हूँ। बाबा! आप तो परमहंसों के और अपने आप में रमे रहने वाले बहुत बड़े-बड़े लोगों के भी गुरु हैं। आपको मैं बार-बार हाथ जोड़ता हूँ।

सब कहते हैं कि इस सारे संसार को बनाने पर भी आप कभी यह नहीं

मानते कि इसे आपने बनाया है। सबकी देहों में रमे रहने पर भी आपको कभी भूख-प्यास नहीं सताती। सब कुछ देखते रहने पर भी आँखें आपको आसक्ति की ओर नहीं ले जा पातीं। ऐसे सबसे अलग रहने पर भी सबको देखते रहने वाले सद्गुरु बाबा के श्रीहनुमत्स्वरूप को मैं हाथ जोड़ता हूँ।

सबसे बड़ा कोई योगी हो सकता है तो आप ही हैं। योग साधने का सबसे अच्छा ढंग यही बताया गया है कि मनुष्य जब अपना शरीर छोड़ने लगे तब शरीर की बात न सोचकर सच्ची लगन के साथ बस आप में ही मन लगा बैठे।

बाबा! यह तो मानी हुई बात है कि आप से जो भी कुछ जा माँगे उसे वह सब दे भी डालते हैं। पर, आपका यह देना कोई देने में देना नहीं है क्योंकि मनचाहा पा लेने पर भी माँगने वाले के मन में तो और पाते रहने की ललक बढ़ती ही रहती है। मैंने देखा है कि आपके देते रहने पर भी लेने वाला और पाने के लिये आपकी ओर देखता ही रहता है। पर, जो लोग आपको प्यार करते रहने पर भी कुछ माँगते नहीं, उन्हें तो आप अपने पास ऐसा ला बिठाते हैं कि कोई साध या चाह उनके मन में रह ही नहीं जाती।

बाबा हमारे मन में आप की सुध बराबर बनी रहे क्योंकि आप तो ऐसे अच्छे हैं कि जो भी सच्चे जी से भजन करता है आप से प्यार करता है, सरकार आप उसके ऐसे हो रहते हैं कि आप सदा उसका भला ही भला करते रहते हैं।

बाबा! बानक बहुत ही अच्छा बना है। देखिये, जैसा कि मैं स्वभाव से ही से मलिन, कुटिल और चञ्चल हूँ वैसा ही मेरा शत्रु काल भी नितान्त, मलिन, कुटिल और चञ्चल है। मेरी दशा इस समय अमावस्या के चन्द्रमा के समान हो रही है। उस तिथि को अपनी सारी कलाओं के नाश के कारण चन्द्रमा बहुत ही क्षीण हो जाता है और उसका सारा तेज न मालूम कहाँ चला जाता है। तब सूर्य करुणा करके उस शरणार्थी को अपनी रश्मियों से फिर जिला देता है। सरकार! मेरी दशा भी, उसी चन्द्रमा के सदृश है। जन्म, जरा, मरण की चिन्ता से मैं क्षीण हो रहा हूँ। मुझमें भी शिल्प, साहित्य आदि से सम्बन्ध रखने वाली कोई कला शेष नहीं। तेजस्विता ने तो मेरा साथ सर्वथा ही छोड़ दिया है। अतएव आपको परमकारुणिक दिनकर मानकर चन्द्रमा के समान मैं आपका आश्रय चाहता हूँ।

यदि आप मुझपर कृपा न करेंगे तो फिर मेरा निस्तार नहीं- तो फिर मेरी जीवन-कला गयी ही समझिये।

आगे-पीछे, ऊपर नीचे, इधर-उधर, जहाँ कहीं भी देखता हूँ, हाथ में नागपाश लिये हुए क्रूर काल सर्वत्र ही मुझे दिखायी दे रहा है। बाबा! सरकार! अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किसको पुकारूँ? मैं आपके पैरों पड़ता हूँ; मैं पृथ्वीपर लेटकर दण्डवत् प्रणाम करता हूँ। मैं दीनता दिखाता हूँ, मैं विनती करता हूँ- मुझे बचा लीजिये।

मैंने बहुत कुछ कहा, मैंने बहुत सिर पटका। अतएव बार-बार उन्हीं बातों को दोहराने-उन्हीं की पुनरुक्ति करने से क्या लाभ? वह सब व्यर्थ होगा। इस तरह के इन निष्फल प्रलापों से तो मेरा हृदय और भी उद्विग्न हो उठता है। यह सब मैं जानता हूँ और अच्छी तरह जानता हूँ। परन्तु फिर भी मैं करुणाजनक रुदन न करूँ क्या? आपके सिवा मुझे कहीं अन्यत्र शरण मिलने की आशा तो हैं नहीं। मेरे शरण्य तो एकमात्र आप ही हैं। आपको मेरी विनती सुननी ही पड़ेगी। आप जानते हैं कि मैं हठी हूँ। हठी शठ हूँ न- पर किसने मुझे ऐसा बनाया है?

सरकार! 'आप समदर्शी हैं। आपके सम्मुख चाहे शत्रु आ जाय, चाहे मित्र। आत्मसमर्पण भर वह कर दे। फिर चाहे उसने जितना भीषण अपराध किया हो, चाहे उसमें बड़े से बड़े दोष ही क्यों न हों आपका हृदय तो, ऐसी दशा में, उसे पर भी दयार्द्र हो ही जाता है। मैं अधिक बातें बनाना-कहना नहीं चाहता और न ही ऐसा करने की शक्ति है मुझमें। मेरा कोई सहायक भी तो नहीं। सहायक बनने तो बहुत आते हैं पर बिछड़ जाते हैं-यह बात आपसे छिपी नहीं हैं। आपसे यह भी छिपा नही हैं कि मैं तो बन्धु-बान्धवों से भी रहित हूँ। संसार में आत्मीय भी मेरा कोई नहीं। अतएव, करुणासागर! मुझ निःसहाय और महाअधम की गति केवल आपके हाथ है। मुझे तो बस, एक आपका ही भरोसा है।

●●●

अध्याय—तीन

कलियुग में हनुमानजी की महिमा

देवर्षि श्रीनारद भगवद्भक्तिके आचार्य हैं। भक्ति का प्रचार-प्रसार तथा आचरण द्वारा आदर्श स्थापन कर जागतिक जीवों को भगवद्न्मुख करना ही इनका एकमात्र ध्येय या लक्ष्य है। इनको भगवान् का मन कहकर भी वर्णन किया गया है। जीव का निस्तार करना जैसे श्रीभगवान् का सहज स्वभाव या धर्म है, उसी प्रकार उनके मनस्वरूप श्रीनारद भी जीवों को भगवदुन्मुख करने में सतत तत्पर रहकर अबाध गति से त्रिभुवन में विचरण करते रहते हैं।

जैसे श्रीभगवान् के अनन्त स्वरूप और अनन्त धाम हैं, उसी प्रकार उनके भक्त भी अनन्त हैं। यह विचारकर एक बार श्रीनारदजी के मन में कौतुकवश यह जानने की तीव्र उत्कण्ठा जाग उठी कि श्रीभगवान् का सबसे अधिक प्रिय भक्त या कृपापात्र कौन है। इसी संदर्भ में वे पृथ्वीलोक-स्थित प्रयाग निवासी एक ब्राह्मण भक्त से मिले, जो श्रीशालग्राम का प्रिय भक्त था। श्रीनारदजी ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा- 'विप्र ! आप श्रीभगवान् के परम भक्त हैं। उस ब्राह्मण ने अपनी दीनता प्रकट करते हुए निकटवर्ती देश के राजा का परिचय दिया कि वास्तव में वह राजा ही श्रीभगवान् का परम भक्त है। श्रीनारदजी उस राजा के निकट पहुँचे और उसकी प्रशंसा की। परंतु राजा ने अपने को भवत्कृपा से वंचित बताकर देवराज इन्द्र को भगवान् का पूर्ण कृपापात्र बतलाया।

कितनी देर लगती है श्रीनारदजी को? ये तुरंत स्वर्गलोक में इन्द्र के पास पहुँचे और बोले- 'देवराज ! आप धन्य है एवं श्रीभगवान् के पूर्ण कृपापात्र हैं; क्योंकि श्रीउपेन्द्र भगवान् आपके छोटे भाई बनकर यहाँ विराजमान रहते है। समस्त लोकपाल, मुनिगणादि आपकी आज्ञा के वशवर्ती हैं।' श्रीनारद द्वारा अनेक प्रकार की स्तुति सुनकर इन्द्र ने अपने दोषों की गाथा कह सुनायी और अपने को भगवत्-कृपा से वंचित बतलाया। इन्द्र ने श्रीनारदजी को ब्रह्मलोक में भेजा और श्रीब्रह्माजी को भगवान् का परम कृपापात्र बताया।

श्रीनारदजी ब्रह्माजी के पास पहुँचे। ब्रह्माजी ने श्रीमहादेवजी को ही श्रीभगवान्

का परम प्रिय भक्त बताकर उन्हें शिवलोक भेज दिया। श्रीमहादेवजी ने भी अपने को भगवत्-कृपापात्र नहीं माना और वैकुण्ठवासियों के भाग्य की सराहना की। श्रीपार्वतीजी ने वैकुण्ठवासियों में श्रीलक्ष्मीजी को श्रीभगवान् का परम कृपापात्र कहकर वर्णन किया। जब श्रीनारदजी वैकुण्ठ जाने लगे तो महादेवजी ने उन्हें बताया कि इस समय श्रीभगवान् भौम द्वारकापुरी में लीला कर रहे है। अतः आप सुतलोक में जाकर उनके परम प्रिय भक्त प्रह्लादजी के दर्शन करें।

श्रीनारदजी प्रह्लादजी के पास पहुँचे और उनकी गुणमहिमा का गान करते हुए कहने लगे- 'प्रह्लादजी ! निश्चय ही आप श्रीभगवान् के श्रेष्ठ भक्त हैं। उनकी जैसी कृपा आप पर है, वैसी और किसी पर भी नहीं।' श्रीप्रह्लादजी भला कैसे इस बात को सहन करते?

वस्तुतः भक्ति एवं भगवत्-कृपा का स्वभाव है दैन्य, और प्राण है विनम्रता। परम भगवत्-कृपा-प्राप्त होते हुए भी भक्त अपने को कृपा-वंचित मानता है, सदा अतृप्त रहता है कृपाकादम्बिनी के लिये।

श्रीप्रह्लादजी ने अपने सम्बन्ध में श्रीनारदजी की समस्त धारणाओं का निरसन करते हुए अन्त में कहा- 'मुनिश्रेष्ठ ! आप निर्हेतुक कृपालु हैं। मैं अपने दुर्भाग्यों का अधिक निरूपणकर आपको दुःखी नहीं करना चाहता। आप किंपुरुषवर्ष में जाकर श्रीहनुमानजी के दर्शन कीजिये।'

हनूमांस्तु महाभाग्यस्तत्सेवासुखमन्वभूत्।
सुबहूनि सहस्राणि वत्सराणामिविघ्नकम्।।
यो बलिष्ठतमो बाल्ये देववृन्दप्रसादतः।
सम्प्राप्तसद्वरव्रातो जरामरणवर्जितः।। (बृहन्दाभागवतामृत)

'श्रीहनुमानजी ही बड़े भाग्यशाली हैं, उन्होंने भगवान् श्रीराघवेन्द्र के सेवा-सुख का निरन्तर ग्यारह हजार वर्षों तक निर्विघ्नरूप से आस्वादन किया है। वे अतिशय बलवान् हैं और देवताओं की कृपा से अनेक वर प्राप्त कर वे जरा-मरण से रहित हैं।"

'नारदजी ! आप विचार कीजिये, श्रीहनुमानजी-जैसा भगवत्-कृपापात्र और कौन हो सकता है? वे प्रभु श्रीराघवेन्द्र के श्रेष्ठ वाहन हैं। उनकी पूँछ प्रभु के लिये श्वेत छत्रस्थानीय है। उनकी पीठ प्रभु का सुखद आसन है। सच पूछिये तो श्रीराम

की विजय के सम्पादक श्रीहनुमानजी ही हैं। अतः वे ही सब प्रकार से श्रीभगवान् के कृपा-भाजन हैं। यहाँ तक कि प्रभु का आज्ञापालन करते हुए वे श्रीराघवेन्द्र के असह्य विरह को भी सहनकर यहाँ पृथ्वीलोक पर विराजते हैं, प्रभु के साथ साकेतलोक में नहीं गये। केवल इसलिये कि भगवद्विमुख जीवों को दास्यं-भक्ति की शिक्षा प्रदान कर उनका संसारसागर से निस्तार कर सकें।'

श्रीप्रह्लादजी ने आगे फिर कहा- 'स्वामिन् ! दास्य-भक्ति में श्रीहनुमानजी की महिमा प्रसिद्ध है। वे अग्रगण्य हैं। श्रीरामजी से अनायास मुक्ति प्राप्त कर सकते हुए भी जिन्होंने उनकी दास्य-भक्ति माँगी अथवा दास होना ही स्वीकार किया , मैं उन श्रीहनुमानजी को प्रणाम ही करता हूँ। और अधिक क्या कहूँ? नारदजी ! मुझसे अधिक उनकी महिमा तो आप ही जानते हैं।'

श्रीप्रह्लादजी से श्रीहनुमानजी की अलौकिक गुणावलि सुनकर श्रीनारदजी किंपुरुषवर्ष में पहुँचे। उस समय श्रीहनुमानजी श्रीराघवेन्द्र की चरणसेवा में लगे हुए थे। श्रीनारदजी श्रीहनुमानजी के दर्शन करते ही उल्लसित हो उठे और 'जय श्रीराघवेन्द्र', 'जय श्रीलक्ष्मण' कहकर नाचने लगे। श्रीहनुमानजी ने उछलकर अपने प्रभु-नाम-कीर्तनकारी श्रीनारदजी को गोदी में भर लिया। वे परमानन्दित हो उठे।

युग परिवर्तन तथा श्रीहनुमादावतार

श्रीहनुमानजी केवल चिरंजीवी ही नहीं बल्कि नित्यजीवी हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की सहायता त्रेता में तो रुद्रावतार श्रीहनुमान ने की ही, द्वापर में परमब्रह्म के अवतार योगयोगेश्वर श्रीकृष्ण की भी सहायता की है। श्रीहनुमानजी कलियुग में सिद्ध सन्त के स्वरूप में रामभक्तों को दर्शन देते हैं तथा जीव का कल्याण करते हैं। साधु-सन्तों की रक्षा के लिये कलियुग में भी श्रीहनुमानजी की दिव्य लीलायें हैं। अब यहाँ आप द्वारा जिज्ञासा प्रकट किया जाना स्वाभाविक है कि तेजपुंज रुद्रावतार श्रीहनुमानजी का अवतरण त्रेतायुग में हुआ तो उनके पराक्रम और यश का गुणगान त्रेता के पूर्व सतयुग में कैसे था? यह एक महत्वपूर्ण एवं विचारणीय प्रश्न है।

उपरोक्त संशय का समाधान वेद, पुराण, उपनिषद आदि धार्मिक पुस्तकों में तो है ही, इसका समाधान गोस्वामी तुलसीदास कृत कालजयी रचना श्रीरामचरितमानस में संकेत के रूप में भी है।

यह तो सर्वविदित है कि महादेव शंकरजी का विवाह पर्वतीजी से सतयुग में हुआ था। पार्वतीजी सती के रूप में हिमालय की पुत्री अवतरित हुई थीं। मानस के बालकाण्ड में सती प्रसंग का संक्षिप्त वर्णन है जिसमें सतीजी को सीता-अपहरण के बाद भगवान श्रीराम को सीताजी की खोज में वन-वन भटकते देख उन्हें संशय हुआ था कि क्या यही राम हैं जिन्हें महादेव शंकर नित्य भजते हैं। मानस में इस प्रसंग का वर्णन द्रष्टव्य है-

सतीजी सोचती हैं कि देवताओं के हित के लिये मनुष्य शरीर धारण करने वाले जो विष्णु भगवान हैं, वे भी शिवजी की ही भांति सर्वज्ञ हैं। वे ज्ञान के भण्डार, लक्ष्मीपति और असुरों के शत्रु भगवान विष्णु क्या अज्ञानी की तरह स्त्री को खोजेंगे? फिर शिवजी के वचन असत्य नहीं हो सकते। सभी जानते हैं कि शिवजी सर्वज्ञ हैं। सतीजी के मन में इस प्रकार का अपार सन्देह उठ खड़ा हुआ, किसी तरह भी उनके हृदय में ज्ञान का प्रदुर्भाव नहीं होता था, यद्यपि भवानीजी ने प्रकट कुछ नहीं कहा पर अन्तर्यामी महादेव जी सब जान गये। वे बोले- 'हे सती ! सुनो, तुम्हारा स्त्री-स्वभाव है। ऐसा सन्देह मन में कभी नहीं रखना चाहिये।'

इस विवरण से स्पष्ट है कि सतयुग में भी सीताहरण (रावंण द्वारा), सीताजी की खोज में राम का वन-वन भटकने के उल्लेख मानस में हैं। रावण द्वारा सीताहरण हुआ तो उसके विनाश के लिये अर्थात् रावण पर विजय प्राप्त करने के लिये महावीर हनुमानजी भी थे। यह रामकथा अनादि काल से चली आ रही है। अर्थात् श्रीहनुमानजी की भी उपस्थिति अनादिकाल से है यानि सृष्टि के प्रारम्भ से प्रलय तक।

अन्य वेद, पुराणों को श्रीहनुमानजी के सतयुग में होने के प्रमाण को उद्धृत करंने के पूर्व चारों युग-सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलियुग का संक्षिप्त वर्णन करना यहाँ आवश्यक है।

वैदिक गणना के अनुसार चार युग की एक चौकड़ी कहलाती है। ऐसी ७२ चौकड़ी का एक मन्वन्तर होता है। इस प्रकार एक मन्वन्तर में ७२ बार चारों युग-सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग इसी क्रम में आते हैं। कलियुग समाप्त होते ही प्रलय हो जाती है। प्रलय के बाद फिर सृष्टि होती हैं और ये चारों युग क्रम से आते हैं। ब्रह्माजी सृष्टिकर्ता हैं, विष्णु भगवान जगपालक हैं और महादेव

संहारक हैं। यह प्रत्येक मन्वन्तर का कालचक्र है। ब्रह्माजी की आयु के सौ वर्षों को "पर" कहते हैं। ब्रह्माजी की आयु सात कल्प तक है। इस समय उसमें से तीन कल्पबीत गये हैं। चौथा कल्प चल रहा है। हजार चतुर्युग ब्रह्माजी का एक दिन है- ४ करोड़, ३२ लाख का और रात-दिन मिलाकर ८ करोड़ ६४ लाख का यानि ऐसे ३६५ दिन उनका एक साल है।

इस प्रकार कितने ही सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग आये होंगे और सभी युगों में हनुमानजी के पराक्रम व यश की प्रशस्ति की गयी होगी- इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं होनी चाहिये।

'पाराशर संहिता' में श्रीहनुमानजी के नौ अवतारों का उल्लेख है। त्रेता में रामकाज के लिये अवतरित' रुद्रावतार श्रीहनुमानजी का अवतार नौवां है। इसके पूर्व के आठ अवतार इस प्रकार हैं- (१) प्रसन्न आंजनेय, (२) वीर आंजनेय, (३) विशान्ति भुज आंजनेय- इनके बीस हाथों में शिव, विष्णु, दुर्गा, इन्द्र, वरुण आदि सारे देवताओं के आयुध हैं यानि ये समग्र देवमंडल के यौधेय शक्ति के प्रतीक हैं, (४) पंचमुखी आंजनेय- इनके पांच मुख हैं जिसमें पूरब की ओर का मुख वानर का है, उसकी प्रभा करोड़ों सूर्यों के तुल्य है। यह विकराल दाढ़ी से युक्त है और उसकी भृकुटियाँ चढ़ी हुई हैं। इनका दक्षिण वाला मुख नृसिंह भगवान का है। यह महान अद्भुत अत्यन्त उग्रतेज से युक्त भयावह और शरणागतों के लिये भयनाशक है। इनका पश्चिम दिशावाला मुख गरुड़ का है, इसकी चोंच ढेड़ी और अत्यन्त पुष्ट है। यह सभी नागों को परास्त करने वाला तथा विष तथा भूत-प्रेतादि का उच्छेदक है। इनका उत्तर का मुख सूकर का है, यह दीप्तवान आकाश के सदृश्य कृष्णावर्त तथा पातालचारी जीवों- सिंह, वेताल एवं ज्वर आदि रोगों का विदारक है। इनका ऊपर की ओर उठा हुआ पांचवा मुख घोड़े का है। यह अत्यन्त भयानक और राक्षसों का संहारक है। (५) अष्टादश-भुज आंजनेय, (६) सुवर्चलपति आंजनेय, (७) चतुस्कंध आंजनेय- जिनके चार कंधे हैं। (८) बत्तीस भुज आंजनेय।

ये सभी आठों अवतार वर्तमान कल्प के त्रेता के पूर्व अर्थात् इस कल्प के सतयुग और इस कल्प के पूर्व के सतयुग और त्रेता के हैं। उन अवतारों में पंचमुखी हनुमान का विग्रह हनुमत भक्तों के लिये विशेष आकर्षक है यद्यपि कि

वर्तमान रामकथा में पंचमुखी श्रीहनुमान का उल्लेख नहीं है। पंचमुखी हनुमान के भी मन्दिर उत्तर भारत में जम्मू से दक्षिण भारत के कोयम्बटूर तक हैं। उज्जैन का पंचमुखी हनुमानजी का मन्दिर तो भक्तों के लिये आनन्ददायी व मनोकामना सिद्ध का है। रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा प्रयाग के दारागंज में पंचमुखी हनुमानजी की स्थापना तथा मन्दिर का निर्माण कराया गया था। हनुमानजी के पांचों मुखों के स्वरूपों का वर्णन श्री विद्यार्णव के ३३वें सर्ग में मिलता है जिसका संक्षिप्त वर्णन ऊपर किया गया है। पंचमुखी के स्वरूप के वर्णन से स्पष्ट होता है कि जब सतयुग में हिरण्याक्ष का उपद्रव बढ़ गया था तो भगवान विष्णु उसका वध करने के लिये तैयार हुये तो इनके प्रिय सेवक हनुमानजी ने प्रार्थना की कि प्रभु यदि आपकी आज्ञा हो तो वाराह (सूकर) रूप से इसका (हिरण्याक्ष का) वध ा कर आयें। प्रभु नारायण की आज्ञा से ब्रह्मा की नासिका से उत्पन्न होकर वाराह रूप में श्रीहनुमानजी ने ही हिरण्याक्ष का वध करके देवताओं के संकट का निवारण किया था। उसी का प्रतीक पंचमुखी हनुमान में एक मुख सूकर का है। यह सतयुग की कथा है। सतयुग में ही रामनाम जापक भक्त प्रह्लादजी की रक्षा के लिंये तथा हिरण्यकश्यप का वध करने के लिये श्रीहनुमानजी ही नृसिंह रूप में प्रकट हुये थे। पंचमुखी में नृसिंह का मुख इसी का द्योतक है।

उपरोक्त से यह प्रमाणित है कि सतयुग और इसके पूर्व कल्प के सतयुग और त्रेता के आठ अवतारों के बाद त्रेता में हनुमानजी (नौंवां अवतार) दो भुजावाले अखण्ड ब्रह्मचारी तेजपुंज रूप में अवतरित हुये थे। इनका यह विग्रह अर्थात् दो भुजा वाले- एक हाथ में गदा, दूसरे में पर्वत लिये तथा शान्तचित्त में भक्तों को आशीर्वाद देते हुये मंगलमूरति मारुतनन्दन मंगलदायक हैं। ये भक्तों के विश्वास का सम्बल हैं। त्रेतायुग के हनुमानजी का एकमात्र अस्त्र गदा है। चतुर्भुज भगवान विष्णु भी एक हाथ में गदा धारण करते है उन्हीं के अनुरूप हनुमानजी का अस्त्र गदा है। जबकि सतयुग में हनुमानजी दस हाथ वाले या बीस हाथ वाले अन्य शस्त्रों को भी धारण करते हैं। इन नौवें अवतार के हनुमानजी को ही अजर अमर तथा कल्पान्त के बाद मुख्य प्रजापति (ब्रह्मा) होने का वरदान मिला है। इसी कारण इनका एक मंत्र- "ऊँ भविष्य चतुराननाय नमः" है।

द्वापर में एक बार श्रीहनुमानजी ने भीमसेन के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा

था- 'वत्स ! सतयुग में मैं दिव्य रूप में रहता हूँ। प्राणियों को परमधाम पहुँचाने में सहायक होता हूँ। माता जानकीजी सहित प्रभु श्रीराम के नाम का जाप, भजन, कीर्तन करते हुये सेवक भाव से सेवा करता हूँ।'

'त्रेतायुग में मैं दिव्यरूप से कम सौम्यरूप में लाल देहधारी वानररूप में रहता हूँ। प्राणियों के अधर्मी स्वभाव का विनाशकर उनके धर्म की रक्षा करता हुआ मोक्षध ाम पहुँचाने में सहायक होता हूँ और इस प्रकार अपने प्रभु श्रीराम की सेवा करता हूँ।"

'द्वापर युग में मैं वानरकृत शक्ति रूप में रहता हूँ। अर्जुन के रथ की ध्वजा (धर्म ध्वजा) पर बैठकर धर्म की रक्षा और स्वार्थी और अधर्मियों के नाश में सहायक बनता हूँ। इस प्रकार जप-तप-भजन-कीर्तन करता हुआ मैं अपने भक्तों एवं राम भक्तों की सहायता करता हूँ।'

'कलियुग में मैं हनुमान, अदृश्य रूप से रहते हुये लालदेहधारी वानर रूप में रहता हूँ। इस युग के मिथ्या, लोभी, अधर्मी, व्यभिचारी और दुष्टकर्मी लोगों को नाश करता हूँ। सिद्ध सन्त के रूप में सदाचारी, सद्भावी प्राणियों को सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता हूँ। राम भक्तों को सहारा और उनके संकट को दूर करता हूँ। जहाँ श्रीरामकथा, नाम, कीर्तन अथवा रामचरित (प्रभु लीला) होती है वहाँ अदृश्य रूप में उपस्थित रहकर इस रस का आनन्द लेता हूँ। कलियुग में मैं सन्त के रूप में दर्शन देता हूं- क्योंकि मेरे अन्य युग के रूप को देख पाने की सामर्थ्यता कलियुग के प्राणियों में नहीं है।'

"वत्स ! मेरे रोम-रोम में प्रभु राम बसे हैं। वे घट-घटवासी है। उनकी सेवा में मैं चारों युगों में प्रकट हुआ हूँ।"

हनुमानजी के विषय में नारद पुराण में कहा गया है कि- श्रीहनुमानजी सर्वस्वरूप, सर्वज्ञ तथा सृष्टि रचते और उसका पालन करते हैं। ये ही स्वयं ब्रह्मा, विष्णु तथा साक्षात् महादेव हैं।

श्रीराम और उनके नाम (राम नाम) का प्रताप चारों युगों में हैं।

श्रीराम-हनुमान अभिन्न हैं। जहाँ राम हैं वहाँ हनुमान हैं। विद्वानों का मानना है कि श्रीहनुमानजी रामनाम के मंत्र स्वरूप हैं। श्रीराम व रामनाम का प्रभाव चारों युगों में है तो श्रीहनुमानजी का प्रताप व यश भी चारों युगों (सतयुग, द्वापर, त्रेता

व कलियुग) में है।

गोस्वामीजी ने नाम भगवान की तुलना मुख्यतः तीन अवतारों से की है और वे तीन अवतार हैं नृसिंह भगवान, श्रीराम और श्रीकृष्ण। इसे यों कह लीजिये कि नाम वन्दना के माध्यम से तुलसीदासजी ने राम-नाम का नृसिंहायन, राम-नाम का कृष्णायन और राम-नाम की रामायण प्रस्तुत की। इनमें पहले दो का सांकेतिक तथा तीसरे का अधिक विस्तार सें विश्लेषण हमें नाम रामायण के प्रसंग में मिलेगा। नृसिंह भगवान के रूप में नाम का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि–

राम नाम नर केसरी, कनक कसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालिहि दलि सुरसाल।।

अर्थात्–भगवान श्रीराम का नाम साक्षात् नृसिंह भगवान है। कलियुग ही मूर्तिमान हिरण्यकशिपु है, और भगवान राम के नाम का जप करने वाला व्यक्ति प्रहूलाद है। जिस तरह से सतयुग में हिरण्यकशिपु के अत्याचार से संत्रस्त प्रहूलाद के संकट का निवारण नृसिंह के रूप में प्रकट होकर भगवान करते हैं, उसी प्रकार आज भी इस कलियुग में हनुमानजी के द्वारा सन्तस्वरूप में हमारी समस्याओं का समाधान हो रहा है।

पुराणों में काल के विभाजन का बड़ा विस्तृत वर्णन किया गया है। व्यक्ति और देश के ऊपर भी काल है। काल सर्वाधिक शक्तिशाली है। इसका तात्पर्य है कि स्थूल दृष्टि से व्यक्ति एक अलग इकाई है और ऐसा भी भ्रम होता है कि अलग दिखायी देनेवाला यह व्यक्ति पूरी तरह से स्वतन्त्र है, पर गहराई से विचार करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि व्यक्ति स्वतन्त्र होने पर भी पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र नहीं है। उसकी स्वतंत्रता रस्सी से बँधी हुई गाय की तरह है, जो चल फिर सकती है, पर रस्सी की सीमा में बँधी हुई है। हम सब लोग भिन्न-भिन्न व्यक्ति के रूप में दिखायी दे रहे हैं पर जिस आधार पर हम सब टिके हुए हैं, वह आधार एक ही है। इसका सीधा-सा अभिप्राय है कि आप चाहे कहीं भी बैठे हुए दिखायी दे रहे हों, पर सबके मूल आधार के रूप में पृथ्वी है। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्ति देश से जुड़ा हुआ है। चाहे इसे ब्रह्माण्ड कह लीजिये या पृथ्वी, पर व्यक्ति कहीं-न-कहीं देश के आधार पर टिका हुआ है। पर आइये, जरा देश के सन्दर्भ

में विचार करके देखें कि स्वयं यह देश किसके आधार पर टिका हुआ है?

पुराणों में यह संकेत मिलता है कि व्यक्ति, देश के आधार पर टिका हुआ है और देश काल के आधार पर। क्योंकि पुराणों में यह बताया गया है कि पृथ्वी भगवान शेष के मस्तक पर विद्यमान है। शेष का तात्पर्य काल तत्त्व से है और काल सबसे अधिक शक्तिशाली है। इस प्रकार काल से जुड़ा हुआ है देश और देश से जुड़ा हुआ है व्यक्ति। अगर कोई व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ कर्म करना भी चाहे, पर देश का वातावरण अशान्त हो, तो वह चाह करके भी कुछ नहीं कर सकता। इसी प्रकार यह काल तत्त्व भी विलक्षण है। क्योंकि व्यक्ति तथा देश दोनों दिखायी देते हैं, लेकिन शेष को हम प्रत्यक्ष रूप में नहीं देख पाते हैं। काल कब अनुकूल से प्रतिकूल बन जायेगा यह कोई नहीं जान पाता और यही मनुष्य के जीवन का शाश्वत तथा भयानक सत्य है। इसका अभिप्राय यह है कि कालचक्र अव्याहृत रीति से चल रहा है और देश उसी काल के द्वारा नियंत्रित है। इस तरह व्यक्ति, देश तथा काल में क्रमशः काल ही सर्वाधिक शक्तिशाली है। इसे एक व्यावहारिक दृष्टान्त द्वारा समझाया जा सकता है- जैसे ऋतु-परिवर्तन। हम और आप देखते हैं कि एक ही वर्ष में कई ऋतुएँ आती हैं, कभी शीत, कभी वर्षा और कभी ग्रीष्म का अनुभव होता है और जाने-अनजाने में हम और आप इससे प्रभावित होते हैं।

एक कालचक्र का सम्बन्ध व्यक्ति के मन से है। इसीका विभाजन पुराणों में सतयुग, द्वापर तथा त्रेता के रूप में किया गया है। सतयुग का अभिप्राय है एक ऐसा काल जिसमें व्यक्ति के मन में सतोगुण की प्रधानता होती है। त्रेता का तात्पर्य है कि जब व्यक्ति के मन में सत्त्व तथा रज के साथ-साथ तमोगुण का भी मिश्रण है। किन्तु कलियुग में तमोगुण ही मुख्य होता है। रज और तम मिश्रित हैं और सत्त्व तो नाम मात्र को विद्यमान है और परिणामतः हम काल से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते।

जैसे अगर शीतल हवा बह रही हो, तो प्रत्येक व्यक्ति को उसका स्पर्श होता है, ठीक इसी प्रकार से जब सारे समाज में सत्त्वगुण का प्रवाह बह रहा हो तो यह स्वाभाविक ही है कि व्यक्ति का अन्तःकरण भी श्रेष्ठ सात्त्विक विचारों से युक्त होता है। इसी प्रकार प्रत्येक युग में व्यक्ति तथा समाज की मनःस्थिति भिन्न प्रकार

की होती है। कलियुग में जहाँ सारे ब्रह्माण्ड के वातावरण में तमोगुण परिव्याप्त है, तथा सत्त्वगुण अत्यन्त सिकुड़ गया है, तब यह सम्भव ही नहीं कि काल के द्वारा व्यक्ति यत्किंचित् प्रभावित न हो। केवल प्रभावित होने की मात्रा में अन्तर हो सकता है। जैसे शीतकाल में शीत का अनुभव तो प्रत्येक व्यक्ति को होता है, पर मात्रा में भेद अवश्य रहता है। किसी व्यक्ति के ओढ़ने के लिए वस्त्र अधिक हैं, तो उसे शीत का अनुभव कम होता है, और यदि किसी के पास वस्त्रों की कमी है तो ऐसी स्थिति में उसको अधिक शीत का अनुभव होगा। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब किसी गुण का बाहुल्य होता है, तो व्यक्ति उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। हम और आप जिस युग में रह रहे हैं इसमें जाने-अनजाने में भी सभी व्यक्ति कुछ-न-कुछ मात्रा में युगकाल से सुनिश्चित प्रभावित होते हैं। आज के युग की सबसे बड़ी समस्या ही यह है और इसीका व्यंगात्मक संकेत श्रीमद्भागवत में परीक्षित के उपाख्यान में आता है।

राजा परीक्षित का शासन द्वापर युग के अन्तकाल में था। उनका जन्म पाण्डवों की परम्परा में हुआ था। विश्वविजय के लिए जब राजा परीक्षित चले तब उन्होंने एक भयानक दृश्य यह देखा कि एक डरावना व्यक्ति हाथ में छड़ी लिए हुए गाय और बैल पर प्रहार कर रहा था। गाय दुःख से रो रही थी और वृषभ भी कष्ट में पड़ा हुआ था। इस दृश्य को देखकर राजा परीक्षित व्याकुल हो गये। उनके मन में अत्याचार करने वालों के प्रति अत्यधिक क्रोध तथा द्वेष हुआ। उस समय उन्होंने गाय और बैल से प्रश्न किया कि, "आप कौन हैं तथा आपकी यह दुर्दशा क्यों है?" "आप पर प्रहार करने वाला कौन है?" श्रीमद्भागवत में सांकेतिक रूप से इसका परिचय देते हुए कहा गया है कि धर्म ही बैल और पृथ्वी गाय है, तथा प्रहार करने वाला कलियुग है। राजा परीक्षित को बड़ी चोट पहुँची और उन्होंने उसी समय यह निर्णय किया कि मैं इस युग का वध कर दूँगा। राजा ने म्यान से तलवार निकाली और कलियुग का सिर काटने के लिए प्रस्तुत हुए। पर उसी समय कलियुग ने अपना पक्ष सामने रखा।

कलियुग का कहना था कि सृष्टि के निर्माण में मेरा एक काल सुनिश्चित किया गया है, इसलिए आप मुझे विनष्ट करने के स्थान पर मुझे संयमित करके इसी रूप में रहने दें। राजा परीक्षित को यह सुनकर दया आ गयी और तब

उन्होंने कलियुग के रहने के लिए कुछ स्थान बताये और मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए राजा यह सोचकर चले गये कि मैंने युग को नियंत्रित कर दिया। पर यही काल का व्यंग था कि राजा ने जो स्थान उसे रहने के लिए निश्चित किये थे, उनमें स्वर्ण भी था और जब राजा ने अपना स्वर्णिम मुकुट सिर पर धारण किया तो कलियुग तुरन्त उनके सिर पर आकर बैठ गया। ये पुराणों की बड़ी व्यंगात्मक और सांकेतिक गाथा है कि जो व्यक्ति युग को बदलने या मिटाने का संकल्प लेकर चला था, अनजाने में वह स्वयं ही युग के प्रभाव में आ गया और काल उसके मस्तिष्क पर चढ़ बैठा।

वर्णन आता है कि उसके पश्चात् राजा परीक्षित को प्यास लगी और अपनी प्यास बुझाने के लिए वे ऋषि के आश्रम में गये। ऋषि ध्यान में निमग्न हैं। परीक्षित बड़े ही विनम्र स्वभाव के थे। लेकिन उस समय उनका रजोगुण और तमोगुण जाग्रत हुआ। रजोगुण ने कहा कि 'अरे! मैं देश का राजा हूँ और देश के राजा का प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान करना चाहिए। परन्तु मुझे देखकर भी ये बैठे हैं। उनके अन्तःकरण के तमोगुण की वृत्ति को लगा कि ये पाखण्डी हैं, यह ऋषि ध्यान नहीं कर रहे हैं, अपितु मुझे देखकर उठना न पड़े, इसीलिए आँख मूँदे हुए बैठे हैं। उस समय उनमें तमोगुण की वृत्ति इतनी प्रबल थी कि उन्होंने मरे हुए साँप को ऋषि के गले में डाल करके उनका अहित करने की चेष्टा की। पुराण की कथा का व्यंग यह है कि काल ऐसे व्यक्ति को भी प्रभावित कर लेता है, जो काल की बुराई से केवल परिचित ही नहीं होता, अपितु काल की बुराई को मिटाना भी चाहता है। लेकिन काल कहीं-न-कहीं उन्हें भी अपनी दिशा में संचालित करता है। यही है काल की अद्भुत क्षमता। इसका सीधा-सा तात्पर्य है कि अच्छे-से-अच्छा व्यक्ति भी युग से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। किन्तु युग से प्रभावित होने के पश्चात् उसके निराकरण का जो स्वरूप है, वह भी श्रीमद्भागवत में प्रस्तुत किया गया है।

राजा परीक्षित जब महल में आकर मुकुट उतारते हैं, तो तत्काल कलियुग का केन्द्र वहाँ से हट जाता है। इसका अर्थ यह है कि दो प्रकार के व्यक्ति समाज में होते हैं। कुछ लोगों के सिर पर कलियुग कुछ समय के लिये सवार होने के वाद उतर जाता है तथा उनके सत्त्वगुण का पुनः उदय होता है, और तब वे

अनुभव करते हैं कि अरे यह मैंने क्या किया? परीक्षित ने मुकुट उतारते ही ऐसा अनुभव किया कि आज कितना बड़ा अनर्थ हुआ! मैंने रजोगुण और तमोगुण से प्रेरित होकर आज एक महात्मा का अपमान किया। यह तो मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गयी। यहाँ तो परीक्षित के अन्तःकरण में पश्चाताप हो रहा है, परन्तु दूसरी ओर ऋषिकुमार के अन्तःकरण में जो वृत्ति आयी-वह अत्यन्त भयावनी थी।

ऋषि तो ध्यान में निमग्न थे, लेकिन जब उनके पुत्र से किसी ने आकर कहा कि परीक्षित ने तुम्हारे पिता के गले में सर्प डाल दिया, तो वे क्रोधित हो गये। उन्हें लगा कि यह अहंकारी राजा इतना धृष्ट हो गया है कि ऋषियों का अपमान करता है और युग की विडम्बना यह थी कि उनमें बदला लेने की वृत्ति आयी, तथा उन्होंने शाप दे दिया कि जिस सर्प को उसने गले में डाला है वहीं सर्प सातवें दिन जीवित होकर राजा को डँस लेगा? इसका सीधा-सा अभिप्राय है कि तमोगुण तथा रजोगुण का अभिमान जब व्यक्ति के मन में आता है तो उसको लगता है कि काल सर्प मर गया। वह समझता है कि काल को हमने समाप्त कर दिया, पर काल तो कभी मरता नहीं। वह जीवित होकर अहंकारी व्यक्ति को डँसेगा अवश्य।

जब ऋषि की आँखें खुलीं, तो वे सत्त्व में थे। योग की ध्यान की प्रक्रिया सत्त्व प्रधान है- सतजुग सब जोगी बिज्ञानी। करि हरि ध्यान तरहिं भवप्राणी।। और जब उन्होंने सारी घटना सुनी तो अपने पुत्र की ही भर्त्सना करते हुए कहा, अगर राजा में अनजाने में भी कुछ क्षणों के लिए कोई विकृति आ ही गयी हो, तो क्या तुम्हें बदला लेने के लिए इस प्रकार का शाप देना चाहिए था? परन्तु शाप तो दिया ही जा चुका था। इसलिए यह संदेश परीक्षित के पास भेज दिया जाता है। सातवें दिन मृत्यु का अर्थ है कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु सर्प के काटने से ही होगी, और किसकी आयु में कौन-सा सातवाँ दिन है उसका कोई ठिकाना नहीं। यह समस्या प्रत्येक व्यक्ति की है।

परीक्षित ने जब सुना तो उन्होंने सोचा कि इन सात दिनों का हम क्या सदुपयोग करें? क्योंकि काल की समस्या तो आ ही गयी है। हमसे जो भूल हो चुकी है उसका दण्ड भी हमें स्वीकार करना होगा। पर हम दण्ड को किस प्रकार स्वीकार करें कि जीवन में दण्ड भी वरदान के रूप में परिणित हो जाये। तब

वे शुकदेवजी के द्वारा भगवान की मंगलमयी कथा सुनते हैं जिससे कि सर्प के द्वारा डँसे जाने पर, मृत्यु के क्षण में भी वे पूरी तरह से आत्मसत्त्व में स्थित हो चुके थे। उनके अन्तःकरण में मृत्यु का भय नहीं था। इस कथा का सार-तत्त्व यह है कि काल अत्यधिक शक्तिशाली है और अच्छे व्यक्तियों को भी प्रभावित कर लेता है। हम सब लोगों से कभी न कभी ऐसा अपराध होता है जो नहीं होना चाहिए। पर उसके निवारण का एकमात्र उपाय भगवत्कथा तथा भगवान का नाम ही है।

इस युग का समाधान अगर हम पाना चाहते हैं, तो जैसे परीक्षित ने भगवत्कथा का आश्रय लिया, उसी तरह से कलि की समस्याओं का समाधान पाने के लिए, कलि के प्रतिकूल समय का सदुपयोग करने के लिए हमें भगवान की कथा सुननी चाहिए और भगवान की कथा सुनने का चरम फल भी यही है कि कथा सुनते-सुनते हमारे अन्तःकरण में भगवान के नाम की महिमा का बोध हो जाये तथा हम अपने जीवन में भगवन्नाम का आश्रय लें और यह आश्रय हमें सिद्ध-सन्त क संरक्षण में तो निश्चय ही मिलता है।

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में कागभुशुण्डि ने अपनी जो आत्मकथा सुनायी वह कलियुग से प्रारम्भ होती है। उसमें प्रारम्भ में कलियुग के लोगों की मनःस्थिति का वर्णन आता है। कागभुशुण्डिजी ने जब बड़े विस्तार से उसका वर्णन किया, तो गरुड़जी ने बहुत आतंकित होकर कहा "महाराज! यह तो बहुत ही बुरा युग है।" इस युग का निर्माण ही क्यों किया गया? कागभुशुण्डिजी ने कहा यद्यपि कलियुग है तो बहुत बुरा, लेकिन इसमें कुछ विशेषताएँ भी हैं जो अन्य युगों में नहीं है और तब जो विशेषताएँ बतायीं उनमें एक ही बात आपको श्रीमद्भागवत और रामचरित में दो सूत्रों के रूप में मिलेगी। एक स्थान पर तुलसीदासजी कहते हैं कि– कलियुग केवल हरिगुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा।। भगवान का चरित्र, कलियुग का आश्रय है और दूसरे दोहे में कागभुशुण्डिजी गरुड़जी से कहते हैं कि–

कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग।।

सतयुग, त्रेता तथा द्वापर में साधना के अलग-अलग मार्ग हैं। सतयुग में

ध्यान की प्रधानता है, त्रेता यज्ञ-प्रधान है और द्वापर पूजा- प्रधान है। किन्तु अन्य युगों में जो गति पूजा, यज्ञ तथा योग के द्वारा प्राप्त होती है, वही गति इस कलियुग में भगवान के नाम से हो जाती है। सन्त समागम से प्राप्त होती है। गोस्वामीजी की यह बात हम लोगों के लिए सबसे अधिक प्रमाणित इसीलिए है क्योंकि वे हमारे युग के हैं। हमारे युग की समस्याओं का उन्होंने स्वयं अनुभव किया और उन समस्याओं का समाधान उन्होंने राम-नाम के द्वारा ही प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त किया। इसलिए वे बार-बार आश्वासन देते हुए कहते हैं, अगर आप इस युग की समस्याओं का समाधान पाना चाहते हैं तो इसके लिए सबसे बड़ा साधन भगवान का नाम है।

कलियुग की तुलना तुलसीदासजी हिरण्यकश्यपु से करते हैं, जो एक बहुत ही शक्तिशाली दैत्य है। सारे संसार के मनुष्य ही नहीं अपितु देवता और मुनि भी उसके वशीभूत होकर उसकी स्तुति करते हैं, उसका नाम गाते हैं। नारदजी ने तो श्रीमद्भागवत में एक ऐसा वाक्य कह दिया कि जिसे पढ़ करके थोड़ा आश्चर्य होता है। पर उसका तात्पर्य बहुत बढ़िया है। उन्होंने कहा कि हिरण्यकश्यपु की सभा में जितने गायक, गन्धर्व तथा देवता आये थे, वे सब हिरण्यकश्यपु के गुण गाते थे, और मैं भी उनमें था। पढ़ करके यह बात विचित्र-सी लगती है कि क्या हिरण्यकश्यपु का ऐसा विलक्षण प्रभाव था कि एक महामुनि भी प्रभावित हो गया? पर अगर विचार करके देखें तो उसमें उद्देश्य दूसरा था। अन्य लोग तो हिरण्यकश्यपु के बल से आतंकित होकर उसका गुण गाते थे। पर नारदजी जब गुण गाते थे तो यद्यपि व्यवहार में तो यही लगता था कि अन्य देवता-मुनियों की तरह नारदजी भी डरे हुए हैं। पर उनके मन में कहीं-न-कहीं यह भावना अवश्य थी कि हिरण्यकश्यपु चाहे जितना भी बुरा क्यों न हो, पर अन्त में उसके द्वारा ही इतने बड़े भक्त प्रह्लाद का जन्म होगा, जो भक्ति के महान आचार्य बनेंगे। इसलिए अग्नि के रूप प्रह्लाद की प्राप्ति को दृष्टिगत रखकर उनकी पूजा व्यर्थ नहीं है।

कलियुग की निन्दा की जानी चाहिए, पर जब उसका यह पक्ष देखते हैं, तो लगता है कि कलियुग भी प्रशंसा का पात्र है। सतयुग में प्रह्लाद और हिरण्यकश्यपु अलग-अलग थे। पर हमारे, आपके जीवन में विडम्बना यह है कि

दोनों हम ही हैं। अगर गहराई से हम और आप अपने जीवन में झाँककर देखें, तो हमें अपने जीवन में एक ओर हिरण्यकश्यपु दिखायी पड़ेगा तथा दूसरी ओर प्रह्लाद।

श्री हनुमानजी हिन्दू संस्कृति के अभिन्न अंग एवं देवता हैं। उत्तर हो या दक्षिण, पूरब हो या पश्चिम, चारों दिशाओं में महावीरजी या मारुति का मन्दिर अवश्य मिलेगा। हिन्दू समाज में हनुमानजी सुखसाध्य, सर्वसुलभ और सब की मनोकामना पूरी करने वाले देवता हैं। ये अभयदाता, अभिमतदाता, बुद्धिविधाता और त्राता हैं। वस्तुतः मुकदमे की सुनवायी हो, कोई अनुशसनात्मक कार्यवाही हो, भूत-प्रेत बाधा से पीड़ित हो, कहीं भी किसी भी प्रकार की विपत्ति हो, लोग श्रीहनुमानजी की आराधना में लगे हैं। वे श्रीहनुमान मन्दिर में पूजा अर्चना करते हैं। नास्तिक कहलाने वाले वाले लोगों को भी विपत्ति में पड़ने पर हनुमान मन्दिर का चक्कर काटते देखा गया है। ऐसे हैं श्री हनुमानजी। यह बात सच भी है किं देवता, औषधि और गुरु के विषय में विश्वास ही फलदायी होता है। इसी विश्वास के आधार पर सभी धर्म एवं उपासना पद्धतियां फलफूल रही हैं।

श्रीहनुमानजी के जन्म, जन्मसमय, उनके माता पिता और जन्मस्थान के विषय में अनेक मत हैं तथा विभिन्न रामायणों, पुराणों तथा कथानकों में भिन्न-भिन्न मत हैं। उन सब में भिन्नता होते हुए भी एक बात सर्वसम्मत है कि श्री हनुमानजी दिव्यदेवता हैं। उनमें, विद्या, संगीत, साहस, पौरुष, वेग, बुद्धि, विवेक, परोपकार और दया भरे पड़े हैं। वे मानों इन गुणों के साक्षात् अवतार ही हैं।

श्रीहनुमान् अभयदायक देवता हैं। वे भारत में ही नहीं, नेपाल, बंगलादेश, चीन, वर्मा, मलेशिआ, इंडोनेशिआ, मॉरीशस इत्यादि में भी या तो पूज्य हैं या लोकप्रिय। माओत्से-तुंग हनुमान् के उपासक थे। उन्होंने 'महाकपि-राज' जैसी कविताएँ भी लिखी हैं। मारगैरेट थैचर भी हनुमान् से प्रभावित हैं। हनुमान, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, साम्यवादी, सब के हैं! वे सार्वभौम देवता हैं। हनुमानजी की एकाध मूर्तियाँ सहस्राब्दि-प्राचीन हैं। रामानंद ने उनकी आरती लिखी है, तथा वस्तुतः उनकी पूजा को व्यापक रूप तुलसीदास (१५३२-१६२३ ई.) ने प्रदान किया जिन्होंने संकटमोचन (काशी) की प्रतिष्ठा की, अपने भवन (संप्रति

तुलसी-घाट काशी) में भी मूर्ति-संस्थापन किया, समर्थ गुरु रामदास (शिवाजी के गुरु) से राम-मारुति-पूजाप्रसाद-वार्ता की, हनुमान् पर प्रभूत साहित्य रचा जिसका अनुकरण अनेकानेक कवियों ने किया। उनकी "राम तें अधिक राम कर दास।" स्थापना के अनुरूप हनुमान-मंदिरों की संख्या राम-मंदिरों की संख्या से भी बहुत 'अधिक' है! श्रीहनुमान् श्रीराम के परम सेवक हैं, अतः हनुमान्-मंदिर तत्त्वतः राम-मंदिर ही हैं। राम एवं हनुमान् में ऐक्य स्थापित है!

श्रीहनुमान् का ध्यान अतीव प्रेरक हैः निर्विकल्प (नेत्र-मीलित) समाधि में त्रिकुटि में अग्निरूप हनुमान्-मुद्रा का दर्शन उत्थितहस्तास्थि-पर्वत एवं पुच्छ के कारण ॐ में परिणत हो जाता है। हनुमान् ॐ के विग्रह हैं। मैंने ऐसा ध्यान कर आनंद प्राप्त किया है तथा सभी से इसकी प्राप्ति की प्रार्थना करता हूँ। ध्यान अभयदायक, सफलतादायक, शांतिदायक, हनुमान्-कृपाकारी, राम-कृपाकारी एवं अद्वैतानंदकारी है।

कलियुग में हनुमानजी की लीला

सम्पूर्ण पृथ्वी जो बहुत विस्तीर्ण है, जहाँ तक भी पार्थिव तत्व हैं वह सब पृथ्वी ही है। सप्त द्वीपवती पृथ्वी के ६ द्वीप सूक्ष्म संसार के हैं। मरणधर्मा मानव जिसे पृथ्वी कहते हैं, जो कर्मलोक है, वह तो जम्बूद्वीप का केवल एक वर्ष -अजनाभवर्ष है; जिसका नाम भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम पर भारतवर्ष हो गया। इसमें भी हिमालय से कन्याकुमारी तक के भाग को जो कि परमपावन भगवदीय भूमि है, भरतखण्ड कहा जाता है।

युगों का प्रभाव कर्मलोक भारतवर्ष पर ही पड़ता है, जिसे मनुष्य पृथ्वी मानते हैं। जिस दिन श्रीकृष्ण ने अपना शरीर छोड़ने की लीला की, उसी दिन से पृथ्वी पर कलियुग शुरू हो गया। तब से ही पृथ्वी पर कलियुग का प्रभाव पड़ने लगा। यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नाग, ऋक्ष, वानर आदि उपदेवता इस पृथ्वी का त्याग करके जम्बूद्वीप के दूसरे 'वर्षों' में रहने लगे। वे सब स्थान सूक्ष्म देश में है। वहाँ सदा त्रेतायुग के समान ही काल बना रहता है।

कलि का प्रभुत्व हो गया तो श्रीहनुमानजी ने किम्पुरुषवर्ष को अपना स्थायी आवास बना लिया। परन्तु श्रीराम की कथा-श्रवण के लोभ से और उनके भक्तों, नामजप करने वालों के संरक्षण के लिए श्रीहनुमानजी निश्चय ही अविलम्ब

उपस्थित रहते हैं। जहाँ कहीं भी श्रीरामकथा होती है वे वहाँ अवश्य पहुँच जाते हैं। उनके लिये एक साथ सहस्त्र-सहस्त्र रूप धारण कर लेना तो खेल है। श्रीराम के भक्तों की संख्या कर पाना संभव नहीं है। बाबा श्रीहनुमानजी को उन सभी की सेवा-संरक्षण के लिए सतर्क रहना पड़ता है।

अब हम आते हैं कलियुग में। अव धर्म का आचरण अधिकतम लोगों को लज्जाजनक लगता है। धर्म पर चलने वाले अब पुराणपंथी कहे जाते हैं। धर्म-निरपेक्ष हो जाना आधुनिकता की पहचान समझने वालों ने तो मन्दिर-मस्जिद जाना ही छोड़ दिया। धर्म-निरपेक्ष हो जाना तो अपने में बड़ी अच्छी बात है। यह तो सभी धर्मों का समान आदर देने का बड़ा अच्छा आधार है। किसी के धर्म से घृणा नहीं करना, सभी धर्मों का सम्मान करना, यही है न धर्म-निरपेक्षता? पर जिसको धर्म के नाम से ही चिढ़ हो उसके लिए बड़ी अच्छी ढाल है यह तथाकथित निरपेक्षता। वह निरपेक्ष हो गया पूरी तरह, किसी धर्म से उसे कोई लेना-देना नहीं। फिर ईश्वर से भी ऐसे व्यक्ति का कोई लेना-देना नहीं रहता और एक दिन मूल-कटे वृक्ष की तरह वह कहीं का नहीं रहता। उसका अधःपतन अवश्यम्भावी है।

श्रीहनुमानजी की तुलसीदास के साथ लीला :- तुलसीदास के माध्यम से श्रीहनुमानजी ने श्रीसीतारामजी की भक्ति को कलियुग में प्रतिष्ठित किया। श्रीहनुमानजी ने त्रेतायुग में वाल्मीकि को जो आश्वासन दिया उसे पूरा करने के लिये कलियुग में माध्यम बने तुलसीदासजी। तुलसीदासजी की बाँह हनुमानजी सदैव पकड़े रहते थे।

श्रीहनुमानजी ने उन्हें श्रीराम-भक्ति प्रदान की और सर्वमान्य महाकवि बना दिया। तुलसीदास ने दुर्गम देववाणी के महाकाव्य को सर्वमान्य के लिए 'श्रीरामचरितमानस' के रूप में सुगम कर दिया। श्रीहनुमानजी को श्रीराम ने आज्ञा दी है कि वे उनके नाम-जापक की रक्षा करें। जो किसी भी प्रकार उनके आराध्य का गुणगान करता है, वह उनका सम्मान-भाजन है। उसकी सेवा करके वे अपने को कृतार्थ अनुभव करते हैं। तुलसीदास श्रीसीताराम के अनन्य आराधक थे। वे श्रीराम नाम के नैष्ठिकव्रती थे। श्रीहनुमानजी को तुलसीदास बहुत ही प्रिय थे और वे तुलसी के बचपन से ही उनके साथ रहने लगे थे।

तुलसी का बालपन का नाम था- रामबोला। रामबोला अनाथ बालक था। एक दिन दो तीन लड़कों के साथ रामबोला गुल्ली-डण्डा खेल रहा था। चबूतरे पर उसकी भीख की झोली और संटी रखी थी। रामबोला डण्डे से गुल्ली फेंक रहा था। तभी खेतों की ओर से ब्राह्मण वर्ण के एक महाराज पधारे। रामबोला को देखते ही वे अपने लड़कों पर बमके- "फिर ईके साथ खेलै लगे, ऐं। ससुर नीच जात भिखारी, जिसकी देह से बास आती है, उसके साथ ब्राह्मण-छत्री के बेटे खेलते हैं।"

महाराज के आते ही रामबोला खेल छोड़कर चबूतरे से अपनी भीख की झोली और संटी उठाने लगा, लड़के घर के भीतर भाग गए। महाराज की बात रामबोला को अच्छी न लगी, कंधे पर झोली टांगते हुए उसने कहा-"हम रोज नहाते हैं महाराज। हम भी बांभन के बेटा ....।"

"साले। हमसे जबान लड़ाता है। ऐं!" महाराज रामबोला के पास आकर खड़े हो उसे अपनी लाल आँखें दिखला रहे थे। बच्चा उस क्रोध मुद्रा को देखकर सहम तो अवश्य ही गया पर मन का सत्य दबा न सका, उसने फिर कहा-"हम झूठ नहीं बोलते महाराज।"

"साले, सत्तवादी हरिश्चन्द्र बनता है।" और रामबोला के सिर और गालों पर दो-तीन करारे तमाचे पड़ गए। वह लड़खड़ा कर भागा और सीधे अपनी झोपड़ी पर आकर ही रुका। पार्वती अम्मा से लिपटकर वह फूट-फूट कर रोने लगा।

पार्वती नाम था उस गरीब भिखारिन का जिसने अनाथ रामबोला को अपना सहारा दिया हुआ था। तुलसीदासजी ने एक अवसर पर बताया था, "मेरी आदि गुरु परमतपस्विनी पार्वती अम्मां ही थीं। मानों शंकर भगवान ने मुझे जिलाए रखने के लिए ही जगदम्बा पार्वती को भिखारिन बनाकर भेज दिया था। दरिद्रता में इतना वैभव, दुर्बलता में इतनी शक्ति और कुरूपता में इतनी सुन्दरता मैंने पार्वती अम्मां के अतिरिक्त औरों में प्रायः कम ही देखी है। पार्वती अम्मां मुझे इतना ही पढ़ा गई कि "जब-जब भीर पड़े तब-तब बजरंगबली को टेरो। कहो कि हे हनुमान स्वामी, तुम हमें रामजी के दरबार में पहुंचा दो जिससे कि हम अपनी भली-बुरी उनसे निवेदन कर लें।"

"अरे क्या भया बचवा?" पार्वती ने रामबोला से पूछा।

. रामबोला बिलखकर बोला-"अम्मा अव हम कभी भी भीख मांगने नहीं जाएंगे।" वच्चे के सिर और पीठ पर प्रेम के हाथ फेरकर बुढ़िया बोली-"यह दुख नहीं, तपस्या है बेटा। पिछले जन्मों में जो पाप किए हैं वे इस जनम में तपस्या करके हम धो रहे हैं कि जिससे अगले जनम में हमें सुख मिले।' और तब रामबोला को पार्वती अम्मा ने तत्व की बात समझाने के लिये कहानी सुनाई- "एक आदमी रहा और एक कुत्ता रहा। तो कुत्ता किनारे पर सोता रहा और आदमी अपने रास्ते जा रहा था। तो उस आदमी ने पत्थर उठाके कुत्ते को मार दिया। कुत्ता सीधा रामजी के पास गया और कहा कि रामजी हमारा न्याय करो। रामजी ने पूछा-क्या न्याय करें? तो कुत्ता बोला कि रामजी इस आदमी को खूब दण्ड दो। इसे किसी बड़े मठ का महंत बना दो। रामजी बोले अरे, तू तो इसे बड़ा सुख देने को कह रहा है। कुत्ता बोला- रामजी पिछले जनम में हम भी महंत थे तो खूब खा-खा के मोटाए और दीन-दुर्बलों को दबाने लगे। हमने सबके ऊपर अत्याचार किया, उसी का दण्ड भोग रहा हूँ। तो रामजी बोले कि कुत्ते इसे दण्ड न कह, यह तेरी तपस्या है। इससे तुम्हें ज्ञान मिलेगा।"

तुलसीदासजी ने एक अवसर पर बताया था कि "पार्वती अम्मां सच ही कहती थी कि जिससे रामजी तपस्या कराते हैं उसे ही दुख-दुर्भाग्य के अथाह समुद्र में भयंकर क्रूर तिमि-तिमिंगलों के बीच में छोड़ देते हैं। उनसे अपनी रक्षा करना ही अभागे की तपस्या कहलाती है। अव सोचता हूं कि रामजी ने मुझ पर अत्यन्त कृपा करके ही यह सारे दुख डाले थे। इन्हीं दुखों की रस्सी का फंदा डालकर मैं राम-नाम की ऊंची अटारी पर आज तक चढ़ता चला आया हूं। दुख का भी एक अपना सुख होता है।"

पार्वती अम्मां का सहारा मिट जाने के बाद रामबोला इधर-उधर भटकते, भीख मांगते, बिलबिलाते-बिलखते हुए ही उस आश्रम तक पहुंच पाया जिसका संकेत पार्वती अम्मा करती रहती थी। घाघरा और सरयू के पावन स्थल पर महावीर का एक मन्दिर था। रामबोला उसी मन्दिर का बन्दर बन गया। लोग वहाँ बन्दरों के आगे चने और गुड़ फेंका करते थे। बन्दरों के साथ मिल रामबोला जाति-कुजाति, सुजाति के घरों से मांगे हुए टुकड़े खाता और अपमान सहता था। वह उस जीवन से इतना चिढ़ उठा था कि अन्त में किसी से भी भिक्षा न मांगने

का निश्चय किया।

एक दिन रामबोला हनुमानजी के आगे नमित होकर वार-बार कह रहा था- "अब हम तुम्हीं से मांगेंगे हनुमान स्वामी, अब किसी के पास नहीं जाएंगे। तुम हमारा पेट भर दिया करो। हम तुम्हारा स्थान खूब साफ कर दिया करेंगे।"

रामबोला वहीं रहने लगता है। रोज सबेरे उठकर हनुमानजी का चबूतरा बुहारता, फिर नहाने जाता। लौटकर चबूतरे पर ही बैठ जाता और भजन गाता। बन्दरों से संघर्ष भी करना पड़ता। बन्दरों की तरह ही खों-खों करता हुआ बालक रामबोला दोनों हाथों से संटियां लेकर उन पर झपटता। बन्दर जब दूर जाते तो एक हाथ की संटी रखकर अपने अंगोछे में भुने हुए चने- आदि रखता जाता, बन्दरों को भी देखता जाता, फिर हनुमान जी की दीवाल का सहारा लेकर बैठ जाता और ठाठ से चने चबाता।

एक दिन रामबोला बहुत सबेरे ही चबूतरे पर झाडू लगाते हुए बड़बड़ा रहा था- "हे हनुमान स्वामी, देखो अब तुम्हारा चबूतरा कितना साथ-सुथरा रहता है। हम बड़े मन से सेवा करते हैं बजरंगवली। अब तो तुम रामजी के दरबार में हमारी अरदास पहुंचा दो। हम भी और दूसरे लड़कों की तरह अ-आ-इ-ई पढ़ें और हमको रोटी का सहारा हो जाये। रोटी खाए बहुत दिन हो गए। देखो कल तुम्हारे बन्दर ने हमको कैसा पंजा मारा है। हमारी बांह ऐसी पिराय रही है कि तुमसे क्या कहें। तब भी हम तुम्हारी सेवा कर रहे हैं। अब तो तुम हमारी जरूर सुन लो नाथ। पार्वती अम्मां कहती रहीं कि दीन-दुर्बलों की गुहार तुम्हीं सुनते हो। सुन लो बंजरंगबली हनुमान स्वामी। हम चिरौरी करते हैं। सुन लो नाथ। अरे सुन तो लो।"

रामबोला अब कहीं भीख मांगने के लिए नहीं जाता। वह सबेरे उठकर हनुमानजी के स्थान को बुहारता है और नहा-धोकर चबूतरे पर बैठे-बैठे भजन गाया करता है। बच्चे के सरल कंठस्वर और हनुमानजी के प्रति उसकी सेवा-निष्ठा ने दर्शनार्थियों के मन में उसके प्रति थोड़ा बहुत प्रेमभाव जगा दिया है। कुछ लोग बन्दरों के साथ-साथ रामबोला को भी चने और गुड़ दे दिया करते हैं। बन्दरों से रामबोला की दोस्ती भी हो गई है। बन्दरों के बच्चे स्वच्छन्दतापूर्वक उसके साथ खेलने लगते हैं। इससे रामबोला का मन अब आठों पहर सुखी रहता है।

जब कभी एकाध फल मिल जाता तो रामबोला उसी में से आधा भाग सदा बन्दरों के टोली के सरदार को देता है। यदि कोई उसके माता-पिता के सम्बन्ध में पूछता तो उत्तर में वह उसे सीता और राम के नाम बतलाता है। बच्चे की इस हाजिरजवाबी से लोग प्रसन्न होते। यदि कोई पूछता कि दाल-भात-रोटी खाने को तुम्हारा जी नहीं करता, तो उसे चट से यह उत्तर मिलता कि "बजरंगबली हमें जो कुछ खाने को देंगे वही तो खाऊंगा।"

एक दिन वहाँ की रानी साहब ने ब्रह्मभोज दिया। जाने कहां-कहां से झुण्ड के झुण्ड भिखारी आने लगे। बहुतों ने हनुमानजी के चबूतरे के आस-पास भी डेरा डाल दिया। उनके कारण वन्दरों और रामबोला को अपना दैनिक भोजन भी नहीं मिल पाता था। एक भिखारी तो इसी घात में रहता है कि कोई भगत हनुमानजी की खोची डाले और वह उसे हड़प जाये। रामबोला ने जब आपत्ति की तो मार खाई। दूसरे दिन से ही बन्दर वहां से हट गए। पर सवेरे जब दैनिक दर्शनार्थी आए तो रामबोला ने कहा- "देखो, ये पंच हमें मारते है। कल से न हमने ही कुछ खाया है और न हमारे बन्दरों को कुछ मिला है। यह सब पंच मिलके हनुमानजी का स्थान भ्रष्ट करते हैं। उनको आप सब यहां से हटा दें।" परन्तु भिखारी दल किसी भी दर्शनार्थी के वश में नहीं था। रामबोला ने बजरंगबली से शिकायत की- "हनुमान स्वामी तुम साक्षी हो, हम कल से, इनके कारण बहुत दुःख में हैं। बन्दरों को भी खाने को नहीं मिला, और ऊपर से ये हमको मारते हैं। अच्छा अब हम भी बदला लेंगे।" फिर बड़े ताव से रामबोला चबूतरे से उतरकर अनाज मण्डी की ओर चल पड़ा। बन्दर वही डेरा डाले पड़े थे। मण्डीवाले अनाज की फटकन और थोड़े बहुत चने भी उनके आगे डाल देते थे। रामबोला बन्दरों के सरदार को खोजता हुए वहां पहुंचा। पीपल के पेड़ के नीचे वानर परिवार को बैठा देखकर वह बड़े ताव से बन्दरों के सरदार से बोला-"वाह, अच्छे साथी हो, हम वहां मार खायें और तुम बैठे-बैठे माल खाओ। वाह-वाह-वाह!" सरदार ऐसे चुप होकर बैठ गया कि मानो उसे रामबोला की शिकायत सुनकर लाज लगी हो। वह अपनी कनपटी खुजलाने लगा, फिर जल्दी-जल्दी दोनों हाथों से आसपास के पड़े दाने बीन-बीनकर रामबोला के आगे रखने लगा। रामबोला ने कहा-"ये नहीं, तुम हमारे साथ चलो और राक्षसों को वहां से भगाओ। देखो

हम हनुमान स्वामी से कह कर आए हैं। हमारी नाक नीची न कराओ। आओ चलो।" और तब सरदार चल पड़ा और उसके पीछे-पीछे चालीस-पचास वानरों की टोली भी दौड़ने लगी। आगे आगे रामबोला और वानर सरदार, उनके पीछे तथा आसपास बन्दरों की टोली दौड़ती चली। हनुमानजी के चबूतरे पर घमासान मचा हुआ था। बन्दर चबूतरे पर चढ़ी हुई भिखारियों की टोली पर टूट पड़े। थोड़ी देर में भिखारियों की टोली वहां से संत्रस्त होकर भागी। रामबोला बड़ा प्रसन्न हुआ। चबूतरे पर चढ़कर हनुमानस्वामी से बोला-"देख लिया न हुनमान स्वामी, अरे हमारे बन्दर सरदार बड़े वीर हैं। तुम देख लेना, अब वे किसी को यहां पैर तक न रखने देंगे।"

कहते हैं कि जब रामबोला हनुमानजी से यह बात कह रहा था तभी उसके पीछे एक वयोवृद्ध सौम्य साधु आकर खड़े हो गए। वे हनुमानजी से होने वाली उसकी बातें सुन-सुनकर आनंदमग्न हो रहे थे। सहसा बोले-"बेटा, रामजी ने तुम्हारे लिए यह पेड़े भेजे हैं। लो खाओ।"

इतने ही में बन्दर सरदार ने उन साधु को देखा। वह आनंद से चिचियाते हुए छलांग मारकर उनके पास आ पहुंचा और उनकी टांग पकड़कर खूब उमंग से चिचियाने लगा। लगता था उनमें पुरानी पहचान थी। सरदार को यह करते देखकर कई बन्दर भी उन साधु के आसपास पहुंच गये। साधु अपनी दाढ़ी-मूंछों से मुस्कान बिखेरकर बोले- "हां-हां, जान गए, तुम सबको आनन्द हुआ है। ठहरो-ठहरो, तुम सबको भी मिलेगा। पहले इस बालसंत को दे लें। तुम सब तो हनुमान जी के बन्दर हो, पर यह बालक तो साक्षात रामजी का बन्दर है।" पेड़ों में से कुछ तो बन्दरों के आगे डाल दिए और एक मुट्ठी रामबोला के हाथों में देकर बोले- "लो खाओ, खतम करो तो और दें।"

रामबोला कृतज्ञ दृष्टि से साधु को देखने लगा। भूख बड़ी जोर से लगी थी, उसने जल्दी-जल्दी तीन-चार पेड़े मुंह में भर लिए, फिर एकाएक उसे ध्यान आया, उसने साधु के पैर नहीं छुए। हड़बड़ाकर उठा और साधु के सामने धरती पर अपना मस्तक टेककर उसने पेड़ों से भरे मुंह से कहा-"बाबा-बाबा, पांव लागी।" पेड़ों भरे मुंह से शब्दों का अशुद्ध उच्चारण सुनकर तथा बच्चे का भाव देखकर साधु हंस पड़े। पेड़ों से पेट भरा, फिर नदी से पानी पिया और जब

लौटकर आया तो उसने देखा कि चबूतरा खाली था और मन्दिर के पासवाली बन्द कुटी के द्वार खुले हुए थे। बच्चे को लगा कि हो न हो कृपालु साधु इसी कुटी के अन्दर हैं। वह भीतर चला गया। साधु अपनी कुटी बुहार रहे थे। रामबोला आगे बढ़कर उनके हाथ की झाड़ू पकड़कर बोला- "आप बैठो बाबाजी, हम सब साफ किए डालते हैं।"

आग्रह को देखकर साधु ने उसे झाड़ू दे दी। रामबोला बड़े उत्साह से सफाई में जुट गया और फिर एकाएक बोला- "हम रोज-रोज अपने मन में सोचें कि कुटिया बन्द क्यों पड़ी है? यहां कौन रहता है? एकाध जने से पूछा तो उन्होंने कहा कि नरहरि बाबा रहते हैं। तो क्या आप ही नरहरि बाबा हैं?"

बाबा नरहरिदास का उस क्षेत्र में वड़ा मान था। वे कथा बांचा करते थे, और एकतारे पर ऐसे तन्मय होकर भजन गाते कि सुनने वाले आत्मविभोर हो उठते थे। उनकी जाति-पाति का किसी को पता न था। उनके भक्त उन्हें ब्राह्मण कहते थे और विरोधी उन्हें हनुमानवंशी डोम बतलाया करते थे। बाबा नरहरिदासजी ने पूछने पर भी कभी अपनी जाति नहीं बतलाई। वे कहते थे कि पानी की कोई जाति नहीं होती, जो रंग मिलाओ वह उसी रंग का हो जाता है।

रामबोला बाबा नरहरिदास के साथ ही रहने लगा। वह हनुमान जी का चबूतरा बुहारता, बाबा की कुटिया और आगे की छोटी-सी फुलवारी वाला भाग स्वच्छ करता, और दिन में विश्राम के समय अपने नन्हें-नन्हें हाथों से बाबा के पैर दबाता था। नित्यप्रति मण्डी के एक अनाज के व्यापारी के घर से बाबा के लिए सीधा आने लगा था। नरहरि बाबा बच्चे को रोटियां बनाना और पोना सिखलाते थे। रामबोला धीरे-धीरे अच्छा भोजन बनाने लगा। उसे खिलाकर तथा बन्दरों के आगे टुकड़े डालकर शेष सामग्री वे सानी बनाकर नित्य खाते थे। एक दिन रामबोला हनुमानजी की मूर्ति से कह रहा था- "वाह रे, हनुमान स्वामी, तुमने हमारी खूब सुनी।"

नरहरि बाबा बच्चे की भोली बाते सुनकर हंस पड़े, फिर पूछा-'हनुमान स्वामी कहां है रे?"

"वह क्या चबूतरे पर खड़े हैं गदा-पहाड़ ले के। यह तो संजीवनी बूटी का पर्वत है। है न? हमारी पार्वती अम्मां ने एक बार हमको बताया था कि संजीवनी

बूटी से लछिमनजी तो पहले ही ठीक हो गए, अब ये क्यों पर्वत लिए खड़े हैं?"

बच्चे के इस प्रश्न पर नरहरि बाबा हंस पड़े, बोले--"इसलिए खड़े हैं कि और किसी को जरूरत पड़े तो उनसे संजीवनी बूटी ले ले। तुमको चाहिए संजीवनी बूटी?"

"हमको शक्ति थोड़े लगी है बाबा, हम मरे थोड़े हैं।"

"जिसके हृदय में रामजी नहीं रहते वही मरे के समान होता है, बेटा। तुम तो साक्षात् रामबोला हो।"

"नाम से क्या होगा बाबा, हम जरूर मरे हुए हैं, बाबा।"

"काहे?"

"अरे हम नन्हें से लड़के, हमारे पास न ओढ़ने को है और न बिछाने को। हमारे में सियाराम जी काहे निवास करेंगे? और फिर राम जी तो बाबा बहुत बड़े हैं और हम अभी नन्हें से हैं।"

"तो रामजी भी नन्हें से बनकर तुममें निवास करते हैं।"

रामबोला सुनकर स्तब्ध हो गया। आंखें फाड़कर बाबा को देखने लगा। और यही रामबोला श्रीहनुमानलीला से हो गया तुलसीदास।

श्रीहनुमान चालीसा की रचना :- एक अवसर पर काशी में अपने गुरुगृह में तुलसीदासजी शिष्य मण्डली में बैठे थे कि एक शिष्य ने दूसरे शिष्य से उलाहना देते हुए कहा-"ये तुलसिया परसों अमावस्या को अर्धरात्रि के समय हरिश्चन्द्र घाट के मंदिर में शंख घोष करने जाएगा।" सुनकर तुलसी और उस मण्डली के बालक चुप हो गए। दूसरे शिष्य ने बात आगे बढ़ाई, बोला-"कहता था, राम शब्द से अधिक सिद्ध और कोई मंत्र ही नहीं है।" कहकर वह जोर से खिलखिलाकर हंस पड़ा।

तुलसी आवेश में आ गये और बोले- "हां-हां, अब भी कहता हूं और कल जाकर रामकृपा से अवश्य हीं शंकरजी के मंदिर में शंखनाद करुंगा। देखूंगा कि भूत बड़े हैं या रामसेवक श्रीहनुमानजी।" तुलसी का तैश देखकर वे दोनों उपहास करते हुए हंस पड़े और बोले- "अरे वाह रे हनुमानजी के भक्त। जब शंखिनी-डंकिनी दहाड़ेगी तब कहना।" उन्होंने फिर व्यंग्य कसा और फिर हंस पड़े।

तुलसी झटके से उठकर खड़ा हो गया और हाथ बढ़ाकर बोला– *"भूत पिशाच निकट नहीं आवै, महावीर जब नाम सुनावै।"* एक भी भूत-चुड़ैल मेरे सामने ही नहीं आवेगी। देख लेना।" कहकर तुलसी दालान से बाहर चला आया। आवेश में भरा तुलसी मन ही मन सोच रहा था– "राम सिद्धमंत्र है। मुझे अपने स्वर्गवासी गुरु बाबा की बात ही सरल और सुखद लगती है कि हनुमानजी बचपन से ही मेरी वांह गहे हुए हैं।" उस रात तुलसी जब सब कामों से छुट्टी पाकर अपना दिया लिए हुए अपनी कोठरी में ऊपर चला तो सीढ़ियों में ही हवा का ऐसा गूंज भरा थपेड़ा आया कि दीप की लौ झोंका खाकर बुझी-अब बुझी जैसी हो गई। मन सहम उठा, राम-राम का जप स्वर में हलकी कंपकपी के साथ तीव्र गतिशील हुआ। बत्ती की लौ नन्हीं बूंद जैसी बन गई पर बुझी नहीं, फिर क्रमशः उसमें उजाला बढ़ गया। सीढ़ी पर जमे डग फिर उठे। तुलसी छत के द्वार तक पहुंच गया। रात घनी काली थी किंतु सर्दी की स्वच्छ रात में तारों की चमक लुभावनी लग रही थी। नीचे गली में अपना कोठरी की छत को छूता हुआ पीपल रात की कालिमा में अंधेरे की एक और गहरी पर्त बनकर खड़ा था लेकिन आज वह तुलसी के लिए रुकावट न बना। वह छत पर धम से कूदा तो कोई आवाज ही सुनाई नहीं दी। बालक उत्साह में तनिक जोर से बड़बड़ा उठा– "जै बजरंगबली। हे बंजरंगबली, आज हमने तुम्हें सारे दिनभर ध्याया है। भला कौन भूत अब मेरे सामने आने का साहस करेगा?" बड़बड़ाते हुए कुंडी खोलकर जो कोठरी में कदम रखा तो ऐसा लगा कि उसकी चटाई पर कोई लेटा है। सारी आस्था, मन का चैन लड़खड़ा गया। एक बार उल्टे पैरों लौटा, फिर देखा तो लगा कि कहीं कुछ भी नहीं है। बालक के मन में नये सिरे से उत्साह आया। उसने अपनी कोठरी में पुनः भीतर तक प्रवेश किया। दिये के प्रकाश में कोठरी के चारों कोने और फर्श से लेकर छत तक, सतर्क नजरों से सब छान मारा, कहीं कुछ भी न था। मन का विश्वास फिर लौटा। तुलसी ने दरवाजे अंदर से बंद कर लिए। कुछ भय, कुछ अभय मिलकर तरुण मन को सनसनाहट से भरने लगा। भरी सर्दी में भी माथे पर पसीने की बूंदे चुचुआ उठीं। फिर आप ही बड़बड़ा उठा– "रामभगत हनुमानजी का ध्यान कर!"

वह अपनी चटाई पर बिछी हुई कथरी पर बैठ गया। मिट्टी की दवात और

सरकंडे की कलम सामने रख ली। कागज उठा लिया और लिखना आरंभ किया– *"जै हनुमान ज्ञान-गुन-सागर। जै कपीस तिहुँ लोक उजागर।।"* मध्य रात्रि तक श्रीहनुमानचालीसा पूरी की। तुलसी ने अपने अब तक के जीवन में यह पहला लंबा काव्य रचा था। वह बड़ा ही मगन था। जोश में आकर उसने दो-तीन बार अपने चालीसा काव्य को पढ़ा। दो-एक जगह संशोधन भी किए, फिर ऐसे सुख से टांगे पसारकर सोया मानो उसने कोई बड़ी भारी दिग्विजय कर ली हो।

दूसरे दिन सुबह गुरु-पत्नी ने पूछा–"रामबोला, हमने सुना है, तुम आज मसान जाने वाले हो?"

तुसली झेंप गया, फिर कहा–"हम रामजी की भक्ति को भूतों की शक्ति से बड़ी मानते हैं। क्या गलती है?"

"नहीं बेटा, भूत तो बनते-बिगड़ते रहते हैं, वह तुम्हारे मन के विकारों की तरंगे मात्र ही हैं। उनकी चिंता कभी न करना।"

गुरु-पत्नी के आशीर्वाद ने तुलसी के मन को बड़ा बल दिया। किंतु पाठशाला में मित्रमण्डली उसे दिन-भर डराती और चिढ़ाती ही रही।

शाम आई, फिर रात का पहला पहर समाप्त हुआ। कसौटी पर चढ़ने का क्षण आ गया। तुलसी ने शंख उठाया, अंधेरे में शंख के स्पर्श मात्र से उसके मन में एक विचित्र सी सनसनाहट भर गई। हृदय धड़-धड़ करने लगा। हृदय 'राम-राम' बोल रहा है, 'उठ-उठ' कह रहा है। तुलसी खड़ा हो गया। कोठरी से बाहर निकला। आगे की छोटी सी छत अंधकारमय थी। बाईं ओर का पीपल अंधेरे में भय की सघन छायामूर्ति बनकर खड़ा था। तुलसी स्तब्ध होकर उधर ही देखता रहा। मन तेजी से कल्पना करने लगा। ब्रह्मराक्षस अपना आकार बढ़ाता हुआ मानो अब उठने वाला है। वह आएगा और उसके हाथ से शंख लेकर चूर-चूर कर डालेगा। लेकिन तुलसी की कल्पना शक्ति ने उसके भय का साथ न देकर एक नया रूप धारण कर लिया। ब्रह्मराक्षस के बजाय उसे हनुमानजी अपनी कल्पना में बढ़ते हुए दिखाई देने लगे। हनुमानजी के दाहिने कंधे पर श्रीराम और बायें पर श्रीलक्ष्मणजी विराजमान हैं। जहां राम है वहां भय कहां? भय ही तो भूत है। चल रे रामबोला, चल आज यह दिखा दे कि तेरा रामबल अनंत भूतों से अधिक शक्तिशाली और विशाल है।

अंधेरी-सूनी गलियां पीछे छूटती जाती हैं। गलियों में यत्र-तत्र बैठे हुए सांड भी तुलसी के चलने की आहट पाकर अथवा शीत की प्रतिक्रियावश अपनी सांसों की फुफकारें सी छोड़ते हुए मिल जाते हैं। संकरी गलियों में बन्द घरों की दीवारें मानों सांय-सांय बोल रही हैं। एक जगह एक सांड पूरी गली घेरे हुए पड़ा था। घने अंधेरे में वह तुलसी को दिखाई न पड़ा। वह जैसे ही आगे बढ़ा तो ठोकर खाई। पैर लड़खड़ाया और वह बैल पर ही गिर पड़ा। शंख की नोक बैल के शरीर में चुभी और उसने फुंफकारते हुए अपने सींग इधर घुमाए। तुलसी घबरा गया। भूत भले न हो पर भूतनाथ के इस नन्दी ने यदि आक्रमण कर दिया तो तुलसी की जान की खैर नहीं। इस भय ने सुरक्षा की भावना तीव्र कर दी। तुलसी के पांव भय से थम गए पर यह भय अब उसके लिए चुनौती बन गया था। वह श्मशान में आ पहुंचा। श्मशान की जलती-बुझती चिताएं दिखलाई पड़ रही हैं। एक चिता की लपटों में उसे तरह-तरह के आकार भी दिखाई देते हैं। लेकिन तुसली अब भयभीत नहीं थे। भूत चाहे उसका गला ही क्यों न दबोच दे पर जब तक वह शिवजी के मंदिर में शंखघोष नहीं कर देता तब तक उसके प्राण कदापि नहीं निकलेंगे- *"जय हनुमान ज्ञान-गुन-सागर, जय कपीस तिहुं लोक उजागर।"*

तुलसी ने विशाल शिवलिंग के समक्ष खड़े होकर पूरी शक्ति के साथ अपना शंख बजाया, एक बार नहीं, पूरे तीन बार बजाया। बाहर दूर से एक कड़कड़ाती हुई आवाज आई-"कौन है रे?"

"रामजी का खास सेवक तुलसीदास।" शिवजी के चबूतरे से ही आत्मविश्वास से जगमगाए हुए बालक ने कड़क कर जवाब दिया। तुलसी श्मशान से यों घर लौट रहा था मानो त्रिलोकविजय करके आ रहा हो। इस समय न तो उसे जाड़ा ही सता रहा था और न किसी प्रकार का भय। आस्था प्रबल होकर उसे राममय बना रही थी। 'श्रीहनुमानचालीसा' के हनुमान जो साथ थे।

तुलसीदास को श्रीराम के दर्शन कराने की लीला :- श्रीहनुमानजी की गोस्वामी तुलसीदास पर सदैव अतिशय कृपा थी। तुलसी उन दिनों काशी-निवासी बन गये थे। स्वभाव से शौचकर्म से निवृत्त होकर लौटते तो अपने बड़े लोटे का शेष जल एक पीपल के वृक्ष में डाल दिया करते थे। लगभग एक महीना यह क्रम

चलते हुए बीता होगा कि एक दिन उनके लोटे में जल नहीं बचा। वृक्ष के समीप पहुँचकर उनके पैर रुक गये। उनके मन में आया–'वृक्ष में भी जीवन होता है। पेड़ ने इतने दिन बराबर मेरे हाथ से जल पाया है। आज इसे निराशा होगी।"

उसी समय वृक्ष से एक छायामूर्ति प्रकट हुई। वह थोड़ी दूर पर खड़ी होकर बोली–'मैं प्रसन्न हूँ, वरदान माँगो।'

तुलसीदास स्वभाव से विनम्र थे। उन्होंने कहा–'आप पहिले अपना परिचय दें। मैं अपने पर अकारण कृपा करने वाले को जान तो लूं।'

उस छायामूर्ति ने कहा– "मैं प्रेत हूँ। इस योनि में पड़ा जीव स्वयं न आहार ग्रहण कर सकता हैं न जल पी सकता हैं। पता नहीं कब से मैं अत्यन्त तृषार्त था। शुद्ध पवित्र जल मैं पी नहीं सकता था। यह वृक्ष मेरा निवास है। एक महीने से आप जो जल इसमें डालते हो, उससे मेरी तृषा तृप्त हो रही है। अतः मैं आपकी कोई सेवा करना चाहता हूँ।"

'आपका अनुग्रह' तुलसीदास ने उस प्रेत से कहा–'यदि आप मुझे कुछ देना चाहते है तो मुझे श्रीरघुनाथजी का दर्शन करा दें।'

प्रेत थोड़ी दूर और हटकर बोला–'यदि मैं उनका दर्शन करा सकता तो प्रेत क्यों होता? आप कोई लौकिक वस्तु माँगिये।'

'लौकिक किसी वस्तु की मुझे कामना नहीं है।' तुलसीदास ने कहा–'मैंने वह माँगा जो एकमात्र मेरी कामना का विषय है। आप इस कामना के लिए मुझे क्षमा करें और पधारें! आपका मंगल हो।"

'सुनो!' प्रेत ने जाने को उद्यत तुलसीदास को पुकारा– "आपने मुझ प्यासे को इतने दिन पानी पिलाया है। मैं आपकी सेवा अवश्य करना चाहता हूं। आपको एक युक्ति बतला रहा हूँ। इन दिनों काशी में प्रहलाद घाट पर प्रतिदिन कथा होती है। कथा के प्रारम्भ में एक कुष्ठ रोगी के वेश में हनुमानजी आते हैं। सबसे पीछे बैठते हैं। सब श्रोताओं के अन्त में जाते हैं। उनके पैर पकड़ लेना और तब छोड़ना जब वे तुम्हारी कामना पूर्ण करने का वचन दें।"

तुलसीदास को कभी पता नहीं लगा कि श्रीरघुनाथ के दर्शन की उनकी व्याकुलता उनके परमाश्रय भगवान भूतनाथ से देखी नहीं जा रही थी। उन्होंने प्रेत के रुप में अपने एक गण को प्रेरित कर दिया और उसने श्रीहनुमानजी का

अंधेरी-सूनी गलियां पीछे छूटती जाती हैं। गलियों में यत्र-तत्र बैठै हुए सांड भी तुलसी के चलने की आहट पाकर अथवा शीत की प्रतिक्रियावश अपनी सांसों की फुफकारें सी छोड़ते हुए मिल जाते हैं। संकरी गलियों में बन्द घरों की दीवारें मानों सांय-सांय बोल रही हैं। एक जगह एक सांड पूरी गली घेरे हुए पड़ा था। घने अंधेरे में वह तुलसी को दिखाई न पड़ा। वह जैसे ही आगे बढ़ा तो ठोकर खाई। पैर लड़खड़ाया और वह बैल पर ही गिर पड़ा। शंख की नोक बैल के शरीर में चुभी और उसने फुंफकारते हुए अपने सींग इधर घुमाए। तुलसी घबरा गया। भूत भले न हो पर भूतनाथ के इस नन्दी ने यदि आक्रमण कर दिया तो तुलसी की जान की खैर नहीं। इस भय ने सुरक्षा की भावना तीव्र कर दी। तुलसी के पांव भय से थम गए पर यह भय अब उसके लिए चुनौती बन गया था। वह श्मशान में आ पहुंचा। श्मशान की जलती-बुझती चिताएं दिखलाई पड़ रही हैं। एक चिता की लपटों में उसे तरह-तरह के आकार भी दिखाई देते हैं। लेकिन तुसली अब भयभीत नहीं थे। भूत चाहे उसका गला ही क्यों न दबोच दे पर जब तक वह शिवजी के मंदिर में शंखघोष नहीं कर देता तब तक उसके प्राण कदापि नहीं निकलेंगे- *"जय हनुमान ज्ञान-गुन-सागर, जय कपीस तिहुं लोक उजागर।"*

तुलसी ने विशाल शिवलिंग के समक्ष खड़े होकर पूरी शक्ति के साथ अपना शंख बजाया, एक बार नहीं, पूरे तीन बार बजाया। बाहर दूर से एक कड़कड़ाती हुई आवाज आई-"कौन है रे?"

"रामजी का खास सेवक तुलसीदास।" शिवजी के चबूतरे से ही आत्मविश्वास से जगमगाए हुए बालक ने कड़क कर जवाब दिया। तुलसी श्मशान से यों घर लौट रहा था मानो त्रिलोकविजय करके आ रहा हो। इस समय न तो उसे जाड़ा ही सता रहा था और न किसी प्रकार का भय। आस्था प्रबल होकर उसे राममय बना रही थी। 'श्रीहनुमानचालीसा' के हनुमान जो साथ थे।

तुलसीदास को श्रीराम के दर्शन कराने की लीला :- श्रीहनुमानजी की गोस्वामी तुलसीदास पर सदैव अतिशय कृपा थी। तुलसी उन दिनों काशी-निवासी बन गये थे। स्वभाव से शौचकर्म से निवृत्त होकर लौटते तो अपने बड़े लोटे का शेष जल एक पीपल के वृक्ष में डाल दिया करते थे। लगभग एक महीना यह क्रम

चलते हुए बीता होगा कि एक दिन उनके लोटे में जल नहीं बचा। वृक्ष के समीप पहुँचकर उनके पैर रुक गये। उनके मन में आया-'वृक्ष में भी जीवन होता है। पेड़ ने इतने दिन बराबर मेरे हाथ से जल पाया है। आज इसे निराशा होगी।"

उसी समय वृक्ष से एक छायामूर्ति प्रकट हुई। वह थोड़ी दूर पर खड़ी होकर बोली-'मैं प्रसन्न हूँ, वरदान माँगो।'

तुलसीदास स्वभाव से विनम्र थे। उन्होंने कहा-'आप पहिले अपना परिचय दें। मैं अपने पर अकारण कृपा करने वाले को जान तो लूं।'

उस छायामूर्ति ने कहा- "मैं प्रेत हूँ। इस योनि में पड़ा जीव स्वयं न आहार ग्रहण कर सकता हैं न जल पी सकता हैं। पता नहीं कब से मैं अत्यन्त तृषार्त था। शुद्ध पवित्र जल मैं पी नहीं सकता था। यह वृक्ष मेरा निवास है। एक महीने से आप जो जल इसमें डालते हो, उससे मेरी तृषा तृप्त हो रही है। अतः मैं आपकी कोई सेवा करना चाहता हूँ।"

'आपका अनुग्रह' तुलसीदास ने उस प्रेत से कहा-'यदि आप मुझे कुछ देना चाहते है तो मुझे श्रीरघुनाथजी का दर्शन करा दें।'

प्रेत थोड़ी दूर और हटकर बोला-'यदि मैं उनका दर्शन करा सकता तो प्रेत क्यों होता? आप कोई लौकिक वस्तु माँगिये।'

'लौकिक किसी वस्तु की मुझे कामना नहीं है।' तुलसीदास ने कहा-'मैंने वह माँगा जो एकमात्र मेरी कामना का विषय है। आप इस कामना के लिए मुझे क्षमा करें और पधारें! आपका मंगल हो।"

'सुनो!' प्रेत ने जाने को उद्यत तुलसीदास को पुकारा- "आपने मुझ प्यासे को इतने दिन पानी पिलाया है। मैं आपकी सेवा अवश्य करना चाहता हूं। आपको एक युक्ति बतला रहा हूँ। इन दिनों काशी में प्रहलाद घाट पर प्रतिदिन कथा होती है। कथा के प्रारम्भ में एक कुष्ठ रोगी के वेश में हनुमानजी आते हैं। सबसे पीछे बैठते हैं। सब श्रोताओं के अन्त में जाते हैं। उनके पैर पकड़ लेना और तब छोड़ना जब वे तुम्हारी कामना पूर्ण करने का वचन दें।"

तुलसीदास को कभी पता नहीं लगा कि श्रीरघुनाथ के दर्शन की उनकी व्याकुलता उनके परमाश्रय भगवान भूतनाथ से देखी नहीं जा रही थी। उन्होंने प्रेत के रुप में अपने एक गण को प्रेरित कर दिया और उसने श्रीहनुमानजी का

पता तुलसीदास को बतला दिया।

उस दिन वहाँ कथा के समय से बहुत पूर्व तुलसीदास आ गये। श्रीहनुमानजी सदा की भाँति कुष्ठ रोगी के वेश में पहुँचे तो तुलसीदास बहुत ध्यानपूर्वक उनकी ओर देख रहे थे। कथा प्रारम्भ होने पर वे तन्मय हो गये। कथा समाप्त हुई और श्रोता जाने लगे तो तुलसीदास उनके पीछे आकर खड़े हो गये। सबसे अन्त में जैसे ही वे जाने के लिए मुड़े तो तुलसीदास ने उनके दोनों पैर दृढ़तापूर्वक पकड़ लिये।

"अरे! अरे! महात्मा, यह क्या करते हो?' उन्होंने पैर छुड़ाने का प्रयत्न करते हुए कहा-'देखते नहीं कि मैं गलित कुष्ठ रोगी हूँ। मुझ अधम को छोड़ो और जाकर गंगा-स्नान करो।'

'आप समर्थ हो। मैं निर्बल हूँ। आप मुझे क्या अपने चरणों से ठुकराकर-फेंककर जा सकते हो?" तुलसीदास फूट-फूटकर रोने लगे-'मुझे अब आप अपने से वंचित मत करो। मैं आपको पहिचानता हूँ। जब तक आप मुझे मेरे हृदय सर्वस्व श्रीराम का दर्शन कराने का वचन नहीं दोगे, मैं अपना वश रहते तो आपका चरण छोड़ने से रहा।'

सब श्रोता जा चुके थे। अतः अकेले में श्रीहनुमानजी ने अपने को प्रकट करके उनको वचन दिया- 'तुम चित्रकूट चलकर भजन करो। उस स्थान पर श्रीरघुनाथ सानुज सदा निवास करते हैं। मैं वचन देता हूँ कि उनसे तुमको साक्षात् दर्शन देने की प्रार्थना करूँगा। मुझे विश्वास है कि मेरी प्रार्थना मेरे स्वामी अवश्य स्वीकार कर लेंगे।'

तुलसीदास सन्तुष्ट हो गये। वे काशी से चित्रकूट पहुँच गये। मन्दाकिनी के तट पर यज्ञ वेदी के नीचे उन्होंने अपनी कुटिया बनायी। वनवास के समय प्रभु की पर्णकुटी के नीचे का यह स्थान परम-पावन था।

गोस्वामी तुलसीदास चित्रकूट में रहकर अनुष्ठान कर रहे थे। एक दिन वे अपनी कुटिया के बाहर खड़े थे। उनके समीप से अश्व पर आरूढ़ सानुज श्रीरघुनाथ निकल गये।

प्रभु के चले जाने के पश्चात श्रीहनुमान साक्षात तुलसीदास के समीप गये और पूछा-'आपको श्रीरघुनाथ के दर्शन हो गये?'

'कहाँ थे प्रभु?' तुलसीदास ने चौंककर पूछा। जब उन्हें बतलाया, तब वे बहुत दुःखी हुए। फूट-फूटकर रुदन करने लगे-'मेरे समीप से अश्व पर बैठे मेरे स्वामी निकल गये और मैंने ध्यान ही नहीं दिया। मैंने समझा कि कोई दो राजकुमार आखेट करने निकले हैं।' वे हनुमानजी के चरण पकड़कर रो रहे थे। तब उन्होंने तुलसीदासजी को पुनः दर्शन मिलने का आश्वासन दिया।

दूसरी बार प्रभु तब पधारे जब चित्रकूट में पर्व के अवसर पर बहुत अधिक साधु पधारे थे। महात्माओं के भोजनादि की व्यवस्था श्रद्धालुजनों ने की थी। अकिंचन तुलसीदास साधुओं का सत्कार कैसे करते? उन्होंने सोचा- "संतों को चन्दन लगाकर चरण-वन्दना कर लूँ।"

वे चन्दन घिसने में लग गये। बहुत अधिक साधु आये थे, अतः पर्याप्त चन्दन घिसना था उन्हें। इसी समय श्याम-गौर बालकों के रूप में सानुज प्रभु पधारे और उन्होंने तुलसीदास से कहा-'बाबा! हमको भी चन्दन दो!'

तुलसीदास ने उनकी ओर देखा; किन्तु पहिचान नहीं सके। लेकिन उन रूपराशि बालकों को देखकर चन्दन देना अस्वीकार भी नहीं कर सके। एक पत्ते पर थोड़ा चन्दन उन्होंने दोनों भाइयों को दे दिया। एक आरसी लेकर प्रभु तिलक करने लगे। अब हनुमानजी ने तोते का वेश बनाया और समीप के वृक्ष पर से पुकार की- *'चित्रकूट के घाट पै, भइ संतन की भीर। तुलसिदास चन्दन घिसैं, तिलक देत रघुबीर।।'*

तुलसीदास ने सुना, चौंके और प्रभु को पहिचान कर उनके चरणों में गिर पड़े।

काशी की एक घटना है - विश्वनाथजी मन्दिर के आंगन में अनेक भक्त तुलसीदास की महत्ता बता रहे थे। एक तान्त्रिक इसे सुनकर क्रोध में भड़क उठे। वे एक बूढ़े का लट्ठ उसके हाथ से छीनकर, तुलसीदास पर झपटे किन्तु हड़बड़ी में चौखट लांघते हुए ठोकर खाकर धड़ाम से गिर पड़े। भीड़ में कुछ लोग उन्हें फर्श पर गिरा देखकर एकाएक जोश में बंजरंगबली और बाबा विश्वनाथ की जय-जयकार कर उठे।

थोड़ी ही देर में काशी की गली-गली में यह खबर गूंज गई कि विश्वनाथ बाबा के मंदिर में गोस्वामी तुलसीदासजी पर आक्रमण करने वाले को हनुमानजी ने

उठाकर पटक दिया।

"अन्तकाल रघुपतिपुर जाई":-- तुलसीदासजी अब वृद्ध हो गये थे। शरीर कमजोर हो गया था और गिल्टियां उचट-उचट जाती थीं। नींद कम आती थी। आती भी तो बीच-बीच में किसी गिल्टी से ऐसी टीस उठती कि नींद उचट जाती। तब पीड़ा को भुलाने के लिए प्रायः लेटे ही लेटे जपमग्न हो जाते। आज रात भी ऐसा ही हुआ। बाईं कलाई पर नई गिल्टी निकल रही है। हड्डी के ऊपर की गांठ बड़ी दुखदाई है। पूरी बांह में तनाव है। उस तनाव के कारण बगल में एक और गिल्टी उभर आई। नींद में करवट ले ली तो गिल्टी के दब जाने से सहसा 'हे राम!' कहके कराह उठे। बड़ी देर तक दाहिने हाथ के पंजे से अपनी बाईं बांह दाबे हुए सीधे पड़े रहे। उनका चेहरा बड़े कठिन संयम से अपनी पीड़ा को पचा रहा था। मन की माला 'राम-राम' जप रही थी।

थोड़ी देर के बाद तुलसी बाबा ने अपनी आंखे खोलीं। दीवार पर रखे दीप के उजाले में दीवार पर रंगे देवचित्र की ओर ध्यान दिया। वहां हल्के उजाले में श्रीहनुमानजी अपने मध्यम उभार के साथ चमक रहे थे। श्रीहनुमानजी के चित्र पर दृष्टि जाते ही तुलसीदास के मन में एक ताजगी आ गई। मुस्कराकर चित्र से कहने लगे-'हे पवनतनय, तुम भले ही पीड़ा से मुक्ति न दो परन्तु यह तो बता दो कि किस पाप-शाप के कारण यह दुःख पा रहा हूँ। हे राम, अब तो अवश्य अपनी राम-रट में मुझे इतना रमा दो कि तन की पीड़ा को भूल जाऊं।" उनके कानों में राम गूंज है पर मन कराह-कराह उठता है। वे वेदना न सह पाने के कारण उठकर बैठ जाते हैं और कराहते हुए श्रीहनुमानजी के चित्र की ओर कातर दृष्टि से देखकर गाने लगते हैं-

"जानत जहान हनुमान को निवज्यो जन,
मन अनुमानि, बलि बोल न बिसारिये।
सेवा जोग तुलसी कबहुं कहा चूक परी,
साहेब सुभाव कपि साहिबी संभारिये।
अपराधी जान कीजै सासति सहस भांति,
मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिये।
साहसी समीर के दुलारे रघुवीरजू के,

बांह पीर महाबीर बेगि ही निवारिये।"

वे देर तक अपनी बाई बांह सहलाते रहे, फिर मन में कुछ ऐसा लगा कि मानो कोई उनकी पीड़ित बांह को सहला रहा है। फिर आप ही मुस्करा उठे। तुलसीदासजी अब धीरे-धीरे गाने लगे-

"मारुति-मन, रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहु नाथ, नाम सों प्रतीति-प्रीति-
एक किंकर की निबही है।।१।।'
सकल सभा सुनि लै उठी, जानी रीति रही है।
कृपा गरीब निवाज की, देखत
गरीब को साहब बाँह गही है।।२।।
बिहँसि राम कह्यो, 'सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।'
मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की,
परी रघुनाथ-हाथ सही है।।३।।

अंतिम पंक्ति उन्होंने स्वर खींचकर गाई, उसके पूरी होते ही गर्दन निढाल हो गई। गोस्वामी तुलसीदासजी धरती पर ले लिए गए। तुलसीदल, सोना और गंगा जल उनके घरघराते कण्ठ में डाला गया। गले की घरघराहट में भी राम शब्द ही गुंज रहा था। आंखे एकाएक खुल गईं, दीवार पर अंकित हनुमान और सियाराम के चित्रों की ओर देखा। देखते ही रहे.... पार्वती अम्मा, बन्दर सरदार, नरहरिदास.. और सब में थे तुलसी को *राम से मिलाने वाले मेरे बाबा श्रीहनुमान।*

संत तुलसीदासजी ने 'मानस' के नाम महिमा प्रसंग में कलिकाल को कपट शिरोमणि कालनेमि की उपमा देते हुए श्रीरामनाम से बुद्धिमान समर्थ श्रीहनुमान का तादात्म्य स्थापित किया है-यथा 'कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू।।' श्रीहनुमानजी ने श्रीरामनाम के जप के द्वारा ही भगवान श्रीराम को अपने वशीभूत कर रखा है यथा 'सुमिरि पवन सुत पावन नामू। अपने वस करि राखे रामू।।' श्रीराम नाम लेते हुए ही उन्होंने सारे असंभव कार्य संभव दिखाये और नाम महिमा को भुवन में प्रतिष्ठित किया।

इस कठिन कलिकाल में भी उनकी अलौकिक लीला भक्तों को, साधकों को संतों के रूप में सन्तों के सत्संग में प्रत्यक्ष होती रहती हैं। पूर्ण पवित्रतापूर्वक,

ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए नियम संयम एवं दृढ़ निष्ठा से किये हुए उनके अनुष्ठान मनवांछित फल प्रदान करते हैं। श्रीराम नाम जापकों, श्रीराम भक्तों के लिये तो वे कल्पवृक्ष ही हैं। उन्हें श्रीरामनाम् कीर्तन एवं श्रवण से अत्यन्त प्रेम है। तत्संबंधी यह श्लोक लोक प्रसिद्ध है:-

यत्र यत्र रघुनाथ कीर्तन तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्ण लोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्।।

श्रीहनुमानजी को प्रसन्न करने की सबसे सरल प्रक्रिया यह है कि प्रीतिपूर्वक भगवान श्रीराघवेन्द्र राम के नाम का कीर्तन किया जाय या कराया जाय। यथा–'श्रीराम जय राम जय जय राम।' अथवा 'श्रीसीताराम सीताराम सीताराम सीताराम' किंवा 'सर्वशक्तिमते परमात्मने श्रीरामाय नमः।' या अन्य कोई कीर्तन ध्वनि जो स्वयं को प्रिय हो और उस समय ऐसी ध्यान-भावना की जाये कि श्रीहनुमानजी सामने विराजमान हुए हमारा संकीर्तन श्रवण कर प्रसन्न हो रहे हैं एवं अपना अभयपाणि उठाकर आर्शीवाद दे रहे हैं। यदि यह भी कठिन मालूम पड़े तो श्रीहनुमानजी की ऐसी किसी भव्य तस्वीर की स्थापना करके उसमें ही ध्यान केन्द्रित करके कीर्तन करें। फिर देखिये उनकी कृपा की अनुभूति कैसे नहीं होती है? वे तो आपके समग्र जीवन का ही भार स्वयं अपने ऊपर ले लेंगे,

ब्रह्मर्षि योगिराज श्रीदेवरहाबाबा तथा ब्रह्मवेत्ता श्रीदेवरहाहंस बाबा का उपदेश है कि- बच्चा! हनुमानजी का ध्यान करो, भक्ति करो, नाम जपो, और उन्हें याद रखो। सांसारिक छोटी-छोटी कामनाओं की पूर्ति के लिये सर्वदा मोक्षदायक, परम कल्याण प्रदायक "श्रीराम" मन्त्र का आश्रय कभी भी नहीं लेना चाहिए। श्रीराम कृपा से श्रीहनुमान द्वारा ही मनोवांच्छित फल की प्राप्ति हो जायगी। कोई भी सांसारिक काम घटक (रुक) जाय तो श्रीरामसेवक का स्मरण करना चाहिए। श्रीहनुमानजी स्वयं कहते हैं-

कञ्छितार्थ प्रदास्यामि भक्तता राघवस्य तु।
सर्वदा जागरुकोऽस्मि रामकार्यधुरंधरः।।

"मैं श्रीराघवेन्द्र प्रभु के प्रिय भक्तों को उनकी इच्छानुसार सभी वस्तुएँ प्रदान करता रहता हूँ, मैं भक्तों की कामनापूर्ति स्वरूप श्रीराम का कार्य करने के लिए सदा तत्पर रहता हूँ।"

बाबा का स्वरूप है- श्रीहनुमान, और श्रीराम का स्वरूप है, श्रीहनुमान। बाबा- श्रीहनुमान प्रभु राम के नित्य दिव्य पार्षद हैं और श्रीरामचरित सुनने के लिए पृथ्वी पर चिरंजीवी हैं।

आज हम इक्कीसवीं सदी के द्वार पर खड़े हैं, जहां विज्ञान और गणित का महत्व सर्वोपरि हो गया है। हमारे प्राचीन ग्रंथों, कथाओं और काव्यों में बहुत सी बातें ऐसी भरी हैं जो विज्ञान और गणित की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। आवश्यकता उनकी काट-छांट की तथा शोध की है। हनुमानजी का चरित्र भी इसकी अपेक्षा रहता है।

प्राचीन काल में विभिन्न जनवर्ग या तो सूर्य, चंद्र, अग्नि इत्यादि से अपना उद्भव मानते थे या सिंह, भल्ल, वानर, भास (गृद्ध) इत्यादि से। राम सूर्यवंशी थे, कृष्ण एवं पांडव चंद्रवंशी, आज भी सिंहली अपने को सिंहपुत्र राजकुमार विजय का वंशज मानते हैं। जाम्बवान् (जामवंत) भल्ल जाति के थे, बालि-सुग्रीव-अंगद-हनुमान् इत्यादि वानर जाति के थे, जटायु गृद्ध जाति के थे। प्राचीन विश्व में श्येन (बाज), गृद्ध, क्षेमकरी (चील) इत्यादि सशक्त एवं उच्च-उड्डयन-समक्ष पक्षियों का बड़ा सम्मान था। आज तक उत्सवों पर अनेक आदिवासी सींग या पशु-पक्षी के मुखौटे लगाते हैं। कई बार शरीर के आधार पर ऐसी मान्यता बन जाती थी। रंग काला और बड़े रोएंदार हुआ तो भल्ल ! रंग काला, आकार छोटा और शाकाहारी रुचि हुई तो वानर ! वानर-जाति के प्रमुख नेता गौरवसूचक पुच्छ लगाते थे। जैसे मूँछें मुड़ाना घोर अपमानजनक माना जाता रहा है, वैसे ही इस गौरव-पुच्छ को जलाना या हटाना भी अपमानजनक माना जाता था। रावण जानता था कि यदि हनुमान् की पूँछ जल गई तो वे अपनी वानर-जाति द्वारा अपमानित होने से मरण को श्रेष्ठतर समझेंगे; अतः उसने विभीषण द्वारा दूत के वध के स्थान पर अन्य दंड देने का परामर्श स्वीकार करते हुए पुच्छदाह-दंड दिया !

राम ने आर्यनिषाद, कोल, किरात, भील, गृद्ध, शबर, वानर, भल्ल, निशाचर वर्गों को एक कर दिया था। यक्ष, किन्नर, गंधर्व, नाग इत्यादि वर्ग उनके समय तक आर्यों के पर्याप्त निकट आ चुके थे। राम एवं भरत ने इनके एकीकरण की प्रक्रिया को भी सशक्त किया। यह प्रक्रिया महाभारत-काल तक चलती रही। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन ने यक्ष, हिडिंबा-वर्गीय आदिवासियों, मणिपुरी-जनवर्गों इत्यादि

को आर्यों से एकाकर किया, कृष्ण एवं अर्जुन ने बलपूर्वक मय-जाति को मिलाया, जन-मेजंय ने नाग-जाति को। अतः हनुमान उत्तर-दक्षिण भारत की एकता के प्रतीक हैं, आर्य-द्रविड़ एकता के प्रतीक हैं- भारत की एकता के महानतम निर्माता राम के आदर्श सेवक हैं। बदरीनाथ के पुजारी दाक्षिणात्य हैं, रामेश्वरम् के पुजारी उत्तरीय हैं। दक्षिण के शिव उत्तर पर छाए हैं, उत्तर के विष्णु दक्षिण पर । हमारी एकता का आधार कितना दिव्य है ! हनुमान् एकता के पावन प्रतीक हैं- एकता ही शक्ति है अतः वे शक्ति के जाज्वल्यमान् पुंज हैं।

सम्पूर्ण जगत् में परब्रह्म परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी का अस्तित्व नहीं है, स्थावर-जंगम रूप में जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है वह सब उस ब्रह्म का ही लीला-विलास है, चराचर के समस्त प्राणी उस एक परमेश्वर के ही अंश रूपी अवतार हैं, अंश की न्यूनाधिकता के अनुपात से ईश्वर, देवता, मनुष्य, पशु आदि कोटियों का विभाजन होता है, इनमें जो लोकोत्तर शक्ति सम्पन्न होते हैं, वे ईश्वर, देव आदि नाम से अभिहित (पहचाने गए) हुए और जो केवल लौकिक बल-बुद्धि से सम्पन्न हुए वे मनुष्य, पशु आदि प्राणी कहलाए। सत्वगुण सम्पन्न परमात्मा के अवतारों की कोई संख्या नहीं- वे संख्यातीत हैं। सत्वगुण सम्पन्न शक्तियां दो कारणों से अवतरित होती हैं- धर्म संस्थापना के उद्देश्य से या दुष्ट संहार के प्रयोजन से। प्रभु अपनी लीला प्रयोजन के अनुसार कुछ को लोक में अभिव्यक्त करते हैं, कुछ को परोक्ष रखते हैं तथा कुछ को अपने में ही अन्तर्निहित रखते हैं। अभिव्यक्त शक्तियों में से कुछ ईश्वरीय शक्तियां (ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, हनुमान आदि) तथा कुछ देव शक्तियां (वायुदेव, अग्निदेव, जलदेव आदि) नित्य एवं स्थायी होती हैं तथा कुछ कार्य कर पुनः परब्रह्म में तिरोहित हो जाती हैं।

रुद्रवतार पवनतनय श्रीहनुमान अपनी मनोजवता, अखण्ड जितेन्द्रियता, अतुलनीय बल क्षमता एवं ज्ञान-भण्डार से परिपूर्ण होने आदि दिव्य गुणों से सम्पन्न होने के कारण ईशत्व की श्रेणी में स्थापित हुए। इन्हें नित्य स्थायी (चिरंजीवी) माना गया। ईश्वर की लीला सदैव ही रहस्यपूर्ण हुआ करती है। उनकी लीलाओं को तो योगी, ऋषि, मुनि एवं देवगण भी नहीं समझ सकते फिर कामादि दोषों से युक्त जीव उसे कैसे समझ सकते हैं? जब धर्म संस्थापना के लिए प्रभु

अवतार लेते हैं तो वे धर्मानुकूल प्राणी जैसा ही आचरण करते हैं। इसमें उनका मुख्य उद्देश्य यही होता है कि सांसारिक जीव आचरण विषयक ज्ञान को प्राप्त कर सकें।

देश जिस विघटन, बिखराव, अलगाव और आतंकवाद की दशा से गुजर रहा है, उसके लिए आज बलविक्रम के धनी ज्ञानियों में अग्रणी, राम के अनन्य सेवक श्रीहनुमान न केवल रामायणकाल के पुण्यावलोकी पुरुष हैं, वरन् आज के संदर्भ में उनकी आवश्यकता अपेक्षाकृत बढ़ गयी है।

श्रीहनुमान के इन तीन विशेषणों की ओर ध्यान देने मात्र से उनकी कालातीत प्रासंगिकता पर मंत्रमुग्ध होना पड़ता है। बल का पहला प्रभाव होता है अहंकार, प्रभुता और 'प्रभुता पाई काह मद् नाहीं' (तुलसी)। डॉ. एक्टन लिखिते हैं- 'सभी सत्ताएँ अनाचार करती हैं और निरंकुश सत्ता निरंकुश रूप से अत्याचार करती है।' परंतु श्रीहनुमान इस अहंकार से हीन हैं। इसलिए कि वे ज्ञानी हैं। कृष्ण गीता के चौथे अध्याय में कहते हैं- 'ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणां तमाऽहं पंडितं बुधाः' अर्थात् जिसने ज्ञान की अग्नि में अपने संपूर्ण कर्मों को जला दिया है, उसे ही मैं पंडित और ज्ञानी कहता हूँ।

ज्ञानाग्नि में संपूर्ण कर्म जलाने की स्थिति वहाँ आती है, जहाँ समर्पण का प्रभात फूटता है-

'मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझको सौंपता क्या लागत है मोर।।'

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज' का आमंत्रण मिलते ही सेवक और सेव्य एक हो जाते हैं-तदाकार तद्रूपा श्रीहनुमान श्रीराम के हैं, अनन्य सेवक हैं। इसीलिए न बल का अहंकार है न ज्ञान के कारण पांडित्य का दर्प। सर्वोपरि तथ्य है कि वे इस धरातल पर पहुँच गए हैं, जहाँ वे चराचर जगत में अपने इष्ट की छवि निहार सकें- 'सियाराम मय सब जग जानी' के भूमाबोध तक पहुँचे हैं जहाँ जाकर भेद मिट जाता है। अभेद का उदय होता है। कारण, गोस्वामीजी साफ बताते हैं- 'निज प्रभु मय देखहिं जगत केहि सन करहि विरोध।' जो दर, दीवार, कंकड़, पत्थर, ठीकरे- सभी के दर्पण में अपने प्रभु को ही देखने लगता है, उसके लिए मित्रता-शत्रुता का भेद तो गौण हो ही जाता है, उसके लिए चराचर जगत

एक ही सत्ता से अनुप्राणित होने लगता है।

जिस आतंकवादी को रक्तपात, नर संहार में ही सुख मिलता है, बिलगाव, बिखराव में ही सुकून, उसमें न बल-विक्रम है, न ज्ञान। वह अज्ञान की जड़ता से ग्रस्त है। शायद कभी उसमें विवेक जगे ही नहीं। कारण, विवेक का उदय शुद्ध अंतःकरण में ही हो सकता है। जो श्रद्धा-संवलित है, करणीय-अकरणीय के भेद को जानता है, वही व्यवसायात्मिका का बुद्धि से विवेक के द्वारा सत्य का संधान कर सकता है। काश, वे श्रीहनुमान से प्रेरणा ले पाते। उनके बल तेज से हतप्रभ हो अपना कुकृत्य छोड़ पाते।

'आज दनुज वन कृसानु' (राक्षसों के जंगल को क्षार-क्षार करने वाले) श्रीहनुमान की महती आवश्यकता इसलिए है कि आर्यधर्म पर संकट आ गया है। राक्षसी वृत्ति का बोलबाला हो गया है। सहज ही विचारणीय है कि निर्दोष, निरीह, निहत्थे को मौत के घाट उतारने वाला राक्षस नहीं है तो क्या है? ऐसा ही राक्षस तो रावण था- संसार को रुलाने वाला। ताड़िका थी, मारीच और खर-दूषण थे। क्या आज के परिप्रेक्ष्य में पापी-तापी, त्रासक के वध के लिए श्रीहनुमान की बर्बस याद नहीं हो आती है?

श्रीहनुमान का सेवक रूप कितना श्लाधनीय है और सच पूछिए तो यही आज की सारी समस्याओं का समाधान है। एक सच्चा सेवक वहाँ पहुँच जाता है, जहाँ राग-द्वेष, जय-पराजय, लाभ-हानि कोई अर्थ नहीं रखते।

'राम-काज' की कमाई करके हनुमान 'बड़भागी' बन गये थे। जिसका बड़ा भाग्य होता है वही प्रभु चरणों के करीब जा पाता है। ऐसे-वैसे वहाँ तक नहीं पहुँच पाते हैं। श्रद्धा और विश्वास की पूँजी जिनके पास नहीं होती है वे राम-नाम का व्यापार नहीं कर पाते हैं। करते भी हैं तो सफल नहीं होते, घाटे में ही रहते हैं। श्रीहनुमान कभी घाटे में नहीं रहे। उनके भीतर अटूट श्रद्धा, अखण्ड विश्वास भरा हुआ था।

भगवान शिव कहते हैं कि उनके जैसा 'राम चरन अनुरागी' और कोई नहीं है। सचमुच, चारों तरफ देखने पर श्रीहनुमान के समानान्तर सेवा और भक्ति में और कोई नाम नहीं मिलता है। राम के लिए कौन भरी सभा में अकेले महाप्रतापी रावण को ललकार सकता था? कौन लंका के भीतर निर्भय होकर राम

का गुण गाते हुए 'प्रातः भ्रमण' की तरह चल सकता था? लालच, भय और छल को जीतकर राम के काम को करने की अखण्ड आस्था श्रीहनुमान जितना कौन जुटा सकता था? ये काम तभी सम्पन्न हो सकते थे जब करने वाले के हृदय में श्रीराम के प्रति अथाह आस्था हो और मृत्यु का तनिक भी भय न हो। श्रीहनुमान में ये दोनों भाव सम्पूर्ण रूप में जीवन्त थे।

श्रीराम अपने मुख से किसीको एक बार भी बधाई दे दें तो वह जन्म जन्म के लिए धन्य हो जाता है। ऋषि-मुनि और साधक-संन्यासी भगवान के मुख से अपना नाम एक बार सुनने के लिए व्याकुल रहते हैं। पर हनुमान का सौभाग्य तो देखिए, राम उनका गुण बार-बार गाते रहते हैं। प्रायः भक्त अपने को तब सौभाग्यशाली समझता है जब वह भगवान के गुण अटूट रूप से गाता रहता है। लेकिन यहाँ कुछ उलटा ही हो रहा है। राम बार-बार हनुमानजी के गुण गा रहे हैं। यह राम के चरित्र का बड़ा निराला पक्ष है कि जो उन्हें निःस्वार्थ भाव से भजता है उसे वे अपार गौरव देते हैं। राम जानते हैं कि इस 'अहेतुकी भक्त' को संसार की कोई चीज़ नहीं चाहिए। इसे तिजोरी भरने का सुख लुभाता नहीं है, महान बनकर कर पुजाने का लोभ डिगाता नहीं है। यह तो बस मुझे ही चाहता है। अतः वे ऐसे भक्त को अपने ऐश्वर्य से भर देते हैं।

तेलूगू के भक्तकवि त्यागराज ने राम से पूछा था- 'कौन बड़ा है प्रभु! आपका पैर या खड़ाऊँ? आपके पैरों को पूजकर ऋषि-मुनि आपके बराबर बनते हैं, आपके पास पहुँचने का गौरव पाते हैं। किन्तु आपकी खड़ाऊँ को पूजकर भरतजी तो आप जैसे हो गये थे। इसके प्रमाण आप स्वयं हैं प्रभु। आपने हनुमान से कहा था कि मुझमें और भरत में कुछ अन्तर नहीं हैं।'

राम के पैर और प्रतीक की सेवा भी मनुष्य को महान बना देती है। हनुमानजी तो इन दोनों से ऊपर उठे थे। उन्होंने राम का काम किया था। राम का पैर पूजने वाले संसार में बहुत हैं लेकिन उनका काम करने वाले बहुत कम हैं। साधु-महात्मा तक भी राम का काम करने का समय आता है तो भाग खड़े होते हैं। नारद की कहानी बड़ी प्रसिद्ध है। भगवान के सिर में दर्द था। उन्हें दवा चाहिए थी। उसी समय नारद उनके पास आये। नारद को अपने को भगवान का बड़ा भक्त समझने का अहंकार था। भगवान को दुखी देखकर उन्होंने पूछा-'आप

कुछ अस्वस्थ लग रहे हैं।'

विष्णु भगवान ने कहा- 'सिर में जोरों की पीड़ा है। अश्वनीकुमार कहते हैं कि यदि कोई भक्त स्वेच्छा से अपना सिर काटकर दे तो उसके खून के लेप से दर्द चला जायेगा। पर ऐसे भक्त को मैं कहाँ से लाऊँ?'

नारद ने सान्त्वना देते हुए कहा- 'आप चिन्ता न करें प्रभु! मैं अभी जाकर किसी ऐसे भक्त को खोजकर लाता हूँ। दुनिया आपके भक्तों से खाली नहीं हुई है।'

तीनों लोकों में घूमने पर भी नारद को सिर देने वाला भक्त नहीं मिला। एक ने डाँटकर उनसे कहा- 'तुम भी तो भक्त हो, क्यों नहीं अपना खून दे देते?'

नारद ने इसे उसका पागलपन समझा। उन्होंने कहा- 'मैं मर गया तो तीनों लोकों में घूम घूम कर प्रभु का काम कौन करेगा? कोई ऐसा भक्त चाहिए कि जिसकी कोई खास उपयोगिता नहीं हो।'

बड़ी मुश्किल से नारद को एक गरीब आदमी मिला। वह राम-राम कह रहा था। नारद के प्रस्ताव को सुनकर वह रोने लगा-'ओह! मेरे प्रभु बीमार है और मुझे खबर तक नहीं। नारदजी, आप इतनी देर से क्यों आये? प्रभु को कितनी तकलीफ हो रही होगी! यह शरीर तो एक दिन जाना ही है। प्रभु के काम में जाये तो कितने गौरव की बात होगी।' उसने अपना सिर काटकर दे दिया।

जव नारद बैकुंठ पहुँचे तो भगवान विष्णु मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। नारद चकित हुए। भगवान ने कहा-'नारद, भक्त का सबसे बड़ा काम है प्रभु के काम आना। मेरे सिर में दर्द था, दवा आपके पास थी। किन्तु आपने अपना सिर काटकर नहीं दिया। आप खोजने चले गये। भक्त बलि का बकरा नहीं खोजता, स्वयं तत्पर रहता है।'

गुरु गोविन्दसिंह का उदाहरण बड़ा ताजा है। उन्हें अपने लाखों सेवकों में से ऐसे प्यारों की जरूरत थी जो बलिदान के लिए, उनके काम के लिए तैयार हों। सभी सेवक उनकी पुकार पर ठगे-से खड़े रहे। वे उनकी जयकार करने के लिए तैयार थे लेकिन उनके लिए बलिदान होने को नहीं। वे उनसे कुछ पाने के लिए उनके पीछे खड़े थे, उन्हें कुछ देने के लिए नहीं। बड़ी मुश्किल से उस दिव्यात्मा के बार-बार पुकारने पर पाँच लोग आगे आये। ये ही 'पाँच प्यारे' बने।

गुरु के कहने पर बलिदान देकर सेवा करने के लिए केवल इन्हीं पाँच लोगों ने तत्परता दिखायी।

किन्तु हनुमानजी हमेशा रात-दिन राम के काम के लिए तत्पर रहते हैं। उन्होंने कभी कोई प्रमाद नहीं दिखाया। आलस नहीं जताया। अखंड और अटूट भाव से सेवा की साधना वे करते रहे। इसीके लिए प्रभु ने उन्हें अजर-अमर भी बना दिया।

श्रीहनुमानजी की अमरता और अजरता के पीछे एक बड़ा गूढ़ भाव है। जो सेवा करता है, भक्ति-भाव से संसार को प्रभु का स्वरूप मानकर चलता है, वह प्रभु का काम करता है। ऐसा व्यक्ति सदा युवा रहना चाहिए। सेवा बुढ़ापे में नहीं हो सकती, तब तो वह करायी जाती है। सेवा की भावना को संसार में सदा महत्व देने के लिए, उसे सभी उपासनाओं का सिरमौर बनाने के लिए ही प्रभु ने हनुमान को अजर, अमर और गुणवान बनाया है। उन्होंने हमें यह रास्ता बताया है कि सेवा के मार्ग पर चलकर कोई भी हनुमान बन सकता है। अमर हो सकता है।

हनुमानजी आज हमारे लिए बहुत प्रेरक हैं। वे हमें यह सिखाते हैं कि अपने गुणों को अच्छे काम में लगाना चाहिए। आज का संसार भौतिक विकास के मार्ग पर है। प्रकृति के रहस्य को वह अपने बुद्धि-बल से भेदता जा रहा है। उत्तराखण्ड प्रदेश का विनाश इसका साक्षात् उदाहरण है। ऐसे समय में यदि सेवा और भक्ति की भावना, संसार के विनाश की नहीं, संरक्षण की कामना उसके भीतर न रही तो वैज्ञानिक अनुसंधान रावण बन जायेंगे। विनाश की ज्वाला में धधक उठेगी यह सृष्टि। वैज्ञानिक अनुसंधानों को मनुष्यता के संवर्द्धन के लिए लगाने का काम केवल 'हनुमान-बुद्धि' से ही सम्भव हो सकता है। अतः सर्वत्र हमें जीवन में सेवा और भक्ति का वातावरण उत्पन्न करना होगा।

हमारे जीवन में यदि हनुमानजी का आगमन सम्भव होगा तो हम न केवल अपने को, अपितु अपने आस-पास को भी बचा सकेंगे। केवल स्वयं को बचाने वाला निश्चित रूप से डूबता है।

श्रीहनुमानजी का चरित्र ही हमारे आज के जीवन की आवश्यकताओं के ज्यादा अनुकूल पड़ता है। गर्व और अहंकार से भरा आज का मनुष्य यदि सेवा और भक्ति की भावना से प्रेरित नहीं हो पायेगा तो वह स्वयं भी टूट जायेगा और

मानवता को भी तोड़ डालेगा। आज श्रीहनुमान हमारे एकमात्र अवलम्ब हैं। वे श्रीदेवरहाहंसबाबा का सिद्ध सन्त-महायोगी के स्वरूप में हमारे सामने मंच पर बैठे है। उन्हें जीवन में पाने के लिए, अपने को बचाने के लिए, आइए हम जीवन में सेवा और भक्ति के बीज बोयें। बाबा स्वरूप श्रीहनुमानजी से प्रार्थना है कि-

महावीर रणधीर प्रबल भव-भीर निवारक।
ज्ञान विवेक निधान सकल खलदल संहारक।।
लंक-विनाशक, दुष्ट-दशानन दर्प विदारक।
सीतापति सेवक समर्थ, प्रभु-भक्ति-प्रचारक।।
सब सुखदायक सिद्धिप्रद विकट विघ्न बाधा हरण।
मंगलमय पावन परम बँदहुँ मारुत सुत चरण।।१।।
दुष्ट निकन्दन, अंजनि नन्दन, राघव की अनी के अधिनायक,
सन्तन के तौ सहायक हौ, हरिभक्तन में सब ही विधि लायक,
राम रसायन पास तिहारे, सियावर की विरुदावलि गायक,
हौ बल बुद्धि-निधान महा, हनुमान लला रिधि-सिद्धि प्रदायक।।२।।
पाप परायन हैं हम पै, है मलीनता को अपनी कुछ सोच न,
पूजन-पाठ को ज्ञान नहीं, न कियो कबौं प्रेम सौं नन्दन-रोचन,
हैं हम तो बस दास तिहारे, तकैं ममतामय रावरे लोचन,
संकट दूरि करौ सिगरे, प्रभु मारुत-नन्दन संकट-मोचन ।।३।।
पवन कुमार हो अपार करुणा के सिंधु,
अपना वरद हस्त शीश पर धर दो।
शूल पद-धूल से तुम्हारी बन जाते फूल,
मेरी कृत्तियाँ भी कर अजर-अमर दो।
याचक हो कबसे खड़ा हूँ मैं तुम्हारे द्वार,
धनधान्य सम्पत्ति से सारा घर भर दो।
विपत्ति विनाशक सुपंथ के प्रकाशक हो,
अविलम्ब मेरे सब कपट नष्ट कर दो।।४।।
सैकड़ों समस्या सुरसा सी खड़ीं भारत में,
उनको सरल कर शीघ्र खोज हल दो,

तुमने जलायी थी कभी सुवर्ण लंका,
फिर शत्रुओं के स्वप्नलोक में लगा अनल दो,
हो रहे स्वदेश के विरुद्ध षड़यंत्र नित्य,
सकल दुरभिसंधियाँ कर विफल दो,
अविलम्ब दल दो दनुज देशद्रोही दल,
छलबल युक्त खल-मंडल मसल दो।।५।।

●●●

अध्याय–चार

सिद्ध-सन्त, महायोगी बाबा के स्वरूप में श्रीहनुमान

योगिराज श्रीदेवरहाबाबा चिरंजीवी श्रीहनुमानजी ही हैं- इस बारे में उल्लेखनीय है कि- बाबा की परमभक्तिन आनन्दमयी माँ ने किसी भक्तमंडली के बीच ऐसा कहा था कि अभी भारत में दो तीन ऐसे महायोगी उपस्थित हैं जो द्वापर से ही शरीर धारण कर रखे हैं। उनके संबंध में पूछने पर आनन्दमयी माँ ने कहा था कि उनमे एक तो परमविरागी विहंगम योगयोगेश्वर शुकतुल्य मेरे आध्यात्मिक गुरुदेव ब्रह्मर्षि महायोगी श्रीदेवरहाबाबा हैं। कभी-कभी वे हिमालय की गहन गुफाओं में ब्रह्मसमाधि में निमग्न हो जाते हैं और तब उनका शरीर १८-२० अथवा २२ फुट तक हो जाता है। मैंने बाल्यावस्था में ही उन उन स्थानों पर उन महायोगी के साथ ही और भी अनेक सिद्ध महापुरुषों की ध्यानावस्था में अपने सूक्ष्म शरीर से जाकर दर्शन किए। वे बैठे हुए ही मुझसे तीन चार फीट ऊँचे थे।

स्वयं अपने बारे में बताने के लिए बहुत से भक्तों ने भी समय-समय पर बाबा से अनुरोध किया है। एक बार बाबा ने अपना परिचय देते हुए निम्न श्लोक बोला-

नाऽहं मनुष्यो न च देव यक्षो, न ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शुद्रो।
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो, भिक्षुर्न चाऽहं निजबोध रुपम्"।।

अर्थात् "बच्चा ! न मनुष्य, न कोई देव, यक्ष अथवा किन्नर ही, न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ही। न ब्रह्मचारी, न गृहस्थ, वानप्रस्थ ही। कोई भिक्षुक भी मैं नहीं हूँ। मैं तो निजबोध स्वरूप अपनी आत्मा में ही रमण करने वाला स्वयंप्रकाश स्वरूप, ब्रह्माकार वृति में स्थित वही ब्रह्मरूप हूँ।"

किसी समय कुछ जिज्ञासु भक्तों ने अपनी जिज्ञासा शान्त करने हेतु जब बाबा से पूछा. "बाबा! आपका आहार क्या है?" तब बाबा ने इस रहस्य का उद्घाटन किया। उत्तर में उन्होंने कहा- "पुष्टिकारक, हल्की मधुरता लिए हुए, घृतयुक्त (गव्यं) अर्थात् कृष्णा गौ से ही प्राप्त होने वाला, शरीर की अष्टधातुओं

का भलीभाँति पोषण करने वाला, मन को रुचने वाला, खाने के योग्य अर्थात् बासी अथवा दुर्गन्ध युक्त न हो, भोजन ही मेरे लिए आचरण में लाने योग्य है।" समय-समय पर यदाकदा प्रसंगानुकूल स्थितियों में अथवा जब बाबा प्रेम की लहर में होते थे तब भगवत् प्रेरणावश उनके श्रीमुख से कुछ ऐसी बातें निकल गई हैं जिससे उनके श्रीहनुमानजी स्वरूप होने का संकेत भी मिलता है, और कलियुग में उनको श्रीहनुमानजी होने का अनुमान भी लगाया जा सकता है।

एक बार बाबा ने स्वयं श्रीमुख से कहा था कि- "बच्चा ! मैं तो जंगली साधु हूँ। ऐसे स्थान पर जहाँ वर्षों तक मनुष्य दिखाई न पड़े और बिना किसी मनुष्य के साथ वन्य-जीव-जन्तुओं और वनस्पतियों में भी बिना किसी विघ्न बाध ा के मैं रह सकता हूँ। मुझे कभी किसी की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। क्योंकि मैं स्वयं मैं परिपूर्ण हूँ। मुझे समाज की आवश्यकता नहीं है। समाज के आध्यात्मिक कल्याण के लिये समाज को मेरी आवश्यकता है। इसलिए मैं तुम सब लोगों के बीच उपस्थित हूँ।"

जिन्होंने बाबा का दर्शन किया है उनमें से अधिकांश जानते हैं कि अपने मचान पर बैठे बाबा वृद्ध हनुमानजी के समान लगते थे। यह एक अद्‌भुत आश्चर्य था कि उनका वृद्ध स्वर पास में खड़े भक्तों को कष्ट दिए बिना कभी-कभी डेढ़ से दो किलोमीटर तक सुनाई दिया करता था। उनकी वाणी में एक अद्‌भुत मिठास थी। उनकी बातों में गुप्त सत्य छुपे रहते थे। दृष्टि तो मानों ऐसी थी जैसे मनुष्य के भीतर झाँककर वे सब कुछ देख रहे हैं। वे किसी की छुपी बात को अत्यावश्यक हुए बिना उजागर नहीं करते थे। किन्तु बातचीत करने वालों को बाबा के बातचीत के ढंग से यह समझ में आ जाता था कि हम बाबा से कुछ छिपा नहीं सकते। किसी भक्त, से कुछ विशेष बात करने के लिए बाबा बाकी सभी भक्तों को १५-२० कदम पीछे हटा दिया करते थे और उनसे 'राम नाम' का संकीर्तन करने को कहते थे। भक्तों के समूह को वापिस घर जाने का आदेश देने से पहले वे कई बार कई मंत्रों का उच्चारण करवाते थे- जिनमें "ऊँ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने प्रणतः क्लेशनाशय गोविन्दाय नमो नमः" और "ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय" अथवा "मैं भगवान के सम्मुख हूँ। संसार पीछे छूट गया है। राम, लक्ष्मण, जानकी, हनुमानजी के ध्यान में 'सीताराम सीताराम" का जाप

कर। न ओठ हिले न जिह्वा, जब मैं 'हरि ऊँ तत्सत्' कहूँ तब नेत्र खोलना।" इस प्रकार कहकर वे घर जाने की आज्ञा देते थे। यह उनके द्वारा मिली हुई दीक्षा का ही एक स्वरूप था।

बाबा जब उपरोक्त मंत्रों को बोलते तो भक्तगण उच्च स्वर से इन मंत्रों को पीछ-पीछे दोहराते थे, जो नहीं दोहरा पाते थे, वे सुनते थे। भक्तगण परमपिता श्रीदेवरहाबाबा के सामने नतमस्तक हो जाते। साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते। उनके मन में असीम शांति की अनुभूति होती थी। बाबा का दर्शन करते-करते व उनकी ब्रह्मवाणी का श्रवण करते करते भक्त लोग विस्मृत हो जाते थे। उनको यह भी ध्यान में नहीं रहता था कि वे किस प्रार्थना को लेकर दर्शनार्थ उपस्थित हुए हैं। यह घटना अधिकांशत बहुत बड़े दर्शनार्थी वर्ग के साथ घटित होती थी। वापस घर अथवा शहर में जाकर लोगों को यह स्मरण होता था कि हम जिस प्रार्थना के लिए गए थे वह तो कर ही नहीं पाए। किन्तु जब उनके मनोरथ पूरे हो जाते तब वे समझ जाते थे कि बाबा से प्रार्थना आदि करने की आवश्यकता नहीं है, उनके दर्शन मात्र करने से प्रार्थना पूरी हो जाती है। दर्शनार्थी भक्तगण सुबह ५ बजे से रात्रि के १० बजे तक कभी तो देर रात्रि तक लगातार आते रहते थे। बाबा अपनी कुटिया में रहते थे, आने वाले भक्तों को घास-फूंस से निर्मित आश्रम के द्वार पर १५ मिनट, आधा घण्टा, कदाचित् एक घण्टा रोककर जब बहुत सारे लोग हो जाते, तब बारी-बारी से बाबा के सम्मुख ले जाया जाता था जिससे कि आनेवाले को संतुष्टिपूर्वक बाबा का कृपा आशीर्वाद मिल सके। भीड़-भाड़ से दूर रहने के लिए बाबा सदैव ऐसी जगह अपना मंच लगवाते थे जहाँ कोई सुगमतापूर्वक न पहुँच सके। फिर भी प्रतिदिन आने वाले दर्शनार्थियों की संख्या तीन-चार हजार हो जाती थी। यह अपने आप में एक आश्चर्य है।

वैसे तो उनके लिए प्रिय अथवा अप्रिय कुछ भी नहीं था। वे तो लोक कल्याण के लिये शरीर धारण कर रखे थे। अपने दिव्य शरीर का अपने दिव्य ढंग से वे निर्वाह करते थे ताकि भक्तों के दर्शन एवं प्रबल भगवत् प्रेरणा के निमित्त वे शरीर के साथ बने रहें। साधकों को साधना करनी पड़ती है किन्तु जब महायोगी अखण्ड ब्रह्माकार स्थिति में स्थिर हो जाते हैं, जो कि कैवल्यपद से भी ऊपर की स्थिति है, तब उनके लिए कुछ भी साध्य नहीं रह जाता, वे साक्षात् ईश्वर का रूप हो

जाते हैं। उनकी इच्छा व ईश्वरीय इच्छा उनकी इच्छा हो जाती है। ऐसे महायोगी साधना के उद्देश्य से नहीं अपितु, लोक कल्याण के उद्देश्य से जगत में आते हैं।

एक बार एक भक्त ने पूछा- बाबा ब्रह्मर्षि का अर्थ तो हम समझते हैं किन्तु कृपया आप ब्रह्मतत्ववेत्ता का अर्थ समझाइये। बाबा ने कहा "बच्चा ! यदि वेदान्त की ऋचाओं के द्वारा ब्रह्मतत्ववेत्ता का अर्थ मैं तुम्हें समझा दूँ तो तुम्हें भलीभांति समझ में नहीं आयेगा। स्थूल रूप में इसका यह अर्थ होता है कि य ह चर-अंचर प्रकृति जिसकी इच्छानुसार कार्य करती है, तत्वतः वह ब्रह्म को जानने वाला भक्त योगी साक्षात् ब्रह्म के समान ही विचरता है। अर्थात् जिसके हुकुम से सूर्य उदय और अस्त होता है, कालचक्र चलता रहता है, जिसकी इच्छा मात्र से वायु अपनी दिशा बदल देती है, अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है, समुद्र के ज्वार-तूफान शांत हो जाते हैं, हिंसक जीवजन्तु हिंसा त्याग कर पालतू जैसे हो जाते हैं, जिसके दर्शन मात्र से अकाल-सुकाल में बदल जाते हैं, वनस्पतियाँ वृद्धि को प्राप्त होती हैं, सभी मौसम सही समय पर आने लगते हैं- ऐसे प्रभाव वाला कण-कण में ब्रह्म का दिग्दर्शन करने वाला, ब्रह्मयोगी, ब्रह्मतत्ववेत्ता अर्थात् साक्षात् चलता फिरता ब्रह्म ही होता है। जिस तरह एक लोटा गंगाजल तभी एक लोटा गंगाजल है जब तक वह वापिस गंगाजी के प्रवाह में नहीं उड़ेल दियाजाता। अपने मूल में मिल जाने के बाद वह एक लोटा गंगाजल नहीं रहता अपितु साक्षात् गंगाजी ही बन जाता है। इसी प्रकार ब्रह्माकार वृत्ति को प्राप्त करके योगी साक्षात् चलता फिरता ब्रह्म हो जाता है।"

यदि ऐसा सद्गुरु परम योगी ब्रह्मतत्ववेत्ता जीवन में प्राप्त हो जाय जो फिर परमात्मा का दर्शन किया या न किया- इसका कोई महत्व नहीं रह जाता। भक्ति के प्रबल भाव के कारण बाबा के अनन्य शिष्य अत्यन्त तीव्र भक्तियोग की तरंग में, न हिलने वाले, न बोलने वाले मंदिरों के भगवत् विग्रह दर्शन की अपेक्षा योगी सम्राट श्रीदेवरहाबाबा में श्रीहनुमानजी के सीधे दर्शन करना ही पसन्द करते थे। उनके लिए श्रीहनुमानजी ही नहीं अपितु ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, ईसा, मोहम्मद इत्यादि सब उनके बाबा ही थे। क्योंकि वे सब एक ऐसे ईश्वर से मिलते थे जो उनकी बात सुनता था, उनसे बात करता था, जिसके दर्शन मात्र से उनकी मनोकामनाएँ पूरी होती थीं।

श्रीदेवरहाबाबा का दिव्य दर्शन भक्त लोग करते और करते ही रह जाते थे। बाबा भी प्यारे भक्तों के ऊपर अपने स्नेहपूर्ण दृष्टिपात की खूब वर्षा करते थे। एक बार बाबा की आयु पूछे जाने पर उन्होंने कहा- "बच्चा ! सन्त की आयु नहीं, अवस्था पूछी जाती है।" भक्त ने कहा- बाबा आपकी क्या अवस्था है- यही बता दीजिए। उत्तर में बाबा ने कहा- बच्चा! मेरी निर्विकल्प अवस्था है और मैं अहर्निश ब्रह्म में तल्लीन रहता हूँ। प्रायः संध्याकाल के बाद अथवा रात्रि काल में बाबा खुली आँखें से गहन ध्यान में चले जाते थे और पाषाण मूर्ति की भाँति दो-चार छः घण्टे एक ही स्थिति में बिना हिले-डुले बैठे रहते थे। कई बार उनकी इस धानमग्न अवस्था में चिड़ियों को उनके सिर पर सोते देखा गया और चूहों छिपकलियों को उनकी मृगछाला में निर्भय खेलते, विचरते देखा गया। निश्चय ही ऐसी योगमग्न अवस्था में वे अन्य लोक लोकान्तरों में रहते थे। कदाचित् वह सूक्ष्म शरीर से हिमालय में स्थित उच्चकोटि के साधकों को योग शिक्षा देने जाया करते थे अथवा रात्रिकाल में जब वह अपनी घास-फूस की बनी कुटिया में मचान के ऊपर रहते तो हिमालय से उच्चकोटि के साधक एवं तिब्बत की गहन गुफा कन्दराओं में रह रहे सिद्ध लामा लोग सूक्ष्म शरीरों से बाबा की कुटिया में योग शिक्षा को ग्रहण करने आया करते थे। बाबा के मचान के आसपास सपाट भूमि थी। कोई पौधा नहीं बना था। फिर भी कस्तूरी, केसरी, गुलाब, आदि नाना प्रकार के फूलों की सुगन्ध समय-समय पर सूँघने में आया करती थी। एक बार बाबा से पूछा गया कि रात्रि के समय में नाना प्रकार की सुगंधियाँ आश्रम में कहाँ से आ जाती हैं? यहां कोई दूर-दूर तक हवन भी नहीं करता फिर भी हवन की ऐसी तीव्र गंध आती है जैसे आश्रम में कोई बड़ा हवन कर रहा हो। बाबा ने बताया "बच्चा योगी संत जब सूक्ष्म शरीर के द्वारा योगियों से मिलने आते हैं तब वायुमण्डल में उस स्थान पर नाना प्रकार की सुगंध आती है। वैष्णव संतों के आने पर तुलसी, कदम्ब, आम, तमाल इत्यादि की सुगंध आती है, एवं तिब्बती लामा लोगों के आने पर चम्पा, चमेली व मेहंदी के फूलों की और स्वर्ग से देवताओं के आने पर केसर कस्तूरी की सुगंध आती है।" गहन रात्रिकाल में १२ बजे से ४ बजे के बीच यह सुगन्ध केवल तभी मालूम पड़ती थी जब बाबा अपनी कुटिया में समाधिस्थ हो जाते थे। इसके अलावा कई अवसरों पर बाबा को अपने

मचान पर रहते हुए भी दूसरी जगहों पर उपस्थित देखा गया जिससे सबको महान आश्चर्य होता था।

आत्मज्ञान से सम्पन्न श्रीदेवरहाबाबा को अपनी महासमाधि की तिथि एवं समय का पूर्व बोध था। उन्होंने स्वयं इस विषय में डेढ़ महीना पूर्व ही कह दिया था। १९ जून, १९९० की रात्रि १०.३० बजे उस कृष्णपक्ष की योगिनी एकादशी तिथि को बाबा अपनी प्रशान्त मुद्रा में समाधिस्थ अवस्था में महासमाधि में प्रवेश कर गये। समाचार पत्रों में, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से यह घोषणा की गई कि देवरहाबाबा का शरीर अब नहीं रहा। तीन दिनों तक बाबा के पार्थिव शरीर को देश के कोने-कोने से आने वाले भक्तों के अन्तिम दर्शन के लिए रखा गया। तीन दिनों में प्रचण्ड गर्मी के बाद भी उनके शरीर में क्षय के कोई भी लक्षण नहीं दिखे। बाबा की इच्छानुसार उनके पार्थिव शरीर को वृन्दावन में ही मचान के समीप श्रीयमुनाजी में समाधिस्थ किया गया। वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के साथ २१ जून को दोपहर में उनकी जलसमाधि का कार्य सम्पन्न हुआ। जल से अवतार लिए पूज्य श्रीदेवरहाबाबा जल में ही चिरसमाधिस्थ हुए। उस गर्मी की तपन में भी जाने कहाँ से एक टुकड़ा बादल वर्षा कर गया, मानों ईश्वर के आशीष स्नेह की धारा बरस पड़ी हो।

जिस प्रकार संत कबीर के देहावसान के पश्चात् उस स्थान केवल गुलाब की पंखुड़ियाँ फैली पड़ी थीं, उसी प्रकार जलसमाधि के पश्चात् स्पर्श करने के लिए कुछ साधु-सन्तों द्वारा गोता लगाकर खोजने पर भी बाबा का दिव्य देह कहीं नहीं मिल सका। उन लोगों को केवल बारह फुट गहरे जल के नीचे वह सिंहासन मिला जिस पर बाबा बैठे हुए थे। सभी को आश्चर्य हुआ कि जल समाधि के पाँच-सात मिनट बाद ही इतना सावधानी पूर्वक लकड़ी के सिंहासन में बँधा शरीर कहाँ जा सकता है ! केवल उनके शरीर का वह पन्द्रह गज लम्बा कपड़ा, जिससे बाबा का शरीर सिंहासन के साथ लपेटा गया था, मौजूद था। वहां वह रस्सी भी थी जिससे बाबा का शरीर बाँधा गया था किन्तु बाबा का शरीर वहां पर नहीं था। श्रीदेवरहाबाबा का जन्म और अन्त रहस्यों में घिरा हुआ है। लाखों की संख्या में भक्त वृन्दावन पहुँचे। १३ दिनों तक भण्डारा चलाकर दरिद्र नारायण की सेवा होती रही। साधु, विद्यार्थी, गृहस्थ आदि सब के भोजन के लिए

अलग-अलग दिन निश्चित थे। वन्य जीवों, पक्षियों तथा बन्दरों के भण्डारों की भी व्यवस्था की गई थी।

तो हमारी काल गणना के अनुसार १६ जून, १६६० दिन मंगलवार योगिनी एकादशी को ब्रह्मर्षि बाबा ने शरीर को त्याग दिया। परन्तु वे गये कहाँ? और जाते भी कैसे? वे कहते थे- "बच्चा ! दो लकड़ियों की रगड़ से अग्नि प्रकट होता है। एक लकड़ी है तुम्हारा हृदय, और दूसरी लकड़ी है रामनाम। बच्चा ! जब हृदय रूपी लकड़ी पर राम-नाम की लकड़ी की बार-बार रगड़ पड़ती है तो हृदय में राम का साक्षात्कार होता है, अवश्य होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

श्रीराम-कथा के अन्यतम रसिक श्रीहनुमानजी की कथा-निष्ठा का वर्णन समस्त भारतीय वाङ्मय में विस्तार से किया गया है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में श्रीहनुमानजी ने भगवान् श्रीराम से उनके परधाम-गमन के समय कथा-श्रवण के लिए चिरंजीवी होने का वरदान माँगा था : 'वीरवर रघुनन्दन ! जबतक इस पृथ्वी पर श्रीरामकथा का प्रचार रहे, तबतक निःसन्देह मेरे शरीर में प्राण बसे रहें ! नरश्रेष्ठ श्रीराम ! आपका जो यह दिव्य चरित्र और कथा है, इसे अप्सराएँ गाकर मुझे सुनाया करें।' तब प्रमुदित मन से भगवान् श्रीराम ने श्रीहनुमानजी को आशीर्वाद दियाः

एवमेतत् कपिश्रेष्ठ भविता नात्र संशयः।
चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका।
तावत् ते भविता कीर्त्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा।
लोका हि यावत् स्थास्यन्ति तावत् स्थास्यन्ति में कथाः।।

"हे कपिश्रेष्ठ ! निःसंशय ऐसा ही होगा। जबतक संसार में मेरी कथा प्रचलित रहेगी, तबतक तुम्हारी कीर्ति अमिट रहेगी और तुम सशरीर जीवित रहोगे, और जबतक यह लोक है, तबतक मेरी कथाएँ भी रहेंगी ही।"

'चिरंजीवी' ब्रह्मर्षि योगिराज श्रीदेवरहाबाबा तो "राम दुआरे, तुम रखवारे' और "तुम्हरे भजन राम को पावे"- थे, हैं और रहेंगे। उन्हें तो उनके स्वामी का आदेश है कि जब तक पृथ्वी पर "राम नाम" और "राम कथा" है तब तक उन्हें कहीं नहीं जाना है।

तो यह कहना कि बाबा हमें छोड़ गये, ब्रह्मलीन हो गये, परमधाम को चले

गये– स्वीकार नहीं है। भगवान में, भगवान की भगवनमयी लीला हो रही है– इसलिए इसमें उद्विग्न होने का या उद्विग्न करने का कोई कारण नहीं हैं। यहां न हर्ष है, न भय है और न शंका है।

"हम फिर चौहद वर्ष के अन्दर भारत के अध्यात्मिक ज्ञान की रक्षा के लिए आएँगे। तुम लोग चिन्ता मत करो।'– यह ब्रह्मलीन बाबा की स्थूल काय से निकली अन्तिम वाणी थी। ब्रह्माण्ड के विस्तार में रमण करने वाले सद्गुरु श्रीदेवरहाबाबा को कहीं आना–जाना थोड़े ही था–वे तो वहीं हैं जहां उन्हें रहने का आदेश है।

याद रखिए, स्मरण रहे कि योगी को काल खा नहीं सकता। योगी को कर्म बाँध नहीं सकता। वह काल और कर्म से परे होता है। सद्गुरु श्रीदेवरहाबाबा को उनके असंख्य भक्तगण श्रीहनुमानजी भगवत्स्वरूप अथवा ब्रह्मरूप ही मानते रहे हैं। वे ब्रह्म हीं हैं। उन विराट पुरुष ने ब्रह्मसत्ता में विलीन होने के पूर्व घोषणा की थी– "बच्चा ! अब हम अपनी जगह जा रहे हैं। वह जगह हिमालय के तिब्बत क्षेत्र में है। वहां हमारी एक टोली है– जो बारी–बारी से निर्देशानुसार पृथ्वी पर आ जाती है। हम फिर चौदह वर्ष के अन्दर भारत के अध्यात्मिक ज्ञान की रक्षा के लिए शरीर से आएंगे। तुम लोग चिन्ता नहीं करो।"

कुछ लोग कहते हैं कि यह उनकी अन्तिम वाणी है परन्तु मैं समझता हूँ कि यह तो ब्रह्मर्षि की दिव्य घोषणा है। यह उनकी अन्तिम वाणी नहीं थी। वे तो आज भी मुखर हैं।

ब्रह्मलीन श्रीदेवरहाबाबा ने अपने ब्रह्मस्वरूप को संसार के समक्ष रखना पसन्द नहीं किया। प्राचीन पुराण पुरुषों की जीवन प्रणालियां ऐसी ही होती रही हैं। प्राचीन संतों के जीवन में इस तरह की घटनाएँ घटी हैं जो मानव–बुद्धि और समझ की सामर्थ्य से परे हैं। उनके कहने से कोई लाभ भी तो नहीं होता। अतः यही कारण है कि जिससे श्रीबाबा ने रहस्य को रहस्य के आवरण में ही लिपटा रहने दिया। भगवान राम ने मानवरुप धारण करने के बाद में किसी से कभी व्यक्तिगत रूप में नहीं कहा कि मैं परमेश्वर हूँ। उनके ईश्वरीय सत्ता के प्रभाव को उनकी लीलाओं के माध्यम से देखा गया। इस तरह की भूमिका भगवान् कृष्ण ने भी निभाई है। जितने भी भगवान के छोटे या बड़े अवतार हुए हैं सबमें यही

बात दिखाई पड़ती है।

श्रीदेवरहाबाबा ने वृन्दावन में यमुनातट पर स्थित मंच से इसी तथ्य के अनुरूप कहा था- "बच्चा ! मैंने वृन्दावन में कृष्ण का रास रचाया था। मैं ठाकुरों का ठाकुर हूँ।" अनेक भक्तों ने श्रीहनुमतावतार के रूप में भी उनका दर्शन किया था।

योगिराज श्रीदेवरहावाबा के एक भक्त ने बावा के हनुमत स्वरूप के विषय में अपना अनुभव बताते हुए कहा है- "मैं भारतीय सेना से सेवा निवृत्त कर्नल हूँ। जिस समय की बात मैं बता रहा हूँ तब पूज्य बाबा देहरादून में मंचासीन थे। बता दूं कि मैं बावा का दीक्षित शिष्य हूँ और जब तक बाबा देहरादून में मंचासीन रहे- मैं नियमित समय-सुबह दस बजे बाबा के दर्शन करने जाया करता था। इस समय शायद ही कोई दर्शनार्थी पहुँच पाता था और मुझे स्वयं यह एकाकी दर्शन वहुत शान्ति और सन्तुष्टि देता था। लगभग पन्द्रह बीस मिनट वाद बाबा प्रसाद देकर मेरी छुट्टी कर देते थे। एक दिन मुझे कुछ आवश्यक कार्य था। मैं बाबा के प्रतिदिन नियमित दर्शन करने से भी वंचित नहीं होना चाहता था अतः मैं और दिनों की अपेक्षा अपने निश्चित समय से लगभग एक घण्टा पूर्व ही वाबा का दर्शन करने पहुंच गया। तभी बाबा मंच पर बनी कुटिया से बाहर निकले और मुझ पर दृष्टिपात करते हुए बोले "कर्नल बच्चा ! आज तुम अपने समय से पहले ही आ गये। मेरी दया है। बच्चा सुन ! लहर है देख.. ...!" मंच पर खड़े बाबा की आकृति शनैः-शनैः बढ़ने लगी आकाश की ओर। उनका शरीर अति घोर बलिष्ठ होता जा रहा था। सोने और तांबे की मिलीजुली आभा से युक्त मेरी आँखों के सामने थे- साक्षात् श्रीहनुमान ! मैं अपनी स्थिति और आँखों को न तो खुली रख पा रहा था और न ही उन्हें मूंद पा रहा था। सुषुप्ति में जागृति और जागृतावस्था में सुषुप्ति जैसी स्थिति थी मेरी। अचानक बाबा का श्रीहनुमत्-स्वरूप पूर्ववत् बाबा के आकार और रूप में बदल गया। इस अलौकिक दृश्य के प्रति मैं सजग हो पाता, इससे पहले ही बाबा ने कहा- "कर्नल बच्चा ! लहर थी। तो देख फिर लहर आ रही है।" मैं तो पहली लहर से ही नहीं उबर पाया था- अब यह दूसरी लहर.... फिर वही रूप आकाश की ओर बढ़ता हुआ- साक्षात् श्रीहनुमानजी। आकाश की ओर अपनी आँखों को मैं जहां

तक उठा सकता– उससे भी परे उनका आकार था। इससे अधिक देखना मेरे भाग्य में नहीं था। संज्ञाशून्य सा होकर मैं मंच के सम्मुख अपने अन्दर में डूब गया।" (वर्तमान में ये कर्नल भक्त पंचकुला (हरियाणा) में निवास कर रहे हैं।)

'पवनपुत्र' नामक, श्री भगवतीशरण मिश्र द्वारा रचित ग्रन्थ में उल्लिखित है– सम्प्रति श्रीराम के बहुत बड़े कृपापात्र हैं भारत–भूमि के देवरिया के संत देवरहा। "हनुमान के अवतार" ही कितने बोलते हैं इस वीतराग निर्वस्त्र संत को, जो सदा एक ऊँचे मचान पर रहते हैं। डेढ़ दो वर्षों से कम की उम्र नहीं हुई इस योगिराज की। कई तो इसे ढाई–तीन हजार वर्षों का भी बोलते हैं। कमर कमान हो गई है। भौहें पक गई हैं। बरसात, आतप और ठण्ड का सारा प्रकोप खुले बदन पर ही झेलता यह तपी, विश्व को साधना और रामोपासना का संदेश देने में रत है। उपासना के आरम्भिक दिनों में श्रीदेवरहा बाबा पेड़ पर ही रहते थे। फल–फूल पर ही जीवन चलता था। आज इस उम्र में भी बंदर की तरह ही चलते हैं। पास ही बहती सरयू में स्नान हेतु प्रायः प्रस्थित होते हैं तो उसकी गति की शिप्रता इसको उससे कदम से कदम मिलाकर नहीं चलने दे सकती। फल ही आज भी आहार हैं उनका। सम्पूर्ण परिवेश, आध्यात्मिक शक्ति–सम्पन्न होकर, स्वयं दर्शनार्थियों की शुद्धाकांक्षाओं की पूर्ति का कारण बनते हैं श्रीदेवरहा बाबा। साथ ही, श्रद्धालुओं को परिवेश की शक्ति सम्पन्नता का अनुमान भी लग जाता है। एक विद्युत तरंग सी व्याप्त है उनके चारों ओर के वातावरण में जो पूत–पवित्र दर्शनार्थियों को अपने स्पर्श का अनुभव प्रदान कर जाती है।"

अथर्ववेद में कहा गया है– जो पूज्यदेव सर्वव्यापक–सर्वान्तिरयामिनी सर्वशक्तिमान् भूत भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों में सदा ही स्थायी रूप से विद्यमान रहने वाला है वह हर क्षण हर प्राणी के अन्दर सब का नित्य द्रष्टा, नियन्ता है... .. वह सबसे महान् है..... सबसे बड़ा है..... उससे बड़ा महान् पूज्य आराध्यदेव अन्य कोई नहीं है। इन हनुमतस्वरूप श्रीदेवरहा बाबा भगवान् के लिए हमारा प्रणाम है।

लगभग चार अरब वर्ष बीत गये होंगे जब संसार का प्रलय हुआ था। और इस वर्तमान सृष्टि के पश्चात् यदि आज प्रलय होती है तो हमारे संस्कार और हमारी भावनाएँ हमारे चित्त इसी तरह विज्ञानपूर्वक इस प्रकृति में विलीन हो जायेंगे

जैसे एक बड़े आम का वृक्ष अपने बीज में विलीन हो जाता है और जब उसे किसी भूमि में बोया जाता है- उपजाऊ उर्वरा भूमि में तो- कितना बड़ा महान् विशाल वह वृक्ष हो जाता है। इसी प्रकार हम जितने प्राणी हैं प्रलयकाल की अवस्था में सब अपने अपने संस्कारों को लेकर इस प्रकृति माता की गोदी में विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार से चार अरब वर्ष के लिए सो जाते हैं। दो अरब वर्ष उत्पत्ति के लिए, दो अरब वर्ष विनाश के लिए। चार अरब वर्ष सृष्टि रहती है और चार अरव वर्ष ही प्रलय भी रहती है। इसी तरह बारह अरब वर्षों का यह सर्किल (वृत्त-चक्र) चलता है- इस संसार का-इस-भूमण्डल का इन लोक लोकान्तरों का- या इस समस्त विश्व का। जो महान् आत्माएँ, जो पहले से ही जीवनमुक्त होती हैं, इस संसार में आ करके आदि सृष्टि में सर्वप्रथम जन्म लेती हैं। कहां जन्म लेती होंगी? उनके माता-पिता तो होते नहीं? भगवान भी ऐसे ही कोई बच्चा पैदा नहीं कर देता। वह होते हैं वहां, जहां उर्वरा भूमि होती है- उसके गर्भ से ही। जैसे वर्षा ऋतु में जहां भूमि गर्म व कोमल होती है तो सहस्रों प्रकार के जीव उत्पन्न होने लगते हैं और भूमि पर घूमने-फिरने लगते हैं। तो इसी प्रकार आदिसृष्टि में इस पृथ्वी के गर्भ में ही वह जो महान् आत्माएं थीं, वे अपने संकल्प बल से अपने सूक्ष्म शरीर के कारण शरीर (जिसका पहले ही निर्माण हो चुका होता है) ग्रहण कर लेती हैं। इसका नाम है ब्राह्मी सृष्टि। ब्राह्मी सृष्टि में समष्टि पदार्थ, सूक्ष्म और कारण शरीर सहित वे जो दिव्य महान् आत्माएँ या जो जीवनमुक्त पुरुष थे अथवा जिन महान् आत्माओं को मुक्ति-मोक्ष प्राप्त थे, वे महान् आत्माएं सूक्ष्म शरीर के द्वारा भूमि के गर्भ में प्रवेश करती हैं। ऐसे नहीं जैसे सूक्ष्म शरीर माता के गर्भ में प्रवेश करता हैं और वहां रज तथा वीर्य के मिलन से उसके स्थूल शरीर का निर्माण हो जाता है। इसी प्रकार आदिसृष्टि में इन मुक्त ऋषियों ने भूमि में प्रवेश किया और इसी के रज-वीर्य रूपी रस को धारण करके अपने-अपने स्थूल शरीर बनाये और वे एक प्रकार से छोटे नहीं बने, अपितु युवा जैसी अवस्था के बने और उनका इसमें उत्थान हुआ, प्रादुर्भाव-हुआ वे ही ब्रह्मज्ञान को लेकर चलते हैं। तो ऐसे हैं श्रीहनुमानजी जो रूप धरे हैं ब्रह्मर्षि योगिराज श्रीदेवरहाबाबा का।

यह जो हमारा आध्यात्मिक विज्ञान है यह अन्तःकरणों के द्वारा ही परम्परा

से चला करता है। ये पुस्तकें नहीं चलातीं। पुस्तकें तो नष्ट भी हो जायेंगी। इनको तो जलाया भी जा सकता है, कागज ही की तो चीज है न। आज से हजार दो हजार वर्ष पहले पुस्तकें नहीं होती थीं। लोग भोज-पत्र पर लिखा करते थे और उससे भी पूर्व सब मौखिक प्रणाली से ही याद किया करते थे, संग्रह किया करते थे। कापियों-पुस्तकों से यह विज्ञान नहीं चलता था। इस प्रकार करोड़ों वर्षों तक परम्परा से यह विद्या अन्तःकरणों से ही चलती रही है और अब भी यह योगविद्या-ब्रह्मविद्या अन्तःकरणों में ही चलती है। योगिराज श्रीदेवरहाबाबा जैसे सन्त-महायोगी प्रकार के अन्तःकरण जो होते हैं ये इस आध्यात्मिक विज्ञान की परम्परा को लेकर चला करते हैं, आदि सृष्टियों में, दूसरे जन्मों में।

योगिराज श्रीदेवरहाबाबा वृन्दावन में यमुनापार स्थित मंच पर मंचासीन थे। प्रयाग से मैं सपरिवार बाबा के दर्शन के लिये वृन्दावन पहुँच कर बाबा के सम्मुख उपस्थित हुआ। एक अन्य परिवार के चार सदस्य भी वहां उपस्थित थे। शाम को लगभग चार बजे बाबा ने प्रसाद-आशीर्वाद देकर हमें जाने का आदेश दिया। लौटने के लिये यमुना पार करनी थी- सो एक नाव पर सवार हुए। अन्य परिवार के चार सदस्य, दो हम (मैं और पत्नी) और नाव चलाने वाला- हम कुल सात सवारी थे। अभी नाव किनारा छोड़ने ही वाली थी कि बाबा का दर्शन कर, लौटने वाले एक व्यक्ति ने नाविक को हाथ से संकेत कर नाव रुकवा ली और नाव के उस कोने पर जो चलते समय गंतव्य किनारे की ओर रहता है, बैठ गया। साठ वर्ष के लगभग की आयु वाले इस व्यक्ति ने सर पर अंगोछा इस प्रकार लपेटा हुआ था कि उसके सर-माथे और मुख का बाकी भगा ढका हुआ। वह चुपचाप बैठा आगे बढ़ती नाव से यमुनाजी के जल को देख रहा था। हमारे साथ चार सदस्यों वाले परिवार के एक सदस्य- जो लगभग साठ-सत्तर वर्ष के थे तथा उस व्यक्ति को बड़े गौर से देख रहे थे, उससे बोले "आप इसकी चिकित्सा क्यों नहीं कराते?" उस व्यक्ति ने किंचित मुस्कान लिये इन प्रश्नकर्ता की ओर देखा भर, कुछ बोला नहीं। "मैं आयुर्वेद चिकित्सक हूँ- आपको दवा लिख कर दे रहा हूँ। आपके सारे सफेद दाग मिट जायेंगे।" यह कहते हुए उन्होंने अपने थैले में से कागज-कलम निकाल कर दवा लिखी और नाविक को पर्चा पकड़ा कर उस व्यक्ति के हाथ में पहुँचा दिया। मैं बड़े गौर से घटनाक्रम को देख रहा था। मैंने देखा

कि उस व्यक्ति ने दवा के पर्चे को पढ़ा भी नहीं और हथेली में भींच कर उसे तोड़ मरोड़ कर, उसकी एक छोटी सी गेंदनुमा आकृति बनाकर यमुनाजी में चुपचाप से प्रवाहित कर दिया। नाव जैसे ही किनारे से लगी तो उस व्यक्ति ने बहुत शीघ्रता से नाव वाले को भाड़ा दिया और विपरीत दिशा में आठ-दस कदम जाकर ओझल हो गया।

तो यह था आठ चिरंजीवियों में से एक अश्वत्थामा- जो योगिराज-सन्तश्री श्रीदेवरहाबाबा के दर्शन को आया था। उल्लेखनीय है कि श्रीहनुमानजी- अश्वत्थामा, बलि, व्यास, विभीषण, कृपाचार्य, पशुराम और मार्कण्डेय- इन आठ चिरंजीवियों में अन्यतम हैं।

श्रीहनुमानजी को चिरंजीवी कहना पर्याप्त नहीं है। इन्हें नित्यजीवी अथवा अजर-अमर तथा शाश्वत कहना अधिक संगत होगा। देवराज इन्द्र से भी श्रीहनुमानजी को वरदान मिला था कि इनकी मृत्यु तब तक नहीं होगी, जब तक स्वयं इन्हें मृत्यु की इच्छा न होगी-

सहस्रनेत्रः प्रीतात्मा ददौ ते वरमुत्तमम्।
स्वछन्दतश्च मरणं तव स्यादिति वे प्रभो।।

भगवान् श्रीराम से इन्हें कल्पान्त में सायुज्य-मुक्ति का वरदान प्राप्त है, अतः इनकी अजरता-अमरता में कोई संशय नहीं है। वस्तुतः आज भी वे अपने नैष्ठिक भक्त-उपासकों को यदा-कदा जिस किसी रूप में दर्शन देते ही हैं। स्मरण रहे, इसलिये मैं इस बात को पुनः कहता हूँ कि आज भी श्रीहनुमानजी अपने नैष्ठिक भक्तों को तत्कालीन सिद्ध सन्तों के रूप में दर्शन देते हैं।

महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने श्रीकृष्ण के आदेश से अपने नन्दिघोष नामक रथ की पताका पर श्रीहनुमानजी का चित्र अंकित कराया था। इससे उनका एक नाम वानरध्वज पड़ गया। युद्ध प्रारम्भ होने से पहले सारथी श्रीकृष्ण ने पताका पर स्थित श्रीहनुमानजी को आदेश दिया "पवनपुत्र ! यह त्रेता नहीं है द्वापरयुग है और यह तुम्हारे पराक्रम के प्रकट होने का समय नहीं है। तुम गर्जना भी करोगे तो सबके हृदय फटने से वे मर जायेंगे। अतः तुम केवल स्थिर होकर स्थित रहो। तुम्हारी स्थिति ही पर्याप्त है। महाभारत समाप्त हो जाने पर सारथी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपने गाण्डीव सहित पहले रथ से उतर जाने का आदेश दिया और

उसके रथ से उतर जाने पर स्वयं उतरते ही श्रीकृष्ण ने श्रीहनुमानजी को गगन में उड़ जाने का संकेत दिया। श्रीहनुमानजी जैसे ही आकाश में विलुप्त हुए तो उस दिव्य रथ से लपटें उठीं और अश्वों सहित उसी क्षण वह रथ भस्म हो गया।

दूसरा प्रसंग यह है कि भीम ने श्रीहनुमानजी से कहा कि यह आपकी बड़ी कृपा है जो आपका दर्शन मुझे हो गया। मैं चाहता हूँ कि मेरे मन की एक यह बात भी पूरी कर दिखाइये कि आपने समुद्र लांघते समय जो रूप बना लिया था वह मैं अपनी आँखों से देख लेना चाहता हूँ। श्रीहनुमानजी हंसते हुए बोले- "देखो भाई ! उस रूप की बात छोड़ो, क्योंकि वह रूप न तो तुम देख सकते हो, न कोई दूसरा, क्योंकि वह युग-समय कुछ और था और परिस्थिति भी कुछ और थी, जो अब नहीं है।" फिर भी श्रीहनुमानजी ने भीम द्वारा आग्रह करने पर समुद्र लांघने वाला रूप भीम को दिखाया- जिसका आभास मात्र होते ही भीम ने अपनी आँखें मूंद लीं और कहा "भाई जी ! मुझसे यह रूप सहन नहीं हो रहा है। आप इसे समेट लीजिए।"

जिज्ञासा होती है, इच्छा भी होती है कि श्रीहनुमानजी का दर्शन हो !

श्रीहनुमानजी इसका समाधान बताते हैं- "कलियुग में मैं सन्तों के रूप में दर्शन दूँगा।" तो आज स्थिति यह है कि- "बिनु हरि कृपामिलहिं नहिं सन्ता।" "बिनु सन्तकृपा न मिलहिं हनुमन्ता। हनुमन्ता।" "सन्त स्वरूप धरें

परमगुरुदेव ब्रह्मर्षि योगिराज श्रीदेवरहाबाबा का उपदेश है कि-

● "भगवान राम के सामने विराजमान और भगवान् के चरणों में दृष्टि लगाये हुए पवनपुत्र श्रीहनुमानजी का ध्यान करना है। सम्पूर्ण विश्व के रामभक्त अपने-अपने हृदय में श्रीसीता-राम और श्रीलक्ष्मण को बसाना चाहते हैं, किन्तु श्रीसीता-रामजी और श्रीलक्ष्मणजी अपने प्राणरक्षक अंजनानंदन को अपने-अपने मन में बसाये रहते हैं और निरन्तर अपनी सन्निधि में इन्हें सामने ही देखते रहना चाहते हैं। न इन तीनों के बिना मारुतात्मज रह सकते हैं,न मारुतात्मज के बिना ये तीनों।"

● "श्रीहनुमानजी सेवा-धर्म और उपकार-कर्म के अप्रतिम आदर्श हैं। उनकी स्वाभाविक सेवा और सहज उपकार से भगवान राम, भगवती सीता और सेवाव्रती लक्ष्मण, इतने प्रभावित हैं कि उनके मन में श्रीहनुमानजी की सेवा और

उपकार के सजीव चित्र सदैव अंकित रहते हैं और बिना श्रीहनुमानजी के उनका जी ही नहीं लगता।"

● "सीतान्वेषण के असम्भव श्रीराम-कार्य को सुसम्पन्न करने के बाद जब अंजनानन्दवर्धन श्रीहनुमान ने श्रीसीताजी का पूरा समाचार श्रीरामजी को सुना दिया तक परमकृतज्ञ और परमकृपालु राघवेन्द्रजी कृतज्ञता के स्वर में अपने सहज सेवक और अनुपम उपकारी श्रीहनुमानजी से कहने लगे-

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुखहोई न सकत मनमोरा।।
सुन सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेऊँ करि विचार मन माहीं।।

(रामचरितमानस)

● कपि सेवा बस भए कनोड़े कह्यौ पवनसुत आउ।
देवे को न कछु रिनियाँ हौं धनिक तू पत्र लिखाउ।। (विनयपत्रिका)

पवन-पुत्र की अनुपम सेवा और बेजोड़ उपकार के सामने त्रिभुवन के स्वामी को त्रिभुवन की सारी की सारी सम्पत्ति इतनी तुच्छ प्रतीत हो रही है कि वह अंजनानन्दन को देने ही योग्य नहीं ठहरती। त्रिलोकीनाथ इतना अकिंचन बन गया है कि वह अपने महाजन श्रीहनुमानजी का ऋण चुकाने में असमर्थ हो गया है और ऋण-पत्र लिखने को प्रस्तुत हो गया है। धन्य है, सेवकाग्रगण्य श्रीहनुमान-सा परम दुर्लभ महाजन और धन्य है भगवान् राम सा लोकोत्तर कृतज्ञ ऋणी। निष्काम सेवा का ऐसा चमत्कार हुआ कि पशुयोनि में जन्म लेकर भी श्रीहनुमानजी आराधक से अराध्य बन गये और अनंत ब्रह्माण्डनायक भगवान् राम आराध्य से आराधक।

परमगुरुदेव ब्रह्मर्षि योगिराज श्रीदेवरहाबाबाजी सरकार का वृन्दावन यमुनातट पर स्थित मंच से श्रीहनुमान के बारे में दिया गया उपदेशं है कि-

● कठिन कालिकाल के पंजे से छूटना चाहते हो तो यथासाध्य श्रीहनुमद्स्मरण करो।

● श्रीहनुमानजी की आराधना से सद्यः भगवान श्रीराम हृदय में आ विराजते हैं और सहज ही दुर्गुणों पर विजय प्राप्त हो जाती है।

● श्रीरामराज्य की स्थापना हेतु महाबली श्रीहनुमान इस समय हर देश,

हर नगर, हर गाँव के कोने-कोने में भ्रमण कर रहे हैं, जो बड़भागी भक्त उनके इष्ट विजयमंत्र 'श्रीराम जय राम जय जय राम' का प्रेमपूर्वक जप करता है उन पर अतिशय कृपा कर वे उसे अपना लेते हैं और सत्य समन्वित कर निहाल कर देते हैं।

● जो श्रीहनुमानजी को भुलाकर भगवान श्रीराम को पाना चाहते हैं उसकी फजीहत होती है।

● आज देश में सर्वत्र संकट के बादल मंडरा रहे हैं इसका कारण यह है कि देशवासी संकटमोचन श्रीहनुमान का विस्मरण कर बैठे हैं।

● सारे दुःखों की एक दवाई, प्रेम से भजो श्रीहनुमान गुसाईं।

● श्रीहनुमद् स्मरण बढ़ते ही काम का दबाव कम होगा एवं हृदय में दिव्यशक्ति का प्रादुर्भाव होगा।

● हृदय सिंहासन पर भगवान श्रीराम को प्रतिष्ठित करो और महावीर को पहरेदार नियुक्त करो, फिर तुम्हारा बाल भी बांका नहीं हो सकता।

● रावणता के नाश और राक्षसता से उऋण होने के लिए श्रीहनुमद् अहर्निश जागरूक हैं। हम उनके श्रीरामकाज में सहयोगी बनकर ही उनकी कृपा का लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

● श्रीहनुमानजी के नामों का पाठ करने से निश्चय ही श्रीहनुमद्कृपा प्राप्त होती है। यह सिद्ध नाम है। मनोकामना पूर्ति का यह अमोध साधन है।

● श्रीराम को पाने के लिए श्रीहनुमान बनना होगा। कपट-जाल से तो हम हजारों जन्मों में भी प्रभु चरणों की समाश्रयता नहीं प्राप्त कर सकेंगें। निष्ठापूर्वक श्रीहनुमद्लीला का स्मरण, चिन्तन और मनन करो तो कालान्तर में तुममें स्वतः दिव्य भावों का स्फुरण होने लगेगा।

● हरिकीर्तन करने वाला श्रीहनुमानजी को अपने घर आने का निमंत्रण देता है। ध्यान रखो ! कथा-कीर्तन एवं सत्संग में अश्लील बातें एवं अभद्र व्यवहारादि न करो अन्यथा दण्डित हो जाओगे।

श्रीहनुमतस्वरूप योगिराज श्रीदेवरहाबाबा जंगल, नदी एवं पर्वतों में हमेशा विचरण करते रहते थे। प्रकृति की एक-एक वस्तु से उनका साक्षात्कार था। दिव्यदृष्टि से चल, अचल पर वे अपना अधिकार रखते थे। वे अपने उपदेश में

स्वयं कहते हैं- "मैं सर्वव्यापी हूँ। आँधी पानी सब कुछ अपना ही है।" जाड़ा, गर्मी, बरसात आदि षड् ऋतुएँ उनकी थीं। पशु, पक्षी, जीव, जन्तुओं की बोली, उनके मनोभावों को वे भली-भाँति समझते थे। तभी तो उन्हें योगिराज कहा जाता था। मानव शरीर धारण करते हुए भी वे कितने विलक्षण थे, इसका अहसास केवल उन्हीं को हो सकता है, जो उन्हें निकट से जानने की कोशिश करते थे और अपने वास्तविक स्वरूप को योगिराज दया करके उन्हें 'जना' देते थे। यह स्वरूप था श्रीहनुमानजी का।

ब्रह्मर्षि योगिराज श्रीदेवरहाबाबा की लीला बड़ी विचित्र है, उनकी महिमा कौन गा सकता है। जो परमतत्व अनादि है, एक है, सर्वव्यापी है, सर्वाधार, सर्वनियन्ता और सर्वमय है, जिसके अस्तित्व से सबका अस्तित्व है, जिसके स्वतः सिद्ध प्रमाण से सबका प्रमाण है, जिसकी चेतना में सब में चेतनत्व है, जिसका आनन्द ही सबमें लहरा रहा है, जो इस अस्तित्व, प्रमाण, चेतना, आनन्द आदि से पृथक् नहीं है, परन्तु जो स्वयं सत् है, प्रमाणस्वरूप चेतन और आनन्द रूप है- जिसकी ऐसी व्याख्या भी उसके एक ही अंग का वर्णन करती है, जो वर्णनातीत है, कल्पनातीत है, उस परम सत् में जिसकी नित्य, अचल अभेद प्रतिष्ठा है वही सत् है और ऐसा सत् ही संत श्रीदेवरहा बाबा हैं।

योगिराज श्रीदेवरहाबाबा कैसे वर्तमान श्रीदेवरहाहंस बाबा के स्वरूप में अवतरित हुए यह एक अलग विषय है (इसका विस्तृत वर्णन 'महायोगी का अवतरण' ग्रन्थ के सात खण्डों में किया जा चुका है।) यहां पर इतना ही कहा जा रहा है कि महायोगी सिद्ध सन्त श्रीदेवरहाहंस बाबा के स्वरूप का वर्णन करना उनको अपने स्थान से च्युत करने की चेष्टा करना है, अवश्य ही वे कभी च्युत होते नहीं, क्योंकि वे अच्युत में अचल प्रतिष्ठित हैं। अपनी बुद्धि से उनकी माप-तौल करने जाना लड़कपन ही होगा। हाँ, यदि लड़कपन सरल हृदय का सचमुच लड़कपन ही हो तो इसमें भी बड़ा लाभ है। बुरी नीयत को छोड़कर अन्य किसी भी हेतु से उनका दर्शन; स्मरण-चिन्तन करना लाभदायक ही होता है क्योंकि उनका संग अमोघ है।

बस, आप तो हनुमत्स्वरूप में उनका दर्शन करें। उनको तौलने की चेष्टा छोड़ दें। वे हमारी तुला पर तुलने वाले पदार्थ नहीं है। श्रद्धा-भक्ति करके उनकी कृपा

प्राप्त करें। तब वे हमें अपना कुछ रहस्य बतलावेंगे। हम उन्हें बहुत ही थोड़े अंश में भी-जान लेंगे तो चकित हो जायेंगे। जिन बातों को हम असम्भव मानते हैं, जो हमारी धारणा में नहीं आतीं, जो कल्पना से अतीत हैं, बाबा वैसी एक नहीं, अनेक बातों का अनुभव करते हैं, उनका प्रत्यक्ष करते हैं, उन्हें काम में लाते हैं। अविश्वासी और अश्रद्धालु अथवा अज्ञानी लोग चाहे इस बात को न मानें परन्तु किसी के मानने या न मानने से उनको क्या मतलब ! वे क्यों किसी को मनवाने लगे? कहने ही क्यों लगे? उनको अपनी 'लहर' से मतलब है, न कि मोह में फँसी दुनिया के प्रमाण-पत्र से ! कोई भी संसार का प्रमाणपत्र उनकी सच्चाई के लिये प्रमाण नहीं है और कोई भी प्रमाणपत्र उनकी स्थिति को बतला नहीं सकता। जगत् के प्रमाणों का-सर्टिफिकेटों का आसरा वही देखते हैं जो संत नहीं है, पर संत का बाना धारण कर जगत् से पूजा-प्रतिष्ठा चाहते हैं।

श्रीदेवरहाहंस बाबा ब्रह्म हैं, ब्रह्मस्थित हैं, ब्रह्मज्ञानी हैं, ब्रह्मपरायण हैं, ब्रह्ममय और सिद्ध सन्त होने के कारण श्रीहनुमान जी उनमें तथा वे श्री हनुमान में समाहित हैं। वे परमात्मा के आश्रय हैं, परमात्मा हैं, परमात्मा के स्वरूप हैं, परमात्मा के प्यारे हैं, परमात्मा के आश्रित हैं। भगवान् की दिव्य नित्यलीला में सहायक हैं, नित्यलीला के नट हैं, लीला के साधन हैं, लीला के यन्त्र हैं, लीला हैं और लीलामय के हृदय हैं। वे सब कुछ हैं। अन्तर्जगत् कारण-जगत्-सब में उनका प्रवेश है, और वे कारणजगत् के भी परे हैं।

श्रीहनुमानजी के दर्शन करने हैं तो ऐसे संतों को पाने की इच्छा करें। भगवान् से प्रार्थना करें। भगवान् की दया से ही ऐसे संत मिलते हैं। संतों का मिलन भगवान् के मिलन से भी बढ़कर है। क्योंकि भगवान् के रंगमहल की बातें संत ही जानते हैं और उनसे ही भगवान् के रहस्य का पता लगता है। इसीलिये लोग "हरिकृपा" के लिये भगवान् से प्रार्थना करके संत के दर्शन करना चाहते हैं और ऐसे संतमिलन को तरसने वाले प्रेमीजनों की प्रेमपिपासा को और भी बढ़ाने के लिये और भी अनन्य बनाने के लिये भगवान् संतों को उनसे मिला देते हैं और जब वे परस्पर मिलते हैं और जब उनकी घुट-घुटकर छनती है, तब भगवन् को भी बड़ा मजा आता है। छिप-छिपकर अपनी ही ऐसी बातें-वे सुनते है। इन बातों को वे अपने मुँह से कह नहीं सकते, परन्तु प्रकट भी करना चाहते हैं- उन सन्तों

को ऐसा करते देखकर और भी खुल जाते हैं। प्रकट होकर, अपना पूरा हृदय खोलकर, सारे व्यवधानों को मिटाकर उन्हें गले लगा लेते हैं। तब श्री हनुमानजी सन्त रूप बन जाते हैं और सन्त हो जाते हैं श्रीहनुमान।

हनुमान जी के स्वरूप बाबा जैसे संत की प्राप्ति से आपके हृदय में कल्याण का सागर उमड़ उठेगा। आप उसमें अवगाहन कर, अनन्त आनन्द में घुल-मिलकर आनन्द बन जाओगे। आनन्द फिर आनन्द सागर-होकर- हृदय आनन्द और कल्याण का सागर बन जायेगा। उसमें जो कोई डुबकी लगायेगा, जो कोई उसमें से एक चुल्लू भी पीयेगा, वही आनन्द हो जायेगा।

प्राप्ति की तो बात ही क्या, श्रीहनुमत्स्वरूप श्रीदेवरहाबाबा, श्रीदेवरहाहंसबाबा की स्मृति ही पाप-ताप और अज्ञान-अहंकार का नाश करने वाली है। ऐसे सिद्ध महायोगी बाबा 'एक' हैं पर वे 'एक' भी बहुत हैं। उनका अस्तित्व ही जगत में मंगल और कल्याण बनाये हुए है। उनके चरणों में नमस्कार करें। उनका ध्यान करें। उनकी वाणी को वेदवाक्य से बढ़कर समझें, उनके चरणरज को अपनी अमूल्य सम्पत्ति समझें, उनकी आज्ञा का प्राणपण से पालन करें, उनकी इच्छा का अनुसरण करें। तब देखें कि आपका कितना जल्दी मंगल होता है।

ब्रह्मलीन परमगुरु श्रीदेवरहाबाबा श्रीदेवरहाहंसबाबा में ही स्थित हैं और सतयुग के आगमन के लिए भक्ति संदेश को प्रचार प्रसार देने के लिए, योगसाधन क्रिया को प्रधानता देने के लिए, गौसेवा में प्रेरित करने के लिए, प्रकृति के वृक्षों से लाभ उठाने के लिए, इस जंगल-वन-पहाड़ों से घिरे विन्ध्याचल "श्रीदेवरहाबाबा आश्रम" में चिरंजीवी श्रीहनुमानजी श्रीदेवरहाबाबा- श्रीदेवरहाहंस के रूप में स्थित आज सारी कल्पनाओं को पूरा कर रहे हैं। अन्दर से श्रीहनुमानजी की दिव्य ज्योति पाकर आनन्द रूप में श्रीदेवरहाहंसबाबा के मुख से परावाणी निकल रही है जो गूढ़ मनन का विषय है। श्रीहनुमानजी स्वयं श्रीदेवरहाबाबा- श्रीदेवरहाहंसबाबा के स्वरूप में दिव्यवाणी में उपदेश करके संकेत करते हैं जिसके मनन से श्रद्धा उत्पन्न होगी। अब तो श्रीदेवरहाबाबा का उपदेश पुनः श्रवण करने का अवसर प्राप्त है श्रीदेवरहाहंसबाबा में ही स्थित दिव्य प्रकाश से। उनमें परिपूर्ण भक्ति संदेश मिल रहा है।

ब्रह्मवेत्ता श्रीदेवरहाहंसबाबा पातंजल योग परम्परा के योगी हैं। पातंजल योग

के योगी पर्वत की कन्दराओं, गुफाओं, वृक्षों या लकड़ी के मचानों पर रहते हैं। ऐसा इसलिए है कि वातावरण के अशुद्ध परमाणुओं का संसर्ग, गुरुत्वाकर्षण और पृथ्वी के कंपन का प्रभाव योगिक क्रियाओं में बाधा न बन सके।

श्रीदेवरहाहंस बाबा कहते हैं कि "बच्चा ! तुम मंदिर जाते हो तो जितनी देर तुम हनुमानजी का दर्शन करते हो, उतनी देर तुम्हारा मन एकाग्रचित होता है, उनके दर्शन से प्रफुल्लित होता है और तुम उनकी सानिध्यता का अनुभव करते हो। यह आनन्द उस क्षण इसलिए अनुभव होता है क्योंकि ठाकुर के आलौकिक विग्रह के दिव्यदर्शन से भक्तों को प्रेम होने लगता है और सम्पूर्ण समर्पण भाव उत्पन्न होने से हृदय आनन्द से विभोर हो जाता है। ईश्वर सर्वव्यापक है और उनकी सानिध्यता का आनन्द समग्र रूप से महसूस कर अपने कर्मक्षेत्र में हर समय ईश्वरीय आनन्द को हृदय में स्थापित कर चलना ही अन्तरंगयोग है। परन्तु मंदिर से बाहर निकलते ही लौकिक जगत की आसक्ति भक्तों को घेर लेती है और वह आनन्द क्षणिक बन कर रह जाता है।"

बाबा कहते हैं कि "श्रीहनुमान तुम्हारे हृदय में बैठे हैं। तुम मंदिर में दिव्य विग्रह की छवि हृदय में बिठाओ और अपने को उनमें पूर्ण समर्पण कर ईश्वर के इस आलौकिक आनन्द से अभिभूत होते रहो कि बाबा श्रीहनुमान स्वरूप में तुम्हारे साथ-साथ हैं- तो फिर हर क्षण वे तुम्हारे साथ-साथ हैं। यह आनन्द समग्र आनन्द बन कर तुम्हारे लौकिक जगत को प्रेमानंद से आच्छादित कर देगा। इससे तुम्हारा कर्मक्षेत्र भी आनन्दमय बन पड़ेगा और तब अपने में ईश्वर को प्राप्त करने के लिए तुम्हें घर-द्वार छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी परमभक्ति, निष्ठा और प्रेम के समर्पण से प्रसन्न हनुमानजी तुम्हारी हर क्षण मदद और रक्षा करेंगे। गृहस्थ बनकर भी तुम हर वक्त दयालु प्रभु की सानिध्यता के आनन्द से अभिभूत रहोगे।" बाबा कहते हैं- "तुम निहाल हो जाओगे आनन्द से। बस तुम्हें श्रीहनुमानजी को अपने हृदय में बिठाना है। चाहे वो श्रीहनुमान हों, राम हों या कृष्ण हों, सब एक ही रूप हैं। बच्चा ! ईश्वर का स्वरूप ही आनन्दमय है, प्रेम से अभिभूत करने वाला है, और यह दिव्य ईश्वरीय सानिध्यता का आनन्द उनके अलौकिक रूप को देखकर प्रेम में परिणित करना ही अन्तरंगयोग है। इस योग की प्राप्ति होने पर हर क्षण श्रीहनुमानजी की सानिध्

यता के आनन्द में रहना होने लगता है। लौकिक जगत के सारे कर्म उनके संरक्षण में होने से तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। सिर्फ समर्पण की जरूरत है। जब हनुमानजी तुम्हारे साथ-साथ रहेंगे तो हर क्षण तुम्हारा सत्संग होता रहेगा।"

बाबा कहते हैं कि "सद्गुरु का तो यही कार्य है- भक्तों को ईश्वर के साथ जोड़ देना। ज्योत् जगा देना भक्तों के हृदय में।"

सद्गुरुदेव श्रीदेवरहाहंसबाबा महाराज कहते हैं कि "र"- कार से ही इस ब्रह्मांड का जन्म हुआ। इसी से ब्रह्मा, विष्णु, और महेश उत्पन्न हुए। सृष्टि की रचना हुई।" बाबा का अनहद् नाद मन को झंकृत कर वातावरण को गुंजायमान कर मन को रोमांचित करने लगता है। जब श्रीमुख से परावाणी की वर्षा होने लगती है तब भक्त झूमने लगते हैं, गाने लगते हैं, नृत्य करने लगते हैं, साथ में भावसमाधि का दृश्य परिलक्षित होने लगता है। मैंने अपनी आँखों से देखा कि बाबा की वाणी पर कई-कई घंटों तक युवक, महिलाएं बूढ़े, बच्चे-बच्चियाँ नाचती रहीं। जिन्होंने कभी भी भक्ति, नृत्य-संगीत में रुचि नहीं ली, उन्होंने भी बेसुध होकर भक्ति-नृत्य का अद्‌भुत दृश्य उत्पन्न कर दिया। श्रीबाबा की परावाणी में ईश्वरीय वाणी का आकर्षण है जो मन के तार को ईश्वर से जोड़ देती है। बाबा कहते हैं कि "सामवेद में भी तो यही है- अपने ठाकुर को भक्ति, नृत्य और स्तुति से प्रसन्न कर देना तथा उनके दिव्य आनंद में तिरोहित हो जाना।" बाबा कहते हैं कि " ये जो भक्त आनन्द में नृत्य कर रहे हैं। मैंने अपना भाव इनमें स्थापित कर दिया है। अब ये गोपी-कृष्ण की तरह नाच रहे हैं।" बाबा कहते हैं कि "मैंने ईश्वरीय प्रेम से इनके मन को आच्छादित कर दिया है। अपने ईश्वरीय भाव को इनसे जोड़ दिया है और जब यह तार छूटेगा तो यह सब रोयेंगी, ईश्वर के विरह में गोपियों की तरह।" सच में यही घटित होने लगता है। मंच का पूरा प्रांगण श्रीहनुमत्मय हो जाता है। रुदन-क्रंदन और विरह में भक्त "बाबा-बाबा" पुकारने लगते हैं।

बाबा कहते है कि "सामवेद में भी तो ईश्वर को प्राप्त करने के लिए नृत्य की रचना की गयी है। सामवेद की भक्तिरसपूर्ण काव्यधारा में अवगाहन करने से तुरन्त ही मनुष्य का अन्तरतम निर्मल, विशुद्ध, पवित्र और रससिक्त हो जाता

है। नारद की नृत्य-संगीत युक्त नारायण" के प्रति अनवरत उपासना भी यही इंगित करती है। मीरा, चैतन्य महाप्रभु, सूरदास ने भी इसी मार्ग को अपनाकर सद्गति को प्राप्त किया। आज उन्हीं भक्तों को हम याद करते हैं। भक्तों का नृत्य संगीत गलत नहीं है। भजन-कीर्तन-नृत्य साधना में सहायक होते हैं। मीरा ने, चैतन्य महाप्रभु ने, सूरदास ने, नरसी मेहता एवं अन्य भक्तों ने ईश्वरीय प्रेम की पराकाष्ठा में बेसुध होकर भक्त एवं नृत्य-संगीत के द्वारा परमात्मा को प्रसन्न कर लिया। उनके शरणागत हो वे प्रेम भाव में डूब गये और भक्ति की पराकाष्ठा में ईश्वर का साक्षात्कार कर अपने जीवन को ईश्वर प्रेम में समर्पित कर दिया।" सद्गुरुदेव समझाते हैं कि "बच्चा ! जैसे कटु वचन में हृदय बिंध जाता है, मन विक्षिप्त हो जाता है तो फिर उसे बुद्धि विवेक से नियंत्रण करना पड़ता है। ठीक इसके विपरीत प्रेमाभक्ति की पराकाष्ठा और समर्पण से हृदय प्रकाशमान हो उठता है। ईश्वर को पाने के लिए प्रेम में व्याकुल हो भक्तियुक्त निष्काम भक्त प्रभु से मिलने के लिए उतावला हो जाता है। बाबा इसमें मध्यस्थ हो, सहायक बनकर अपनी कृपा से भक्त और भगवान को जोड़ देते हैं। बाबा कहते हैं कि "यही मेरी वृत्ति है। मेरा तो भक्तों को राम से जोड़ने का व्यापार है। गुरु प्रदत्त ईश्वरीय ज्ञान जो पुस्तकों में समाहित है, अमूल्य है। सभी शास्त्र, वेद और धर्मग्रन्थ ईश्वर के अंश हैं। गुरुग्रंथ की पूजा उपासना भी ईश्वर की पूजा उपासना है। इनके प्रति श्रद्धाभाव होना चाहिए।" बाबा एक भक्त से पूछ बैठे कि तुम प्रातः काल अपने से बड़ों का आर्शीवाद चरणस्पर्श कर प्राप्त करते हो या नहीं? नहीं, उत्तर मिलने पर बाबा कहने लगे "बड़ों के प्रति श्रद्धा भाव और अनुज के प्रति स्नेह होना चाहिए। इससे मन सात्विक होता है और प्रभु के कार्यों में समर्पण पैदा होता है। अहंकार और आसक्ति का शमन होना चाहिए। यह जान-समझ लो कि आत्मस्वरूप को जानने में यही सबकी बड़ी बाधा है। अपने आत्मस्वरूप को जाने बिना परमात्मस्वरूप का ज्ञान असंभव है।"

श्रीदेवरहाहंसबाबा योगिराज श्रीदेवरहाबाबा महर्षि महायोगी पतंजलि, कणाद, शुकदेव, व्यास, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि जैसे तपोदीप्त साधक- सन्तों की उज्ज्वल परम्परा की अप्रतिम कड़ी हैं। अध्यात्मतत्व और अनन्त मानवीय गुणों के सुभग समन्वय के पर्याय श्रीदेवरहाहंसबाबा सद्ज्ञापन के आगार और अनुभूति

यता के आनन्द में रहना होने लगता है। लौकिक जगत के सारे कर्म उनके संरक्षण में होने से तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। सिर्फ समर्पण की जरूरत है। जब हनुमानजी तुम्हारे साथ-साथ रहेंगे तो हर क्षण तुम्हारा सत्संग होता रहेगा।"

बाबा कहते हैं कि "सद्गुरु का तो यही कार्य है- भक्तों को ईश्वर के साथ जोड़ देना। ज्योत् जगा देना भक्तों के हृदय में।"

सद्गुरुदेव श्रीदेवरहाहंसबाबा महाराज कहते हैं कि "र"- कार से ही इस ब्रह्मांड का जन्म हुआ। इसी से ब्रह्मा, विष्णु, और महेश उत्पन्न हुए। सृष्टि की रचना हुई।" बाबा का अनहद् नाद मन को झंकृत कर वातावरण को गुंजायमान कर मन को रोमांचित करने लगता है। जब श्रीमुख से परावाणी की वर्षा होने लगती है तब भक्त झूमने लगते हैं, गाने लगते हैं, नृत्य करने लगते हैं, साथ में भावसमाधि का दृश्य परिलक्षित होने लगता है। मैंने अपनी आँखों से देखा कि बाबा की वाणी पर कई-कई घंटों तक युवक, महिलाएं बूढ़े, बच्चे-बच्चियाँ नाचती रहीं। जिन्होंने कभी भी भक्ति, नृत्य-संगीत में रुचि नहीं ली, उन्होंने भी बेसुध होकर भक्ति-नृत्य का अद्भुत दृश्य उत्पन्न कर दिया। श्रीबाबा की परावाणी में ईश्वरीय वाणी का आकर्षण है जो मन के तार को ईश्वर से जोड़ देती है। बाबा कहते हैं कि "सामवेद में भी तो यही है- अपने ठाकुर को भक्ति, नृत्य और स्तुति से प्रसन्न कर देना तथा उनके दिव्य आनंद में तिरोहित हो जाना।" बाबा कहते हैं कि " ये जो भक्त आनन्द में नृत्य कर रहे हैं। मैंने अपना भाव इनमें स्थापित कर दिया है। अब ये गोपी-कृष्ण की तरह नाच रहे हैं।" बाबा कहते हैं कि "मैंने ईश्वरीय प्रेम से इनके मन को आच्छादित कर दिया है। अपने ईश्वरीय भाव को इनसे जोड़ दिया है और जब यह तार छूटेगा तो यह सब रोयेंगी, ईश्वर के विरह में गोपियों की तरह।" सच में यही घटित होने लगता है। मंच का पूरा प्रांगण श्रीहनुमत्मय हो जाता है। रुदन-क्रंदन और विरह में भक्त "बाबा-बाबा" पुकारने लगते हैं।

बाबा कहते है कि "सामवेद में भी तो ईश्वर को प्राप्त करने के लिए नृत्य की रचना की गयी है। सामवेद की भक्तिरसपूर्ण काव्यधारा में अवगाहन करने से तुरन्त ही मनुष्य का अन्तरतम निर्मल, विशुद्ध, पवित्र और रससिक्त हो जाता

है। नारद की नृत्य-संगीत युक्त नारायण" के प्रति अनवरत उपासना भी यही इंगित करती है। मीरा, चैतन्य महाप्रभु, सूरदास ने भी इसी मार्ग को अपनाकर सद्गति को प्राप्त किया। आज उन्हीं भक्तों को हम याद करते हैं। भक्तों का नृत्य संगीत गलत नहीं है। भजन-कीर्तन-नृत्य साधना में सहायक होते हैं। मीरा ने, चैतन्य महाप्रभु ने, सूरदास ने, नरसी मेहता एवं अन्य भक्तों ने ईश्वरीय प्रेम की पराकाष्ठा में बेसुध होकर भक्त एवं नृत्य-संगीत के द्वारा परमात्मा को प्रसन्न कर लिया। उनके शरणागत हो वे प्रेम भाव में डूब गये और भक्ति की पराकाष्ठा में ईश्वर का साक्षात्कार कर अपने जीवन को ईश्वर प्रेम में समर्पित कर दिया।" सद्गुरुदेव समझाते हैं कि "बच्चा ! जैसे कटु वचन में हृदय बिंध जाता है, मन विक्षिप्त हो जाता है तो फिर उसे बुद्धि विवेक से नियंत्रण करना पड़ता है। ठीक इसके विपरीत प्रेमाभक्ति की पराकाष्ठा और समर्पण से हृदय प्रकाशमान हो उठता है। ईश्वर को पाने के लिए प्रेम में व्याकुल हो भक्तियुक्त निष्काम भक्त प्रभु से मिलने के लिए उतावला हो जाता है। बाबा इसमें मध्यस्थ हो, सहायक बनकर अपनी कृपा से भक्त और भगवान को जोड़ देते हैं। बाबा कहते हैं कि "यही मेरी वृत्ति है। मेरा तो भक्तों को राम से जोड़ने का व्यापार है। गुरु प्रदत्त ईश्वरीय ज्ञान जो पुस्तकों में समाहित है, अमूल्य है। सभी शास्त्र, वेद और धर्मग्रन्थ ईश्वर के अंश हैं। गुरुग्रंथ की पूजा उपासना भी ईश्वर की पूजा उपासना है। इनके प्रति श्रद्धाभाव होना चाहिए।" बाबा एक भक्त से पूछ बैठे कि तुम प्रातः काल अपने से बड़ों का आर्शीवाद चरणस्पर्श कर प्राप्त करते हो या नहीं? नहीं, उत्तर मिलने पर बाबा कहने लगे "बड़ों के प्रति श्रद्धा भाव और अनुज के प्रति स्नेह होना चाहिए। इससे मन सात्विक होता है और प्रभु के कार्यों में समर्पण पैदा होता है। अहंकार और आसक्ति का शमन होना चाहिए। यह जान-समझ लो कि आत्मस्वरूप को जानने में यही सबकी बड़ी बाधा है। अपने आत्मस्वरूप को जाने बिना परमात्मस्वरूप का ज्ञान असंभव है।"

श्रीदेवरहाहंसबाबा योगिराज श्रीदेवरहाबाबा महर्षि महायोगी पतंजलि, कणाद, शुकदेव, व्यास, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि जैसे तपोदीप्त साधक- सन्तों की उज्ज्वल परम्परा की अप्रतिम कड़ी हैं। अध्यात्मतत्व और अनन्त मानवीय गुणों के सुभग समन्वय के पर्याय श्रीदेवरहाहंसबाबा सद्ज्ञापन के आगार और अनुभूति

के रत्नाकार हैं। साधुता, शुचिता, दूरदर्शिता, करुणा, योग और अहैतुकी समाज-सेवा के साक्षात् विग्रह श्रीदेवरहाहंस बाबा आत्मविज्ञप्ति से दूर रहकर महानगरियों की बड़ी-बड़ी गोष्ठियों में सम्मिलित नहीं होते। तप-साधना, सर्वध र्मसमभाव, सर्वात्मदर्शन, सबके प्रति असीम दया के पूत भाव का नाम ही श्रीदेवरहाहंसबाबा है। श्रीहनुमत्स्वरूप में उनके दर्शन से मानसिक व्यग्रता शांत होती है, अन्तर्मन का कोना-कोना दिव्य अनुभूति की शीतलता से तृप्त हो जाता है।

जटा-जूट-श्मश्रुमण्डित मुखमंडल, मर्मग्राही, दीर्घ ज्योतित नेत्र, आजानबाहु, ताम्रवणी सुपुष्ट कलेवर में ऋषियों की ज्योतिर्मय परम्परा एवं समग्र भारतीय संस्कृति के साक्षात् स्वरूप देवज्योति श्रीदेवरहाहंसबाबा का व्यक्तित्व श्रीहनुमतलीला की अभिव्यक्ति से परिपूर्ण रहता है। हिमालय की धवल विशालता, महासागर की गहन गम्भीरता, पुण्यतोया गंगा एवं यमुना की सनातन पावनता, सूर्य के प्रकाश और चन्द्र की शीतलता का विलक्षण आमेलन ही बाबा है। अमृतात्मा से आलोकित अमृत तन, अमृत मन, अमृत चेतन ब्रह्मर्षि योगिराज श्रीदेवरहाबाबा के स्वरूप में श्रीदेवरहाहंसबाबा को अभिहित किया जा सकता है। उस महिमामय आनन पर मंदस्मित प्रभा, आशीष आर्शीवचनों के प्रतीक प्रसाद का वह मुक्तहस्त वितरण, 'असीम दया' के वरदान का आश्वासन, सांन्त्वना और प्रभु के समक्ष खड़ा कर देने वाली संकल्पोक्तियाँ आज श्रीदेवरहाहंसबावा में प्रत्यक्ष अनुभव की जा सकती हैं। आनन्द प्रदायिनी अमृतमयी परावाणी में, श्रीदेवरहाहंसबाबा के दिव्य व्यक्तित्व में उनके साधक, मर्मविद् आचार्य, गहन शिक्षाविद् महिमामय ज्ञानी-विज्ञानी, भावुक भक्त, कर्ममर्मी, तपोनिष्ठ ऋषि, आध्यात्मनिष्ठ योगी के अूपर्व गुणों का समन्वय सहज ही अनुभव किया जा सकता है। उनके वात्सल्यपूर्ण सम्मोहन से ऐसा कौन है जो सम्मेहित न होता हो। पूज्य बाबा उदात्त, भावपूर्ण और करुणा के अवतार हैं। उनके प्रेमपूर्ण सहज गम्भीर व्यक्तित्व में प्रेम, श्रद्धा और सहानुभूति की सरिता प्रवाहित होती है। गीता में भगवान का शाश्वत् आश्वासन है-

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।।

भगवान मानव के रूप में अवतरित होते हैं, वे मानव की सामर्थ्य का उद्घाटन करते हैं, उसे चेतनाशील बनाते हैं कि तुम सर्वगुण सम्पन्न हो, सक्षम हो; अर्थ, धर्म, काम से ऊपर तुम्हें मोक्ष प्राप्त करना चाहिये। मोक्ष प्राप्ति के समीप पहुँची हुई आत्मा अवतार रूप है। अवतार का अर्थ है शरीरधारी पुरुष विशेष। पूज्य श्रीदेवरहाबाबा ऐसे ही शरीरधारी महापुरुष थे जिन्होंने अनिर्वचनीय प्रेम से ध र्म-मर्यादा की स्थापना की।

सभी जीव ईश्वर के अवतार हैं लेकिन जो अपने युग में सर्वश्रेष्ठ धर्मनिष्ठ हो, क्रान्तदर्शी हो उसीको जनता अवतार मानती है। अवतारी राष्ट्र के प्राणतत्व एवं समाज के आलोक स्तम्भ होते हैं। श्रीदेवरहाहंसबाबा हेतु अवतारी शब्द सार्थक है क्योंकि वे भारत के प्राण हैं, राष्ट्रनायकों के नायक हैं। उन्होंने सदाचरण द्वारा भारत को गौरवान्तिव किया हुआ है। उनके उपदेश, उनकी परावाणी अभ्युदय और मोक्ष के सम्बल हैं।

श्रीदेवरहाहंसबाबा तत्वज्ञ हैं। वे सत्य के प्रेमी हैं। जैसे बांस के पिंजड़े में सिंह बन्द नहीं किया जा सकता है वैसे ही तत्वज्ञ संसार में नहीं फँस सकता। वह तो स्थितप्रज्ञ होता है। बाबा वस्तुतः सच्चे स्थितप्रज्ञ हैं। ग्रीष्मकाल की तीक्ष्ण धूप, वर्षाकाल की मूसलाधार वृष्टि, प्रचण्ड आँधी-तूफान तथा पाला की जानलेवा परिस्थितियों में भी वे सदा एकरस हैं। प्रकृति के प्रकोपों को सहने वाले ये निर्वसन तत्वमर्मी इक्षु-दण्ड की भाँति थपेड़ों को झेल कर सदा-सर्वदा नैतिकता, सदाचार, शांति और सहिष्णुता की मिठास से जन-जीवन को तृप्त करते रहते हैं। संसार का कोई कष्ट उन्हें सताता नहीं। वे प्रायः कहते हैं- "जब तुम भगवान की शरण में हो जाओगे तो संसार के कष्ट तुम्हें नहीं सतायेंगे।"

श्रीरामजी की शरण में जाने से ही सबका कल्याण होता है। धनवान् हो या धनहीन, बड़ा हो या छोटा, विद्वान हो या मूर्ख, बलवान हो या बलहीन, सबके लिए शरणागति आवश्यक है जैसाकि संततुलसीदास ने लिखा है-

गए राम सरन सबको भलो।
गनी गरीब बड़ो, छोटो बुध-मूढ़ हीन बल अतिबलो।

जीव तो परमात्मा की प्रिय संतान है जैसा कि श्रीकृष्ण ने गीता में बतलाया है-

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवति याः।
तासाँ ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।।

परमात्मा को अपने प्रिय पुत्रों से मिलने की उत्कट इच्छा रहती है किन्तु यह जीव बड़ा ही कृतघ्न है। यह तो शूकर-कूकर की भाँति भोगों में ही लिप्त रहता है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो मुझे सर्वत्र देखता है और सबको मुझमें देखता है, वह मेरी दृष्टि से ओझल नहीं होता और न मैं उसकी दृष्टि से ओझल होता हूँ-

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्व च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च में न प्रणश्यति।।

बाबा अपने जैसा सबको देखते हैं, इसलिए पूज्य बाबा सरकार के संदर्भ में कहा जा सकता है-

सर्वत्र विगतस्नेहं सर्वत्र समदर्शनम्।
सर्वत्र प्रेमवन्तञ्च योगिराजं नमाम्यहम्।।
विश्वमात्मनि पश्यन्तं सर्वज्ञानसमन्वितम्।।
प्राकृतवच्चरन्तं तं योगिराजं नमाम्यहम्।।

विश्व के समस्त प्राणियों को समानभाव से देखने वाले श्रीदेवरहाहंसबाबा में श्रीहनुमानजी का साक्षात् दर्शन होता है। वे प्रकृष्ट भक्त हैं क्योंकि वे सभी में समदृष्टि रखते हैं- 'समः भूतेषु मद्भक्तिं लभते परम्।' सद्गुरुदेव ब्रह्मवेत्ता योगी-सन्त श्रीदेवरहाहंसबाबा ने श्रीहनुमानजी की प्रेम-भक्ति में लीन होकर विन्ध्याचल मंच से प्रसारित प्रारम्भिक परावाणी में गाया है-

हो प्यारे हो मेरे हनुमत्, तुम प्यारे हो तुम।
संकटमोचन कहलाते हो, मेरे प्यारे तुम।।
हरण हरण ही कर लो मेरा, मेरा संकट तुम।
हनुमत् प्यारे संकटमोचन, तुम तुम तुम तुम तुम।।
तीन लोक में है उजियारा, तेरा बनकर ही।
है जहाँ है तू ही बना है, राम का प्यारा ही।।
भजलूँ भजलूँ जब भी भजलूँ, भज के भजलूँ ही।

तेरे को ही भजलूँ प्यारे, हनुमत् प्यारे ही।।
रक्षा करते रहना निसिवासर, मेरी ही ही ही।
शरण में तेरे पड़ा हूँ हनुमत्, प्यारे ही ही ही।।
सदा सदा से रह रह रहते, आये हो ही ही।
हनुमत् प्यारे तुम प्यारे हो, राम के प्यारे ही।।
संकटमोचन कहलाते हो, तुम तो हो हो ही,
मुझमें रहते साथ में रहते, हो मेरे ही ही।
जब जब चलूँ ही तेरा बनकर, तेरे में ही ही।
तेरा बनकर देखूँ देखूँ, जहाँ भी देखूँ ही।।
रक्षा करते रहना प्यारे, हनुमत् प्यारे तुम।
जब तुम जब तुम रहते हो, जहाँ भी रहते तुम।।
करता रहूँ निसिवासर सुमिरन, तेरा मैं ही ही।
जब जब रहूँहि तेरा बनकर, तेरे में ही ही।।
जपलूँ जपलूँ सीताराम, जब जब जब जब ही।
देखूँ देखूँ सीताराम को, ही ही ही ही ही।।
जहाँ भी तू ही जहाँ भी तू ही, जहाँ भी है ही तू।
सीताराम ही बना है मेरा, ही तू ही है तू।।
भजके भजलूँ भजके भजलूँ, भजके भजलूँ मैं।
तेरे को ही भजलूँ, तेरे को ही भजके भजलूँ मैं।।
रक्षा करते रहना रहना, निसिवासर मेरी ही।
शरण में तेरे पड़ा हूँ, हनुमत् प्यारे ही।।
सदा सदा से रह रह रहते, आये हो ही ही।
हनुमत् प्यारे तुम प्यारे हो, राम के प्यारे ही।।
संकटमोचन कहलाते हो, तुम तो हो ही ही।
करते रहते साथ में, रहते हो मेरे ही ही।।
जब जब चलूं ही तेरा बनकर, तेरे में ही ही।
तेरा बनकर देखूँ देखूँ, जहाँ भी देखूँ ही।।
रक्षा करते रहना प्यारे, हनुमत प्यारे तुम।

जब तुम जब तुम रहते हो, जहाँ भी रहते तुम।।
करता रहूँ निसिवासर सुमिरन, तेरा मैं ही ही।
जब जब रहूँ ही तेरा बनकर, तेरे में ही ही।।
जपलूं जपलूं सीताराम, जब जब जब जब ही।
देख के देखूँ सीताराम को, ही ही ही ही ही।।
जहाँ भी तू ही जहाँ भी तू ही, जहाँ भी है ही तू।
सीताराम ही बना है मेरा, ही तू ही ही तू।
भजके भजलूं भजके भजलूं, भजके भजलूं मैं।
तेरे को ही भजलूं भजलूं, जब भी भजलूं मैं।।
बन के ही दिखाए ही रामहि के ही राम के।
प्यारे हनुमत् बने हुए हो प्यारे हो ही राम के।।
जब जब सुमिरन करूँ करूँ ही हनुमत् प्यारे राम के।
सुन लेना तू विनय हमारी हनुमत प्यारे राम के।।
संकट हरन निसिवासर हे हनुमत् प्यारे राम के।
करते रहना प्रिय हिय हनुमत् प्यारे राम के।।
जब जब देखूँ तेरा बनके हनुमत् प्यारे राम के।
तेरा बनके देखूँ देखूँ ही हनुमत् प्यारे राम के।।
जब जब बोलूं बोलके बोलूँ हनुमत् प्यारे राम के।
तेरा बनके तब तब बोलूँ हनुमत् प्यारे राम के।।
जब जब पाऊँ बन के पाऊँ हनुमत् प्यारे राम के।
तेरा बनके पाऊँ पाऊँ हनुमत् प्यारे राम के।।
तब जब सुनूं सुनूं ही हनुमत् प्यारे राम के।
तेरा बन के सुंनू सुंनू ही हनुमत् प्यारे राम के।।
जब जब सोऊँ सोऊँ ही हनुमत् प्यारे राम के।
तेरा बन के सोऊँ सोऊँ हनुमत प्यारे राम के।।
जब जब पाऊँ पाऊँ ही हनुमत् प्यारे राम के।
तेरा बनके पाऊँ पाऊँ हनुमत् प्यारे राम के।।
जब जब पढूं पढूं ही हनुमत् प्यारे राम के।

तेरा बनके पढ़ूं पढ़ूं ही हनुमत् प्यारे राम के।।
हनुमत प्यारे तुम प्यारे राम दुलारे रहते हो।
सर्वस देके देते देते देते देते ही ही हो।।
हो प्यारे हो राम के प्यारे सेवक सियपिय वारे हो।
सेवा करते निसदिन ही तुम राम दुलारे रहते हो।।
करते रहते प्रतिक्षण सेवा राम के प्यारे हो हो हो।
राम के प्यारे राम के प्यारे, राम के प्यारे हो हो हो।।
जगजीवन नवजीवन तू दे दे बाबा तू तू तू।
तू ही जगमंगल का दाता है बाबा है तू है तू।।
तू ही रहता बनके रहता है तू ही है तू है तू।
तू मेरा है धर्मरक्षक है तू बाबा तू तू तू।।
रक्षा करके तुम तुम करना हे बाबा हे तू तू तू।
हनुमत बाबा तू ही है है धर्म धुरन्धर तू ही तू।।

अचानक परावाणी को विश्राम देते हुए बाबा बोले- "श्रीराम ने परमधाम जाने के समय श्रीहनुमानजी से कहा था कि 'वायुनन्दन ! तुम चिरंजीवी होओ; जब तक लोग मेरी कथा कहें, तब तक प्राणों को धारण करो।' इस आदेश को ग्रहण करके श्रीसीताराम के संनिधान में श्रीहनुमान उनकी सेवा के सुख का निरन्तर आस्वादन करते हुए पृथ्वी पर साकार दिव्य ऐच्छिक देह से विद्यमान रहते हैं। भगवान् शंकर का कथन है कि जिन चरणारविन्द-युगलका तुलसीदल आदि से पूजन कर भक्तजन आतुलनीय विष्णुपद प्राप्त करते हैं, उन्हीं श्रीराम ने जिनके शरीर का आलिंगन किया, उन पवित्र कर्म करने वाले पवनपुत्र के विषय में क्या कहा जाय?"

योगिराज श्रीदेवरहा बाबा का उपदेश है- "श्रीहनुमानजी के स्वरूप में परब्रह्म का साक्षात् भगवत्सेवा-विग्रह है। श्रीहनुमानजी सकल सिद्धियों के दाता 'परमकल्याणस्वरूप- सेवाब्रह्म हैं। धर्म-प्राण आर्य-धरापर शायद ही कोई जनपद, कोई नगर और कोई गांव ऐसा होगा, जहाँ श्रीहनुमानजी का छोटा-बड़ा मन्दिर या मूर्ति न हो। अखाड़ों पर, जहाँ मूर्ति नहीं है, वहाँ उनकी मिट्टी की मूर्ति बनाकर पूजा की जाती है। सच तो यह है- महावीर बाबा श्रीहनुमान भारत के तन, मन

एवं प्राण में व्याप्त हैं और वे सदा ही हमें शक्ति, भक्ति समर्पण, श्रम, निश्छल सेवा, त्याग, बलिदान आदि की प्रेरणा देते रहते हैं। परमादर्श बाबा श्रीहनुमानजी की लीलाएँ प्रकाश-स्तम्भ की भाँति हमारे कल्याण-मार्ग का निश्चित दिशा-निर्देश करती रहती हैं। श्रीहनुमानजी की भक्ति सबके लिए अनिवार्य है।"

श्री हनुमानजी के आन्तरिक स्वरूप को अपने साक्षात स्वरूप में अभिव्यक्त करते हुए बाबा लहर में डूब जाते थे। फिर थोड़ी देर तक वे मौन हो जाते और। आकाश की ओर देखते हुए वे ऐसी भाव भंगिमा में पहुंच जाते थे जैसे किसी अदृश्य शक्ति से वे मौन होते भी हुए मुखर हैं।

दृष्टि बदलने के साथ सृष्टि बदल जाती है। गीता के आठवें अध्याय के तीसरे श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण के स्वभाव को अध्यात्मक कहा है और प्राणियों के भावों को जन्म देने वाली यह सृष्टि ही कर्म कही गयी है। इस प्रकार अध्यात्म भाव जगत की वस्तु है। इस भाव में या इससे जो सृष्टि पैदा होती है यही सृष्टि सदैव भाव सापेक्ष बनी रहती है। इस कारण एक ही स्थान, एक ही समय, एकही परिस्थिति में अपने-अपने स्वभाव के अनुसार सबके अनुभव, कर्म कृपा भिन्न-भिन्न होते हैं।

समर्थगुरु रामदास (१६०८-८१)। ने शिवाजी को प्रेरणा दी थी कि वे शरीर को कपड़ों-आभूषणों से न सजाएं बल्कि बुद्धिमत्ता व समझदारी से काम लें। निध र्नों की रक्षा करें, असहायों की सहायता करें। प्रजा के कल्याण पर ध्यान दें, ध र्म का प्रसार करें। समर्थगुरु रामदास का मुख्य ग्रन्थ 'दशबोध- है। 'दशबोध' में भक्ति और कर्मयोग पर बल दिया गया है। इनकी अगाध श्रद्धा राम में थी। कलियुग में श्रीहनुमानजी सिद्ध सन्तों के रूप में ही दर्शन देते है। इस विषय वस्तु में सहायक होने के कारण समर्थगुरु रामदास सम्बन्धी यह विवरण प्रस्तुत है-

श्रीहनुमान रामायणकाल के अप्रतिम पात्र हैं। रामायण की घटना किस काल में हुई यह अनिर्णित है। ऐसी पौराधिक मान्यता है कि श्रीहनुमान कालजयी हैं। जहाँ भी रामकथा होती है हनुमानजी वहाँ किसी न किसी रूप में उपस्थित होते हैं। सीता की खोज करते श्रीहनुमान आशोक वन में गये थे जहाँ रावण बन्दिनी अपहृत माता सीता राम वियोग की व्यथा में दिन गिन रही थीं।

समर्थगुरु रामदास उन दिनों राम की कथा लिख रहे थे। जितनी कथा लिख

उठती, उसका पाठ, उस पर मन्थन विचार विमर्श वे अपने शिष्यों से प्रतिदिन करते थे। एक दिन कथा प्रवाह की अन्तसलिला अशोक वन के लता गुल्मों पर फैल गई। समर्थगुरु रामदास की भक्ति भावभाविता वाणी से सहसा स्वर गूंजा-वाह क्या छवि छटा है? अशोक वन के सभी पुष्प शुभ्र वसन-वासन में वासित अद्भुत छटा संयुक्त हैं? तभी एक शिष्य बोला- क्या सभी पुष्प शुभ्रवर्ण अर्थात् सफेद वर्ण के हैं?

गुरु- स्पष्ट देख रहा हूँ सभी पुष्प शुभ्र हैं।

दूसरा शिष्य- यहां कहाँ अशोक वन है?

सहसा लता गुल्मों में कम्पन होता है और विप्र वेषधारी अपरिचित आगन्तुक वार्ता क्रम में व्यवधान बनकर अपनी बात रखता है कि अशोक वन के सभी पुष्प रक्तवर्ण (लाल) थे।

गुरु- कैसे कह सकते हो कि अशोक वन के सभी पुष्प रक्त वर्ण के थे?

आगन्तुक - जैसे आप कह रहे हैं कि सभी पुष्प शुभ्र वर्ण हैं।

गुरु - मैं उन्हें शुभ्र वर्ण का देख रहा हूँ इसलिये कह रहा हूँ। जो देखा है वही लिखा है।

आगन्तुक- मैंने अशोकवन देखा है। अशोकवन में जब सीता-माता थीं तब सभी पुष्प लाल थे।

गुरु- मैंने सीता माता को शुभ्र पुष्प वाटिका में बैठे देखा है।

आगन्तुक- ऐसा सम्भव नहीं है।

गुरु- क्या सम्भव नहीं है?

आगन्तुक- जो आपने रामकथा में लिखा है।

गुरु -किसने लिखा है?

आगन्तुक- आपने?

गुरु- गलत।

आगन्तुक- गलत कैसे है? राम कथा आपने लिखी, पढ़ी आपने और आपही चर्चा भी कर रहे हैं।

गुरु- चर्चा मैं कर रहा हूँ। पढ़ा मैंने है। परन्तु लिखा इस कलम ने है। कलम ने स्याही का आवरण बनाया, मसि आवरण के पीछे रामकथा है, देख सको तो

देखो।

आगन्तुक- कलम तो आपके हाथ में ही थी।

गुरु- मैं किसी अन्य के हाथ में था। इसलिए रामकथा तो स्वयं उसी ने लिखी है जिसके हाथ में मैं था। अब तुम बुलाओ अपनी सीता माता को और मैं अपने उसी आराध्य को बुलाता हूँ। अभी दूध का दूध पानी का पानी हो जाता है।" ध्येयनिष्ठ समर्थगुरु के समक्ष आगन्तुक श्रीहनुमान के रूप में प्रकट हो जाते हैं। तपः पूत दोनों की अंतस्चेतना ने सत्य का साक्षात्कार किया। राम-सीता भी प्रकट हो जाते हैं।

सीता- वत्स हनुमान! असमय कैसे स्मरण किया?

हनुमान- दास का प्रणाम स्वीकार करें। अशोकवन में जब मैं गया था तब वहाँ के सभी पुष्प रक्त वर्ण के थे। समर्थगुरु रामदास का कथन है कि सभी पुष्प शुभ्रवर्णी थे।

सीता- वत्स तुम ठीक कहते हो सभी पुष्प रक्त वर्ण के थे किन्तु इसका समुचित उत्तर परम प्रभु राम ही देंगे।

समर्थगुरु- भगवन्! शंका का समाधान करें।

राम- शंका? शंका कैसे? तुम्हारे जैसी महान आत्माओं से ही लोक को दृष्टि मिलती है। तुमने लौकिक आचार के लिये मार्गदर्शक तत्व दिया है। हनुमान ! तुम लंका में क्या करने गये थे?

हनुमान- सीता माता की खोज करने।

राम- उस समय तुम्हारे मन, इन्द्रियों और प्राण की क्या गति थी?

हनुमान- मन वन वेग से उड़ रहा था। प्राण आततायी के वध के लिये ऊर्जावान हो रहा था। इन्द्रियाँ क्रोध से लाल हो रही थीं।

राम- वत्स हनुमान ! तुम्हारे अंतसवृत्तियों की प्रतिछाया हर लता गुल्मों पर पड़ रही थी इसलिये वे तुम्हें लाल दिखाई पड़े। वत्स समर्थ गुरु रामदास!

गुरु- जी महाप्रभु?

राम- तुम अशोकवन में क्या करने गये थे?

गुरु- रावण पालित लंका में सद्गुण थे या सर्वांश में तिरोहित हो गये थे- यह देखने गया था।

राम- तुम्हारी अंतवृत्तियां उस समय कैसी थीं?

गुरु- शान्त-धीर-गम्भीर जिज्ञासु वृत्ति लेकर गया था।

राम- इसीलिये तुम्हें सारे पुष्प शुभ्र वर्ण के दिखाई पड़े। उन पुष्पों में रंग नहीं थे। तुम्हारे आँखों के रंग थे जो पुष्पों में आभासित हो रहे थे।

यह दृष्टांत छोटा है किन्तु गूढ़ार्थ से भरा हुआ है। रंग पुष्पों में नहीं होता है, अब विज्ञान ने इसे प्रमाणित कर दिया है। रंग सूर्य की रश्मियों का होता है जिसे पुष्प ग्रहण करते हैं। किसी घटना को हम अपनी मनोवृत्तियों के अनुकूल देखते हैं। इसका वैज्ञानिक रूप भी है।

प्रीज्म एक प्रकार का तिकोना सीसा है। रवि रश्मियां जब प्रीज्म पर पड़ती हैं, उसके परिणामस्वरूप सात रंग स्पष्ट और पृथक पृथक विकीर्ण हो जाते हैं। पौराणिक आख्यानों में सूर्य को सात घोड़ों पर सवार सारथी कहा गया है। यही सात रंग सूर्य के सात घोड़े हैं। वैज्ञानिक प्रयोगों से पता चला है जो पदार्थ-पुष्प या कोई वस्तु इन सातों रंगों को अवशोषित कर लेता है वह दृष्टि पथ पर काला दिखाई पड़ता है। जो सभी रंगों को परावर्तित कर देता है, वह सफेद शुभ्र दिखाई पड़ता है। जो किसी एक रंग को परावर्तित कर देता है उसका स्वरूप उसी रंग का हो जाता है। पुष्प या पदार्थ का अपना कोई रंग नहीं होता। यह सूर्य की रश्मियों का रंग है जो किसी पदार्थ या पुष्प को रंग विशेष प्रदान करता है। पदार्थ और रवि रश्मियों के अतिरिक्त दृष्टा तीसरा व्यक्ति होता है उसकी अंतःसचेतना रंग की पहचान रखती है। श्रीहनुमान अशोक वन में एक विशेष मनःस्थिति में गये थे। उस विशेष स्थिति में अंत संचेतना पर पुष्पों की पड़ने वाली प्रतिछाया स्वयं उसी की प्रतिध्वनि दे रही थी। समर्थगुरु रामदास शोक-मोह-क्रोध जनित विकारों को शोषित कर पूर्ण निश्चित मन से सभी राग-विराग का त्याग कर शान्तभाव से स्वाभाविक स्थिति में थे इसलिये उन्हें पुष्प दिखाई पड़े जो शुभ्र थे।

इस दृष्टान्त का दूसरा पक्ष विज्ञान के लिए गंभीर चुनौती है। विज्ञान की मान्यता है भूत को वर्तमान में नहीं लाया जा सकता। अध्यात्म कहता है कि भूत कोई चीज है ही नहीं, समय चक्र है। चक्र घूमता रहता है। इस पक्ष की व्यापक समीक्षा कौतुहलमय होने के कारण आवश्यक है। किन्तु इस पर आने के पूर्व महाभारत के आश्रमवासिक पर्व की एक घटना का दृष्टान्त रूप उल्लेख करना

समीचीन प्रतीत होता है।

महाभारत युद्ध के पश्चात् महर्षि व्यास ने शेष बचे स्त्रियों–पुरुषों को आदेश दिया कि तुम सब लोग गंगा तट पर चलो, वहां तुम लोगों को युद्ध में मारे गये तुम्हारे सब आत्मीयजन दिखायी पड़ेंगे।

व्यासजी के आदेश के अनुपालन में सभी लोग गंगातट पर पहुच कर रात्रि की प्रतीक्षा करने लगे। रात्रि होने पर व्यासजी ने गंगाजी के जल में प्रविष्ट होकर मृतात्माओं का आह्वान किया। तत्काल ही कौरव व पाण्डव पक्ष के समस्त वीर सेनासहित जल से बाहर निकले। जिस वीर के जो ध्वजा, वाहन और वस्त्र थे, वे उसी वेशभूषा में बाहर आए। किन्तु अब उनमें पूर्व जैसा अहंकार, क्रोध, ईर्ष्या आदि नहीं थे। उनके आगे गन्धर्व गाते बजाते चल रहे थे, अप्सराएं नाच रही थीं और बन्दीजन उनकी विरुदावली गा रहे थे। वे सब मृतात्माएं जीवित पुरुषों से मिलीं और भेटीं। पिता पुत्र से, स्त्रियां अपने पतियों से, भाई–बहनों से और मित्र मित्रों से व्यासजी की बताई हुई विधि के अनुसार बड़े प्रेम से मिले। रात्रिभर यह कार्यक्रम चलता रहा। रात्रि व्यतीत हो इससे पहले ही वे सब मृतात्माएं जैसे आई थीं वैसे ही जल में घुस कर अन्तर्धान हो गयीं। जन्मांध धृतराष्ट्र ने पहली बार दिव्य दृष्टि के कारण अपने पुत्रों को देखा। अन्यान्य साध्वी स्त्रियों ने अपनी पति के सानिध्य को प्राप्त करने के लिये प्रातः गंगा जल में प्रवेश कर आत्मोसर्ग कर लिया।

मानव, ईश्वर का अंश ही नहीं इस सृष्टि में उसका सर्वोत्तम प्रतिनिधि भी है। सृष्टि के विधान, जिसे नैसर्गिक नियम कहा जाता है जिससे मानव ने बहुत कुछ सीखा है, विज्ञान उसी सीख का परिणाम है।

समर्थगुरु रामदास की दृष्टि में अशोक वन के पुष्प और महाभारत की आश्रम वासिक उपरोक्त घटना तथा ब्रह्मर्षि योगिराज श्रीदेवरहाबाबा, ब्रह्मवेत्ता श्रीदेवरहाहंसबाबा के विषय में प्रस्तुत विवरण यह प्रमाणित करते हैं कि– विश्व की किसी वस्तु का कभी विनाश नहीं होता– यह विज्ञान सम्मत है– उसमें रूपान्तरण होता है। रूपान्तरण की दो विधियां हैं– रासायनिक परिवर्तन या भौतिक परिवर्तन। रासायनिक परिवर्तन में दो यौगिक मिल कर तीसरे यौगिक का निर्माण कर देते हैं। भौतिक परिवर्तन में किसी पदार्थ के घटक दल अपने

मूल रूप में आ जाते हैं।

गीता के दूसरे अध्याय के श्लोक १६ में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो नहीं है वह कभी नहीं होता। जो है उसका अन्त नहीं होता। आगे कहा गया है कि मैं कभी न हुआ तुम और ये राजा भी पहले न रहे हो, ऐसा भी नहीं है। आगे भी हम नहीं होंगे, ऐसी बात भी नहीं। हम सदा से हैं और रहेंगे। गीतोक्त कथन को विज्ञान प्रमाणित करता है अविनाशिता के सिद्धान्त से। बाबा कहते हैं- था था था था था था था, हूँ हूँ हूँ हूँ हूँ हूँ ही, हुंगा हुंगा हुंगा ही।

अस्तु जीवन में राग, द्वेष, मद, मोह, मत्सर, काम, क्रोध का प्राबल्य होता है, रासायनिक परिवर्तनों के कारण वे वर्षा की बूदों के साथ धराधाम पर लौट आते हैं और भूमि में मिलकर पुनर्जन्म की स्थिति को बारम्बार प्राप्त होते ही रहते हैं। किसी युग विशेष में आततायी, आतंकवादी, व्यभिचारी घटनाओं के बढ़ने के कारण आसुरी शक्तियों के बारम्बार लौटने की प्रक्रिया को अध्यात्मवेत्ता देखता है। इसलिये सद् आचार-विचार जिसे दैवीगुण कहा गया है, अपनाने पर बल देता है।

सद्वृत्तियों का नाश नहीं होता। मूल स्रोत बनाए व बचाए रखते हुये उसमें भौतिक परिवर्तन हो जाता है। शरीर न होने पर भी शरीरगत अनुकृति शेष बची रहती है। फोटोग्राफी या वीडियोग्राफी का उदाहरण दिया जा सकता है। फोटोग्राफी में वर्ण के विपरीत पहले निगेटिव बनती है फिर निगेटिव से पाजिटिव चित्र बन जाता है। यदि इसमें रासायनिक प्रतिक्रिया न हो तो चित्र दीर्घकाल तक वर्तमान स्थिति में बना रहता है। इस प्रकार भूत वर्तमान में, वर्तमान से भविष्य तक चित्र यात्रा करता है। जिस सिद्धान्त पर चलचित्र सिनेमा की गतिविधि संचारित होती है, उसमें मानवीय दृष्टि सत्य से अनजान बनी एक ही रूप माधुरी का रसपान करती है जबकि सेकेन्ड के अन्तराल में ३३ से अधिक चित्र अतिक्रमित होते रहते हैं- यह विज्ञान की खोज है।

अध्यात्म प्रकृति, पुरुष, काल, कर्म को अनादिकालिक से तत्व मानता है- जिसका लय नित्य निरन्तर निराकार में होता है। निराकार ब्रह्म आदि और कारण तत्व है। प्रकृति-पुरुष जीवात्मा, काल, जरामरण रहित है। कर्म की गति टालने से नहीं टलती किन्तु कर्म के फल में आसक्ति न होने से मोक्ष सहज हो जाता

है। मोक्ष हीं सद्प्रवृत्ति का परिणाम है जिसका अर्थ है पुनर्जन्म से मुक्ति। सद्प्रवृत्ति योग के कौशल में है।

महाबाहु अर्जुन ने श्रीकृष्ण से प्रश्न किया कि असंयम के कारण जिसका मन योग से हट गया है, ऐसा पुरुष योग में सफल न होने पर किस गति को प्राप्त करता है? श्रीकृष्ण ने बताया कि कल्याण का साधक दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। ऐसा योगभ्रष्ट व्यक्ति पुण्य आत्माओं के लोकों को प्राप्त कर अनेक वर्षों तक वहाँ रहकर फिर पवित्र श्रीमंत लोगों के घरों में जन्म लेता है। (गीता ६/३७)

विज्ञान उक्त सन्दर्भों में आध्यात्म की पुष्टि करता है। जितने भी जीव जन्तु सृष्टि में हैं प्रकृति में उनकी मूल छवि है। निगेटिव उसकी छाया है जिसमें नित्य नए परिवर्तन के कारण वह बनती-बिगड़ती रहती है। प्रक्रिया विशेष का ज्ञान होने पर मूल छवि को दृष्टि पथ पर लाया जा सकता है, जैसा कि महाभारत के आश्रम वासिक पर्व में और समर्थगुरु रामदास की कथा में बताया गया है। प्रक्रिया विशेष योग का महत्वपूर्ण विषय है। विज्ञान उसे होने का अनुमान देता है। अनुमान सच होगा यह समय के गर्भ में है।

गीता के अनुसार योगभ्रष्ट की आत्माएं पुण्यलोक को प्राप्त कर वहां विश्राम करती हैं। योग से ज़िनका सम्बंध नहीं वह अपात्र व्यक्ति पुण्यलोक में जाने के पहले ही पृथ्वी पर विभिन्न रूपों में अपने कर्म का फल भोगने के लिये लौट आता है। पापात्माओं का भार पृथ्वी भी सहन नहीं कर पाती। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने तद्विषयक विचारणीय रूपक प्रस्तुत किया है-

- अतिसय देखिधर्म के ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी ।।
- गिरि सरि, सिन्धु भार नहिं मोही। जरू मोहि गरुअ एक परद्रोही।।

महाभारत काल में जितनी पुण्य आत्माएं एक साथ धराधाम पर आविर्भूत हुईं, उतनी कभी किसी काल में एक साथ नहीं आई थीं। शौर्य, पराक्रम, दान, धर्म के कीर्तिमान महाभारत में स्थापित हुए तो अमर्ष-क्रोध-लोभ-मोह के सुमेरू भी उसी काल में थे। महाभारत में भारत का पराक्रम ही नहीं प्रज्ञा भी पराभूत हुई। त्याग, तप, भक्ति-योग के साथ तिमिराच्छन्न, ज्ञान, विज्ञान का सारस्वत स्रोत सूख गया। परिणामस्वरूप गीता के एकेश्वरवाद के आधार पर विकसित इस्लाम धर्म भारत भूमि पर फैला-फूला, हमारे ऊपर प्रभावी हुआ और अपनी उपासना पद्धति

की पृथकता के कारण मूल धारा से पृथक हो गया। हमने उसे सहन ही नहीं किया। तब तक भोगा जब तक मानवतावादी दृष्टि विस्तार के साथ पश्चिम की भौतिकवादी उपभोक्ता संस्कृति ने अपने स्वार्थी पंजों से उसे पूरी तरह दबोच नहीं लिया। हम मूक द्रष्टा बने देखते रहने के अतिरिक्त कुछ न कर सके। भारत का विज्ञान पश्चिम की साइंस नहीं है। साइंस का भाषान्तर विज्ञान नहीं है। साइंस का अर्थ है जानकारी, प्रयोग द्वारा निर्धारित करना, प्रमाणित करना, सामान्य सिद्धान्त के निमित्त नियमीकरण, जानकारी या अध्ययन का एक विभाग या शाखा, प्रशिक्षित योग्यता। भारत का विज्ञान पश्चिम की साइंस से अधिक और इसके ऊपर है। गीता के सातवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने विज्ञान का उल्लेख किया है जो अन्यत्र विविध सन्दर्भों में है। परमतत्व की प्रत्यक्ष जानकारी का नाम ज्ञान है। महापुरुष एक साथ सर्वत्र जो कार्य कर लेते हैं, उस क्षमता का नाम विज्ञान है। प्रकृति के द्वन्द्व से निकाल कर एकात्मक ब्रह्म से तादात्म्य करा देना भारतीय विज्ञान है। इस प्रकार के विज्ञान से विध्वंस विकास के लिए, प्रकाश के लिए, उत्कर्ष के लिए होता है। भारतीय विज्ञान के कुछ उदाहरण आज के विज्ञान के लिए चुनौती हैं बिना लक्ष्य देखे जयद्रथ द्वारा हर कर ले जा रही द्रौपदी को अर्जुन ने जो वाण मारा, उससे कोई मरा नहीं लेकिन रथ विदीर्ण हो गया। भीष्म ने युद्ध का अंत करने के लिये नारायण नामक अस्त्र छोड़ा, भस्म होती हुई पाण्डवी सेना को बचाने के लिए कृष्ण ने भीष्म की तरफ पीठ कर लेने को कहा और नारायणास्त्र शान्त हो गया। कृष्ण का चक्रसुदर्शन, अर्जुन का गाण्डीव अन्यान्य प्रकरणों में भारतीय विज्ञान की उत्कृष्टता प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन्हें उपेक्षित करना राष्ट्र हित में नहीं है।

भारतीय विज्ञान अध्यात्म का पूरक है, सत्ववृत्तियों का पोषक है तथा सबके कल्याण में विश्वशान्ति का सन्देश देता है।

श्रीहनुमानजी कलिकाल में प्रभावी सिद्ध देवता हैं। पौराणिक आख्यानों में उन्हें भगवान सदाशिव से उद्‌भूत कहा गया है। रामकथा के आदि आचार्य महेश्वर शिव ही सुविख्यात हैं- 'राम महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा।।' "रामचरितमानस" के अनुसार श्रीरामकथा में शिव की भूमिका, भगवान श्रीराम के प्रति सेवक, स्वामी और सखा के रूप में प्रतिष्ठित है। यथा- "सेवक

स्वामि सखा सिय पीके। हित निरूपधि सब विधि तुलसी के।।' भूमिका-त्रयी में महेश्वर शिव का परम सुखद सेवक चरित, पूर्व संकल्प से आबद्ध है-

"गुपुत भेष अइहौं श्रीकान्ता। रुद्र एकादस हुइ हनुमंता।।" (श्रीशिव चरितमानस) एतत् मारुतसुत का आविर्भाव एकमेव "रामकाज' सम्पादन हेतु हुआ है। मानसोद्धृत है- 'रामकाज लगि तब अवतारा।' जिसके सम्यक् निष्पादन में श्रीहनुमांनजी ने सेवक 'सेव्य भाव' की सुष्ठु-स्थापना की है। एतदर्थ श्रीहनुमानजी ने यथा अवसर सभी को सचेत किया है और सिद्ध सन्तों के स्वरूप में दर्शन देकर तथा रामकथा श्रोता के रूप में उपस्थित होकर आज भी अपनी भूमिका का निष्पादन कर रहे हैं।

कलयुग के इस चरण में ब्रह्मवेत्ता श्रीदेवरहा हंसबाबा महायोगी-सिद्धसन्त में श्रीहनुमानजी समाहित हैं। हनुमत्स्वरूप बाबा शास्त्रज्ञ हैं, उनका चरित्र अत्यन्त महान् है, तथापि उनको अहंकार नहीं है। वे तेजस्वी, बुद्धिमान, नीतिविद्, विनयी और तपपरायण हैं। कार्य में अनिच्छा, क्रोध, चपलता, भय, दीर्घसूत्रता आदि दोषों से वे मुक्त हैं। वे कभी भी अपने वचन को अन्यथा नहीं करते हैं। वे आत्मतत्वज्ञ, क्षमाशील, शान्त, जितेन्द्रिय, सरल और सत्यवादी हैं। वे ईश्वर में दृढ़ भक्तिसम्पन्न, चित्त की हीनता से मुक्त, अहिंसक और मोहरहित हैं। वे सुशील, लज्जाशील एवं मधुरभाषी हैं। वे तितिक्षा परायण है। किसी की वे अवज्ञा नहीं करते। समबुद्धि-सम्पन्न होने के कारण उनका न कोई विशेष प्रिय है, न कोई विशेष अप्रिय। वे महापण्डित हैं, वाग्वी और आलस्यहीन हैं, किन्तु हठी या जिद्दी नहीं हैं। उन्हें क्रोध या लोभ नहीं है। सम्मान पाने के उद्देश्य से किसी कार्य में रत नहीं होते। अपनी प्रशंसा वे कभी नहीं करते, न अपनी प्रशंसा सुनते है। वे मधुरभाषी हैं। वे मनुष्यों के विचित्र आचरण देखते हैं किन्तु किसी की निन्दा नहीं करते। मनुष्य-मनुष्य के बीच मेल मिलाप कराने में वे निपुण हैं। वे किसी विषय में आसक्त नहीं है, फिर भी ऐसा लगता है मानो वे सभी विषयों के प्रति आग्रहशील हैं। किसी विषय में स्थिर सिद्धान्त में उपनीत होने में उन्हें देर नहीं लगती। वे अपने विश्वास के अनुसार चलते हैं, किन्तु दूसरों के मत के प्रति अवज्ञा का प्रदर्शन नहीं करते। लाभ होने पर वे आनन्दित या क्षति होने से व्यथित नहीं होते। वे स्थिर बुद्धि और अनासक्त हैं। परावाणी उच्चारण-गायन द्वारा बाबा केवल

स्वयं ही आनन्द मग्न नहीं रहते, बल्कि इस दुःखी जगत् को भी आनन्द प्रदान करते हैं। इन सारे सद्‌गुणों से विभूषित बाबा सर्वत्र सबके द्वारा पूजित श्रीहनुमानजी ही हैं।

एक अवसर पर मंचासीन ब्रह्मवेत्ता श्रीदेवरहाहंसबाबा ने अति प्रसन्न मुद्रा में मुझसे कहा- "बच्चा ! मैं तो "रामचरित सुनिबे को रसिया" हूँ। कुछ देर मेरी ओर रहस्यमयीं दृष्टि से देखते हुए बाबा ने अपने कर-कमलों में एक रजिस्टर उठाया और स्तम्भित कर देने वाली गति से लिखना प्रारम्भ कर दिया। बाबा की मुखमुद्रा, शारीरिक थिरकन (जिसे आजकल "बाडी लैंग्वेज" कहा जाता है) अद्‌भुत और अलौकिक थी, दिव्य थी और मनुष्येत्तर थी। मुझे लगा कि कहीं अन्तरिक्ष से बाबा को कोई अदृश्य शक्ति 'श्रीरामचरित' सुना रही है। फिर मुझे लगा कि कहीं अन्तरिक्ष से बाबा के चारों ओर कोई शक्तिपुंज वृत्ताकार रूप में घूम रहा है और बाबा उस अवस्था में लिखते चले जा रहे हैं। यह क्रम लगभग पन्द्रह मिनटं तक चलता रहा। जब बाबा की लेखनी रुकी तो रजिस्टर में जहां से उन्होंने लिखना प्रारम्भ किया था, उस पृष्ठ की उस पंक्ति के सूत्र पर उंगली रखी और जहाँ तक लिखा था- वहां तक गिनकर बताया- "बच्चा ! अभी एक सौ पचास सूत्र लिखे और अब तक लभग ५४ हजार सूत्र पूरे हो चुके हैं। तू छपइया है (ग्रन्थों में छपवाने वाला), ये रजिस्टर ले, कलम लें, और अपनी कापी में कुछ सूत्र लिख ले। भक्तों का, सुनने, पढ़ने वालों का कल्याण होगा।" ये सूत्र इस प्रकार हैं-

- राम दर्शन राम योग नाम योग राम।
- राम दर्शन सर्वम ध्यान राम राम राम।
- राम दर्शन एक दृष्टि नाम सत्य राम।
- राम दर्शन सर्वशक्ति ज्ञान दर्शन राम।
- राम दर्शन सर्वज्ञ भाव समदर्शन राम।
- राम दर्शन संग प्रेम राम पूर्ण राम।
- राम दर्शन एक संग सत्यसंग राम।
- राम दर्शन सत्य रूप ध्यान प्रेम राम।
- राम दर्शन सत्य भाव ध्यान दर्शन राम।

- राम दर्शन नित्ययोग संगयोग राम।
- राम दर्शन पूर्णदृष्टा सत्य एक राम।
- राम दर्शन सम दृष्टा राम रूप राम।
- राम दर्शन सत्यज्ञान रूप दर्शन राम।
- राम दर्शन पूर्णदृष्टा सत्य राम राम।
- राम दर्शन सत्य-योग ध्यान योग राम।
- राम दर्शन सत्य एक ध्यान प्रेम राम।
- राम दर्शन समदृष्टि राम एक राम।
- राम दर्शन सत्य योग रामदर्शन राम।
- राम दर्शन पूर्ण पूर्ण ध्यान पूर्ण राम।
- राम दर्शन पूर्ण भाव सत्य दर्शन राम।
- राम दर्शन एक योग सत्य ध्यान राम।
- राम दर्शन सत्य ध्यान सत्य प्रेम राम।
- राम दर्शन सत्य दृष्टि राम सत्य राम।
- राम दर्शन सत्य ज्ञान पूर्ण पूर्ण राम।
- राम दर्शन सत्य ध्यान पूर्ण राम राम।
- राम दर्शन सत्य प्रेम ध्यान पूर्ण राम।
- राम दर्शन ध्यान सत्य प्रेम ध्यान राम।
- राम दर्शन सत्य प्रेम पूर्ण ध्यान राम।
- राम दर्शन सत्य योग पूर्ण निष्ठ राम।
- राम दर्शन सत्य निष्ठ रूप दर्शन राम।
- राम दर्शन सत्य रूप नाम ध्यान राम।
- राम दर्शन सत्य ज्ञान दिव्य ध्यान रूप राम।
- राम दर्शन सत्य निष्ठ राम रूप राम।
- राम दर्शन सत्य सत्य रूप ध्यान प्रेम राम।
- रमा दर्शन सर्व भाव नाम शरण राम।
- राम दर्शन सत्य दृष्टि राम रूप राम।
- राम दर्शन सर्वज्ञान नाम रूप राम।

- राम दर्शन सत्य दर्शन निष्ठ राम सत्य रूप राम।
- राम दर्शन सत्यदृष्टि राम रूप राम।
- राम दर्शन सत्य दर्शन ज्ञान राम राम।
- राम दर्शन सत्ययोग दिव्य योग राम।
- राम दर्शन पूर्ण रूप एक रूप राम।
- राम दर्शन सम दर्शन रूप राम राम।

मैं उपरोक्त सूत्र बाबा द्वारा लिखित रजिस्टर से अपनी डायरी में लिखता रहा और इस बीच अन्य आये हुए दर्शनार्थी भक्तों को बाबा प्रसाद आदि के साथ उनका कुशल क्षेम पूछते- करते रहे। जब लगभग सभी भक्त दर्शनार्थी जा चुके थे तब बाबा ने मेरी ओर देखा और मंच के और निकट-सम्मुख बुला लिया। बाबा ने बताया कि "बच्चा ! लहर आती है और ये सूत्र लिखना प्रारम्भ हो जाता है।"

आज के दिन बाबा ने "प्रभुचरित्र सुनिबे को रसिया" कह कर जिन सूत्रों की रचना कर, सुनाकर और उपदेश स्वरूप जो कुछ किया और कहा उससे मन में पहली जिज्ञासा जो उत्पन्न हुई- कि बाबा ने क्यों कहा कि "राम चरित सुनिबे को रसिया?'

"श्रीहनुमान चालीसा" में श्रीहनुमानजी को- "प्रभुचरित्र सुनिबे को रसिया" कहा गया है।

इस का शाब्दिक अर्थ है कि श्रीहनुमानजी प्रभु श्रीराम की कथा सुनने में बहुत रस लेते हैं। इसलिए उन्हें 'रसिया' कहा गया है। इसीकारण अर्थात् अपनी भक्ति, प्रेम, सेवा और समर्पण के कारण ही श्रीहनुमानजी राम, लक्ष्मण और सीताजी के मन में बसे हैं।

इसका आध्यात्मिक अर्थ बहुत ही महत्वपूर्ण है। श्रीहनुमानजी भगवान (प्रभु) के चरित्र और गुणों को सुनने और कहने में इतना रस लेते हैं, जिसकी कोई सीमा नहीं है। उन्होंने ऐसा शरीर धारण कर लिया है और भगवान् के साथ सम्बन्ध भी ऐसा जोड़ लिया है कि जहाँ कहीं जिस समय भी रामकथा होती है, वहां, श्रीहनुमानजी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, बिना प्रगट हुए, अवश्य उपस्थित होते हैं और कथा के आनन्द से आत्मविभोर हो उठते हैं। रामकथा सुनने में न

उन्हें अपनी सुध रहती है और न ही संसार की। "प्रभुचरित्र सुनिबे को रसिया" श्रीहनुमानजी का एक प्रसंग श्रीरामचरितमानस में आता है। लक्ष्मणजी मूर्च्छित हैं। यदि सूर्योदय के पूर्व संजीवनी बूटी द्रोणगिरि से नहीं आती, तो लक्ष्मणजी प्राण खो देंगे। श्रीहनुमानजी संजीवनी बूटी लेने के लिए द्रोणगिरि जा रहे हैं। रास्ते में रावण ने व्यवधान उत्पन्न करने के लिए कालनेमि नामक राक्षस को भेजा है। कालनेमि जानता था कि श्रीहनुमानजी को रोकने के लिए 'रामकथा' ही एकमात्र उपाय है। इसलिए उसने एक सुन्दर आश्रम का निर्माण कर 'रामकथा' कहना प्रारम्भ कर दिया। रामकथा सुनना श्रीहनुमानजी की कमजोरी है। वे अति महत्वपूर्ण कार्य (संजीवनी बूटी लाना) को छोड़ कर कालनेमि के आश्रम में 'रामकथा' सुनने के लिए रुक गये। रुके ही नहीं-आश्रम में जाकर का कालनेमि अर्थात् 'रामकथा' कहने वाले को प्रणाम भी किया। यथा–

जाइ पवनसुत नायउ माथा। लाग सो कहै राम गुन गाथा।
होत महा रन रावन रामहिं। जितिहहिं राम न संसय या माहिं।।

कालनेमि राक्षस वहाँ कपटी का वेश बनाकर विराजमान था। वह अपनी माया से मायापति के दूत को मोहित करने का व्यर्थ प्रयास कर रहा था। अन्ततोगत्वा कपट का निराकरण हुआ। श्रीहनुमानजी कपटवेशधरी कालनेमि को मारकर रामकाज अर्थात् संजीवनी बूटी लाने आगे बढ़े। इस प्रसंग से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि रामकथा का आयोजन शुद्ध मन से, शुद्ध उद्देश्य से करना चाहिए, तभी उस रामकथा में श्रीहनुमानजी पधारते हैं तथा उसे सफल करने में सहायता करते हैं।

श्रीहनुमानजी का पराक्रम व शौर्यगाथा तो अपरम्पार है, लेकिन रामकथा में उनका अनुराग अद्भुत है। जहां-जंहां भी रामकथा, रामकीर्तन या श्रीरामचरितमानस का पाठ होता है, वहां वहां- श्रीहनुमानजी अवश्य उपस्थित होते हैं। रामकथा में ही गोस्वामी तुलसीदास को काशी में श्रीहनुमानजी का दर्शन हुआ। काशी के रामनगर की रामकथा में ही पंडित राधेश्याम रामायणी को श्रीहनुमानजी का दर्शन हुआ था। कलियुग में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जहाँ रामकथा में श्रीहनुमानजी का दर्शन भक्तजनों को हुआ। श्रीहनुमानजी सतयुग में थे, त्रेता में थे, द्वापर में अर्जुन के रथ पर ध्वजा पर बैठे थे और कलियुग में जहां भगवान् राम की कथा होती

है वहां आसन लगाकर विराजमान हो जाते हैं। किसी ने पूछा था कि आश्रम में बाबा "राम का नाम दर्शन परावाणी" क्यों गाते तथा उन्होंने कुछ बोलने का अनुरोध किया। मैंने कहा कि बाबा राम का नाम इसलिए कहते गाते हैं कि श्रीहनुमानजी पृथ्वी पर स्थित है तथा श्रीहनुमानजी का संकल्प है कि महीतल पर जब तब रामकथा होगी, मैं रहूँगा, अन्यथा मैं चला जाऊँगा। बाबा में से श्रीहनुमानजी चले न जायें, इस धराधाम को त्याग न दें, इसलिए बाबा राम कथा कहते हैं।"

विद्वान भक्तगण रामकथा प्रारम्भ होने के पूर्व एक आसन श्रीहनुमानजी का भी लगा देते हैं। भक्तों यहां का विश्वास है कि रामकथा में श्रीहनुमानजी पधारेंगे ही। इस कारण उनके लिए आसन लगा दिया जाता है। श्रीहनुमानजी को प्रभुराम का गुणगान सुनने को मिले, इससे बढ़कर उन्हें किसी और वस्तु से प्रसन्नता नहीं होती। रामकथा उनके जीवन का आधार है। श्रीहनुमानजी सीतान्वेषण के समय लंकानगरी में परेशान हैं। लेकिन राक्षसों की नगरी लंका में 'रामनाम'- अंकित भवन देखकर उन्हें प्रसन्नतता हुई। विभीषण उठकर रामनाम जपने लगे। इससे उन्हें अधिक प्रसन्नता मिली। श्रीहनुमानजी ने विचार कर यह निश्चय किया कि इन सज्जन पुरुष से हठ करके पहचान करूँगा। श्रीहनुमानजी- विभीषणजी के पास विप्र रूप में गये। विभीषण ने उनका परिचय जानना चाहा। श्रीहनुमानजी ने सोचा कि रामकथा से बढ़कर अन्य क्या परिचय दिया जा सकता है। उन्होंने रामकथा कहने के बाद अपना नाम बताया।

विभीषण से माता जानकी का पता पाकर श्रीहनुमानजी अशोकवाटिका पहुँचते हैं। उसी समय रावण भी राक्षसियों को लेकर माता सीताजी के पास आता है। वह विभिन्न प्रकार से माता जानकी को डराता है। श्रीहनुमानजी तरुपल्लव में छिपकर राक्षसियों द्वारा माता सीता को धमकाते हुए भी देखते हैं। रावण के जाने के बाद उसके निर्देश से राक्षसियों द्वारा माता जानकी को डराने धमकाने का दृश्य भी उन्होंने स्वयं देखा। उसी समय श्रीहनुमानजी ने प्रभुराम द्वारा प्रदत्त 'रामनाम' अंकित अंगूठी सीताजी के सम्मुख डाल दी जिसे पाकर जगज्जननी सीताजी को आश्चर्य भी हुआ और संतोष भी मिला। सीताजी संशय की स्थिति में थीं। उसी समय श्रीहनुमानजी प्रभुराम के गुणों का वर्णन करने लगे, जिसे सुनते ही जगज्जनी

का दुःख भाग गया।

इसीलिये श्रीहनुमत्स्वरूप देवरहाहंसा बाबा 'रामचरित सुनिवे रसिया' है। श्रीराम का गुणगान अमृतवाणी है। यह परावाणी है। इसका पान बाबा श्रीहनुमानजी स्वयं करते हैं और दूसरों को भी कराते हैं जिससे संसार के सभी प्राणियों का संकट तथा संशय दूर हो जाते हैं। 'रामकथा' सुनने से संकट दूर होता है और प्राणी को शान्ति तथा सुख का अनुभव होता है।

"राम-चरित्र सुनिबे को रसिया" यानि की बाबा श्रीहनुमानजी के पास "रामरसायन" भी है। जिज्ञासा होती है कि रामरसायन क्या है? रसायन दो शब्दों रस + आयन से बना है। रस और आयन दोनों शब्दों का विस्तृत अर्थ है। साध ारण भाषा में फलों के द्रवीय भाग को रस कहा जाता है। जैसे सेब का रस, अंगूर का रस, सन्तरे का रस आदि। आयन का शाब्दिक अर्थ भण्डार तथा बर्तन से होता है। औषधि शास्त्र में रसायन का अर्थ विशिष्ट प्रकार से बनी औषधि ा से होता है। अध्यात्म में रस का अर्थ आनन्द होता है जैसे कथा में रस का मिलना अर्थात् आनन्द का मिलना। कहावत रूप में युक्ति है कि जो जीव जितना ही भक्ति में डूबता है उसे उतना ही रस अर्थात् आनन्द मिलता है।

'रामरसायन' एक अनुपम रस है जिसके सेवन से भक्त सभी संकटों, विकारों व पापों आदि से मुक्त हो जाता है। यह रसायन अर्थात् रामरसायन आज बाबा श्रीहनुमानजी महाराज की कृपा से ही प्राप्त होना सम्भव है। इसे न तो पैसे से, न ही भौतिक साधनों से क्रय किया जा सकता है। रसायन तो दुकानों में पैसे से बेचा जाता है। लेकिन रामरसायन किसी दुकान पर नहीं मिलता। यह तो प्रभु राम के अनन्य भक्त संकटहरण श्रीहनुमानजी से ही मिलता है। बाबा के स्वरूप में श्रीहनुमानजी रामरसायन से ही सभी रोगों का शमन तथा पीड़ा का हरण कर लेते हैं। प्रश्न उठता है कि माता जानकीजी ने 'राम रसायन' महामंत्र श्रीहनुमानजी को ही क्यों दिया?

जगद्जननी जनकनन्दिनी जानकीजी संसार के प्राणियों का कल्याण करना चाहती थीं। यह मानव कल्याण श्रीहनुमानजी से ही सम्भव था क्योंकि श्रीहनुमानजी महापराक्रमी होने के साथ-साथ ज्ञानिनामग्रगण्यम् हैं। बल, बुद्धि और विवेक की दात्री जानकीजी ने स्वयं प्राणियों के दुःख को देखा- झेला है। अतः भक्तों को

अभीष्ट फल देने की कामना भक्तवत्सला जानकीजी में है और यह अभीष्ट फल प्राणियों को 'रामरसायन' द्वारा श्रीहनुमानजी के माध्यंम से देना उपयुक्त समझकर रामरसायन उन्हें ही सौंप दिया। तब से श्रीहनुमानजी रामरसायन से मानव का कल्याण कर रहे हैं।

अधिकांश विद्वान 'रामरसायन' को राम-नाम तक ही सीमित रखते हैं। निःसन्देह रामनाम सर्वाधिक गुणों वाला मंत्र है। रामनाम जप (स्मरण) के ही कारण प्रभु श्रीराम हनुमानजी के हृदय में विराजमान हैं इस कारण बाबाश्रीहनुमानजी साक्षात् श्रीराममंदिर हैं। श्रीहनुमानजी को श्रीराम, श्रीराम का नाम, श्रीराम का धाम और श्रीराम कथा- चारों प्राप्त हैं। इस कारण राम रसायनराम नाम तक ही सीमित नहीं है। इसका क्षेत्र बहुत ही व्यापक है जैसे रामचरण, राम चरण धूलि, रामजी का कर कमल, प्रभु की वाणी तथा रामजी का दर्शन आदि।

रामचरण- प्रभु के चरणों की प्राप्ति प्रभु राम की ही कृपा से सम्भव है। प्रभु चरणों की महिमा केवट को मालूम थी। उसने प्रभु के चरण बिना धोये राम, लखन-जानकीजी को नाव में बैठने नहीं दिया। परिणामस्वरूप वह बन्धु-बान्धवों सहित इस भवसागर को पार कर गया।

रामचरण धूलि- प्रभु के चरणों की धूलि की महिमा अहिल्या जानती थी। प्रभु के चरणों की रज से पाषांण मूर्ति अहिल्या अपने महिला रूप में आ गयी और प्रभु श्रीराम की कृपा से परमधाम को प्राप्त हुई। चित्रकूट, पंचवटी आदि में जहां भगवान राम के चरण पड़े थे। उस पग की चरण रज को भक्तगण अपने मस्तक पर चढ़ाते हैं।

राम कर-कमल- प्रभु श्रीराम के कर-कमल की महिमा सुग्रीव को तब मालूम हुई जब अपने बड़े भाई बाली की मार से वह व्यथित हो गया, लेकिन प्रभु श्रीराम के कर-कमल के स्पर्श मात्र से उसके शरीर की पीड़ा समाप्त हो गयी। जटायु, जो रावण द्वारा घायल हुआ था, वह प्रभु श्रीराम के कर-कमल का स्पर्श पाते ही पीड़ा रहित हो गया था।

प्रभु राम दर्शन- प्रभु श्रीराम के दर्शन से शबरी को परमानन्द की प्राप्ति हुई थी। जटायु अधम पक्षी भी प्रभु श्रीराम के कर-कमलों के स्पर्श से पीड़ा रहित हुआ तो राम के दर्शन से भगवान के धाम को प्राप्त हुआ।

इस कलिकाल में प्रभु श्रीराम के न तो चरण, न चरण रज, न ही उनका दर्शन सुलभ है। फिर भी प्रभु श्रीराम की कृपा से उनके नामजप तथा कथा श्रवण में मानव कल्याण निहित है। रामकथा तो सत्संग से सुलभ है। सत्संग की महिमा अपार है। रामकथा से ही संसार की आसक्ति दूर होती है और आसक्ति दूर होते हुए प्रभु के चरणों में प्रीति उत्पन्न होती है। इसी प्रीति से राम कृपा सम्भव है। आज प्रभु नहीं है प्रभु के चरण भी प्राप्त नहीं हैं तो क्या हुआ- उनके चरणों में प्रीति तो सत्संग से प्राप्त की ही जा सकती है। यदि प्रभु के दर्शन पाने का समर्पण भक्त में है तो आज भी श्रीहनुमत कृपा से प्रभु का दर्शन सुलभ है। यह श्रद्धा व विश्वास से ही सम्भव है। भगवान श्रीराम तथा श्रीहनुमानजी सन्त महायोगियों के स्वरूप में अपने भक्तों को दर्शन देते हैं। इसी विश्वास के साथ निष्ठावान भक्तगण सन्तों में अपने इष्ट का दर्शन करते हैं। श्रीहनुमानजी ने गोस्वामीजी को राम लक्ष्मण का दर्शन कराया था। श्रीहनुमानजी की कृपा से ही समर्थ रामदासजी को श्रीराम का दर्शन हुआ था।

योगिराज श्रीदेवरहा बाबा प्रायः कहा करते थे- "कलियुग केवल नाम अध ारा। सुमिरि सुमिरि उतरहि भव पारा।।" रामनाम, भगवन्नाम के जाप से जीव का कल्याण होता है। कलियुग में अनेक अंवगुण हैं लेकिन एक गुण भी है। कलियुग में जो श्रीरामनाम-कीर्तन करेगा उसके घर कलि कभी भी नहीं जायेगा। सतयुग में विष्णु के ध्यान से, त्रेता में यज्ञों से तथा द्वापर में विधिपूर्ण विष्णु पूजा से जो फल मिलता है, वही फल कलियुग में भगवान के नाम कीर्तन से मिलता है।'

रामनाम के स्मरण, लेखन से मन के विकारों का शमन होता है। इससे सम्बन्धित एक कथा है।

राजमहल में काम करने वाले एक नौकर की दृष्टि राजकन्या पर पड़ गयी। राजकन्या की सुन्दरता से वह मुग्ध हो गया। उसके मन में राजकन्या को पाने का लोभ हो गया। उसकी पत्नी राजमहल की राजमाता की खास व विश्वसनीय दासी थी। अपने पति की अशान्त स्थिति से घबड़ाकर वह उसकी इस दुर्दशा का कारण जानना चाही। पति ने साफ-साफ कहा कि जबसे मैंने राजकन्या को देखा है तब से मेरा मन चंचल हो गया है। राजकन्या को पाने की मेरे में सामर्थ्य नहीं।

यही मेरे दुःख का कारण है। इस तथ्य को जानकर पत्नी भी दुःखी हो गयी। वह राजमाता की खूब सेवा करती थी। राजमाता ने दासी को दुःखी पाकर उसके दुःख का कारण जानना चाहा। दासी ने कहा- माताजी कुछ कहने का साहस नहीं है पति का सुख ही मेरा सुख है। पति का दुःख ही मेरा दुःख है।

राजमाता ने पूछा- तुम्हारे पति के दुःख का क्या कारण है? दासी ने राजमाता से पहले अपने पति को अभयदान का आश्वासन पाकर फिर पति के दुःख का कारण बता दिया।

राजमाता को सत्संग से ज्ञान प्राप्त था। सत्संग से उन्हें क्रोध पर नियंत्रण था। अपने नौकर के मन-विकार को दूर करने का विचार करके बोलीं- तेरे पति को मैं अपनी कन्या देने को तैयार हूँ। लेकिन एक शर्त है।

दासी बोली- माताजी वह क्या है?

राजमाता शान्त स्वर में बोलीं- तू उससे कह कि एक साधु का वेश बनाकर नगर से बाहर किसी वृक्ष के नीचे बैठकर 'श्रीराम श्रीराम' का नाम जप करे। अपनी आँखों को बन्द करके श्रीराम नाम का जाप करे। राजमहल से जो भी भेजा जाय उसीका सेवन करे। उसे यह अनुष्ठान छः माह तक करना होगा। इस अवधि में वह किसी से बात न करे।

राजमाता के निर्देशानुसार राजभवन का वह दास नगर से बाहर एक वृक्ष के नीचे साधु बनकर बैठ गया और अपनी आँखों को बन्द कर रामनाम जपने लगा। राजमहल से आये सत्विक भोजन को ग्रहण करने लगा।

राजमाता की सोच थी की छः मास सात्विक व सादा भोजन करने से तथा महामंत्र का नित्य जप करने से दास की बिगड़ी बुद्धि सुधर जायेगी अर्थात् उसके मन में आये विकार का शमन हो जायेगा। राजमाता का अनुमान फलीभूत हुआ। छह माह तक सात्विक व सादा भोजन तथा रामनाम के जाप से दास के कलुषित विचार नष्ट हो गये। उसका दुःख व क्लेश भी दूर हो गया।

भगवान्नाम जप से जीव का तो कल्याण होता ही है, आसपास का पूरा क्षेत्र भी पवित्र हो जाता है।

तरनतारन एक पवित्र तीर्थ धाम है। यहाँ सिक्खों का प्रसिद्ध गुरुद्वारा है। यहाँ जाने से मन को शान्ति मिलती है। यह श्रीगुरुअर्जुनदेवजी का स्थान है।

श्रीगुरुअर्जुनदेव साहब यहाँ नाम जप करते थे। नामजप के प्रभाव से ही यह स्थान तीर्थ स्थल बन गया है। दूर-दूर से लोग यहां आते हैं और मुहँमाँगी मुरादें पाते हैं।

पंजाव में अमृतसर के स्वर्ण-मंदिर को 'हर मंदिर साहब' भी कहा जाता है। स्वर्ण मंदर की तो ख्याति है ही, वहाँ स्थित एक बेरी वृक्ष मनोकामना पूर्ति के लिये विख्यात है। इस बेरी वृक्ष को श्रद्धालुओं द्वारा माथा टेकते देखकर एक स्त्री ने वहां के एक सज्जन व्यक्ति से माथा टेकने के रहस्य को जानने की जिज्ञासा प्रकट की। उस भद्रपुरुष ने कहा- "बहनजी यह दुःख भंजनी बेरी है। यहाँ इसी बेरी के नीचे एक महिला अपने कोढ़ी पति को रोगमुक्त के लिये उसे इसी पेड़ की छाया में बैठाकर स्वयं भोजन की व्यवस्था के लिये चली गई थी। उसकी अनुपस्थिति में कौए इस सरोवर से जल पीकर इसी पेड़ पर बैठते थे। उनके शरीर से जो पानी नीचे उस कोढ़ी पर पड़ा उससे उसका कोढ़ जाता रहा। जब वह महिला लौटकर आयी तो स्वस्थ हुए अपने पति को पहचान भी नहीं पायी। उसके पति ने अपनी पत्नी की शंका निवारण करते हुए कहा कि मैं ही तुम्हारा पति हूँ। उसने पत्नी की अनुपस्थिति में कौओं द्वारा गिराये जल का वृतान्त सुनाया तब पत्नी को उस सरोवर की महिमा का ज्ञान हुआ। इस जल में यह शक्ति कहाँ से आयी? कहा जाता है कि चौथी बादशाही श्रीगुरु रामदासजी महाराज ने इस स्थान पर इतना नाम जपा कि आसपास का क्षेत्र भी पवित्र हो गया। इसी नामजप का प्रभाव है कि बेरी वृक्ष से चमत्कारिक घटनायें होती हैं।

ब्रह्मर्षि योगिराज श्रीदेवरहाबाबा तथा ब्रह्मवेत्ता श्रीदेवरहाहंस वाबा का उपदेश है कि- बच्चा! हनुमानजी का ध्यान करो, भक्ति करो, नाम जपो, और उन्हें याद रखो। सांसारिक छोटी-छोटी कामनाओं की पूर्ति के लिये सर्वदा मोक्षदायक, परम कल्याण प्रदायक "श्रीराम" मन्त्र का आश्रय कभी भी नहीं लेना चाहिए। श्रीराम कृपा से श्रीहनुमान द्वारा ही मनोवांच्छित फल की प्राप्ति हो जायगी। कोई भी सांसारिक काम घटक (रुक) जाय तो श्रीरामसेवक का स्मरण करना चाहिए। श्रीहनुमानजी स्वयं कहते हैं-

कञ्छितार्थ प्रदास्यामि भक्तता राघवस्य तु।
सर्वदा जागरुकोऽस्मि रामकार्यधुरंधरः।।

"मैं श्रीराघवेन्द्र प्रभु के प्रिय भक्तों को उनकी इच्छानुसार सभी वस्तुएँ प्रदान करता रहता हूँ, मैं भक्तों की कामनापूर्ति स्वरूप श्रीराम का कार्य करने के लिए सदा तत्पर रहता हूँ।"

बाबा का स्वरूप हैं- श्रीहनुमान, और श्रीराम का स्वरूप है, श्रीहनुमान। बाबा- श्रीहनुमान प्रभु राम के नित्य दिव्य पार्षद हैं और श्रीरामचरित सुनने के लिए पृथ्वी पर चिरंजीवी हैं।

अपने श्रीहनुमत्स्वरूप के आनन्द में ब्रह्मवेत्ता श्रीदेवरहाहँसबाबा परावाणी स्वर में प्रायः गाते हैं-

मेरे प्यारे हनुमत तुम हो प्यारे हो राम के
भजते रहते हो तुम रामहि रामहि राम के
बन के ही दिखाए ही रामहि के ही राम के
प्यारे हनुमत बने हुए हो प्यारे हो ही राम के
जब जब सुमिरन करूँ करूँ हनुमत प्यारे राम के
सुन लेना तू विनय हमारी हनुमत प्यारे राम के
संकट हरन निसिवासर हे हनुमत प्यारे राम के
करते रहना प्रिय हिय हनुमत प्यारे राम के
जब जब चलूं चलूं ही तेरा बन के हनुमत प्यारे राम के
तेरा बनके तब तब चलूं चलूं ही हनुमत प्यारे राम के
जब जब देखूँ तेरा बनके हनुमत प्यारे रामके
तेरा बनके देखूँ देखूँ ही हनुमत प्यारे रामके
जब जब बोलूं बोल के बोलूँ हनुमत प्यारे रामके
तेरा बनके तब तब बोलूँ हनुमत प्यारे राम के
जब जब पाऊँ बन के पाऊँ हनुमत प्यारे राम के
तेरा बनके पाऊँ पाऊँ हनुमत प्यारे राम के
तब जब सुनूं सुंनू ही हनुमत प्यारे राम के
जब जब सोऊँ सोऊँ ही हनुमत प्यारे राम के
तेरा बन के सोऊँ सोऊँ हनुमत प्यारे राम के
जब जब पाऊँ पाऊँ ही हनुमत प्यारे राम के

तेरा बनके पाऊँ पाऊँ हनुमत प्यारे राम के
जब जब पढ़ूं पढ़ूं ही हनुमत प्यारे राम के
तेरा बनके पढ़ूं पढ़ूं ही हनुमत प्यारे राम के

सद्गुरु ब्रह्मर्षि योगिराज श्रीदेवरहाबाबा ने नाम, रूप, लीला और धाम को भक्ति साधना के चार सोपान बताते हुए कहा है कि- "ध्यान की दृढ़ता के लिए उनका अभ्यास परमावश्यक है। यह अभ्यास नाम साधना से अनायास सम्पन्न होता है क्योंकि नाम और नामी अभिन्न हैं। नामसाधना से नामी के स्वरूप पर ध्यान जमने लगता है तथा स्वरूपवृत्ति परिपक्व होने पर साधक फिर नाम पर ही लौट आता है। क्योंकि ध्यान की परिपक्वता में केवल ध्वनि ही अवशिष्ट रह जाती है।"

"भगवान के नाम भी बीजमंत्र के समान चिन्मय ही होते हैं। इसीलिए कलिकाल में नाम संकीर्तन का महान् महत्व है- *'कलौ केशवकीर्त्तनात्'* तथा *'राम नाम्नैव मुक्तिः स्यात् कलौ नान्येन केनचित्'*- इत्यादि वाक्य इस बात के प्रमाण हैं।"

सद्गुरुदेव बाबा सरकार कहते हैं-"भगवान् का यह वैशिष्ट है कि शब्द मात्र से उसी की अभिव्यक्ति होती है। सारे शब्द भगवान् के ही नाम हैं और इसका रहस्य यह है कि नाम और रूप की कल्पना सत् वस्तु में ही होती है असत् में नहीं और सत् एकमात्र भगवान् ही है। अतः सारे नाम उसीके हो सकते हैं। नाम जो भी हो उसकी महिमा भावना से परिवर्तित हो जाती है। भक्त की भावना ही नाम को चिन्मय कर देती है। इसलिए जो भी नाम भक्त के हृदय में भावना भावित हो सके, उसी का जप करना चाहिए। इसलिए संतों के यहां नाम जप का बड़ा महत्व है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो यहां तक कह दिया है-*"नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु विचार सुजन मंन माहीं।'* तथा- *"भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपे मंगल दिसि दसहूँ।।"*

"नामजप करते-करते भगवदाकार वृत्ति हो जाती है क्योंकि जप में नामी का ध्यान रहता है। एक सबसे बड़ी बात नामजप में यह है कि इसमें विधि का बंधन नहीं है और आचार-विचार का कोई नियम नहीं है। केवल भगवच्चिन्तन ही शर्त है। उसी से धीरे-धीरे भगवान् का साक्षात्कार हो जाता है।"

उपदेश की लहर में बाबा ने कहा- "बच्चा! समझे? अच्छा तो फिर से सुनो- "भक्ति के सा ानों में भगवान् का नाम-जप एक सरल, सहज और सुगम सा ान है। भगवान् राम ने शबरी को नव ाभक्ति का उपदेश देते हुए नौ सा ानों में नाम-जप को भी स्थान दिया है।" भक्ति के नौ सा ान बताते हुए, वे पांचवें सा ान का उपदेश करते हैं- *"मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।"* भगवान् राम का अभिमत है कि दृढ़ विश्वास के साथ मेरे मंत्र का जाप करना ही भजन नामक पांचवा सा ान है। भगवान् राम का कौन-सा मंत्र है? वही श्रीराम-नाम। भगवान् कृष्ण ने यज्ञों में जपयज्ञ को प्र ानता दी है। वे गीता में अर्जुन से कहते हैं- *"यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।"* भगवान् कृष्ण स्पष्ट घोषणा करते हैं कि जितने भी यज्ञ हैं- द्रव्ययज्ञ, योगयज्ञ, तपयज्ञ, स्वा याययज्ञ, ज्ञानयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, देवपूजनयज्ञ, आत्म-संयमयज्ञ, जपयज्ञ आदि उनमें भगवान् की विभूति जप-यज्ञ में ही वास करती है। भगवान् उसे सुगमता से मिलते हैं, दर्शन देते हैं, उसके निकट पहुंचते हैं, जो अनन्यचित्त से नित्य, प्रतिपल, प्रतिक्षण भगवान् का स्मरण करता है। गीता में भगवान् कृष्ण का उद्घोष है- *"अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।"*

"नाम का स्मरण नित्य हो, सतत, निरन्तर हो, तो भगवान् सुलभ हो जाते हैं। गोस्वामीजी तो स्पष्टतया साधन मार्ग बताते हुए कहते हैं कि कलियुग में केवल श्रीराम नाम का स्मरण, कीर्तन ही भगवद्भक्ति का एकमात्र सा ान है- *"कलियुग केवल नाम अ ारा।।"* तथा *"चहुँ जुग चहुँ अति नाम प्रभाऊ, कलि विशेषि नहिं आन उपाऊ। नहिं कलि करम न भगति विवेकू, राम नाम अवलम्बन एकू।।"*

नामजप में मनोयोग पर बल देते हुए सद्गुरु श्रीदेवरहाबाबा कहते हैं-"यदि मन नहीं साथ दे रहा हो तो भी भगवान् का नाम लेते जाओ। एक समय ऐसा आयेगा कि राम रोम-रोम में ठीक उसी प्रकार रम जायेंगे, जिस प्रकार हाथ द्वारा अग्नि के तापने पर उसकी गर्मी थोड़े समय में सारे शरीर में फैल जाती है। ूप शरीर के ऊपर से स्पर्श करती है, लेकिन उसकी गर्मी भीतर तक प्रवेश कर जाती है। स्नान करते समय शरीर के ऊपरी भाग से ही जल का संस्पर्श होता है, लेकिन थोड़े समय में ही जल की ठंढक भीतर तक पहुँचकर सारे शरीर को सुशीतल कर देती है। अस्तु, इसमें सन्देह नहीं कि ऊपर के मन से भी यदि

भगवान् का नाम लिया जाय तो वह अन्तःस्थल को प्रभावित और अनुप्राणित करेगा। इस सम्बन्‍ा में एक कथा है- "एक जिज्ञासु ने एक महात्मा से इसी प्रकार का प्रश्न किया था। महात्मा ने प्रश्न सुनकर जिज्ञासु को एक पत्थर फेंक कर मार दिया। भक्त चोट का अनुभव कर क्रो ा और आवेश से भर उठा। महात्मा ने शांत करते हुए कहा-देखो, पत्थर का आघात तो तुम्हारे शरीर के ऊपरी सतह पर हुआ पर चोट का अनुभव तुम्हारे भीतर हुआ, फलतः तुम कुपित हो गये ! यही बात परमात्मा के नाम लेने के साथ भी है। उनका नाम यदि ऊपरी मन से भी लिया जाये तो उसका असर अन्तःकरण पर निश्चय ही पड़ेगा। इसमें रंचमात्र भी संशय नहीं।" धर्मग्रन्थों का उल्लेख करते हुए बाबा बताते हैं-"सर्व धर्मग्रन्थों और वेदों में जो प्रतिपादित विषय है, उनमें सार वस्तु है भगवन्नाम स्मरण। गीता में स्वयं भगवान् ने कहा हैं-*"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां। योगक्षेमं वहाम्यहम्।।"* अर्थात् जो व्यक्ति अनन्य भाव से मुझ ईश्वर की उपासना करते हैं, उन भक्तों का योग-क्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ-*"तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत। तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।"* इसलिए सर्व-समर्पण कर भगवान् की शरण में जाना चाहिए। उन्हीं की एकमात्र कृपा से परमसुख शान्ति की प्राप्ति होगी, अन्यथा नहीं। कभी-कभी कोई भक्त शंका करता है कि भगवन्नाम-जप से हमें कोई सफलता नहीं मिली। ऐसा हो सकता है और उसमें कारण है, नामापरा ा। प्रायः लोग ऐसा करते हैं कि वे कुकर्म से परहेज नहीं करते, कुकर्म छोड़ना नहीं चाहते, पाप करते रहेंगे और नाम जप से उनको दूर करते रहेंगे। इस प्रकार नाम के बल पर जो कुकर्म करते हुए नाम लेते रहेंगे, उनकी मुक्ति कुकर्म से नहीं हो सकती। इसी को नामापरा ा कहा गया है- *"गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्रनिन्दनं, तथार्थवादो हरिनामकल्पनम्। नाम्नोबलाय यस्यहि पापबुद्धि, न विद्यते तस्य धर्मेहिं शुद्धिः।।"* अर्थात् "गुरु की अवज्ञा करना, श्रुति और र्मशास्त्र की निन्दा करना, आचार्यों की बातों पर विश्वास न करना, हरि के नाम और यश को केवल कल्पना समझना, नामजप का आश्रय लेकर निषिद्ध कर्म करना- ये पाप बुद्धि हैं। ऐसे नाम-जापकों के मन कभी शुद्ध नहीं होंगे।" अतः सा ाक को नामापरा ा-दोष से बचकर भगवन्नाम का स्मरण और चिन्तन करना चाहिए, तभी वह लाभदायक और सुख-शान्ति-दायक हो सकता है।"

बाबा ने भगवन्नाम को अमोघ शक्ति बताते हुए कहा है कि संसार में तीन प्रकार के कष्ट हैं- आधिदैहिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। शरीर सम्बन्धी जो कष्ट हैं, उन्हें 'आधिदैहिक' कहते हैं। आधिदैविक कष्ट वे हैं जो दैव द्वारा होते हैं- जैसे अग्निकाण्ड, सूखा पड़ जाना, बाढ़ आ जाना इत्यादि। आधिभौतिक कष्ट वे हैं, जो जीवों द्वारा मनुष्यों को भोगने पड़ते हैं जैसे सांप का काटना, बिच्छू का डंक मारना तथा अन्यान्य छोटे बड़े जीवों द्वारा मनुष्य शरीर पर आक्रमण। इन्हीं तीन कष्टों या तापों से मनुष्य व्याकुल रहता है। इनसे मुक्ति पाने की सबकी सतत इच्छा होती है और तदनुकूल लोग भाँति-भाँति के प्रयत्न भी करते हैं। इन सब प्रयत्नों में सबसे सरल और सुलभ वस्तु है- भगवन्नाम। भगवन्नाम की महिमा और संतों द्वारा इसके अनुभव यदि विस्तार से बताये जायें तो अनेक पोथियाँ तैयार हो जायेंगी, लेकिन तब भी उसका अन्त नहीं होगा। संक्षेप में इतना कहना पर्याप्त होगा कि भगवन्नाम सभी अमंगलों का नाश करने वाला और जीवों को शाश्वत सुख देने वाला है। भगवान् के नाम और यश में अमोघ शक्ति है। भगवन्नाम के समान पुण्यप्रद संसार में अन्य कोई वस्तु नहीं है। इस कलिकाल में तो इसकी विशेष महत्ता है। अतएव हर व्यक्ति का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह ऐसा अभ्यास बना ले कि उसके द्वारा निरन्तर भगवान् का नाम स्मरण हो तथा सभी अवस्थाओं में भगवन्नाम का जप हो, उसमें कभी त्रुटि न हो। लोग संसार की भोग-वस्तुओं में अपना जीवन बिताते हैं, किन्तु जब भगवान् के नाम-स्मरण के लिए कहा जाता है तो उत्तर मिलता है- "अभी समय नहीं है, फिर कभी कर लिया जायेगा।" इस मनोवृत्ति से पतन और विनाश निश्चित है। यह लोक तो गया ही, परलोक भी चला जायेगा। मनुष्य जीवन साधन क्षेत्र है, ऐसा सबको स्मरण रखना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास ने यथार्थ ही कहा है- *"साधन धाम मोक्ष कर द्वारा, पाइ न जे परलोक संवारा।"* इसलिए सबको अपने जीवन में ऐसा नियम बना लेना चाहिए कि बिना किसी त्रुटि के वह प्रतिदिन, जैसे अन्य सांसारिक काम करता है, भगवन्नाम का भी स्मरण अवश्य करे। सब धर्म-ग्रन्थों और वेदों का भी यही सार है-*'नामैव वेद सारांशं सिद्धान्तं सर्वदा शिवम्।'* भगवन्नाम स्मरण का फल क्या है, इसको भी थोड़ा समक्ष लेना चाहिए। ये वृहस्पति के वाक्य हैं, जो उन्होंने इन्द्र के प्रति कहे थे- "जिसने क्षणमात्र भी

परब्रह्म परमात्मा का समाहित मन से चिन्तन किया, उसने समस्त तीर्थों के जल में स्नान कर लिया, राजा बलि की तरह सम्पूर्ण पृथ्वी का सत्पात्र ब्राह्मणों को दान कर दिया, कोटि यज्ञों के अनुष्ठान का फल प्राप्त कर लिया और अपने पितरों को सुस्वादु अन्न से तृप्त करके उन्हें स्वर्गलोक भी भेज दिया। ऐसा ही फल भगवन्नाम स्मरंण करने वाले व्यक्ति को होता है।"

यजुर्वेद का मन्त्र है– *"न तस्य प्रतिमास्ति, यस्य नाम महद्यश:।"* अर्थात् जिस ब्रह्म के नाम और यश का महान् महत्व है उसकी प्रतिभा, अर्थात् नाम की कोई उपमा नहीं है। वैदिककाल से लेकर आज तक, सभी धर्माचार्यों ने उस परमात्मा को अनन्त शक्ति, अनन्त गुण, अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त सौन्दर्य–स्वरूप, सर्वाधार, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान कहा है। उसीका सान्निध्य प्राप्त करना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है, जिसको मनुष्य भूला हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है– *"कहँउ़ कंहाँ लगि नाम बड़ाईं। रामु न सकहिं नाम गुन गाईं।।"*

बाबा ने कहा है– "भगवान् की महिमा अनन्त है। स्वयं श्रीराम भी उसका वर्णन नहीं कर सकते। सारांश यह है कि भगवन्नाम के स्मरण और चिन्तन में अपूर्व बल है। इसके प्रभाव से आत्मा को दिव्य प्रकाश प्राप्त होता है, चित्त के सब विकार दूर हो जाते हैं और परमात्मा के साथ धीरे–धीरे एकात्मकता का अनुभव होने लगता है। भगवन्नाम के प्रताप से ही अनेक ऋषि–मुनि, ध्रुव–प्रह्लाद आदि भक्त श्रेष्ठ परमगति को प्राप्त हुए। इस कलिकाल में तो उद्धार पाने का केवल एक ही साधन है और वह है भगवन्नाम का स्मरण और चिन्तन– *'कलियुग केवल नाम अधारा।'* इसको सदा याद रखते हुए सबको नित्य भगवन्नाम का नियमपूर्वक स्मरण करना चाहिए।"

सद्गुरुदेव ने कहा है– 'कठिन कलिकाल के पंजों से छूटना चाहते हो तो यथा साध्य श्रीहनुमान का स्मरण करो।'

आज विश्व में घोर कलियुगी अन्धकार है। बाहर के घोर अन्धकार में संसार के लोग शान्ति को बाहर टटोलकर प्राप्त करना चाहते हैं एवं भीतर के अन्धकार में वे शाश्वत सुखका अन्वेषण कर रहे हैं, किंतु सफलता उनको किसी ओर से प्राप्त नहीं होती। फिर इसका उपाय क्या है? गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसका एक सुन्दर उपाय बताया है कि "यदि तुम भीतर और बाहर दोनों ओर प्रकाश

सचमुच नाम की ऐसी ही महिमा है। जब राक्षसराज हिरण्यकशिपुने भक्तप्रवर प्रह्लाद को धधकती हुई अग्नि में फेंक दिया और नाम महिमा से उसका बाल भी बाँका न हुआ तब हिरण्यकशिपुको महान् आश्चर्य हुआ। उसको आश्चर्यनिमग्न देखकर प्रह्लाद ने कहा था- *"रामनाम जपतां कुतो भयं, सर्वतापशमनैकभेषजम्। पश्य तात मम गात्रसंनिधौ, पावकोऽपि सलिलायतेऽधुनां।।"* अर्थात् 'पिताजी! श्रीरामनाम का जप करने वालों को भय कहाँ; क्योंकि श्रीरामनाम सब प्रकार के तापों को शमन करने के लिये एकमात्र औषध है। फिर, पिताजी ! देखिये न, मेरे शरीर के सामीप्य में आकर आज अग्नि भी जलके समान शीतल हो रही है?'

आज जब कि चारों ओर नाना प्रकार के भंयकर एवं घातक रोगों से आक्रान्त होकर जनता पीड़ित हो रही है, विश्व भर में हाहाकार मचा हुआ है क्यों न इस 'सर्वतापशमनैकभेषजम्' का प्रयोग किया जाय।

सद्गुरु, सभी योगियों, संतों, महात्माओं एवं पीर-पैगम्बरों ने डंके की चोट पर यही उद्घोष किया है- *'निरामय कृष्णरसायनं पिब'*- 'परमात्मा के नामरूप रसायन को पीओ !' क्योंकि इसके पीने से कोई रोग नहीं रहता। यथार्थतः कोई भी कष्ट, रोग, ताप एवं शोकादि तभी आक्रमण करते हैं जब पूर्वजन्म अथवा इस जन्म के पापों का फल उदय होता है। यदि किसी युक्तिविशेष से पापों का क्षय हो जाय तो जीव को कष्ट ही क्यों हो, दुःख क्यों भोगना पड़े? जब नाम जप से लोगों के पापों का क्षय हो जायगा, तब उनके दण्डस्वरूप दुःख क्यों भोगने पड़ेंगे? कितना सरल उपाय है दुःख से बचने का ! शास्त्रों में कहा गया है कि-*"अनन्त वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण गोविन्द दामोदर माधवेति। वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिदहो जनानां व्यसनाभिमुख्यम्।।"*

नामजप में सबसे विलक्षण बात यह है कि भगवान् ने अपनी समस्त शक्ति का निक्षेप अपने नाम में कर दिया है। सम्भवतः जो काम नाम कर सकता है, वह श्रीराम भी नहीं कर सकते। इसका निर्णय गोस्वामीजी ने रामचरितमानस, बालकाण्ड में नाम-महिमा प्रसंग में किया है-*'कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।'*

नामजप के अथक प्रचारक तुलसीदासजी ने मानस के अन्त में अपने अनुभव की घोषणा इस प्रकार की है- *'रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम*

गुन ग्रामहि।।' इतना ही नहीं जब उनसे पूछा गया कि मानव-जीवन का लक्ष्य क्या है? उद्देश्य क्या है? फल क्या है? तो उन्होंने निष्पक्षभाव से कहा कि हम औरों की बात तो नहीं कहते, पर हमारे विचार से तो-

"सिय राम सरूप अगाध अनूप बिलोचन मीनन को जलु है।
श्रुति राम कथा मुख राम को नामु हिएँ पुनि रामहि को थलु है।।
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति राम सों, रामहि को बलु है।
सब की न कहै तुलसी के मतें, इतनो जग जीवन को फलु है।।"

चैतन्य महाप्रभु ने कातरस्वर में पुकारकर कहा है- 'हे प्रभो ! आपने अपने नाम में अपनी समस्त शक्ति निहित कर दी है और आपकी दयालुता इतनी है कि अपने नाम का स्मरण करने के लिये कोई समय भी नियत नहीं किया है। आपकी मुझपर इतनी असीम कृपा है, पर मेरा यह दुर्भाग्य कि अभी तक आपके नाम में मुझे अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ।'

यों तो भगवन्नाम कैसे भी लिया जाय कल्याणकारक है- *'भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।'* पर श्रीभगवान् उसी प्रेमी को अपने हृदय में उच्चपद प्रदान करते हैं, जिसकी यह दशा हो-*"मम गुन गावत पुलक सरीरा।*

गदगद गिरा नयन बह नीरा।।
काम आदि मद दंभ न जाकें।
तात निरंतर बस मैं ताकें।।"

हमारे श्रीहनुमंतलालजी विशेषरूप से श्रीराम-नामके कीर्तनपरायण ही रहा करते हैं। नाम-कीर्तन प्रारम्भ करते ही आप प्रेमोन्मत्त हो जाते हैं। आपके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की झड़ी-सी लग जाती है। सम्पूर्ण श्रीविग्रह के रोंगटे ऐसे सुदीप्तरूप से खड़े हो जाते हैं- 'पुलक सरीर पनस फल जैसा।'

श्रीहनुमत्संहितोक्त श्लोक में श्रीहनुमानजी अपनी रसना को आदेश दे रहे हैं-'हे रसने! यदि तू अपना कल्याण चाहती है तो श्रीजानकी-जीवन का मधुरातिमधुर 'राम' नाम सतत प्रेमपूर्वक रटती रह। जिह्वे! श्रीरामनाम का उच्चारण करने में तू देर क्यों कर रही है? मधुर मनोहर श्रीरामनाम के उच्चारण बिना तेरा क्षणमात्र भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिये।'

। श्रीहनुमानजी का सिद्धान्त है कि जीव चाहे लेटा हो या बैठा हो अथवा खड़ा ही क्यों न हो, जिस किसी भी दशा में हो तो वह श्रीराम-नाम का स्मरण करके भगवान् के परमपदको प्राप्त हो जाता है। श्रीराम-नामको हनुमानजी ने अपना जीवनसर्वस्व मान रखा है-

केवलं रामनामैव सदा मज्जीवनं मुने।
सत्यं, वदामि सर्वस्वमिदमेकं सदा मम।।

'मुने! एकमात्र श्रीराम-नाम ही मेरा जीवन है। मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि सदा-सर्वदा मेरा एकमात्र, सर्वस्व श्रीराम-नाम ही है।'

श्रीहनुमंतलालजी के विश्वस्त हृदय में श्रीराम-नाम का परम-तत्त्व ऐसा जम गया है कि इसकी तुलना में आप अन्यान्य साधनों को अत्यल्प मानते हैं। श्रीआदिरामायण में सेतुबन्ध प्रसंग में नल-नील को श्रीराम-नाम का उपदेश करते हुए आप कह रहे हैं- तराजू के एक पलड़े पर सभी महामन्त्रों के एवं कोटि-कोटि ज्ञान-ध्यानादि साधनों के फलों को रखा जाय, दूसरे पलड़े पर केवल श्रीराम-नाम को ही रखा जाय तो भी सब मिलकर श्रीराम-नामकी तुलना नहीं कर सकते। श्रीराम-नामकी आराधना में अन्य साधनों की भाँति देश-कालकी पवित्रता एवं अनुष्ठानादि क्रिया और ज्ञानकी अपेक्षा नहीं होती। उच्चारणमात्र से ही अनन्तकोटि फलप्रदान करनेवाले हैं- श्रीराम-नामरूपी मन्त्र। श्रीराम-नाम-भजन में विलक्षणता यह है- सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू।।

सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र सर्वेश्वर परम प्रभुको भी वश में करने वाले श्रीराम-नामकीर्तन की बराबरी भला अन्य साधन कैसे कर सकेंगे?

जो सदा स्नेहपूर्वक श्रीराम-नाम-जप करते हैं, उनके ऊपर तो बाबा श्रीहनुमानजी लट्टू हो जाते हैं। उनके लिये आप कल्पवृक्ष बनकर सभी मनोरथों को सफल करते रहते हैं। आपके ही मुखसे सुन लीजिये-

ये जपन्ति सदा स्नेहान्नाम मांगल्यकारणम् ।
श्रीमतो रामचन्द्रस्य कृपालोर्मम स्वामिनः।।

सद्गुरु ब्रह्मर्षि योगिराज श्रीदेवरहाबाबा ने नाम, रूप, लीला और धाम को भक्ति साधना के चार सोपान बताते हुए कहा है कि- "ध्यान की दृढ़ता के लिए उनका अभ्यास परमावश्यक है। यह अभ्यास नाम साधना से अनायास सम्पन्न

ध्यान जमने लगता है तथा स्वरूपवृत्ति परिपक्व होने पर साधक फिर नाम पर ही लौट आता है। क्योंकि ध्यान की परिपक्वता में केवल ध्वनि ही अवशिष्ट रह जाती है।"

"भगवान के नाम भी बीजमंत्र के समान चिन्मय ही होते हैं। इसीलिए कलिकाल में नाम संकीर्तन का महान् महत्व है- *'कलौ केशवकीर्त्तनात्'* तथा *'राम नाम्नैव मुक्तिः स्यात् कलौ नान्येन केनचित्'*- इत्यादि वाक्य इस बात के प्रमाण हैं।"

सद्गुरुदेव बाबा सरकार कहते हैं-"भगवान् का यह वैशिष्ट है कि शब्द मात्र से उसी की अभिव्यक्ति होती है। सारे शब्द भगवान् के ही नाम हैं और इसका रहस्य यह है कि नाम और रूप की कल्पना सत् वस्तु में ही होती है असत् में नहीं और सत् एकमात्र भगवान् ही है। अतः सारे नाम उसीके हो सकते हैं। नाम जो भी हो उसकी महिमा भावना से परिवर्तित हो जाती है। भक्त की भावना ही नाम को चिन्मय कर देती है। इसलिए जो भी नाम भक्त के हृदय में भावना भावित हो सके, उसी का जप करना चाहिए। इसलिए संतों के यहां नाम जप का बड़ा महत्व है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो यहां तक कह दिया है-*"नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु विचार सुजन मन माहीं।'* तथा- *"भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपे मंगल दिसि दसहूँ।।"*

"नामजप करते-करते भगवदाकार वृत्ति हो जाती है क्योंकि जप में नामी का ध्यान रहता है। एक सबसे बड़ी बात नामजप में यह है कि इसमें विधि का बंधन नहीं है और आचार-विचार का कोई नियम नहीं है। केवल भगवच्चिन्तन ही शर्त है। उसी से धीरे-धीरे भगवान् का साक्षात्कार हो जाता है।"

उपदेश की लहर में बाबा ने कहा- "बच्चा! समझे? अच्छा तो फिर से सुनो- "भक्ति के साधनों में भगवान् का नाम-जप एक सरल, सहज और सुगम साधन है। भगवान् राम ने शबरी को नवधाभक्ति का उपदेश देते हुए नौ साधनों में नाम-जप को भी स्थान दिया है।" भक्ति के नौ सा न बताते हुए, वे पांचवें साध न का उपदेश करते हैं- *"मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।"* भगवान् राम का अभिमत है कि दृढ़ विश्वास के साथ मेरे मंत्र का जाप करना ही भजन नामक पांचवा साधन है। भगवान् राम का कौन-सा मंत्र है? वही

श्रीराम-नाम। भगवान् कृष्ण ने यज्ञों में जपयज्ञ को प्रधानता दी है। वे गीता में अर्जुन से कहते हैं- *"यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।"* भगवान् कृष्ण स्पष्ट घोषणा करते हैं कि जितने भी यज्ञ हैं- द्रव्ययज्ञ, योगयज्ञ, तपयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञानयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, देवपूजनयज्ञ, आत्म-संयमयज्ञ, जपयज्ञ आदि उनमें भगवान् की विभूति जप-यज्ञ में ही वास करती है। भगवान् उसे सुगमता से मिलते हैं, दर्शन देते हैं, उसके निकट पहुंचते हैं, जो अनन्यचित्त से नित्य, प्रतिपल, प्रतिक्षण भगवान् का स्मरण करता है। गीता में भगवान् कृष्ण का उद्घोष है- *"अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।"*

"नाम का स्मरण नित्य हो, सतत, निरन्तर हो, तो भगवान् सुलभ हो जाते हैं। गोस्वामीजी तो स्पष्टतया साधन मार्ग बताते हुए कहते हैं कि कलियुग में केवल श्रीराम नाम का स्मरण, कीर्तन ही भगवद्भक्ति का एकमात्र साधन है-*"कलियुग केवल नाम अधारा।।"* तथा *"चहुँ जुग चहुँ अति नाम प्रभाऊ, कलि विशेषि नहिं आन उपाऊ। नहिं कलि करम न भगति विवेकू, राम नाम अवलम्बन एकू।।"*

नामजप में मनोयोग पर बल देते हुए सद्गुरु श्रीदेवरहाबाबा कहते हैं-"यदि मन नहीं साथ दे रहा हो तो भी भगवान् का नाम लेते जाओ। एक समय ऐसा आयेगा कि राम रोम-रोम में ठीक उसी प्रकार रम जायेंगे, जिस प्रकार हाथ द्वारा अग्नि के तापने पर उसकी गर्मी थोड़े समय में सारे शरीर में फैल जाती है। ध ूप शरीर के ऊपर से स्पर्श करती है, लेकिन उसकी गर्मी भीतर तक प्रवेश कर जाती है। स्नान करते समय शरीर के ऊपरी भाग से ही जल का संस्पर्श होता है, लेकिन थोड़े समय में ही जल की ठंढक भीतर तक पहुँचकर सारे शरीर को सुशीतल कर देती है। अस्तु, इसमें सन्देह नहीं कि ऊपर के मन से भी यदि भगवान् का नाम लिया जाय तो वह अन्तःस्थल को प्रभावित और अनुप्राणित करेगा। इस सम्बन्ध में एक कथा है- "एक जिज्ञासु ने एक महात्मा से इसी प्रकार का प्रश्न किया था। महात्मा ने प्रश्न सुनकर जिज्ञासु को एक पत्थर फेंक कर मार दिया। भक्त चोट का अनुभव कर क्रोध और आवेश से भर उठा। महात्मा ने शांत करते हुए कहा-देखो, पत्थर का आघात तो तुम्हारे शरीर के ऊपरी सतह पर हुआ पर चोट का अनुभव तुम्हारे भीतर हुआ, फलतः तुम कुपित हो गये ! यही बात परमात्मा के नाम लेने के साथ भी है। उनका नाम यदि ऊपरी मन

से भी लिया जाये तो उसका असर अन्तःकरण पर निश्चय ही पड़ेगा। इसमें रंचमात्र भी संशय नहीं।" धर्मग्रन्थों का उल्लेख करते हुए बाबा बताते हैं-"सर्व धर्मग्रन्थों और वेदों में जो प्रतिपादित विषय है, उनमें सार वस्तु है भगवन्नाम स्मरण। गीता में स्वयं भगवान् ने कहा हैं-*"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां। योगक्षेमं वहाम्यहम्।।"* अर्थात् जो व्यक्ति अनन्य भाव से मुझ ईश्वर की उपासना करते हैं, उन भक्तों का योग-क्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ-*"तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत। तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।"* इसलिए सर्व-समर्पण कर भगवान् की शरण में जाना चाहिए। उन्हीं की एकमात्र कृपा से परमसुख शान्ति की प्राप्ति होगी, अन्यथा नहीं। कभी-कभी कोई भक्त शंका करता है कि भगवन्नाम-जप से हमें कोई सफलता नहीं मिली। ऐसा हो सकता है और उसमें कारण है, नामापराध। प्रायः लोग ऐसा करते हैं कि वे कुकर्म से परहेज नहीं करते, कुकर्म छोड़ना नहीं चाहते, पाप करते रहेंगे और नाम जप से उनको दूर करते रहेंगे। इस प्रकार नाम के बल पर जो कुकर्म करते हुए नाम लेते रहेंगे, उनकी मुक्ति कुकर्म से नहीं हो सकती। इसी को नामापराध ा कहा गया है- *"गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्रनिन्दनं, तथार्थवादो हरिनामकल्पनम्। नाम्नोबलाय यस्यहि पापबुद्धि, न विद्यते तस्य धर्मैहिं शुद्धिः।।"* अर्थात् "गुरु की अवज्ञा करना, श्रुति और धर्मशास्त्र की निन्दा करना, आचार्यों की बातों पर विश्वास न करना, हरि के नाम और यश को केवल कल्पना समझना, नामजप का आश्रय लेकर निषिद्ध कर्म करना- ये पाप बुद्धि हैं। ऐसे नाम-जापकों के मन कभी शुद्ध नहीं होंगे।" अतः साधक को नामापराध-दोष से बचकर भगवन्नाम का स्मरण और चिन्तन करना चाहिए, तभी वह लाभदायक और सुख-शान्ति-दायक हो सकता है।"

बाबा ने भगवन्नाम को अमोंघ शक्ति बताते हुए कहा है कि "संसार में तीन प्रकार के कष्ट हैं- आधिदैहिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। शरीर सम्बन्धी जो कष्ट हैं, उन्हें 'आधिदैहिक' कहते हैं। आधिदैविक कष्ट वे हैं जो दैव द्वारा होते हैं- जैसे अग्निकाण्ड, सूखा पड़ जाना, बाढ़ आ जाना इत्यादि। आधिभौतिक कष्ट वे हैं, जो जीवों द्वारा मनुष्यों को भोगने पड़ते हैं जैसे सांप का काटना, बिच्छू का डंक मारना तथा अन्यान्य छोटे बड़े जीवों द्वारा मनुष्य शरीर पर आक्रमण। इन्हीं तीन कष्टों या तापों से मनुष्य व्याकुल रहता है। इनसे मुक्ति पाने की सबकी

सतत इच्छा होती है और तदनुकूल लोग भाँति-भाँति के प्रयत्न भी करते हैं। इन सब प्रयत्नों में सवसे सरल और सुलभ वस्तु है- भगवन्नाम। भगवन्नाम की महिमा और संतों द्वारा इसके अनुभव यदि विस्तार से वताये जायें तो अनेक पोथियाँ तैयार हो जायेंगी, लेकिन तब भी उसका अन्त नहीं होगा। संक्षेप में इतना कहना पर्याप्त होगा कि भगवन्नाम सभी अमंगलों का नाश करने वाला और जीवों को शाश्वत सुख देने वाला है। भगवान् के नाम और यश में अमोघ शक्ति है। भगवन्नाम के समान पुण्यप्रद संसार में अन्य कोई वस्तु नहीं है। इस कलिकाल में तो इसकी विशेष महत्ता है। अतएव हर व्यक्ति का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह ऐसा अभ्यास बना ले कि उसके द्वारा निरन्तर भगवान् का नाम स्मरण हो तथा सभी अवस्थाओं में भगवन्नाम का जप हो, उसमें कभी त्रुटि न हो। लोग संसार की भोग-वस्तुओं में अपना जीवन बिताते हैं, किन्तु जब भगवान् के नाम-स्मरण के लिए कहा जाता है तो उत्तर मिलता है- "अभी समय नहीं है, फिर कभी कर लिया जायेगा।" इस मनोवृत्ति से पतन और विनाश निश्चित है। यह लोक तो गया ही, परलोक भी चला जायेगा। मनुष्य जीवन साधन क्षेत्र है, ऐसा सबको स्मरण रखना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास ने यथार्थ ही कहा है- *"साधन धाम मोक्ष कर द्वारा, पाइ न जे परलोक संवारा।"* इसलिए सबको अपने जीवन में ऐसा नियम बना लेना चाहिए कि बिना किसी त्रुटि के वह प्रतिदिन, जैसे अन्य सांसारिक काम करता है, भगवन्नाम का भी स्मरण अवश्य करे। सब धर्म-ग्रन्थों और वेदों का भी यही सार है-*'नामैव वेदं सारांशं सिद्धान्तं सर्वदा शिवम्।'* भगवन्नाम स्मरण का फल क्या है, इसको भी थोड़ा समक्ष लेना चाहिए। ये वृहस्पति के वाक्य हैं, जो उन्होंने इन्द्र के प्रति कहे थे- "जिसने क्षणमात्र भी परब्रह्म परमात्मा का समाहित मन से चिन्तन किया, उसने समस्त तीर्थों के जल में स्नान कर लिया, राजा बलि की तरह सम्पूर्ण पृथ्वी का सत्पात्र ब्राह्मणों को दान कर दिया, कोटि यज्ञों के अनुष्ठान का फल प्राप्त कर लिया और अपने पितरों को सुस्वादु अन्न से तृप्त करके उन्हें स्वर्गलोक भी भेज दिया। ऐसा ही फल भगवन्नाम स्मरण करने वाले व्यक्ति को होता है।"

"बच्चा ! यजुर्वेद का मन्त्र है-*"न तस्य प्रतिमास्ति, यस्य नाम महद्यशः।"* अर्थात् जिस ब्रह्म के नाम और यश का महान् महत्व है उसकी प्रतिभा, अर्थात्

नाम की कोई उपमा नहीं है। वैदिककाल से लेकर आज तक, सभी धर्माचार्यों ने उस परमात्मा को अनन्त शक्ति, अनन्त गुण, अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त सौन्दर्य-स्वरूप, सर्वाधार, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान कहा है। उसीका सान्निध्य प्राप्त करना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है, जिसको मनुष्य भूला हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है- *"कहँउ कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।"*

बाबा ने कहा है- "भगवान् की महिमा अनन्त है। स्वयं श्रीराम भी उसका वर्णन नहीं कर सकते। सारांश यह है कि भगवन्नाम के स्मरण और चिन्तन में अपूर्व बल है। इसके प्रभाव से आत्मा को दिव्य प्रकाश प्राप्त होता है, चित्त के सब विकार दूर हो जाते हैं और परमात्मा के साथ धीरे-धीरे एकात्मकता का अनुभव होने लगता है। भगवन्नाम के प्रताप से ही अनेक ऋषि-मुनि, ध्रुव-प्रह्लाद आदि भक्त श्रेष्ठ परमगति को प्राप्त हुए। इस कलिकाल में तो उद्धार पाने का केवल एक ही साधन है और वह है भगवन्नाम का स्मरण और चिन्तन- *'कलियुग केवल नाम अधारा।'* इसको सदा याद रखते हुए सबको नित्य भगवन्नाम का नियमपूर्वक स्मरण करना चाहिए।"

सद्गुरुदेव ने कहा है- 'कठिन कलिकाल के पंजों से छूटना चाहते हो तो यथा साध्य श्रीहनुमान का स्मरण करो।'

आज विश्व में घोर कलियुगी अन्धकार है। बाहर के घोर अन्धकार में संसार के लोग शान्ति को बाहर टटोलकर प्राप्त करना चाहते हैं एवं भीतर के अन्धकार में वे शाश्वत सुखका अन्वेषण कर रहे हैं, किंतु सफलता उनको किसी ओर से प्राप्त नहीं होती। फिर इसका उपाय क्या है? गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसका एक सुन्दर उपाय बताया है कि "यदि तुम भीतर और बाहर दोनों ओर प्रकाश चाहते हो तो राम-नामरूपी मणिको इस शरीर के जिह्वारूपी द्वारपर रख लो।"

सचमुच नाम की ऐसी ही महिमा है। जब राक्षसराज हिरण्यकशिपुने भक्तप्रवर प्रह्लाद को धधकती हुई अग्नि में फेंक दिया और नाम महिमा से उसका बाल भी बाँका न हुआ तब हिरण्यकशिपुको महान् आश्चर्य हुआ। उसको आश्चर्यनिमग्न देखकर प्रह्लाद ने कहा था- *"रामनाम जपतां कुतो भयं, सर्वतापशमनैकभेषजम्। पश्य तात मम गात्रसंनिधौ, पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना।।"* अर्थात् 'पिताजी! श्रीरामनाम का जप करने वालों को भय कहाँ; क्योंकि श्रीरामनाम सब प्रकार के

तापों को शमन करने के लिये एकमात्र औषध है। फिर, पिताजी ! देखिये न, मेरे शरीर के सामीप्य में आकर आज अग्नि भी जलके समान शीतल हो रही है?'

आज जब कि चारों ओर नाना प्रकार के भंयकर एवं घातक रोगों से आक्रान्त होकर जनता पीड़ित हो रही है, विश्व भर में हाहाकार मचा हुआ है तो क्यों न इस 'सर्वतापशमनैकभेषजम्' का प्रयोग किया जाय।

सद्गुरु, सभी योगियों, संतों, महात्माओं एवं पीर-पैगम्बरों ने डंके की चोट पर यही उद्घोष किया है- *'निरामय कृष्णरसायनं पिब'*- 'परमात्मा के नामरूप रसायन को पीओ !' क्योंकि इसके पीने से कोई रोग नहीं रहता। यथार्थतः कोई भी कष्ट, रोग, ताप एवं शोकादि तभी आक्रमण करते हैं जब पूर्वजन्म अथवा इस जन्म के पापों का फल उदय होता है। यदि किसी युक्तिविशेष से पापों का क्षय हो जाय तो जीव को कष्ट ही क्यों हो, दुःख क्यों भोगना पड़े? जब नाम जप से लोगों के पापों का क्षय हो जायगा, तब उनके दण्डस्वरूप दुःख क्यों भोगने पड़ेंगे? कितना सरल उपाय है दुःख से बचने का ! शास्त्रों में कहा गया है कि-*"अनन्त वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण गोविन्द दामोदर माधवेति। वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिदहो जनानां व्यसनाभिमुख्यम्।।"*

नामजप में सबसे विलक्षण बात यह है कि भगवान् ने अपनी समस्त शक्ति का निक्षेप अपने नाम में कर दिया है। सम्भवतः जो काम नाम कर सकता है, वह श्रीराम भी नहीं कर सकते। इसका निर्णय गोस्वामीजी ने रामचरितमानस, बालकाण्ड में नाम-महिमा प्रसंग में किया है-*'कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।'*

नामजप के अथक प्रचारक तुलसीदासजी ने मानस के अन्त में अपने अनुभव की घोषणा इस प्रकार की है- *'रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।'* इतना ही नहीं जब उनसे पूछा गया कि मानव-जीवन का लक्ष्य क्या है? उद्देश्य क्या है? फल क्या है? तो उन्होंने निष्पक्षभाव से कहा कि हम औरों की बात तो नहीं कहते, पर हमारे विचार से तो-

"सिय राम सरूप अगाध अनूप बिलोचन मीनन को जलु है।
श्रुति राम कथा मुख राम को नामु हिएँ पुनि रामहि को थलु है।।
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति राम सों, रामहि को बलु है।

सब की न कहै तुलसी के मतें, इतनो जग जीवन को फलु है।।"

चैतन्य महाप्रभु ने कातरस्वर में पुकारकर कहा है- 'हे प्रभो ! आपने अपने नाम में अपनी समस्त शक्ति निहित कर दी है और आपकी दयालुता इतनी है कि अपने नाम का स्मरण करने के लिये कोई समय भी नियत नहीं किया है। आपकी मुझपर इतनी असीम कृपा है, पर मेरा यह दुर्भाग्य कि अभी तक आपके नाम में मुझे अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ।'

यों तो भगवन्नाम कैसे भी लिया जाय, कल्याणकारक है- *'भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।'* पर श्रीभगवान् उसी प्रेमी को अपने हृदय में उच्चपद प्रदान करते हैं, जिसकी यह दशा हो-

"मम गुन गावत पुलक सरीरा।
गदगद गिरा नयन बह नीरा।।
काम आदि मद दंभ न जाकें।
तात निरंतर बस मैं ताकें।।"

हमारे श्रीहनुमंतलालजी विशेषरूप से श्रीराम-नामके कीर्तनपरायण ही रहा करते हैं। नाम-कीर्तन प्रारम्भ करते ही आप प्रेमोन्मत्त हो जाते हैं। आपके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की झड़ी-सी लग जाती है। सम्पूर्ण श्रीविग्रह के रोंगटे ऐसे सुदीप्तरूप से खड़े हों जाते हैं- 'पुलक सरीर पनस फल जैसा।'

श्रीहनुमत्संहितोक्त श्लोक में श्रीहनुमानजी अपनी रसना को आदेश दे रहे हैं-'हे रसने! यदि तू अपना कल्याण चाहती है तो श्रीजानकी-जीवन का मधुरातिमधुर 'राम' नाम सतत प्रेमपूर्वक रटती रह। जिह्वे! श्रीरामनाम का उच्चारण करने में तू देर क्यों कर रही है? मधुर मनोहर श्रीरामनाम के उच्चारण बिना तेरा क्षणमात्र भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिये।'

श्रीहनुमानजी का सिद्धान्त है कि जीव चाहे लेटा हो या बैठा हो अथवा खड़ा ही क्यों न हो, जिस किसी भी दशा में हो तो वह श्रीराम-नाम का स्मरण करके भगवान् के परमपदको प्राप्त हो जाता है। श्रीराम-नामको हनुमानजी ने अपना जीवनसर्वस्व मान रखा है-

केवलं रामनामैकं सदा मज्जीवनं मुने।
सत्यं, वदामि सर्वस्वमिदमेकं सदा मम।।

'मुने! एकमात्र श्रीराम-नाम ही मेरा जीवन है। मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि सदा-सर्वदा मेरा एकमात्र, सर्वस्व श्रीराम-नाम ही है।'

श्रीहनुमंतलालजी के विश्वस्त हृदय में श्रीराम-नाम का परम-तत्त्व ऐसा ज़म गया है कि इसकी तुलना में आप अन्यान्य साधनों को अत्यल्प मानते हैं। श्रीआदिरामायण में सेतुबन्ध प्रसंग में नल-नील को श्रीराम-नाम का उपदेश करते हुए आप कह रहे हैं- तराजू के एक पलड़े पर सभी महामन्त्रों के एवं कोटि-कोटि ज्ञान-ध्यानादि साधनों के फलों को रखा जाय, दूसरे पलड़े पर केवल श्रीराम-नाम को ही रखा जाय तो भी सब मिलकर श्रीराम-नामकी तुलना नहीं कर सकते। श्रीराम-नामकी आराधना में अन्य साधनों की भाँति देश-कालकी पवित्रता एवं अनुष्ठानादि क्रिया और ज्ञानकी अपेक्षा नहीं होती। उच्चारणमात्र से ही अनन्तकोटि फलप्रदान करनेवाले हैं- श्रीराम-नामरूपी मन्त्र। श्रीराम-नाम-भजन में विलक्षणता यह है- सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू।।

सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र सर्वेश्वर परम प्रभुको भी वश में करने वाले श्रीराम-नामकीर्तन की बराबरी भला अन्य साधन कैसे कर सकेंगे?

जो सदा स्नेहपूर्वक श्रीराम-नाम-जप करते हैं, उनके ऊपर तो बाबा श्रीहनुमानजी लट्टू हो जाते हैं। उनके लिये आप कल्पवृक्ष बनकर सभी मनोरथों को सफल करते रहते हैं। आपके ही मुखसे सुन लीजिये-

ये जपन्ति सदा स्नेहान्नाम मागंल्यकारणम् ।
श्रीमतो रामचन्द्रस्य कृपालोर्मम स्वामिनः।।

●●●

अध्याय–पाँच

श्रीहनुमानजी बन्दर नहीं हैं !

जनसाधारण की ऐसी धारणा है कि सुग्रीव (सूर्य-पुत्र), बाली (इन्द्र के पुत्र), अंगद तथा हनुमान (शंकर सुवन, केसरीनन्दन) आदि बन्दर थे जिनके लम्बी-लम्बी लूमें (पूंछें) थीं। वास्तव में बात ऐसी नहीं लगती। यह सभी मानव जाति के प्रतीत होते हैं जो विन्ध्यगिरि से दक्षिण में बसते थे। महर्षि वाल्मीकि के अनुसार ऋषि, महात्मा, सिद्ध, विद्याधर, उदम तथा चारण यह सब मनुष्यों की ही विभिन्न जातियाँ थीं- "ऋषयश्च महात्मानः सिद्धविद्या ारोरगाः। चारणाश्च............. ।।६।।

–श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणम्, बालकाण्डम्, सर्ग १७

विद्वानों का ऐसा मत है कि हनुमानजी इन्हीं विद्याधरों की जाति के एक परमप्रतापी, अतुलित बलशाली, ज्ञानियों में अग्रगण्य, सभी सिद्धियों से युक्त, अगाध विद्वान्, परम वैष्णव महापुरुष थे। मद्रास (अब तमिलनाडु) प्रदेश में रत्नपुर नामक ग्राम के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में इनका जन्म हुआ। इनकी माता का नाम श्रीमती अंजनी देवी, पिता का नाम पवन (केसरी) विद्याधर तथा पितामह का नाम प्रह्लाद विद्याधर था। यह ऋष्यमूक पर्वत के मलय शिखर पर वनवासी के रूप में रहते हुए वानर-श्रेष्ठ श्रीकण्ठ (सुग्रीव) के मन्त्री थे। रावण द्वारा हरण की गयी भगवती सीताजी की खोज करते हुए जब मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम ऋष्यमूक पर्वत के पास पहुँचे तो इस भय से कि 'कहीं इन्हें बाली ने मुझे मारने के लिये न भेजा हो' सुग्रीव को चिन्ता हुई और उन्होंने हनुमानजी को उनका भेद लेने के लिये भेजा। जब हनुमानजी सुग्रीव के दूत के रूप में भगवान् श्रीराम से मिले और सारी बात जानकर सुग्रीव की मैत्री का उन्हें सन्देश दिया, तो श्रीराम ने अपने अनुज श्रीलक्ष्मणजी को सम्बोधित करते हुए कहा- "जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया, तथा जो सामवेद का विद्वान् नहीं है वह इस प्रकार सुन्दर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता (अर्थात् यह तीनों वेदों का ज्ञाता है)। इसमें सन्देह नहीं कि इन्होंने समस्त

व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया है, क्योंकि अनेक बातें बोल जाने पर भी इनके मुख से कोई अशुद्ध शब्द नहीं निकला। सम्भाषण के समय इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंह तथा अन्य किसी अंग से भी कोई दोष प्रकट नहीं हुआ। इन्होंने थोड़े में ही बड़ी स्पष्टता के साथ अपना अभिप्राय निवेदन किया है। रुक-रुक कर अथवा शब्दों या अक्षरों को तोड़-मरोड़ कर किसी वाक्य का उच्चारण नहीं किया है। बोलते समय इनका स्वर न बहुत धीमा रहा है, न बहुत ऊँचा; मध्यम स्वर में ही इन्होंने सारी बातें कही हैं। ये संस्कार (व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध वाणी संस्कार-सम्पन्न अर्थात् संस्कृत कहलाती है) और क्रम (शब्दोच्चारण की शास्त्रीय परिपाटी) से सम्पन्न अद्भुत, अविलम्बित (बिना रुके धाराप्रवाह रूप से बोलना) तथा हृदय को आनन्द प्रदान करने वाली कल्याणमयी वाणी का उच्चारण करते हैं। हृदय, कण्ठ और मूर्द्धा- इन तीनों स्थानों द्वारा स्पष्टरूप से अभिव्यक्त होने वाली इनकी इस विचित्र वाणी को सुन कर किसका चित्त प्रसन्न न होगा? वध करने के लिये तलवार उठाये हुए शत्रु का हृदय भी इस अद्भुत वाणी से बदल सकता है।"

वाल्मीकीय रामायण के इस उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि हनुमानजी वेदत्रयी के ज्ञाता, व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित तथा शब्दशास्त्र के एक पारंगत विद्वान थे, न कि एक बन्दर।

इसी प्रकार किष्किधांपुरी के अधिपति बाली भी बन्दर नहीं थे क्योंकि जब राक्षसराज रावण दिग्विजय करते हुए उनसे युद्ध करने की आकांक्षा से किष्किधांपुरी गये और पूछा कि 'बाली कहाँ है?' तो बाली के मन्त्री तार, तारा के पिता सुषेण, बाली-पुत्र अंगद तथा युवराज सुग्रीव ने उत्तर दिया कि-

"चतुर्भ्यो ऽपि समुद्रेभ्यः सन्ध्यामन्वास्य रावण।
इंद मुहूर्त्तमायाति बाली तिष्ट मुहूर्त्तकम्।।

अर्थात्- "हे राक्षसराज रावण ! चारों समुद्रों पर उनके जल के द्वारा सन्ध्योपासन करके बाली अभी मुहूर्त्त-मात्र में आते होंगे, आप थोड़ी देर ठहरिये।"

फिर, जब सुग्रीव द्वारा ललकारे जाने पर बाली युद्ध के लिये चले उस समय उनकी स्त्री तारा- "जो कि मन्त्रों को जानने वाली तथा पति की विजय की कामना करने वाली थी, स्वस्तिवाचन करके अन्य स्त्रियों के साथ शोक में डूबी हुई

अन्तःपुर में चली गयी।" यही नहीं, बाली के मारे जाने के उपरान्त- फिर शास्त्रीय विधि के अनुसार उसकी चिता में आग लगा कर उन्होंने (अंगद ने) प्रदक्षिणा की। 'मेरे पिता लम्बी यात्रा के लिये प्रस्थित हुए हैं'- यह सोच कर उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं। इस प्रकार विधिपूर्वक बाली का दाह संस्कार कर के सभी वानर जलाजंलि देने के लिये पवित्र जल से भरी हुई नदी के तट पर आये। वहाँ अंगद को आगे रख कर सुग्रीव और तारा सहित सभी वानरों ने बाली के लिये एक साथ जलांजलि दी।

इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि बाली, सुग्रीव, अंगद, तथा तारा आदि वानर नहीं वरन् मनुष्य थे, क्योंकि वानरों का सन्ध्या-वन्दन करना, उनके द्वारा विधिवत् दाहसंस्कार किया जाना, तथा वानरियों का मन्त्रविद् होना और स्वस्त्ययन करना सम्भव नहीं दिखता।

अब प्रश्न उठता है कि तब फिर यह सब कैसे वानर मान लिये गये? इसके लिये विद्वानों का मत है कि दण्डकारण्य में बसनेवाली मानवों की एक जाति 'वानर' जाति के नाम से प्रसिद्ध थी जिसके वंशज आज भी वर्तमान हैं। वानर का अर्थ बंदर भी होता है। कवियों ने आवश्यकतानुसार 'वानर' (मानव जाति) के स्थान पर बानर (बन्दर नामक प्राणी) के पर्यायवाची कपि, कलिप्रिय, कीश, गोलांगुल, झम्पी, दधिशोण, नगाटन, प्लंवग, प्लवंगम्, मर्कट, बलिमुख, शाखामृग, शालावृक, तथा हरि आदि शब्दों का प्रयोग किया जिससे भ्रमवश वानर (मनुष्य) जाति के महापुरुष बन्दर समझे जाने लगे और चित्रकारों ने उनके लम्बी-लम्बी लूमें लगा कर भ्रम को वास्तविकता का रूप दे दिया।

मानव की इस जाति का नाम 'वानर' जाति पड़ा क्यों- इस विषय में एक मत तो यह है कि प्राचीन काल में यह एक प्रथा सी थी कि विभिन्न जातियाँ प्रकृति के विभिन्न उपकरणों, विभिन्न प्राणियों तथा विभिन्न पौधों के नाम पर अपनी जातियों के नाम रखतीं, अपने को उनका वंशज मानती, तथा प्रायः उनके चित्र भी अपनी त्वचा पर उत्कीर्ण कराती थीं। रामायण काल के प्रसिद्ध योद्धा जामवन्त ऋक्षवंशी (ऋक्षनक्षत्र, तारा) भालू थे ही। इसी प्रकार मनुष्यों की इस जाति ने वानरों के किसी गुण- सम्भवतः चंचलता- पर मुग्ध होकर अपनी जाति का यह नाम रख लिया हो। इंगलैण्ड में आज भी लोगों के 'मिस्टर फॉक्स' तथा मिस्टर

'प्रिमरोज' जैसे नाम मिलते हैं, यद्यपि वे न तो लोमड़ी हैं और न ही पौधे। यह भी सम्भव है कि आर्यों ने इस जाति के मनुष्यों को नर के ही समान परन्तु आकृति में कुछ-कुछ वन मनुष्यों (apemen) के समान या फिर बुद्धि में आर्य जाति के बाद द्वितीय श्रेणी का पा कर इन्हें वानर की संज्ञा दे दी हो।

दूसरा मत यह है कि किष्किन्धापुरी किष्किन्धागिरि पर बसी हुई थी जिसके आस-पास का सारा प्रवेश वानर द्वीप कहलाता था। वानर द्वीप इस कारण कि उन दिनों वहाँ विशालकाय, फलभक्षी सुन्दर वानर रहते थे, जो अब केवल दक्षिणपूर्वी एशिया के कुछ द्वीपों तथा उधर अफ्रीका के उष्ण प्रधान जंगलों में ही शेष रह गये हैं जैसे ओरंग-ऊटन, गिबन, चिम्पैन्जी तथा गोरिल्ला। किष्किंन्धापुरी के राजा बाली ने (और उनके बाद उनके छोटे भाई सुग्रीव ने भी) इन वानरों या वनमानुषों के लिये एक बड़ा सा क्षेत्र 'मधुवन' के नाम से सुरक्षित वन घोषित कर दिया था और यह राजाज्ञा प्रचारित करवा दी थी कि उन वानरों को कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार की असुविधा न पहुँचने दे। न तो उस मधुवन में साध ारणजनों के जाने की आज्ञा थी और न किसी को वहाँ के फल-फूल तोड़ने की। इस राजाज्ञा के कारण प्रजाजन उन वानरों की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखते थे। यही नहीं, लोग चित्रों में, लेखों में, ध्वजा और छत्र आदि में वानरों को स्थान देने लगे थे, उन्हें चिन्ह के रूप में अंकित करने लगे थे। यह भी हो सकता है कि उत्सवों के अवसरों पर विभिन्न लीलायें करते समय यह लोग वानरों की अनुकृति करने के लिये दुम (पूंछ) लगी हुई पेटी कमर पर बाँध लेते हों- ठीक उसी प्रकार जैसे आज रामलीलाओं में, नाटकों में लोग चेहरे लगा कर, दुम लगाकर तथा शरीर रंग कर भालू, बन्दर और राक्षस बनते हैं। भगवान् श्रीराम को लंकाधिपति रावण के विरुद्ध युद्ध करने में इन विद्याधरों की ध्वजा पर वानरों का चिन्ह अंकित होने के कारण इनकी सेना वानरी सेना कहलाती थी। श्रीकण्ठ, नल, नील, द्विविद, मयन्द और हनुमान आदि प्रमुख विद्याधर वीर वानरराज कहे गये और कालान्तर में वानर से कपि, मर्कट और शाखामृग होकर लूमयुक्त बना दिये गये।

महाभारत काल में भी महाभारत के युद्ध में वीराग्रणी अर्जुन के रथ की ध वजा पर वानर का ही चित्र अंकित मिलता है और वह कपिध्वज कहलाते हैं।

उनके भाई भीम, यद्यपि वायुपुत्र माने जाने के कारण, हनुमान जी के छोटे भाई कहे जाते हैं परन्तु वानर नहीं।

श्रीरामकथा के प्रमुख पात्र बजरंगबली हनुमानजी को हम एक बन्दर के रूप में जानते हैं। बन्दर अर्थात्, जिसका शरीर बालों से भरा हो, एक लम्बी पूंछ हो, मुंह, हाथ-पैर आधुनिक बन्दरों की भांति हों, वह पेड़ पर अथवा गुफाओं में रहता हो, फल फूल खाता हो और उछल-कूद करता हो। हनुमानजी को भी कुछ इसी प्रकार चित्रित किया गया है। अन्तर इतना है कि हनुमानजी दो पैरों से चलते हैं, हवा में उड़ते हैं, शिक्षित मनुष्य की तरह बोलते हैं और असम्भव को भी सम्भव कर दिखाते हैं, वे ऋष्यमूक पर्वत पर मित्र सुग्रीव (ये भी बन्दर) के साथ रहते हैं, केशरी नाम के वानर के पुत्र हैं (पवनपुत्र तथा शंकरसुवन के अतिरिक्त), इनकी माता का नाम अंजनि है। इन्होंने बपचन में सूर्य को निगल लिया था, सयाने होने पर श्रीराम के मित्र या भक्त बने तथा समुद्र लांघ गये, हिमालय से एक पर्वत खण्ड ही उड़कर उठा लाये, आकाश तक मुंह फैलाने वाली सुरसा राक्षसी को मार डाला, आदि-आदि। किन्तु मूलरूप से वे एक बन्दर योनि के ही जीव हैं। रामकथा में हनुमानजी का चरित्र चमत्कारों से भरा है। यदि वे एक बन्दर हैं तो उनसे सम्बन्धित सभी चमत्कारिक कार्य उल्टे लगते हैं। क्योंकि एक बन्दर यह सब नहीं कर सकता। ऐसे ही चमत्कारिक कामों ने रामकथा के अनेक पात्रों को काल्पनिक बना दिया है। हम उनकी ऐतिहासिकता पर सन्देह करने लगते हैं। इसका दोष आदि कवि वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास या अन्य कवियों को देना ठीक नहीं है। इन लोगों ने जो भी किया तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया। सम्भवतः ये चमत्कार ही उस समय भारतीयों में जीवनी फूंकने में समर्थ हुए। रामायण और रामचरितमानस लोकप्रिय हुए तथा जन-जन के कण्ठहार बने। किन्तु आज की परिस्थितियां भिन्न हैं, विज्ञान सभी पर हावी हो गया है, चिन्तन परिष्कृत हो चुका है और सत्य तथा तथ्यपरकता ने अपना महत्त्व सिद्ध कर दिया है। अब हम किसी की बात पर तब तक विश्वास नहीं करते जब तक उसे विज्ञान और सत्य की कसौटी पर कस न लें। कवियों, रचनाकारों को इतनी छूट रहती है कि वे किसी घटना को जैसे चाहें वर्णन करें, इससे रचना की पठनीयता बढ़ती है।

रामकथा में हनुमानजी को कपि, कीसा, मर्कट वानर, बन्दर आदि नामों से पुकारा गया है। उनके हाव-भाव भी वैसे दिखाये गये हैं तथा शारीरिक वर्णन भी बन्दरों सा रखा गया है। किन्तु क्या हनुमानजी वन्दर योनि में उत्पन्न एक वास्तविक बन्दर थे? यदि नहीं तो वे क्या थे? जहाँ तक मेरा और मेरी तरह कुछ अन्य लोगों का विचार है कि हनुमानजी एक मनुष्य थे, हमारी आप की तरह उन्हीं की भाँति सुग्रीव, बालि, अंगद भी आदमी थे, जामवन्त भी आदमी थे। उन्हें बन्दर या रीछ कवियों ने बनाया। रावण भी एक ही सिर वाला राक्षस था।

जहाँ तक हनुमानजी का सम्बन्ध है वे एक आदिवासी जाति या वर्ग से कहे जा सकते हैं। 'वानर' उनकी जाति या गोत्र रहा होगा। जामवन्त भी रिक्ष जाति के मनुष्य थे न कि रीछ। पाश्चात्य विद्वान डॉ. बेवर तथा रामकथा के अध्येता फादर कामिल बुल्के भी इन लोगों को आदिवासी जाति के मनुष्य मानते हैं। खोजों के अनुसार इन जातियों के आदिवासी छोटा नागपुर के आस-पास पाये गये हैं, ये अपने को इन लोगों का वंशज भी बताते हैं तथा इनकी पूजा करते हैं। रामकथा को औपन्यासिकता प्रदान करने वाले भी हनुमानजी आदि को मनुष्य मानते हैं।

हनुमानजी आदि को मनुष्य मानने के कुछ ठोस तर्क भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं। सर्वप्रथम तो यह कि हनुमानजी की माता एक सामान्य स्त्री थीं। बन्दरिया नहीं। बाली और सुग्रीव की पत्नियां भी सामान्य स्त्री थीं। सोचने की बात है कि क्या कोई पिता अपनी कन्या का विवाह बन्दर से करेगा? अथवा क्या कोई रूपवती स्त्री किसी बन्दर को पति के रूप में वरण करेगी। जामवन्त की पुत्री जामवन्ती, जो बाद में श्रीकृष्ण की पत्नी बनी, सामान्य रूपवती कन्या थी, न कि रीछ। रीछ की सन्तान तो रीछ होनी चाहिए। वह स्त्री कैसे बनी? बाली का पुत्र अंगद बन्दर था परन्तु जामवन्त की पुत्री रीछ नहीं थी, ऐसा क्यों- अर्थात् ये सभी मनुष्य थे।

प्राचीन रामकथाओं के अनुसार श्रीराम के सर्वाधिक प्रिय उनके पशु मित्र ही थे, जैसे हनुमान, सुग्रीव, अंगद, जामवन्त, जटायु, सम्पाति तथा अन्य सहस्त्रों वानर-भालू। इन्हींकी सहायता से उन्होंने सीता की खोज की, लंका पर विजय पायी, लक्ष्मण को जीवनदान मिला, आदि। किन्तु इन्हीं पशुओं को समुद्र ने श्रीराम के सामने 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी' कहा। श्रीराम

ने यह कैसे सहा? गंवार निषाद और नारी सीता, कौशल्या आदि भी इन चौपाई में लपेटी गयी हैं क्योंकि वे भी नारियाँ ही थीं। यह सब सुनकर भी प्रभु शान्त रहे। निश्चित ही इस पंक्ति का गूढ़ार्थ कुछ और है। अन्यथा इस कथन के बाद हनुमान, जामवन्त नल-नील आदि अवश्य ही क्रुद्ध हो जाते। स्पष्ट है कि वे पशु नहीं थे, बन्दर आदि नहीं थे।

तीसरी बात यह है कि यदि हनुमानजी बन्दर होते तो इतने कठिन और असम्भव कार्य नहीं कर पाते, जितने उन्होंने किये। अवश्य ही वे मनुष्य हैं। मनुष्य बुद्धि और विवेक से कुछ भी कर सकता है। आकाश में उड़ सकता है, चन्द्रमा-मंगल पर जा सकता है तथा किसी को परास्त कर सकता है। हम जानते हैं कि हनुमानजी ब्रह्मचारी, योगी और एक सिद्ध महापुरुष थे। आदिवासी होते हुए उन्होंने अनेक विद्याएं सीखी होंगी, जिनका अब लोप हो गया है, अथवा जो अब दुर्लभ हैं। सम्भव है कि वे बहुत बड़े तैराक रहे हों, बहुत बड़े धावक रहे हों, बलशाली रहे हों और संजीवनी बूटी न पहचानने के कारण तमाम झाड़-झंखाड़ उखाड़ लाये हों, जिसे कवियों ने 'पहाड़' (अतिश्योक्ति रूप में) कह दिया हो। यदि रावण के पास 'पुष्पक विमान' (हेलीकाप्टर या वायुयान) हो सकता था तो हनुमान के पास क्यों नहीं, जिसका उपयोग उन्होंने किया हो। जो भी हो, यह काम मानव का है, बन्दर का नहीं।

इस सम्बन्ध में चौथा तर्क यह है कि यदि हनुमानजी बन्दर थे तो श्रीराम से पहली बार मिलने पर ब्राह्मण का रूप कैसे धारण किया, वस्त्र तो बदले जा सकते हैं, किन्तु मुंह और पूंछ का क्या होगा? यदि यह मान लें कि उन्हें रूप परिवर्तन की विद्या या सिद्धि प्राप्त थी तो उसका उपयोग उन्होंने अन्यत्र क्यों नहीं किया। अर्थात् वह मछली बनकर सागर पार का सकते थे, चिड़िया बन कर आकाश में उड़कर संजीवनी लाने जा सकते थे, राक्षस बन कर लंका में प्रवेश कर सकते थे, इत्यादि। इससे सिद्ध होता है कि वे मनुष्य थे। सिद्धि भी मनुष्य ही प्राप्त कर सकता है, बन्दर नहीं।

देवताओं का निवास-स्थान तो देवलोक है। किन्तु कुछ उपदेवता-वानर, ऋक्ष इत्यादि का निवास पृथ्वीतल था। इनकी जातियों का अस्तित्व अब लुप्त हो गया है। ये कामरूप होते थे, अर्थात् अपने शरीर का आकार, रूप, रंग इत्यादि इच्छानुसार धारण कर सकते थे। इनका देवताओं से सम्पर्क सहजतापूर्वक हो

जाता था। ये तपस्या कर अनेक आध्यात्मिक, शारीरिक और इच्छा शक्ति प्राप्त कर लेते थे। वानर-उपदेवता वर्ग में ही श्रीहनुमान का जन्म हुआ था।

आज हम इक्कीसवीं सदी के द्वार पर खड़े हैं, जहां विज्ञान और गणित का महत्व सर्वोपरि हो गया है। हमारे प्राचीन ग्रंथों, कथाओं और काव्यों में बहुत सी बातें ऐसी भरी हैं जो विज्ञान और गणित की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। आवश्यकता उनकी काट-छांट की तथा शोध की है। हनुमानजी का चरित्र भी इसकी अपेक्षा रहता है।

प्राचीन काल में विभिन्न जनवर्ग या तो सूर्य, चंद्र, अग्नि इत्यादि से अपना उद्‌भव मानते थे या सिंह, भल्ल, वानर, भास (गृद्ध) इत्यादि से। राम सूर्यवंशी थे, कृष्ण एवं पांडव चंद्रवंशी, आज भी सिंहली अपने को सिंहपुत्र राजकुमार विजय का वंशज मानते हैं। जाम्बवान् (जामवंत) भल्ल जाति के थे, बालि-सुग्रीव-अंगद-हनुमान् इत्यादि वानर जाति के थे, जटायु गृद्ध जाति के थे। प्राचीन विश्व में श्येन (बाज), गृद्ध, क्षेमकरी (चील) इत्यादि सशक्त एवं उच्च-उड्डयन-समक्ष पक्षियों का बड़ा सम्मान था। आज तक उत्सवों पर अनेक आदिवासी सींग या पशु-पक्षी के मुखौटे लगाते हैं। कई बार शरीर के आधार पर ऐसी मान्यता बन जाती थी। रंग काला और बड़े रोएंदार हुआ तो भल्ल ! रंग काला, आकार छोटा और शाकाहारी रुचि हुई तो वानर ! वानर-जाति के प्रमुख नेता गौरवसूचक पुच्छ लगाते थे। जैसे मूँछें मुड़ाना घोर अपमानजनक माना जाता रहा है, वैसे ही इस गौरव-पुच्छ को जलाना या हटाना भी अपमानजनक माना जाता था। रावण जानता था कि यदि हनुमान् की पूँछ जल गई तो वे अपनी वानर-जाति द्वारा अपमानित होने से मरण को श्रेष्ठतर समझेंगे; अतः उसने विभीषण द्वारा दूत के वध के स्थान पर अन्य दंड देने का परामर्श स्वीकार करते हुए पुच्छदाह-दंड दिया !

राम ने आर्यनिषाद, कोल, किरात, भील, गृद्ध, शबर, वानर, भल्ल, निशाचर वर्गों को एक कर दिया था। यक्ष, किन्नर, गंधर्व, नाग इत्यादि वर्ग उनके समय तक आर्यों के पर्याप्त निकट आ चुके थे। राम एवं भरत ने इनके एकीकरण की प्रक्रिया को भी सशक्त किया। यह प्रक्रिया महाभारत-काल तक चलती रही। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन ने यक्ष, हिडिंबा-वर्गीय आदिवासियों, मणिपुरी-जनवर्गों इत्यादि को आर्यों से एकाकर किया, कृष्ण एवं अर्जुन ने बलपूर्वक मय-जाति को मिलाया,

जन्‌-मेजय ने नाग-जाति को। अतः हनुमान उत्तर-दक्षिण भारत की एकता के प्रतीक हैं, आर्य-द्रविड़ एकता के प्रतीक हैं- भारत की एकता के महानतम निर्माता राम के आदर्श सेवक हैं। बदरीनाथ के पुजारी दाक्षिणात्य हैं, रामेश्वरम्‌ के पुजारी उत्तरीय हैं। दक्षिण के शिव उत्तर पर छाए हैं, उत्तर के विष्णु दक्षिण पर । हमारी एकता का आधार कितना दिव्य है ! हनुमान्‌ एकता के पावन प्रतीक हैं- एकता ही शक्ति है अतः वे शक्ति के जाज्वल्यमान्‌ पुंज हैं।

सम्पूर्ण जगत्‌ में परब्रह्म परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी का अस्तित्व नहीं है, स्थावर-जंगम रूप में जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है वह सब उस ब्रह्म का ही लीला-विलास है, चराचर के समस्त प्राणी उस एक परमेश्वर के ही अंश रूपी अवतार हैं, अंश की न्यूनाधिकता के अनुपात से ईश्वर, देवता, मनुष्य, पशु आदि कोटियों का विभाजन होता है, इनमें जो लोकोत्तर शक्ति सम्पन्न होते हैं, वे ईश्वर, देव आदि नाम से अभिहित (पहचाने गए) हुए और जो केवल लौकिक बल-बुद्धि से सम्पन्न हुए वे मनुष्य, पशु आदि प्राणी कहलाए। सत्वगुण सम्पन्न परमात्मा के अवतारों की कोई संख्या नहीं- वे संख्यातीत हैं। सत्वगुण सम्पन्न शक्तियां दो कारणों से अवतरित होती हैं- धर्म संस्थापना के उद्‌देश्य से या दुष्ट संहार के प्रयोजन से। प्रभु अपनी लीला प्रयोजन के अनुसार कुछ को लोक में अभिव्यक्त करते हैं, कुछ को परोक्ष रखते हैं तथा कुछ को अपने में ही अन्तर्निहित रखते हैं। अभिव्यक्त शक्तियों में से कुछ ईश्वरीय शक्तियां (ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, हनुमान आदि) तथा कुछ देव शक्तियां (वायुदेव, अग्निदेव, जलदेव आदि) नित्य एवं स्थायी होती हैं तथा कुछ कार्य कर पुनः परब्रह्म में तिरोहित हो जाती हैं।

रुद्रवतार पवनतनय श्रीहनुमान अपनी मनोजवता, अखण्ड जितेन्द्रियता, अतुलनीय बल क्षमता एवं ज्ञान-भण्डार से परिपूर्ण होने आदि दिव्य गुणों से सम्पन्न होने के कारण ईशत्व की श्रेणी में स्थापित हुए। इन्हें नित्य स्थायी (चिरंजीवी) माना गया। ईश्वर की लीला सदैव ही रहस्यपूर्ण हुआ करती है। उनकी लीलाओं को तो योगी, ऋषि, मुनि एवं देवगण भी नहीं समझ सकते फिर कामादि दोषों से युक्त ज़ीव उसे कैसे समझ सकते हैं? जब धर्म संस्थापना के लिए प्रभु अवतार लेते हैं तो वे धर्मानुकूल प्राणी जैसा ही आचरण करते हैं। इसमें उनका

मुख्य उद्देश्य यही होता है कि सांसारिक जीव आचरण विषयक ज्ञान को प्राप्त कर सकें।

प्रायः भक्तगण हनुमानजी को वानर के रूप में जानते हैं और उनकी जो भी मूर्तियां प्राप्त होती हैं और जो भी वर्णन मिलते हैं उनमें भी यही रूप मिलता है। परन्तु हनुमानजी न तो वानर हैं और न गन्धर्व। उनका गोत्र कपय था। कपय गोत्र के क्षत्रिय महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रान्त में अब भी हैं। सुग्रीव भी कपय गोत्र के राजा थे। इस गोत्र में ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्ण हैं। हनुमानजी की उत्पत्ति मैथुनी सृष्टि से नहीं बल्कि दिव्य दैवी शक्ति से हुई थी। वैदिक साहित्य में हनुमानजी वृषाकपि के रूप में वर्णित हैं। उस युग में उनकी उत्पत्ति मेरु द्वारा समुद्र मन्थन से हुई थी। अतः वह बिजली की तरह मनोजव और वायु की तरह शक्तिशली हैं। वाल्मीकि रामायण में हनुमानजी की उत्पत्ति अंजना नाम की अप्सरा से कही जाती है। वहां लिखा है-

अप्सु निमर्थनादेव रसात् तस्मात् वरिस्त्रयः।
उत्पेर्तुमनुजश्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवन्।

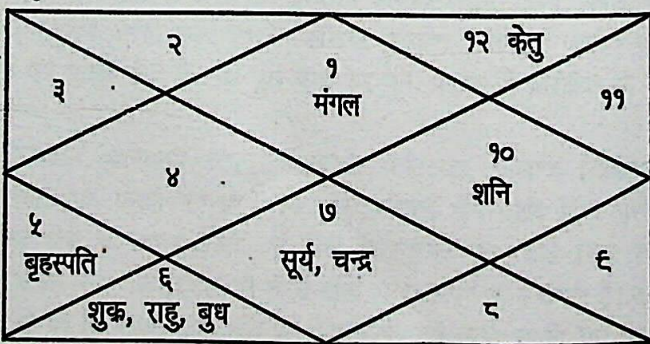
अध्याय—छः

श्रीहनुमानजी का अवतरण तथा जीवन-चरित

श्रीहनुमानजी के जन्म, जन्मसमय, उनके माता पिता और जन्मस्थान के विषय में अनेक मत हैं तथा विभिन्न रामायणों, पुराणों तथा कथानकों में भिन्न-भिन्न मत हैं। उन सब में भिन्नता होते हुए भी एक बात सर्वसम्मत है कि श्री हनुमानजी दिव्यदेवता हैं। उनमें, विद्या, संगीत, साहस, पौरुष, वेग, बुद्धि, विवेक, परोपकार और दया भरे पड़े हैं। वे मानों इन गुणों के साक्षात् अवतार ही हैं।

श्रीहनुमानजी की जन्मकुण्डली

श्रीहनुमानजी की यह जन्म कुंडली विश्वस्तरीय ज्योतिषाचार्य पंचागकार भास्करानन्दजी लोहानी द्वारा विनिर्मित है। उनका कहना है कि श्रीहनुमान श्रीराम से ३६ साल बड़े थे। श्रीहनुमान मंगलवार अमांत प्रदोष काल में कृष्ण चतुर्दशी को ६७५०४२ विक्रमाब्द पूर्व पैदा हुए थे। ऐसा ज्योतिष्कार लोहानीजी ने १७ अप्रैल १६८४ को लिखा था। श्रीहनुमानजी के समस्त वर्णित गुण इस जन्मचक्र के अनुसार बताये गये हैं।



स्कन्दपुराण में श्रीहनुमानजी की जन्मतिथि चैत्र शुक्ल १५, मंगलवार, आनन्दरामायण के अनुसार चैत्रसुदी एकादशी, मघा नक्षत्र शनिवार; वैसानखशास्त्र

के अनुसार श्रावणी पूर्णिमा, श्रवण नक्षत्र और बाल्मीकिरामायण में आश्विन (कार्तिक) बदी चतुर्दशी, स्वाति नक्षत्र प्रदोष (तारोदय काल) नक्षत्र में बतायी गयी है। चैत और कार्तिक में मारुति जन्म को इस तरह समन्वय किया गया है कि वे चैत में गर्भ में आये और कार्तिक में उत्पन्न हुए। बाल्मीकि हनुमान-राम के समसामयिक थे अतः उनका विवरण सर्वाधिक विश्वसनीय है।

श्रीहनुमानजी के जन्म समय के बादे में दो मत हैं। वैसे तो मेरे विश्वास में हनुमानजी का जन्म आदिसृष्टि के साथ ही हुआ था। क्योंकि बिना वायु के प्राण की स्थिति नहीं है। अतः प्राण को यदि हम ईश्वर अंश जीव मानते है तो वह बिना वायु के रह नहीं सकता है। अतः जीवरूपी राम जहां रहेगा वहां वायुरूपी हनुमानजी अवश्य रहेंगें अतः जहां राम हैं वहां हनुमानजी अवश्य हैं। हनुमानजी भले ही अकेले रह लें पर राम (जीव) बिना हनुमानजी के नहीं रह सकते हैं। दूसरी स्थिति यह है कि श्रीहनुमान समुद्रमन्थन के समय पैदा हुए। जिन्हें शंका हो कृपया पद्मपुराण देखें। हां, चौदह रत्नों में हनुमानजी की गणना नहीं की गयी है क्योंकि वे देवता हैं, रत्न नहीं।

हिन्दू शास्त्रों में दो मत अत्यन्त प्रसिद्ध और प्राचीन हैं। शैव और वैष्णव। शैवमत, इतिहासकारों के मत में, वैष्णवमत से प्राचीन है। शैवमत में चतुर्दशी तिथि का बड़ा ही महत्व है। कहते हैं भगवान शिव का जन्म भी फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी को हुआ था। शैवमत वाले श्रीहनुमानजी को भगवान शिव का अवतार मानते हैं।

स्कन्दपुराण के महेश्वरखण्ड में लिखा है "यो वै चैकादशी रुद्रो हनुमान स महाकपिः। अवतीर्ण सहायार्थ विष्णोरमिततेजसः। इसी प्रकार अग्निपुराण में लिखा है कि- आश्विनस्यासिते पक्षे स्वात्यां भौमे च मारुतिः। मेष लग्नेऽञ्जना गर्भात् स्वयं जातो हरः शिवः।

अश्विन मास के कृष्णपक्ष में स्वाती नक्षत्र में मंगलवार के दिन मेष लग्न में मां अञ्जना के गर्भ से स्वयं भगवान शंकर ने हनुमान के रूप में जन्म लिया था। यहां पर आश्विन कृष्णापक्ष मुख्यमास की गणना से है। कार्तिक कृष्णपक्ष तो गौणमास की गणना से आता है जो उत्तर भारत में सर्वत्र प्रसिद्ध एवं प्रचलित है। अगस्तसंहिता में भी यही बात कही गयी है-

ऊर्जे कृष्ण चतुर्दश्या भौमे स्वात्यां कपीश्वरः।

मेष लग्ने ऽञ्जना गर्भात् प्रार्दुभूतः स्वयं शिवः।।

कार्तिकमास की कृष्ण चतुर्दशी को सती नक्षत्र में भौमवार को मेषलग्न में अञ्जना के गर्भ में कपिवर कपय गोत्रीय श्री हनुमानजी का जन्म हुआ था। यहां पर तिथि चतुर्दशी का उल्लेख है। वायुपुराण भी कार्तिक कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को ही श्रीहनुमानजी के जन्म की बात कहता है। यथा–

आश्विनस्यसिते पक्षे स्वात्यां भौमे चतुर्दशी
मेषे लग्नेऽञ्जनी गर्भात् स्वयं जातो हरः शिवः।

इसलिए शैवमत से श्रीहनुमानजी का जन्मोत्सव कार्तिक मास की कृष्ण चतुर्दशी को सायंकाल मनाया जाता है। आप जानते हैं कि स्वयं साक्षात् रुद्रावतार होते हुए भी हनुमानजी को श्रीराम ही इष्ट हैं। श्रीराम ही उनके स्वामी एवं प्रभु हैं। वैष्णव मतावलम्बी श्रीहनुमानजी का जन्म चैत्रमास में मानते हैं। उसके प्रमाण निम्नलिखित हैं। आनन्दरामायण में लिखा है कि–

चैत्रमासे सिते पक्षे मघाभिधे।
नक्षत्रे च समुत्पन्नो हनुमान् रिपुरुदनः।
महा चैत्री पूर्णिमायां समुत्पन्नो ऽञ्जनीसुतः।
वदन्ति कल्पभेदेन बुधा इत्यादि केचन।

स्कन्दपुराण के वैष्णवखण्ड में लिखा है कि–

मेषसंक्रमणो भानौ सम्प्रातेमुनिसत्तम।
पूर्णिमामाख्येतिथौ पुण्ये चित्रानक्षत्रसंयुते।

इस प्रकार श्रीहनुमानजी का जन्म चैत्रमास में जब सूर्य मेष लग्न में था तो महाचैत्री पूर्णिमा को मेघा नक्षत्र में हुआ था। इसी माह में भगवान श्रीराम का जन्म नवमी तिथि को हुआ था। यदि हम इस श्रुति को सही मान लें कि श्री हनुमान अग्निदेव द्वारा प्रदत्त 'केसरी' खीर (हविष्य) के पुत्र हैं तो यह तर्क ठीक उतरता है और इसी समय राम, भरत, लक्ष्मण, शुत्रुघ्न और सीताजी का जन्म भी हुआ था। स्वयं तुलसीदासजी ने हनुमान चालीसा में भगवान राम के मुख से हनुमानजी को "भरत सम प्रियभाई" कहलवाया है। अतः सत्य यही है कि श्रीहनुमानजी का जन्म चैत्रमास की पूर्णिमा को हुआ था। किन्तु शैव मत की सत्यता भी प्रामाणिक ही है। अतः अधिकांश भक्तगण विवाद में न पड़ कर

कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को श्रीहनुमान जयन्ती सोल्लास मनाते है।

श्रीहनुमान प्राकट्य लीलाः- श्रीहनुमान एकादश रुद्र के अवतार हैं। रुद्र कौन है? इस प्रश्न का उत्तर उपनिषदों में दिया गया है। अथर्वीशर उपनिषद का कहना है-"देवताओं ने स्वर्गलोक में जाकर रुद्र से प्रश्न किया कि आप कौन हैं? रुद्र कहने लगे, मैं अकेला ही ऐसा हूँ, जो सबसे पहले था और इस समय हूँ और आगे रहूँगा। मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा नहीं है।" रुद्र ही ब्रह्माण्ड निविन्ता है, उसके स्वरूप को समझना आवश्यक है- *"यत्सूक्ष्मं रुदैलुतं, यदैद्युतं तत्र् परं ब्रह्म, यत्र् परं ब्रह्म, स एकः, य एकः स रुद्रः, यों रुद्रः स ईशानः, स भगवान महेश्वरः।"* (अर्थात् जो सूक्ष्म है वही प्रकाश स्वरूप है और जो एक है, वह रुद्र है और जो रुद्र है वह ईश्वर है और इस ईश्वर को ही भगवान शंकर कहा जाता हैं।" रुद्र का कार्य सृष्टि को उत्पन्न करना, पालन करना और संहार करना है। रुद्र के तीन रूप हैं, जिन्हें खण्ड रूप में ब्रह्मा, विष्णु, और महेश कहते हैं। ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं। सृष्टि, पालन और संहार अकेले रुद्र ही किया करते हैं। रुद्र वंदना में तैत्तिरीयारण्यकोपनिषद का कथन है-*"ऋतं (रुद्रं) सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्ण पिंगलम्। उर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वे नमः।।"* तथा *"सर्वो वे रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमोऽअस्तु।"*

रुद्र रौरव रूप हैं, शिव शान्त रूप हैं। श्रीहनुमानजी रुद्र और शिव स्वरूप के समुच्चय रूप हैं। वे एक साथ अग्नि और जल दोनों रूप हैं। सृष्टि का प्रथम अवतरण अग्नि है। अग्नि ही जल है, जल ही अग्नि रूप में परिवर्तित होता रहता है। श्रीहनुमानजी में अग्निरूप क्रोध एवं ताप और जलरूप शान्ति एवं शीतलता का जो विरोध दिखाई देता है, वही सृष्टि का संचालक है।

अग्नि और जल दो प्रधान तत्व हैं। इन दो के अभाव में सृष्टि का क्रमिक विकास नहीं हो सकता। अग्नि में जल श्यान करता है और जल में अग्नि शयन करती है और श्रीहनुमानजी में अग्नि और जल दोनों ही तत्व विद्यमान हैं। शीतल, शान्त और गतिमान एवं उष्ण, तीक्ष्ण, प्रसरणशील के अतिरिक्त वायु तत्व उनमें और विद्यामन है। प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, कृकल, कूर्म धनंजय, देवदत्त, नाग आदि ४९ प्रकार का वायु है। यह वायु ही सारे विश्व को स्पंदित करती है, अतः सृजन का मूल होने के कारण इसे ब्रह्मा कहते हैं। जल से सारी

सृष्टि का पोषण होता है, अतः "आपो वै विष्णुः" यह विष्णु रूप है और अग्नि ही सारी सृष्टि का संहार कर पुनः नवीनीकरण के लिए प्रेरित करता है, अतः वही 'शंकर' है। श्रीहनुमानजी सृष्टि के प्रारम्भ में ही अपना आत्म संहरण करने के लिए सूर्य को निगलने के लिए तैयार हो गए। देवताओं ने प्रार्थना की तो शान्त हुए, जल रूप हुए। वेद में "आकृष्णेनरजसा"-मंत्र संकेत करता है कि सारे ब्रह्माण्ड को रुद्र ने अन्धकार में डुबो दिया- *"बाल समय रवि भच्छ लियो, तब तीनिंहु लोक भयो अंधियारौ। देवन आनि करी विनती तब, छांड़ि दियौ, रवि कष्ट निवारौ।"*

देवताओं का कष्ट ज्यो-त्यों करके दूर हुआ तो देवप्रार्थना पर श्रीहनुमानजी अपने प्रकृतरूप को भूल गये। लेकिन देवताओं को मालुम था कि रुद्रावतार, रामावतार के प्रयोजन की सिद्धि के लिए हुआ है। अतः समुद्र के पार कौन जाय सिवाय रुद्र के। रुद्रत्व विस्मृत शान्त शिवस्वरूप श्रीहनुमानजी को जाम्बवानूजी याद दिलाते हैं *"का चुप साधि रहेउ बलवाना।"* इतना कहना था कि रुद्रत्व जागृत हो गया *"जिमि अमोघ रघुपति कर बना। तेही भांति चलेउ हुनमाना।"* और इतना ही नहीं –*"जेहि गिरि चरन देइ हनुमंता, चलेउ सो गा पाताल तुरंता।"* और भी देखें रुद्रत्व का कमाल- *'उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परेउ पुनि सिंधु मझारी।"* अब देखें शिवत्व रूप-*"पूँछ बुझाइ खोइ श्रम, धरि लघु रूप बहोरि। जनक सुता के आगे, ठाढ़ि भयउ कर जोरि।"*

श्रीहनुमानजी के द्वारा लंका दहन में प्रज्ज्वलित भीषण अग्निकांड से देवताओं को भी डर लग गया था। देवी पार्वती शंकित हो उठीं कि इतनी प्रचण्ड आग में भी श्रीहनुमानजी क्यों नहीं जले और पूछ भी बैठी महादेवजी से कि "नाथ! श्रीहनुमानजी इतनी प्रचंड आग से भी जीवित कैसे निकल आये?" शंकरजी बोले- *"जाकर दूत अनल जेहि सिरजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा।"* श्रीहनुमानजी तो उस परब्रह्म श्रीराम का दौत्य कर्म करते हैं जिन्होंने स्वयं अग्नि का सर्वप्रथम निर्माण किया। सृष्टि का प्रथम अवतरण अग्नि या रुद्र ही तो है। इसी बात को प्रकारान्तर से समझाते हुए शिव ने स्पष्ट कर ही दिया है कि भला अग्नि को अग्नि कैसे जला सकती है, जल को जल कैसे डुबो सकता है और वायु को वायु कैसे सुखा सकती है? नितान्त असम्भव है। गोस्वामीजी ने तपस्वी के रूप में

श्रीराम की पहले ही भेंट करा दी है श्रीहनुमान जी से, ताकि परमब्रह्म राम समझ लें कि अग्निरूप रुद्र शिवत्व रूप में विद्यमान हैं। देखें- *"तेहि अवसर एक तापस आवा। तेज पुंज लघु वयस सुहावा।।"*

तुलसीदासजी ने श्रीराम से मिलाते हुए यहाँ तेजपुंज श्रीहनुमानजी को तपस्वी रूप में दिखा-कर यह सिद्ध कर दिया है कि रुद्रावतार, रामावतार की उद्देश्य सिद्धि के लिए हुआ है। अयोध्या में काकभुंशुडि के साथ शंकररूप में स्वयं रुद्र वृद्ध ब्राह्मण ज्योतिषी बनकर श्रीराम की जन्म कुण्डली देखने आते है, इसकी चर्चा गोसाईंजी ने की है- *"अवधि आजु आगमि एकु आयो। बूढ़ो बड़ौ प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम कहायौ।।"*

श्रीहनुमानजी रुद्र के अवतार हैं। वे रुद्र और शिवरूप सृष्टि और लय के आदिदेव हैं। उनके श्रीचरणों के मध्य सृष्टि का विकास और पोषण हो रहा है। आज भी वे चिरंजीवी हैं- *"अवश्वत्थामा बलि र्व्यासो, हनुमांश्च विभीषणः। कृपः परशुरामश्च सप्तैता चिरजीविनः।।"*

महारुद्रोत्पत्ति लीला :- वर्तमान सृष्टि के वाराह कल्प की बात है। सब कुछ समुद्र में डूबा हुआ था। उसमें अनन्तशायी भगवान नारायण शयन कर रहे थे। उनकी नाभि से एक कमल प्रकट हुआ। उस कमल पर ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ। उन्होंने चारों ओर देखा, जिससे उनके चार मुख हो गये। एक मुख पहिले से ही था। इस प्रकार प्रारम्भ काल में ब्रह्मा के पाँच मुख हुए। ये सृष्टिकर्ता वहीं तप निरत हो गये। तपस्या के कारण ब्रह्मा के हृदय में नारायण प्रकट हुये। उन्होंने ब्रह्मा को वेदों का शब्दात्मक और अर्थात्मक ज्ञान प्रदान किया। वेद ईश्वर का ज्ञान हैं।

ब्रह्मा ने संकल्प से अपने समान मानवाकार सृष्टि की। पहले चार कुमार सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार उत्पन्न हुए। मानसी सृष्टि हम भी करते हैं, लेकिन हमारे संकल्प में बल न होने के कारण हमारा संकल्प प्राणी पदार्थ को बाहर मूर्तिमान नहीं कर पाता।

ब्रह्मा ने अपने चारों पुत्रों को सृष्टि करने की आज्ञा दी, किन्तु चारों कुमार उस आज्ञा को स्वीकार नहीं कर सके। उन्होंने कह दिया, "इस रजोमुखी प्रवृत्ति का क्या प्रयोजन है? यह तो भगवान से विमुख कर देगी और आनन्द से भी वंचित

कर देगी। ऐसी सृष्टि तो सदा दुःखी रहेगी।" इस प्रकार जब चारों कुमारों ने पिता की पहली ही आज्ञा को अस्वीकार कर दिया तो ब्रह्माजी को बड़ा क्रोध आया। स्वाभाविक है, कामना जितनी प्रबल होगी, उसमें बाधा होने पर उतना ही क्लेश होगा और क्रोध आवेगा। ब्रह्मा का वह क्रोध ही उनके भ्रूमध्य से एक नील लोहित शिशु के रूप में प्रकट हो गया। यह शिशु त्रिनेत्र था। प्रकट होते ही वह रोने लगा और उसने रोते रोते ब्रह्माजी से कहा, "मेरा नामकरण करो, मुझे रहने का स्थान बताओ।" ब्रह्मा ने कहा, "तुम उत्पन्न होते ही उद्वेगपूर्वक रोने लगे हो, इसलिये तुम्हारा नाम रुद्र होगा। हृदय, इन्द्रियाँ, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र और तपस्या, ये तुम्हारे स्थान हैं। इनमें तुम मन्यु, मनु, महिनस, महान, शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव और धृतव्रत इन नामों से निवास करो। धी, वृति, उष्ण, उमा, नियुति, सर्पि, इला अंबिका, इरावती, सुधा, दीक्षा ये तुम्हारी पत्नियाँ हों।" यह शिव का योगावतार हुआ। इनके पुत्र हुये, शनिश्चर, शुक्र, गणेश, काम, स्कन्द और बुध।

सृष्टि का काम सृजन और विनाश, इन दोनों को मिलाये बिना नहीं चल सकता। हमारे आपके शरीर के भीतर और बाहर भी प्रत्येक पदार्थ प्रतिक्षण बन रहा है और मर रहा है। यह निर्माण-विनाश की क्रिया निरन्तर चल रही है। यह क्रिया ब्रह्मा और रुद्र द्वारा हो रही है। इस क्रिया के मध्य में पोषण का कार्य है। यह पोषक शक्ति भगवान विष्णु हैं।

जब ब्रह्मा ने रुद्र को सृष्टि करने की आज्ञा दी, तो रुद्र ने मना नहीं किया, किन्तु जब उन्होंने सृष्टि आरम्भ की, तो उनके अनुरूप ही सृष्टि हुई। उन्होंने भूत, प्रेत, पिशाच, रोग, दुर्घटनाएं, महामारी इन सबके अधिदेवता बना दिये। यह देखकर ब्रह्मा घबरा गये। उन्होंने कहा, "बस अब सृष्टि बन्द करो। तुम्हारी यह सृष्टि तो स्वयं मुझे भी जला देगी, ये उग्र है।" तब रुद्र ने पूछा, "फिर मैं क्या करूं? ब्रह्मा ने कहा- "तप करो, भगवान नारायण का ध्यान करो। उसके द्वारा सात्विकता, शान्ति, एकाग्रता प्राप्त होगी।" रुद्र तो यही चाहते थे। उन्होंने हँसकर इसे स्वीकार कर लिया। नारायण के स्मरण चिन्तन में उन्हें प्रायः बाहृय स्मरण ही नहीं रहता। कोई प्रार्थना करे, उपासना करे, पुकारे, तो उसको "तथास्तु" कह देते हैं, बिना यह सोचे कि वह क्या मांग रहा है? इससे उसका या जगत का

क्या हित है? इतना सोचने के लिये बहिर्मुख कौन हो? भगवान शिव वैराग्य की साक्षात् मूर्ति हैं। उनका ध्यान व्यक्ति को राग द्वेष से ऊपर उठा देता है। राग, द्वेष का मूल आधार है शरीर के प्रति आसक्ति, परिछिन्न देह को अपना मानकर ही इससे और इससे सम्बन्धितों से राग होता है। उनके प्रतिकूल से द्वेष होता है।

'कूर्मपुराण' के अनुसार भगवान शिव ने ब्रह्मा से कहा' तुम मुझे एक पुत्र के रूप में पाना चाहते थे, इसीलिये मैं तुम्हारा पुत्र होकर प्रकट हुआ हूँ। वैसे मैं निष्कल और सबका आदि कारण हूँ। स्वयं ही मैंने अपने को तीन रूपों में विभक्त कर दिया है। ये रूप जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के लिये हैं। मेरे दक्षिणांग से तुम और वामांग से नारायण उत्पन्न हुये हैं और हृदय से रुद्र स्वरूप मैं स्वयं उत्पन्न हुआ हूँ। इसी प्रकार जितने भी रूप हैं, सब मैंने अपनी माया से प्रकट किये हैं।

एकादश रुद्र – भगवान शिव परात्पर परमतत्त्व हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है- *"रुद्राणां शंकर श्चास्मि"* भगवान शंकर से ग्यारह रुद्र और प्रकट हुये। इनके प्राकट्य की कथायें भी अनेक हैं।

लिंगपुराण के अनुसार दैत्यों से पराजित देवता अपने पिता महर्षि कश्यप के पास पहुँचे। यद्यपि दैत्य भी कश्यप के ही पुत्र हैं, किन्तु जब दो पुत्रों में संघर्ष हो जाता है, तब पराजित पुत्रों को उनका स्वत्व दिलाने के लिये पिता को कुछ करना ही पड़ता है। महर्षि कश्यप ने देवताओं को आश्वासन दिया। वे जानते थे कि दैत्य उनकी कोई भी आज्ञा मानने को तैयार नहीं होंगे। जब अपने से छोटे अनुशासन न मानें, तब उन्हें समझाना बुद्धि नहीं मानी है। बड़ों को तब अपने सम्मान की रक्षा के लिये तटस्थ रहना ही उचित है।

कश्यप वाराणसी पहुँचे। वहाँ उन्होंने शिवलिङ्ग की स्थापना कर दीर्घकाल तक तप किया। अन्ततः भगवान विश्वनाथ ने प्रकट होकर उनसे वर माँगने को कहा। कश्यप ने अपनी पत्नी आदिती के पुत्र देवताओं के अपने सौतेले भाई दिति के पुत्र दैत्यों से पराजित होने से उनकी रक्षा करने की प्रार्थना की। आशुतोष ने "एवमस्तु" कह दिया और अन्तर्धान हो गये। तब भगवान शिव कश्यप के पुत्र बनकर ग्यारह रूपों में प्रकट हुये। इनके नाम हुये –कपाली, पिंगल, विरुपाक्ष,

विलोहित, शास्ता, अजेकपाद, अहिबघ्न, शम्भु, चण्ड और भव। इन्हीं को एकादश रुद्र कहा जाता है। इनकी सहायता से ही देवताओं ने दैत्यों पर विजय प्राप्त की।

लिंगपुराण में ही एक अन्यकथा के अनुसार जब ब्रह्मा सृष्टि के लिये उग्र तप करते हुए निराश हो गये, तब उन्हें बहुत क्रोध आया। क्रोधावेश में उनके नेत्रों से जो अश्रु बिन्दु गिरे, उन बिन्दुओं से रोगों के अधिदेवता और सर्प उत्पन्न हुये। इससे ब्रह्मा को बहुत पश्चाताप हुआ और उन्होंने शरीर त्याग दिया। उस परित्यक्त शरीर से ग्यारह रुद्र प्रकट हुये जो उस देह के प्राण थे।

यह कथा इस प्रकार है कि ब्रह्मा ने रुद्र को सृष्टि करने के लिये कहा, तब रुद्र ने अपने से दस रुद्र और उत्पन्न किये। बहुत से भूत, प्रेत, पिशाच प्रकट हो गये। यह देखकर ब्रह्मा ने कहा- "आप तो ऐसी सृष्टि उत्पन्न कर रहे हैं जो प्रलय पर्यन्त मरेगी ही नहीं। ऐसी सृष्टि उत्पन्न करो जो मरणधर्मा हो।" रुद्र ने ब्रह्मा से कहा- "मरणाधर्मा सृष्टि उत्पन्न करने में मेरी कोई रुचि नहीं है। ऐसी सृष्टि आप ही उत्पन्न करो।" ऐसा कहकर वे तपो निरत हो गये।

ब्रह्मपुराण में कथा है कि सृष्टि के लिये जब ब्रह्मा को कोई उपाय नहीं सूझा तो वे अपनी इस असफलता पर बहुत क्रुद्ध हुये। तब उनके भ्रू-मध्य से वह क्रोध महेश्वर के रूप में व्यक्त हुआ। ब्रह्मा ने उन्हें सृष्टि करने की आज्ञा दी, लेकिन रुद्र तप करने के लिय जल में प्रविष्ट हो गये। यह देखकर ब्रह्मा को झुंझलाहट हुई। उनके शरीर से फिर उनका क्रोध अर्धनारीश्वर के रूप में प्रकट हुआ। ब्रह्मा ने आदेश दिया- "अपने शरीर को विभक्त करो।" अर्धनारीश्वर ने अपने को दो भागों में विभक्त किया। एक भाग स्त्री हो गया और दूसरा भाग पुरुष। उस पुरुष भाग को भी उन्होंने दस और भागों से विभक्त कर दिया। ग्यारहवें वे स्वयं बने रहे। इस प्रकार यह एक कल्प की एकादश रुद्र व्यक्त होने की कथा है।

श्रीहनुमद् अवतार - श्रीहनुमानजी रुद्र-शंकर के अवतार हैं। शंकर भगवान ने वानररूप ही क्यों धारण किया, इसके अनेक वृत्तान्त हैं। एक वृत्तान्त में आता है कि भगवान श्रीराम बाल्यकाल से ही सदाशिव की अराधना करते हैं, और भगवान शिव भी श्रीराम को अपना इष्ट मानते हैं, किन्तु जब भगवान विष्णु ने श्रीराम बनकर नर अवतार लिया तो भगवान शंकर, शिवरूप में किसी भी नररूप की आराधना कैसे कर सकते थे? अतः उन्होंने नरावतार भगवान राम की

उपासना की तीव्र लालसा को फलीभूत करने के लिये वानर अवतार धारण कर उनकी परिचर्या का मार्ग ढूंढ़ निकाला और वे विशुद्ध सेवक का रूप धारण कर श्रीराम की सेवा करने के लिय अंजना के गर्भ से प्रकट हो गये। इस तरह भगवान शंकर ने अपने रुद्रविग्रह का परित्याग कर वानररूप धारण कर लिया और इस प्रकार शिव के अंश से उत्पन्न होने के कारण 'शंकर सुवन' कहलाये।

श्रीहनुमानजी साक्षात् परमेश्वर रुद्र हैं। वे स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और साक्षात् महेश्वर हैं। त्रिपुरनाश के पहले देवताओं ने भगवान शंकर की विभूतियों का वर्णन करते हुये उनके हनुमानरूप का स्मरण किया था। परब्रह्म रुद्रावतार हनुमानजी का वृत्तान्त वेद, पुराण, रामायण, तन्त्र, मन्त्र तथा अन्यान्य कृतियों में उपलब्ध होता है। श्रीहनुमान एकादश्य रुद्रों में से एक हैं। वे शत्रु का संहार करने वाले हैं। वे परम कल्याण स्वरूप साक्षात् शिव हैं। पुराणों में हनुमानजी के रुद्रावतारात्मक प्रसंग तथा वृतान्त प्रचुरता से मिलते हैं। नन्दीश्वर ने सनत्कुमार से श्रीशंकरजी के हनुमान के रूप में आविर्भूत होकर लीला करने का वर्णन किया है।

एक बार शिवजी ने भगवान विष्णु का मोहिनी रूप देखा। उन्होंने श्रीराम के कार्य की सम्पन्नता को दृष्टि में रखकर अपना वीर्यपात किया। शिवजी से प्रेरित सप्तऋषियों ने उसको पत्ते में रखकर अंजना के कर्ण मार्ग से उसमें प्रवेश कराया। उस वीर्य में यज्ञबली वानर शरीर वाले 'हनुमान' नाम से शिव प्रकट हुये। श्रीहनुमानजी को शिव के प्रमुख गण नन्दी के रूप में भी वर्णित किया गया है और इस वर्णन में भी उनकी रुद्ररूप शिवात्मकता सुरक्षित है।

एक प्रसंग इस प्रकार है कि एक बार कैलाश पर्वत पर पुष्पक विमान की गति को अवरुद्ध देखकर रावण ने दृष्टि दौड़ायी तो उसे पर्वत शिखर पर वानररूप में नन्दी दीख पड़े। उन्हें देखकर वह हंस पड़ा, तब नन्दी ने रावण को शाप दिया था, कि "प्रजापति पुलस्त्य के वंश में तुम्हारा विनाश करने के लिये मेरे ही मुख के से मुखवाले भीम व पराक्रमी वानर उत्पन्न होंगे।" इससे नन्दी के शाप से रुद्रांश का हनुमान के रूप में प्रकट होना सिद्ध होता है। हनुमान द्वारा लंका को जलते देखकर रावण सोचता है कि "यदि हुनमान रुद्र के अवतार हैं, तो मुझ रुद्र भक्त की नगरी को क्यों जला रहे हैं? मैं समझ गया, पिनाकधारी शिव मेरे द्वारा दस मस्तकों के समर्पण से प्रसन्न हो गये, किन्तु ग्यारहवें रुद्र प्रसन्न नहीं हो सके।

इसीलिये रुद्रावतार हनुमान जी लंका जला रहे हैं। मैंने पंक्तिभेद किया और ऐसा करना कभी भी कल्याणप्रद नहीं होता।"

श्रीराम ने कुम्भकर्ण के साथ युद्ध में हनुमानजी को रुद्ररूप में देखा था। महाराज रघुराज सिंह ने अपनी "राम रसिकावली" में लिखा है- "महेश रूप हनुमान ने श्रीसीताजी के शोकरूपी हलाहल का विष पानकर लिया!" भगवती श्रीसीताजी ने पंचाक्षर शिवमंत्र द्वारा श्रीहनुमानजी को तृप्त किया था। लंका से वापिस आने पर एक दिन सीताजी ने हनुमानजी को प्रसाद ग्रहण करने के लिये आमंत्रित किया। वे हनुमानजी को बार-बार परोसती रहीं। हनुमानजी सब कुछ समाप्त करते चले गये। सीताजी आश्चर्यचकित हो गईं। उन्हें ध्यान योग से याद आया कि हनुमान तो साक्षात् रुद्र हैं। उन्होंने "ॐ नमः शिवाय" मंत्र का उच्चारण कर फिर भोजन अर्पित किया तब हनुमानजी तृप्त हो गये।

जन्म लीला :- परब्रह्म रुद्ररूप बाबा श्रीहनुमानजी के जन्म की लीला की महिमा उन्हीं की कृपा से समझ में आ पाती है।

श्रीहनुमानजी की परम पुण्यमयी माता अंजनादेवी हैं; किंतु वे 'शंकर-सुअन', 'वायुपुत्र' और 'केसरीनन्दन' कहे जाते हैं, अर्थात् शिव, वायु और केसरी उनके पिता हैं। इस रहस्य को स्पष्ट करने वाली विभिन्न कथाएँ पुराणों में प्राप्त हैं और कल्पभेद से सभी सत्य हैं। श्रद्धापूरित हृदय से उनका अध्ययन, मनन, चिन्तन आदि निश्चय ही परमानन्द देता है।

श्रीहनुमानजी की माता स्वर्गाधिप शचीपति इन्द्र की रूप-गुण-सम्पन्ना अप्सराओं में पुंजिकस्थला नाम की एक प्रख्यात अप्सरा थी। वह अत्यन्त लावण्यवती तो थी ही, चंचला भी थी। एक बार की बात है कि उसने एक तपस्वी ऋषि का उपहास कर दिया।

ऋषि इसे नहीं सह सके। क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप दे दिया-'वानरी की तरह चंचलता करने वाली तू वानरी हो जा।'

ऋषि का शाप सुनते ही पुञ्जिकस्थला काँपने लगी। वह तुरंत ऋषि के चरणों पर गिर पड़ी और हाथ जोड़कर उनसे दया की भीख माँगने लगी। सहज कृपालु ऋषि द्रवित हो गये और बोले-'मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता। वानरी तो तुम्हें होना ही पड़ेगा, किंतु तुम इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ होगी। तुम जब

चाहोगी, तब वानरी और जब चाहेगी, तव मानुषी के वेष में रह सकोगी।'

उस परम रूपवती अप्सरा पुञ्जिकस्थला ने ऋषि के शाप से कपियोनि में वानरराज महमनस्वी कुञ्जर की पुत्री के रूप में जन्म लिया। वह प्रख्यात अनिन्द्य सुन्दरी थी। उसके रूप की समानता करने वाली अन्य कोई स्त्री नहीं थी। उस त्रैलोक्य विख्यात सुन्दरी कुञ्जरपुत्री का ही नाम था-'अंजना'।

लावण्यवती अंजना का विवाह वीरवर वानरराज केसरी से हुआ। कपिराज केसरी काञ्चनगिरि (सुमेरु) पर रहते थे। समस्त सुविधाओं से सम्पन्न इसी सुन्दर पर्वत पर अंजना अपने पतिदेव के साथ सुखपूर्वक रहने लगी। वीरवर केसरी अपनी सुन्दरी पत्नी अंजना को अत्यधिक प्यार करते और अंजना सदा अपने प्राणाराध्य पतिदेव में ही अनुरक्त रहती थी।

सूर्य भगवान के वरदान से सुमेरु पर्वत की आभा स्वर्णिम हुई थी। ऋतुपति की सतत उपस्थिति में विकसित कुसुमों और उन पर गुंजायमान भ्रमर-पंक्तियों के कारण प्रकृति यहां सदैव श्रृंगारित और सौंदर्यपूरित रहती थी। स्वच्छ जल, तपस्वियों और सिद्ध-साधकों के मोहक कुटजों में निरन्तर सम्पन्न अग्नि होत्र, पर्णकुटियों से उठते मंत्रोच्चार और देव-स्तवन के स्वर सम्पूर्ण प्रदेश को एक अलौकिक प्रणीतता और शुचिता प्रदान करते रहते थे। सम्पूर्ण क्षेत्र सदा एक स्वर्गिक आभा से सम्पन्न, एक अलौकिक विलक्षणता से व्याप्त रहता था। यह था प्रसिद्ध प्रभास-तीर्थ। यहां रहते थे वानर-राज केसरी। पर्वत के सुरम्य शिखर पर निर्मित एक भव्य प्रासाद में उनका निवास था। पूँछ वाली किन्तु बल-बुद्धि विद्या-सम्पन्न यह जाति नर से किसी भी अर्थ में कम नहीं थी। किन्नर, गन्धर्व, वानर -अपने-अपने प्रदेशों में सानन्द निवास करने वाली ये जातियां-बहुत अर्थों में नरों से श्रेष्ठ और समुन्नत थीं। ये उप-देवता की श्रेणी में आती थीं। ये काम-रूप होती थीं और इच्छाचारी भी। जब जैसा चाहा स्वरूप धर लिया, जब जहां चाहा पहुंच गए।

धन-धान्य से पूर्ण वानर-साम्राज्य के स्वामी महावीर केसरी के दिन सुख-पूर्वक ही कट रहे थे पर एक चिन्ता थी जो उन्हें सदा व्यथित करती रहती थी। सब कुछ था पर सन्तान-सुख से वे वंचित ही थे। यही एक बात थी जो वानर-राज के अन्तर को निरन्तर मथ रही थी।

प्रभास-तीर्थ के पास ही प्रवाहित एक सुरम्य सरित-प्रवाह में वहां तपोरत ऋषि-मुनियों का स्नान सम्पन्न होता और उसी में जल-क्रीडा रत रहता "धवल" नाम का मत्त गजराज, जिसके दीर्घ दन्त-युगल सदा स्नानार्थियों के भय का कारण रहते थे। अपने इन तीक्ष्ण किन्तु सशक्त दाँतों से वह अनेक ऋषि मुनियों के प्राण ले चुका था। एक दिन वह भरद्वाज ऋषि के पीछे पड़ गया। ऋषियों के ऋषि, ऋषि-गुरु भरद्वाज प्राणों के भय से सिर पर पैर रख आश्रम की ओर भागे पर वह मस्त मतंग उनके पीछे ही पड़ा रहा। इससे पहले कि वह गजराज ऋषि के शरीर को चीर देता कि वानरराज केसरी तीर्थ की ओर आ धमके। उन्होंने धवल को दांतों से पकड़ा और फिर उन दीर्घ दन्तों को उसके शरीर से अलग कर, उन्हीं द्वारा प्रहार कर उसके प्राण ले लिये।

'वर मांगो', प्रसन्न एवं आश्वस्त ऋषि ने कहा।

"वर क्या मांगना ऋषिवर? आपका दिया सब कुछ है।" वानर राज ने कहा।

"होगा सब कुछ" ऋषि भरद्वाज ने कहा था, "फिर भी साधुओं के दर्शन व्यर्थ नहीं जाते। मांग लो जो कुछ भी मांगना चाहो। कुछ भी अदेय नहीं है मेरे लिए। ऐसा ही फल है प्रभास-तीर्थ में सम्पन्न मेरी तपस्या का।"

वानरराज केसरी ने सोचा अगर इनके लिये कुछ भी अदेय नहीं है और वह भी तपः-पूत ऋषि-प्रवर भरद्वाज से तो ऐसा-वैसा पुत्र क्या मांगू? मांग ही लूं एक ऐसा सुत जिसके सदृश त्रैलोक्य में न कोई हुआ है, न हो।" यह संकल्प कर केसरी ने कहा "देना हो तो दे दीजिए एक पुत्र-प्रभु! बल, बुद्धि और विद्या के साथ-साथ ईश्वर भक्ति, साधु-सेवा और सदाचार में भी समानता नहीं हो जिसकी। उसके जैसा स्वर्ग, पाताल और मर्त्यलोकों तक में कभी कोई दूसरा न हो।"

"एवमस्तु!" प्राण-दान ही मिले थे जिसके हाथों उसे एक पुत्र-मात्र का वरदान देने में ऋषि को कितना समय लगता था? ऋषि ने वर दिया। अब भले ही उनके वरदान को सत्य सिद्ध करने के लिए स्वयं शिव को ही क्यों नहीं अपने एक अंश से अवतरित होने को बाध्य होना पड़ा हो। भले ही एकादश रुद्र को ही क्यों नहीं जाना पड़ा हो केसरीभार्या अंजना के गर्भ में।

वानरराज की साध्वी पत्नी का अंजना नाम था। उसने संतान सुख की इच्छा से शिवाराधना में अपने कोमल गात को सुखा दिया था। "ॐ नमः शिवाय। ॐ

नमः त्रयम्बकाय, विश्वनाथाय, महेश्वराय, भूतेशाय" की ध्वनि से वह पूरा पर्वत-प्रदेश पूरित सा रहता था। इस प्रदेश में वह आशुतोष शिव के दर्शनार्थ अन्न-जल का त्याग किये पड़ी रहती थी। इधर ऋषि ने केसरी को आप्तकाम किया उधर आशुतोष प्रकट हुए अंजना के समक्ष-"मांगो क्या मांगती हो"?

क्या मांगती अंजना, एक सुत के सिवा? शिव के लिए वह वरदान आसान हो गया था। ऋषि वाक्य को तो सत्य होना ही था।

योगिराज शिव ने क्षणार्ध के अपने ध्यान में देख लिया कि क्या कुछ नैसर्गिक घट रहा था उसी समय सुदूर स्थित साकेत-नगरी- अयोध्या-में। अंजना को अपने दर्शन से कृतार्थ करते हुए उन्होंने कहा-"तुम्हें एक अत्यन्त पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होगा जिसकी गति अन्तरिक्ष, पाताल और पृथ्वी तीनों से अबाधित होगी और जिसके समान योद्धा, गुणज्ञ और भगवद्भक्त न तो अब तक त्रैलोक्य में हुआ है न भविष्य में होगा। स्वयं अपने एक अंश से अवतरित हो रहा हूँ मैं। रुद्रावतार होगा तुम्हारे आंगन में। शंकर-सुत की ही संज्ञा पायेगा तुम्हारा तनय। केवल कुछेक दिन यों ही, इसी स्थान पर अंजलि खोले, तपस्यारत रहो।" कहकर देवाधिदेव अन्तर्धान हो गए और अंजना ने दूने मनोयोग से मन्त्रोच्चार आरम्भ कर दिया-ॐ नमः शिवाय, त्रयम्बकाय, ईशाय, विश्वनाथाय ..... विश्वेश्वराय...।"

अयोध्या में राजा दशरथ के यहां पुत्रेष्टि यज्ञ हो रहा था। गुरु वशिष्ठ ने आयोजित कराया था इसे ऋष्यश्रृंग के पौरिहित्य में-निस्सन्तान सम्राट को सन्तान सुख प्रदान कराने के लिए। प्रज्ज्वलित अग्निकुंड से, हाथों में चरू-पात्र लिए स्वयं अग्निदेव यज्ञ-समाप्ति के बाद प्रकट हुए।

"इसे ग्रहण करो राजन् और वितरित कर दो चरू (खीर) को अपनी रानियों के मध्य। चार प्रतापी पुत्र उत्पन्न होंगे इस प्रसाद के द्वारा।" गुरु ने कहा था और उस समय उन्हें भी पता था कि चार नहीं पांच प्राणियों की उत्पति का कारण बनने जा रहा था वह अग्नि-प्रदत्त चरू।

अयोध्यापति ने रत्नजटिल राज-प्रांगण में पंक्तिबद्ध किया था अपनी तीनों पत्नियों-कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा-को और रख दी थी उनकी खुली हथेलियों में पड़े द्रौणों में खीर को, उनके-उनके हिस्से के अनुसार। उसी क्षण आकाश से

लपकी एक चील एक झटके में कैकई के हाथों से खीर भरे द्रोण (दोना) को चंचु में दबा उड़ चली-प्रभास-तीर्थ की दिशा में।

चील जब ठीक उस स्थान पर पहुंची जहां देवी अंजना अंजलि खोले तपस्या रत थी तभी पवन के एक प्रबल झोंके के कारण चरू-भरा दोना उसके चंचु से छुट गया और आ गिरा अंजना की अंजलि में। ठीक इसी समय प्रकट होकर, पवन-देव वहां बोल पड़े थे- "अंजने, आशुतोष की प्रेरणा से ही मैंने यह चरू तुम्हें उपलब्ध कराया है। इसे सदाशिव और पवन का सम्मिलित आशीर्वाद समझकर ग्रहण करो। शिव के वरदान के अनुसार तुम्हारा पुत्र शक्तिशाली और वेद-वेदांग-पारंगत होगा। मेरे प्रसाद से वह मेरे वेग को प्राप्त करेगा। इस चरू के ग्रहण करते ही तुम्हें गर्भाधान होगा और इसे तुम तक पहुंचाने में प्रेरणा बनने के कारण आशुतोष के अंश के उत्पन्न तुम्हारा पुत्र, पवनसुत के नाम से भी विख्यात होगा।"

प्रसन्न-मन माता अंजना घर लौटी। तत्क्षण उनमें गर्भाधान के लक्षण प्रकट हुए थे और उन्होंने पहले शिव और पुनः पवनदेव के दर्शन की बात अपने पति केसरी को बताई थी। उप-देवताओं में गर्भाधान के पश्चात शिशु-जन्म में बहुत काल नहीं लगता।

श्रीहनुमानजी के जन्म के सम्बंध में शास्त्रों में अन्य विभिन्न कथाएँ भी उपलब्ध होती हैं। एक अन्य कथा इस प्रकार है- "देवताओं और दैत्यों में अमृत-वितरण के लिये परम प्रभु ने मोहिनीरूप धारण किया था, यह सुनकर कर्पूरगौर नीलकण्ठ बहुत चकित हुए। श्रीभगवान् का स्त्री-वेष कैसा था? आप्तकाम भगवान् शंकर के मन में अपने प्राणाराध्य के उस विशिष्ट रूप एवं विशिष्ट लीला के दर्शन करने की कामना उदित हुई।"

भोलेबाबा माता पर्वती के साथ क्षीराब्धि के तट पर पहुंचे। उन्होंने समाधि में ध्यान किया तो लक्ष्मीपति प्रकट हुए। महादेव ने निवेदन किया-'प्रभो! मैंने आप के मत्स्यादि सभी अवतार-स्वरूपों का दर्शन किया था, किंतु अमृत-वितरण के समय आपने परम लावण्यमयी स्त्री का वेश धारण किया, उस अवतार-स्वरूप के दर्शन से मैं वंचित ही रह गया। कृपया मुझे उस रूप के भी दर्शन करा दें,

जिसे देखकर देवता और दानव-सभी मोहित हो गये थे।''

''देवाधिदेव महादेव! आप योगियों के उपास्य एवं मदन का दहन करने वाले हैं। आप स्त्री-अवतार देखकर क्या करेंगे? आपके लिये उसका कोई महत्व नहीं।' लक्ष्मीपति ने हंसते हुए उत्तर दिया।

'पर प्रभो! मैं उक्त अवतार-स्वरूप के दर्शन से वंचित रहना नहीं चाहता। कृपया मुझे उस मोहिनी स्वरूप के दर्शन करा ही दें।'

'तथास्तु!' भगवान विष्णु अन्तर्धान हो गये। माता पार्वती सहित भगवान शंकर सुखद वन-प्रान्त के मध्य में थे- कि

सहसा उन्होंने देखा-एक अत्यन्त रूपवती स्त्री अपने कर-कमलों पर कन्दुक उछालती हुई रह-रहकर दीख जाती है। उसकी क्रीड़ा देखकर भोलेनाथ को अपनी सुध न रही। सहसा पवन का झोंका आया और मोहिनी का वस्त्र खिसका और वह नग्नप्राय हो गयी। लाज से सिकुड़ी मोहिनी लताओं में छिपने का प्रयत्न करने लगी। यह देखकर योगिराज का अवशिष्ट धैर्य भी समाप्त हो गया। वे माता पार्वती के सम्मुख ही लज्जा त्यागकर मोहिनी के पीछे दौड़े। मोहिनी ने शंकर को अपनी ओर आते देखा तो मुस्कुरा कर दूर भागने लगी। भूतवाहन मोहिनी के पीछे दौड़ रहे थे और वह आगे-आगे भागी जा रही थी। उन्होंने दौड़कर मोहिनी के हाथ को पकड़ा तो मोहिनी हाथ छुड़ाकर भागी। वनों, पर्वतों, ऋषियों के आश्रमों एवं देवलोक में भी भगवान शंकर मोहिनी के पीछे-पीछे दौड़ लगा रहे थे और माता पार्वती, शिवगण, सुरगण एवं ऋषिगण-सभी आश्चर्यचकित हो यह दृश्य देख रहे थे। पर थे सभी मौन।

अन्ततः योगिराज शिव का रेतस् स्खलित हुआ। अब उन्हें जब अपनी स्थितिं का भान हुआ तो तुरंत दोनों हाथ जोड़ और मस्तक झुकाकर कहा-'प्रभो! आपकी लीला अगम्य है। आपकी माया का पार पाना सम्भव नहीं है।'

इस घटना को अपने परमप्रभु की लीला समझकर भगवान शंकर उनका ध्यान करने जा रहे थे कि उनकें सम्मुख वनमालाधारी चतुर्भुज प्रभु प्रकट हुए और शिव की निष्ठा एवं विश्वास की प्रंशसा कर वे वहीं अन्तर्धान हो गये। शंकर भी माता पार्वती के साथ प्रभु-गुण गान करते हुए कैलाश की ओर चल पड़े।

भगवान शंकर का अमोघ वीर्य व्यर्थ कैसे जाता? उस वीर्य का राम-कार्य की

सिद्धि के लिए प्रयोग करने की दृष्टि से भगवान शंकर ने सप्तर्षियों को प्रेरित किया। उन्होंने उस वीर्य को पत्ते पर स्थापित कर लिया और समय से उसे केसरी पत्नी अंजना में कर्ण-मार्ग से प्रवेश करा दिया। उसके फलस्वरूप श्रीहनुमानजी अवतरित हुए।

श्रीहनुमद्जन्म की एक अन्यकथा इस प्रकार भी है कि पति के साथ दीर्घकालतक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती हुई अंजना को कोई संतान नहीं हुई। इस कारण वे अत्यन्त कठोर तप करने लगीं। इसका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। अंजना को तप करते देख महामुनि मतङ्गने उनके पास जाकर पूछा- 'अंजना देवि ! तुम इतना कठोर तप किसलिये कर रही हो?'

अंजना ने विनम्रता से उत्तर दिया- 'मुनीश्वर ! केसरी नामक श्रेष्ठ वानर ने मेरे पिता से मुझे माँगा। उन्होंने मुझे उनकी सेवा में समर्पित कर दिया। मैं अपने पतिदेव के साथ बहुत दिनों से अत्यन्त सुखपूर्वक रह रही हूँ; किंतु अब तक मुझे कोई संतान नहीं हुई। इसी कारण मैंने किष्किन्धा में अनेक व्रत, उपवास तथा तप किये परंतु मुझे पुत्र की प्राप्ति नहीं हो सकी। अतएव दुखी होकर मैंने पुत्र के लिये पुनः तपश्चर्या प्रारम्भ की है। विप्रवर ! आप कृपापूर्वक मुझे यशस्वी पुत्र प्राप्त होने का उपाय् बताइये।"

मतङ्गमुनि ने अंजना से कहा- 'तुम वृषभाचल (वेंकटाचल) पर जाकर भगवान् वेंकटेश्वर के भुक्ति-मुक्तिदायक चरणों में प्रणाम करो। फिर वहाँ से कुछ ही दूर आकाशगंगा नामक तीर्थ में जाकर स्नान कर लो। तदनन्तर उसका शुभ जल पीकर वायुदेव को प्रसन्न करो। इससे तुम्हें देवता, राक्षस, मनुष्य से अजेय तथा अस्त्र-शस्त्रों से भी अवध्य पुत्र प्राप्त होगा।'

देवी अंजना ने महामुनि के चरणों में प्रणाम कर वृषभाचल की यात्रा की। वहाँ पहुँचकर भगवान् वेंकटेश्वर की भक्तिपूर्वक वन्दना की। इसके बाद उन्होंने 'आकाशगंगा' नामक तीर्थ में स्नान कर उसके जल का पान किया। फिर उसके तटपर तीर्थ की ओर मुँह करके वायुदेवता की प्रसन्नता के लिये अत्यन्त संयमपूर्वक तपश्चरण प्रारम्भ किया। अंजना अत्यन्त श्रद्धा, विश्वास एवं धैर्यपूर्वक तप करती

रहीं, शारीरिक कष्टों की तनिक भी चिन्ता न कर वे अखण्ड तप करती ही रहीं।

उस दिन भगवान् सूर्य मेषराशि पर थे। चित्रानक्षत्रयुक्त पूर्णिमा तिथि थी। अंजना के कठोर तपश्चरण से तुष्ट वायुदेवता प्रकट हो गये उन्होंने अंजना से कहा- 'देवि ! मैं तुम्हारे तप से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँगी। अपना मनोरथ प्रकट करते हुए अंजना ने कहा- 'मुझे उत्तम पुत्र प्रदान कीजिये।

वायुदेव ने कहा- 'मैं ही तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हें विश्वविख्यात कर दूँगा।'

एक दिवस माता अंजना पर्वत-शिखरपर खड़ी होकर मन-ही-मन इच्छा कर रही थी 'कितना अच्छा होता, यदि मेरे एक सुयोग्य पुत्र होता।'

सहसा वायुका तीव्र झोंका आया और अंजना की साड़ी का अंचल कुछ खिसक गया। उनके अंग दिखने लगे। अंजना ने अनुभव किया, जैसे कोई उन्हें स्पर्श कर रहा है। सती अंजना ने अपने वस्त्र को सँभाला और अपना स्पर्श करने वाले अदृश्य को डाँटते हुए कहा- 'कौन ढीठ मेरे पातिव्रत्य का नाश करना चाहता है?' वे शाप देने के लिये प्रस्तुत हो गयीं।

परंमसती अंजना को क्रुद्ध देखकर पवनदेव प्रकट हो गये। उन्होंने कहा- 'मैं तुम्हारे पतिव्रत का नाश नहीं कर रहा हूँ। अतः तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिए। मैंने अवयक्तरूप से तुम्हारा आलिङ्गन करके मानसिक संकल्प द्वारा तुम्हें बल-पराक्रम से सम्पन्न एवं बुद्धिमान् पुत्र प्रदान किया है। तुम्हारा पुत्र महान् धैर्यवान्, महातेजस्वी, महाबली, महापराक्रमी तथा लाँघने और छलाँग मारने में मेरे ही समान होगा।'

माता अंजना प्रसन्न हो गयीं। उन्होंने पवनदेव को क्षमा कर दिया। अंजना गर्भवती हुई। उसके फलस्वरूप श्रीहनुमानजी का जन्म हुआ।

शंकर, वायु, केसरी पिता और माता अंजना के पुत्र बाबा श्रीहनुमान के जन्म की ये कथाएं परम पावन और कल्याणकारी हैं।

वैसे तो बाबा की लीला बाबा ही जानें, परन्तु मुझे तो एक दिन यह विचार आकर दृढ़ हो गया कि बाबा श्रीहनुमान स्थूल शरीर में केसरीपुत्र, सूक्ष्मशरीर में वायुपुत्र तथा कारणशरीर में शंकरसुवन हैं।

एक बार भगवान् शंकर भगवती सती के साथ कैलास-पर्वत पर विराजमान थे। प्रसंगवश भगवान् शंकर ने सती से कहा- 'प्रिये ! जिनके नामों को रट-रटकर

मैं गद्गद होता रहता हूँ, वे ही मेरे प्रभु अवतार धारण करके संसार में आ रहे हैं। सभी देवता उनके साथ अवतार ग्रहण करके उनकी सेवा का सुयोग प्राप्त करना चाहते हैं, तब मैं ही उससे क्यों वंचित रहूँ? मैं भी वहीं चलूँ और उनकी सेवा करके अपनी युग-युग की लालसा पूर्ण करूँ।'

भगवान् शंकर की यह बात सुनकर सती ने सोचकर कहा- 'प्रभो ! भगवान् का अवतार इस बार रावण को मारने के लिये हो रहा है। रावण आपका अनन्य भक्त है। यहाँ तक कि उसने अपने सिरों को काटकर आपको समर्पित किया है। ऐसी स्थिति में आप उसको मारने के प्रयासों में कैसे सहयोग दे सकते हैं?'

यह सुनकर भगवान् शंकर हँसने लगे। उन्होंने कहा- 'देवि ! जैसे रावण ने मेरी भक्ति की है, वैसे ही उसने मेरे एक अंश की अवहेलना भी तो की है। तुम जानती ही हो कि मैं ग्यारह स्वरूपों में रहता हूँ। जब उसने अपने दस सिर अर्पित कर मेरी पूजा की थी, तब उसने मेरे एक अंश को बिना पूजा किये ही छोड़ दिया था। अब मैं उसी अंश से उसके विरुद्ध युद्ध करके अपने प्रभु की सेवा कर सकता हूँ। मैंने वायु देवता के द्वारा अंञ्जना के गर्भ से अवतार लेने का निश्चय किया है।' यह सुनकर भगवती सती प्रसन्न हो गयीं।

इस प्रकार भगवान् शंकर ही श्रीहनुमान के रूप में अवतरित हुए, इस तथ्य की पुष्टि पुराणों की आख्यायिकाओं से होती है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने दोहावली (१४२) में लिखा है-

जेहि सरीर रति राम सों सोई आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर मे हनुमान।।

शिवपुराणान्तर्गत श्रीहनुमज्जन्म का संक्षिप्त वृत्तान्त इस प्रकार है- एक समय भगवान् शम्भु को भगवान् विष्णु के मोहिनी रूप का दर्शन प्राप्त हुआ। उस समय ईश्वरेच्छा से रामकार्य की सिद्धि-हेतु उनका वीर्य स्खलित हो गया। उस वीर्य को सप्तर्षियों ने पत्र-पुटक में सुरक्षित करके रख दिया। तत्पश्चात् उन्होंने ही शम्भु की प्रेरणा से उस वीर्य को गौतम-कन्या अञ्जना में कान के रास्ते स्थापित किया। समय आने पर उस गर्भ से वानर-शरीरधारी महापराक्रमी पुत्र का जन्म हुआ, जो शंकर-सुवन श्रीहनुमान के नाम से विश्व में विख्यात हुए।

कथान्तर-भेद से इसका वर्णन इस प्रकार भी है- मोहिनी-रूप-दर्शन से

स्खलित हुए शम्भु-वीर्य के विषय में भगवान् विष्णु विचार करने लगे कि इस शम्भु-सम्भूत शुक्र का क्या उपयोग किया जाय? कुछ सोच-विचारकर उन दोनों (विष्णु और शम्भु) ने मुनियों का रूप धारण किया और उन वीर्य को पत्र-द्रोण में लेकर वन-ही-वन आगे बढ़े। कुछ दूर जाने पर उन लोगों ने एक कन्या देखी, जो घोर तपस्या में निरत थी। वे उसके पास जाकर बोले- 'तपस्विनी कन्ये ! यह क्या कर रही हो? बिना दीक्षा लिये तुम्हारी तपस्या सफल नहीं हो सकती; अतः शीघ्र ही किसी योग्य मुनि से दीक्षा ले लो।' तपोनिष्ठ कन्या अञ्जनाने उन दोनों मुनियों की बात सुनकर मन में विचार किया- 'ये तो सर्वकालद्रष्टा हैं। मेरे भूतकाल की बात को सत्य-सत्य कह रहे हैं, अतः क्यों न इन्हीं से मन्त्र-दीक्षा ले ली जाय।' यह सोचकर अञ्जना बोली- 'मुनिवर ! आप योग्य एवं समर्थ हैं। मैं दीक्षित होने के लिये और कहाँ भटकूँगी; आपलोग ही मुझे मन्त्र-दीक्षा दे दें।' तब मुनिरूपधारी विष्णु ने अञ्जना को मन्त्र-दीक्षा दी। दीक्षा देते समय उन्होंने शम्भु-वीर्य को मन्त्र से अभिमन्त्रित कर कान द्वारा अञ्जना के गर्भ में स्थापित कर दिया। उस शम्भु-शुक्र से उद्भूत श्रीहनुमानजी अञ्जनीनन्दन शंकर-सुवन कहलाये।

'पवनतनय' श्रीहनुमान

एक कथा-विवरण के अनुसार अप्सराओं में परम रूपवती पुञ्जिकस्थला नाम की एक लोकविख्यात अप्सरा थी। इसी ने ऋषि के शाप से कामरूपिणी वानरी होकर पृथ्वी पर जन्म ग्रहण किया था। वही कपिश्रेष्ठ केसरी की भार्या होकर 'अञ्जना' नाम से विख्यात हुई। पर्वतश्रेष्ठ सुमेरु पर केसरी राज्यशासन करते थे। अञ्जना उसकी एक प्रियतमा पत्नी थी। वानरपति केसरी और अञ्जना दोनों एक दिन मनुष्य का वेष धारण कर पर्वत-शिखर पर विहार कर रहे थे। अञ्जना का मनोहर रूप देखकर पवनदेव मोहित हो गये और उन्होंने उसका आलिंगन किया। साधुचरित्रा अञ्जना ने आश्चर्यचकित होकर कहा- 'कौन दुरात्मा मेरा पातिव्रत्य-धर्म नष्ट करने को तैयार हुआ है? मैं अभी शाप देकर उसे भस्म कर दूँगी।' सती-साध्वी अञ्जना की यह बात सुनकर पवनदेव ने कहा- 'सुश्रोणि ! मैंने तुम्हारा पातिव्रत्य नष्ट नहीं किया है; यदि तुम्हें कुछ संदेह हो तो उसे दूर कर दो। मैंने मानसिक संस्पर्श किया है। उससे तुम्हें एक पुत्र होगा, जो शक्ति एवं पराक्रम में मेरे समान होगा, भगवान् का सेवक होगा और बल-बुद्धि में अनुपमेय

होगा। मैं उसकी रक्षा करूँगा।' इस प्रकार भगवान् शंकर ने अंशरूप से वायु का माध्यम लेकर अञ्जना के गर्भ से पुत्र उत्पन्न किया, जो भविष्य में शंकरसुवन, पवनपुत्र, केसरीनन्दन, आञ्जनेय आदि कहलाया। वे ही श्रीहनुमान अपनी अद्वितीय सेवा-चर्या से भगवान् श्रीराम के अभिन्न अंग बन गये।

ऐसा भी कहा जाता है कि भगवान् श्रीराम पितृ-वचन का पालन करके जब अयोध्या लौटे, तब भगवती सीतादेवी स्वयं रन्धन कर श्रीहनुमान को भोजन कराने लगीं। अन्न-व्यञ्जनादि जितना ही परोस दिया जाता, श्रीहनुमान बात-की-बात में सभी चट कर जाते। तब भगवती सीता ने निरुपाय हो श्रीहनुमान के पश्चात्-भाग में 'ॐ नमः शिवाय' कहकर अन्न परोसा। ऐसा करने से श्रीहनुमान तृप्त हो गये। यों करने का यही उद्देश्य था कि सबको यह ज्ञात हो जाय कि श्रीहनुमानजी भगवान् शिव के अवतार हैं।

श्रीहनुमानजी अपनी अद्भुत वीरता, अनवरत सेवा, आदर्श चरित्र, अनन्य भक्ति आदि अनन्त सद्गुणों से केवल अपना ही जीवन सफल नहीं किया तथा लोक में केवल महान् आदर्श की ही प्रतिष्ठा नहीं की, अपितु वे जिनके अवतार एवं अंश थे, उन भगवान् शंकर, सर्वपूज्य पवनदेव, कपिश्रेष्ठ केसरी तथा माता अञ्जना की परमोज्ज्वल कीर्ति का भी चतुर्दिक् विस्तार किया।

माता अञ्जना अपने प्राणप्रिय पुत्र हनुमानजी का लालन-पालन बड़े ही ही मनोयोगपूर्वक करतीं थीं। कपिराज केसरी भी उन्हें अतिशय प्यार करते थे। जब हनुमानजी प्रसन्नतापूर्वक किलकते तो अञ्जना और केसरी आनन्द-मग्न हो जाते। हनुमान की बाल-क्रीड़ाएँ अत्यन्त आकर्षक और सुखद तो थीं हीं, अद्भुत भी होती थीं।

बाल-लीला : एक बार की बात है। कपिराज केसरी कहीं बाहर गये थे। माता अञ्जना भी बालक को पालने में लिटाकर वन में फल-फूल लेने चली गयीं। बालक हनुमानजी को भूख लगी। माता की अनुपस्थिति में वे हाथ-पैर उछाल-उटाकर क्रन्दन करने लगे। सहसा उनकी दृष्टि प्राची के क्षितिजपर गयी। अरुणोदय हो रहा था। उन्होंने सूर्य के अरुण बिम्ब को लाल फल समझा।

तेज और पराक्रम के लिये अवस्था अपेक्षित नहीं। यहाँ तो हनुमानजी के रूप में अञ्जना के अंग में प्रत्यक्ष प्रलयंकर शंकर ग्यारहवें रुद्र क्रीड़ा कर रहे थे।

वायुदेव ने पहले ही बालक हनुमानजी को उड़ने की शक्ति प्रदान कर दी थी। हनुमानजी उछले और वायु वेग से आकाश में उड़ने लगे। पवनपुत्र तीव्र गति से उड़ते चले जा रहे थे। उन्हें इस प्रकार वेगपूर्व उड़ते देखकर देव, दानव और यक्षादि विस्मित होकर कहने लगे– 'इस वायुपुत्र के वेग के तुल्य वेग तो स्वयं वायु, गरुड़ और मन में भी नहीं है। इसी आयु में शिशु का ऐसा वेग और पराक्रम है तो यौवनकाल में इसकी शक्ति अनुपमेय होगी।'

वायुदेव ने अपने पुत्र को सूर्य की ओर जाते देखा तो उनके मन में चिन्ता हुई– 'मेरा यह बच्चा कहीं सूर्य की प्रखर किरणों से झुलस न जाय'– इस कारण वे शीतल होकर उसके साथ चलने लगे।

सूर्यदेव ने अलौकिक बालक को अपनी ओर आते देखा तो उन्हें समझते देर न लगी क़ि ये पवन-पुत्र अपने पिता के वेग से मेरी ओर आ रहे हैं और स्वयं पवनदेव भी उनकी रक्षा करने के लिये साथ ही उड़ रहे हैं। सूर्यदेव ने अपना सौभाग्य समझा– 'अहा ! स्वयं भगवान् चन्द्रमौलि ही हनुमानजी के रूप में मुझे कृतार्थ करने के लिये पधार रहे हैं।' अंशमाली की अग्निमयी किर्णों शीतल हो गयीं। हनुमानजी सूर्य के रथ पर पहुँचकर उनके साथ क्रीड़ा करने लगे।

संयोग की बात, उस दिन अमावस्या तिथि थी। सिंहिकापुत्र राहु, सूर्यदेव को ग्रसने के लिये आया तो भुवनभास्कर के रथ पर बैठे हुए उस बालक को देखा। राहु बालक की चिन्ता न कर सूर्य को ग्रसने के लिये आगे बढ़ा ही था कि बालक हनुमानजी ने उसे पकड़ लिया। उनकी वज्रमुष्टि में दबकर राहु छटपटाने लगा। वह किसी प्रकार प्राण बचाकर भागा और सीधा सुरपति इन्द्र के समीप पहुँचा और उसने भौंहें टेढ़ी कर क्रोध के साथ कहा– 'सुरेश्वर ! मेरी क्षुधा का निवारण करने के लिये आपने मुझे सूर्य और चन्द्र को साधन के रूप में प्रदान किया था, किंतु अब आपने यह अधिकार दूसरे को किस कारण दे दिया?'

राहु की चकित करने वाली वाणी सुनकर सुरेन्द्र उसका मुँह देखने लगे। उसने आगे कहा– 'आज पर्व के समय मैं सूर्य को ग्रसने के लिये उनके समीप गया ही था कि वहाँ पहले से ही उपस्थित दूसरे राहु ने मुझे कसकर पकड़ लिया। मैं किसी प्रकार अपनी जान बचाकर यहाँ आ पाया हूँ।'

नेत्रों में आँसू भरे क्रुद्ध राहु की वाणी सुनकर इन्द्र चिन्तित हो उठे। वे अपने

सिंहासन से उठकर खड़े हो गये और ऐरावत पर बैठकर घटना-स्थल की ओर चले। राहु उनके आगे-आगे चला। शचीपति आश्चर्यचकित हो मन-ही-मन सोच रहे थे- 'तिमिरारि के समीप ऐसा कौन पराक्रमी पहुँच गया, जिसके भय से सिंहिकापुत्र को प्राण बचाकर भागना पड़ा।'

उधर राहु बड़े वेग से सूर्य की ओर दौड़ा। उसे देखते ही हनुमानजी को भूख की स्मृति हुई। वे राहु को सुन्दर भक्ष्य समझ कर उस पर टूट पड़े।

'सुरेश्वर ! बचाइये ! बचाइये !' - चिल्लाता हुआ राहु इन्द्र की ओर भागा।

सुरेन्द्र राहु की रक्षा के लिये दौड़े। राहु के बच निकलने पर हनुमानजी ने ऐरावत को देखा तो उसे सुन्दर सुस्वादु खाद्य समझा। वे ऐरावत पर झपटे। उस समय हनुमानजी का स्वरूप प्रज्ज्वलित अग्नि की भाँति प्रकाशित और भयानक प्रतीत हो रहा था। इन्द्र डर गये। अपनी रक्षा के लिये उन्होंने बालक पर वज्र से प्रहार किया। वह हनुमानजी की बायीं हनु (ठुड्डी) में लगा, जिससे उनकी हनु टूट गयी और वे छटपटाते हुए पर्वत-शिखर पर गिरकर मूर्च्छित हो गये।

अपने प्राणप्रिय पुत्र को वज्र के आघात से छटपटाते देख वायुदेव इन्द्र पर अत्यन्त कुपित हुए। शक्तिशाली वायुदेव ने अपनी गति रोक दी और वे अपने पुत्र को अंक में लेकर पर्वत की गुफा में प्रविष्ट हो गये।

फिर तो त्रिभुवन के समस्त प्राणियों में श्वास आदि का संचार रुक गया। उनके अंग-प्रत्यंग के जोड़ टूटने लगे और वे सब-के-सब सूखे काठ की तरह अवसन्न हो गये। उनके सारे धर्म-कर्म रुक गये।

प्राण-संकट से भयभीत इन्द्र देव, गन्धर्व, असुर, नाग, गुह्यक आदि जीवन-रक्षा के लिये ब्रह्माजी के पास दौड़े। ब्रह्माजी सबको साथ लेकर उस गिरि-गुहा में पहुँचे, जहाँ पवनदेव अपने पुत्र को अंक में लेकर वक्ष से सटाये दुःखातिरेक से आँसू बहा रहे थे। मूर्च्छित हनुमानजी की सूर्य, अग्नि एवं सुवर्ण के समान अंग-कान्ति देखकर चतुर्मुख चकित हो गये।

अपने सम्मुख स्रष्टा को देखते ही पवनदेव पुत्र को गोद में लेकर खड़े हो गये। उस समय हनुमानजी के कानों में अलौकिक कुण्डल हिल रहे थे। उनके मस्तकपर मुकुट, गले में हार और दिव्य अंगों पर सुवर्ण के आभूषण सुशोभित थे। पवनदेवता विधाता के चरणों पर गिर पड़े।

चतुरानन ने अपने हाथों से अत्यन्त स्नेहपूर्वक पवनदेव को उठाया और उनके पुत्र के अंगों पर अपना कर-कमल फेरने लगे। कमलयोनि के कर-स्पर्श से पवन-पुत्र हनुमानजी की मूर्च्छा दूर हो गयी। वे उठकर बैठ गये। अपने पुत्र को जीवित देखते ही जगत् के प्राणस्वरूप पवनदेव पूर्ववत् बहने लगे और त्रैलोक्य को जीवनदान मिला।

ब्रह्मा ने संतुष्ट होकर हनुमानजी को वर प्रदान करते हुए कहा- 'इस बालक को ब्रह्मशाप नहीं लगेगा और इसका कोई अंग कभी भी शस्त्रास्त्र से नहीं छिद सकेगा।'

फिर उन्होंने सुर-समुदाय से कहा- 'देवताओं ! यह असाधारण बालक भविष्य में आप लोगों का बड़ा हित-साधन करेगा, अतएव आप लोग इसे वर प्रदान करें।'

देवराज इन्द्र ने तुरंत प्रसन्नतापूर्वक हनुमानजी के कण्ठ में अम्लान कमलों की माला पहनाकर कहा- "मेरे हाथ से छूटे हुए वज्र के द्वारा इस बालक की हनु (ठुड्डी) टूट गयी थी, इसलिये इस कपिश्रेष्ठ का नाम 'हनुमान' होगा। इसके अतिरिक्त इस बालक पर मेरे वज्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और इसका शरीर मेरे वज्र से भी अधिक कठोर होगा।"

वहाँ उपस्थित सूर्यदेव ने कहा- 'मैं इसे अपने तेज का शतांश प्रदान करता हूँ; साथ ही समयपर इसे शिक्षा देकर शास्त्र-मर्मज्ञ भी बना दूँगा। यह अद्वितीय विद्वान् और वक्ता होगा।'

वरुण ने कहा- 'मेरे पाश और जल से यह बालक सदा सुरक्षित रहेगा।'

यमदेव बोले- 'यह नीरोग और मेरे दण्ड से सदा अवध्य रहेगा।'

पिंगलवर्ण के यक्षराज कुबेर ने कहा- 'युद्ध में इसे कभी विषाद नहीं होगा। मेरी गदा से यह सुरक्षित तो रहेगा ही, मेरे यक्ष-राक्षसों से भी कभी पराजित नहीं हो सकेगा।'

भगवान् शंकर ने वर प्रदान किया- 'यह मुझसे और मेरे आयुधों से सदा अवध्य रहेगा।'

विश्वकर्मा बोले- 'यह बालक मेरे द्वारा निर्मित समस्त दिव्य अस्त्रों और शस्त्रों से सदा सुरक्षित रहकर चिरायु होगा।'

इस प्रकार देवताओं के अमोघ वरदान दे लेने पर कमलयोनि ब्रह्मा ने अत्यन्त प्रसन्न होकर पुनः कहा- 'यह दीर्घायु, महात्मा तथा सव प्रकार के ब्रह्मदण्डों से अवध्य होगा।'

फिर प्रसन्न चतुरानन ने पवनदेव से कहा- 'मारुत ! तुम्हारा यह पुत्र शत्रुओं के लिये भयंकर और मित्रों के लिये अभय देने वाला होगा। इसे युद्ध में कोई पराजित नहीं कर सकेगा। यह इच्छानुसार रूप धारणकर जहाँ चाहेगा, जा सकेगा। इसकी अव्याहृत गति होगी। यह अत्यन्त यशस्वी होगा और अत्यन्त अद्‌भुत एवं रोमांचकारी कार्य करेगा।'

इस प्रकार वर प्रदान कर ब्रह्मादि देवगण तथा असुरादि अपने-अपने स्थान के लिये प्रस्थित हुए।

ऋषियों का शाप

बालक हनुमानजी बड़े ही चंचल और नटखट थे। एक तो प्रलयंकर शंकर के अवतार, दूसरे कपि-शावक, उस पर देवताओं द्वारा प्रदत्त अमोघ वरदान। इनकी चपलता से माता-पिता प्रसन्न होते। मृगराज की पूँछ पकड़कर उसे चारों ओर घुमाना और हाथी को पकड़कर उसकी शक्ति का अनुमान लगाना तो प्रायः इनकी नित्य की क्रीड़ा के अन्तर्गत था। कभी ये विशाल वृक्षों को मूलसहित हिला देते। पर्वत का कोई शिखर ऐसा नहीं था, जहाँ ये छलाँग मारकर न पहुँच जायँ। सम्पूर्ण अगम्य वन एवं पर्वत इनके देखे-भाले थे।

वन के प्राणी प्रायः इनसे घबराते, किंतु अदंर से इन्हें प्यार ही करते थे। ये समस्त प्राणियों के मित्र और रक्षक थे। कोई सबल किसी दुर्बल को कष्ट दे, यह हनुमानजी को सह्य नहीं था। ये एक वृक्ष की चोटी से दूसरे वृक्ष की चोटी पर कूदते हुए योजनों दूर निकल जाते। इनके भार से यदि किसी वृक्ष की डाल के टूटने की आशंका होती तो ये हलके हो जाते थे।

वरदानजनित शक्ति से सम्पन्न हनुमानजी तपस्वी ऋषियों के आश्रमों में चले जाते और वहाँ कुछ-न-कुछ ऐसी चपलता कर बैठते, जिससे ऋषियों को क्लेश पहुँचता। एक ऋषि का आसन दूसरे ऋषि के समीप रख देते। किसी का मृगचर्म ओढ़कर पेड़ों पर कूदते या उसे किसी वृक्ष पर टाँग देते। किसी के कमण्डलु का जल उलट देते तो किसी का कमण्डलु पटककर तोड़ देते या उसको जल में बहा

देते।

हनुमानजी जप करते मुनियों के अंक में बैठ जाते। अहिंसापरायण मुनि ध्यानस्थ होकर जप करते रहते, किंतु ये वानर-शिरोमणि मुनि की दाढ़ी नोचकर भाग जाते। किसी की कौपीन तो किसी के पाठ की पोथी अपने दाँतों और हाथों से फाड़कर फेंक देते। ये महाबली पवन-कुमार महात्माओं के यज्ञोपयोगी पात्र भी नष्ट कर देते, उपयोगी वस्तुओं आदि को तोड़ देते तथा कठिनाई से प्राप्त ढेर-के-ढेर वल्कलों को चीर-फाड़कर फेंक देते थे। ब्रह्मादि देवताओं के द्वारा दिये गये वरदान से परिचित होने के कारण ऋषिगण अवश थे; चुप रह जाते, पर उन्हें बड़ा क्लेश पहुँचता।

धीरे-धीरे हनुमानजी की आयु विद्याध्ययन के योग्य हो गयी, पर इनकी चंचलता बनी ही रही। माता-पिता भी बड़े चिन्तित थे। उन्होंने अपने प्राणप्रिय लाल को अनेक प्रकार से समझाया, कई प्रकार के यत्न किये, किंतु हनुमानजी की चपलता में कमी नहीं आयी। अन्ततः अञ्जना और वानरराज केसरी ऋषियों के समीप पहुँचे। ऋषियों ने भी अपनी कष्ट-गाथा उन्हें कह सुनायी। उन्होंने ऋषियों से विनम्रतापूर्व निवेदन किया- 'तपोधनो ! हमें यह बालक बहुत दिनों के बाद कठोर तप के प्रभाव से प्राप्त हुआ है। आप लोग इस पर अनुग्रह करें। ऐसी कृपा करें, जिससे यह विद्या प्राप्त कर ले। आप लोगों की करुणा से ही इसका स्वभाव-परिवर्तन सम्भव है। आप हम दीनों पर दया करें।'

ऋषियों सोचा- 'इसे-अपनी अमित शक्ति एवं पराक्रम का अभिमान है। यदि यह अपना बल भूल जाय तो इसका यथार्थ हित हो सकता है।'

कुछ वयोवृद्ध समर्थ ऋषि यह भी जानते थे कि यह बालक देवताओं का हित-साधन करने वाला है। यह भगवान् श्रीराम का अनन्य भक्त होगा और अनुगत भक्त के लिये बल का अहंकार उचित नहीं। दीन-भाव से ही प्रभु की सेवा निभ सकेगी।

इस कारण भृगु एवं अंगिरा के वंश में उत्पन्न हुए ऋषियों ने हनुमानजी को शाप दे दिया- 'वानरवीर ! तुम जिस बल का आश्रय लेकर हमें सता रहे हो, उसे हमारे शाप से मोहित होकर दीर्घ-काल तक भूले रहोगे- तुम्हें अपने बल का पता ही न चलेगा। जब कोई तुम्हें तुम्हारी कीर्ति का स्मरण दिलायेगा, तभी

तुम्हारा बल बढ़ेगा।'

तपस्वी मुनियों के इस प्रकार शाप देने से पवनकुमार का तेज और ओज कम हो गया और ये अत्यन्त सौम्य स्वभाव के हो गये। अब ये अन्य कपि-किशोरों की तरह आश्रमों में शान्तभाव से विचरण करते। इनके मृदुल व्यवहार से ऋषि-मुनि भी प्रसन्न रहने लगे।

मातृ शिक्षा

बालक पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है- माता के जीवन एवं उसकी शिक्षा का। आदर्श माताएँ अपने पुत्र को श्रेष्ठ एवं आदर्श बना देती हैं। पुराण-इतिहासों में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं।

हनुमानजी की माता अञ्जना परम सदाचारिणी, तपस्विनी एवं सद्गुण-सम्पन्न आदर्श माता थीं। उन्होंने अपने लाल को प्राप्त करने के लिये जितनी तत्परता से कठोर तपश्चरण किया था, उसी तत्परता से वे अपने प्राणप्रिय बालक का जीवन-निर्माण करने के लिये सजग और सावधान रहती थीं। वे हनुमानजी के वीरतापूर्ण कार्य देखकर मन-ही-मन मुदित होतीं और उन्हें प्रोत्सहन देतीं।

पूजनोपरान्त और रात्रि में शयन के पूर्व वे अपने प्राणाधिक प्रिय पुत्र को पुराणों की कथाएँ सुनाया करतीं। वे आदर्श पुरुषों के चरित्र बार-बार सुनातीं और अपने पुत्र का ध्यान उनकी ओर आकर्षित करती रहतीं। वे महापुरुषों के जो चरित्र सुनातीं, उन्हें पुनः पुनः अपने लाल से भी पूछतीं। सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी शिव से गोपनीय क्या है? किंतु लीला में कभी-कभी हनुमानजी अनजान बनकर ठीक उत्तर न देते तो माता उसे पुनः सुनाकर कण्ठस्थ करा देतीं। करुणावरुणालय के अवतारों की समस्त कथाएँ हनुमानजी के जिह्वग्र पर थीं। उन श्रेष्ठ कथाओं को वे अपने समवयस्क कपि-किशोरों को अत्यन्त प्रेम और उत्साहपूर्वक सुनाया करते।

माता अञ्जना जब भगवान् श्रीराम के अवतारकी कथा प्रारम्भ करतीं, तब बालक हनुमान का सारा ध्यान उक्त कथा में ही केन्द्रित हो जाता। निद्रा उनके समीप फटकने नहीं पाती थी। माता को झपकी आती तो हनुमानजी उन्हें झकझोर कर कहते- 'माँ ! आगे कह, फिर क्या हुआ?'

माता फिर कहने लगतीं। श्रीराम-कथा के श्रवण से हनुमानजी की तृप्ति ही

नहीं होती थी। वे माँ से बार-बार श्रीराम-कथा ही सुनाने का आग्रह करते। माता अञ्जना उल्लासपूर्वक कथा सुनातीं और हनुमानजी उस कथा के श्रवण से भाव-विभोर हो जाते। उनके नेत्रों में अश्रु भर आते, अंग फड़कने लगते। वे सोचते- 'यदि मैं भी वही हनुमान होता!'

कथा सुनाते-सुनाते माता अञ्जना पूछ बैठतीं- 'बेटा ! तू भी वैसा ही हनुमान है?'

'हाँ, माँ ! अवश्य वही हनुमान हूं'- हनुमानजी उत्तर देते। 'पर श्रीराम और रावण कहाँ हैं? यदि रावण ने जननी सीता की ओर दृष्टिपात किया तो मैं उसे पीसकर रख दूँगा।'

माता अञ्जना कहतीं- 'बेटा ! तू भी वही हनुमान है। अब भी लंका में एक रावण राज्य करता है और अयोध्या-नरेश दशरथ के पुत्र के रूप में श्रीराम का अवतार भी हो चुका है। तू जल्दी ही बड़ा हो जा। श्रीराम की सहायता करने के लिये बल और पौरुष की आवश्यकता है। तू यथाशीघ्र बलवान् और पराक्रमी हो जा।'

'माँ ! मुझ में शक्ति की कमी कहाँ है?' हनुमानजी रात्रि में शय्या से कुद पड़ते और अपना भुजदण्ड दिखाकर माँ के सम्मुख अप्रतिम शक्तिशाली होने का प्रमाण देने लगते। माता अञ्जना हँसने लगतीं और फिर अपने प्यारे बालक हनुमानजी को थपकी देने तथा मधुर स्वर से प्रभु-स्तवन सुनाती हुई सुलाने लगतीं। हनुमानजी माता अञ्जना के वक्ष में चिपककर सुखपूर्वक सो जाते।

सहज अनुराग से हनुमानजी बार-बार श्रीराम-कथा श्रवण करते। बार-बार श्रीराम-कथा के श्रवण करने से बार-बार भगवान् श्रीराम का स्मरण और चिन्तन करते; फलतः उनका श्रीराम-स्मरण उत्तरोत्तर गाढ़ा होता गया। धीरे-धीरे उनका अधिकांश समय श्रीराम के ध्यान और स्मरण में ही व्यतीत होने लगा। वे भी अरण्य में, कभी पर्वत की गुफा में, कभी सरिता के तटपर और कभी सघन कुंज में ध्यानस्थ बैठ जाते। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होता रहता।

इस प्रकार ध्यान की तन्मयता के कारण उन्हें क्षुधा और तृषा का भी ज्ञान नहीं रहता था। माता अञ्जना मध्याह्न और सायंकाल अपने हृदय-खण्ड हनुमानजी को ढूँढ़ने निकलतीं। वे जानती थीं- मेरा पुत्र कहाँ होगा। वे वन, पर्वत, सरिता,

निर्झर एवं अरण्य में घूम-घूमकर हनुमानजी को ढूँढ़कर लातीं, तब कहीं माता के आग्रह से उनके मुँह में ग्रास पहुँचता। और यह क्रम प्रतिदिन चलने लगा। हनुमानजी अपने आराध्य के प्रेम में इतने तल्लीन रहने लगे कि उन्हें अपने शरीर की सुध भी कम रहती। उनके मुँह से 'राम-राम' -केवल 'राम-राम' का ही जप होता रहता।

सूर्यदेव से शिक्षा-प्राप्ति

माता अञ्जना अपने पुत्र की मानसिक स्थिति देखकर कभी-कभी उदास हो जातीं और वानरराज केसरी तो प्रायः चिन्तित रहा करते थे। हनुमानजी की आयु भी विद्याध्ययन के योग्य हो गयी थी। माता-पिता ने सोचा- 'अब इसे गुरु के पास विद्या-प्राप्ति के लिये भेजना चाहिये। कदाचित् इसी हेतु से इसकी दशा परिवर्तित हो जाय।' यद्यपि वे अपने ज्ञानमूर्ति पुत्र की विद्या-बुद्धि एवं बल-पौरुष तथा ब्रह्मादि देवताओं द्वारा प्रदत्त अमोघ वरदान से भी पूर्णतया परिचित थे; किंतु वे यह भी जानते थे कि सामान्य जन महापुरुषों का अनुकरण करते हैं और समाज में अव्यवस्था उत्पन्न न हो जाय, इस कारण महापुरुष स्वतन्त्र आचरण नहीं करते। वे सदा शास्त्रों की मर्यादा का ध्यान रखते हुए नियमानुकूल व्यवहार करते हैं। इसी कारण जब-जब दयाधाम प्रभु भूजल पर अवतरित होते हैं, वे सर्वज्ञान-सम्पन्न होने पर भी विद्या-प्राप्ति के लिये गुरु-गृह जाते हैं। वहाँ गुरु की सर्वविध सेवा कर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उनसे विद्योपार्जन करते हैं सच तो यह है कि गुरु को सेवा से संतुष्ट कर अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक प्राप्त की हुई विद्या ही फलवती होती है। अतएव माता अञ्जना और कपीश्वर केसरी ने हनुमानजी को शिक्षा-प्राप्ति के लिये गुरु-गृह भेजने का निश्चय किया।

माता-पिता ने अत्यन्त उल्लासपूर्वक हनुमानजी का उपनयन-संस्कार कराया और फिर उन्हें विद्या-प्राप्ति के लिये गुरु के चरणों में जाने की आज्ञा प्रदान की; किंतु वे किस सर्वगुण-सम्पन्न; आदर्श गुरु के समीप जायँ ! माता अञ्जना ने अतिशय स्नेह से कहा- 'बेटा ! सर्वशास्त्रमर्मज्ञ समस्त लोकों के साक्षी भगवान् सूर्यदेव हैं। वे तुम्हें समय पर विद्याध्ययन कराने का आश्वासन भी दे चुके हैं। अतएव तुम उन्हीं के समीप जाकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक शिक्षा ग्रहण करो।'

कौपीन-कछनी काछे, मूँजका यज्ञोपवीत धारण किये, पलाशदण्ड एवं मृगचर्म

लिये ब्रह्मचारी हनुमानजी ने भगवान् सूर्य की ओर देखा और फिर विचार करने लगे। माता अञ्जना ऋषियों के शाप से अवगत थीं ही; उन्होंनें तुरंत कहा- 'अरे बेटा ! तेरे लिये सूर्यदेव कितनी दूर हैं। तेरी शक्ति की सीमा नहीं। अरे ! ये तो वे सूर्यदेव हैं, जिन्हें अरुण फल समझकर तू बचपन में उछलकर निगलने पहुँच गया था। सूर्य के साथ तू क्रीड़ा कर चुका है। तेरे भय से राहु प्राण लेकर इन्द्र के पास भागा था और तेरे भय से सुरेन्द्र भी सहम गये थे। बेटा ! ऐसा कोई कार्य नहीं, जो तू न कर सके। तेरे लिये असम्भव कुछ नहीं। तू जा और भगवान् सवित से सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर। तेरा कल्याण सुनिश्चित है।'

फिर क्या था? आञ्जनेय ने माता-पिता के चरणों में प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। दूसरे ही क्षण वे आकाश में उछले तो सामने सूर्यदेव के सारथि अरुण मिले। हनुमानजी ने पिता का नाम लेकर अपना परिचय दिया और उन्होंने अंशुमाली को दिखला दिया।

अञ्जनानन्दन ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भगवान् भुवनभास्कर के चरणों में प्रणाम किया। सरलता की मूर्ति, सर्वथा निश्छल-हृदय, विनम्र पवनकुमार को बद्धाञ्जति खड़े देखकर सूर्यदेव ने पूछा- 'बेटा ! यहाँ कैसे?'

हनुमानजी ने अत्यन्त नम्र वाणी में उत्तर दिया- 'प्रभो ! मेरा यज्ञोपवीत-संस्कार हो जाने पर माता ने मुझे आपके चरणों में विद्याध्ययन करने के लिये भेजा है। आप कृपापूर्वक मुझे ज्ञान प्रदान करें।"

आदित्य बोले- 'बेटा ! देख लो, मेरी बड़ी विचित्र स्थिति है। मुझे अहर्निश रथ पर दौड़ते रहना पड़ता है। ये अरुणजी रथ का वेग कम करना नहीं जानते। ये क्षुधा-पिपासा और निद्रा को त्याग कर अनवरतरूप से रथ हाँकते ही रहते हैं। इस विषय में पितामह से कुछ कहने का अधिकार भी मुझे नहीं। रथ से उतरना भी मेरे लिये सम्भव नहीं। ऐसी दशा में मैं तुम्हें शास्त्र का अध्ययन कैसे कराऊँ? तुम्हीं सोचकर कहो, क्या किया जाय। तुम्हारे-जैसे आदर्श बालक को शिष्य के रूप में स्वीकार करने में मुझे प्रसन्नता ही होगी।'

भगवान् दिवाकर ने टालने का प्रयत्न किया, किंतु पवनपुत्र को इसमें किसी प्रकार की कठिनाई की कल्पना भी नहीं हुई। उन्होंने उसी विनम्रता से कहा- 'प्रभो ! वेगपूर्वक रथ के चलने से मेरे अध्ययन में क्या बाधा पड़ेगी? हाँ, आपको किसी

प्रकार की असुविधा नहीं होनी चाहिये। मैं आपके सम्मुख खड़ा हो जाऊँगा और रथ के वेग के साथ ही आगे बढ़ता रहूँगा।'

मारुतात्मज भगवान् तिमिरारि की ओर मुख करके उनके आगे-आगे स्वाभाविकरूप में चल रहे थे।

सूर्यनारायण को इसमें तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। वे पवन कुमार की शक्ति से परिचित थे। वे यह भी अच्छी तरह जानते थे कि ये स्वयं ज्ञानिनामग्रगण्य हैं; किंतु शास्त्र की मर्यादा का पालन करने हेतु मुझे यश प्रदान करने के लिये ही मुझसे विद्या प्राप्त करना चाहते हैं।'

बस, सूर्यदेव वेदादि शास्त्रों एवं समस्त विद्याओं के अंगोपांग एवं उनके रहस्य जितनी शीघ्रता से बोल सकते थे, बोलते जाते थे। हनुमानजी शान्त भाव से उन्हें सुनते जाते थे। प्रश्न और शंका तथा उत्तर और समाधान की आवश्यकता ही नहीं थी। आदित्यनारायण ने हनुमानजी को वर्ष-दो-वर्ष या दो-चार मास में नहीं, कुछ ही दिनों में समस्त वेदादि शास्त्र, उपशास्त्र एवं विद्याएँ सुना दीं। हनुमानजी में स्वतः सारी विद्याएँ निवास करती थीं। सविधि विद्याध्ययन हो गया। सबमें पारंगत हो गये वे।

अत्यन्त भक्तिपूर्वक गुरु-चरणों में साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम कर अञ्जनानन्दन ने हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की- 'प्रभो ! गुरु-दक्षिणा के रूप में आप अपना अभीष्ट व्यक्त करें।'

सर्वथा निष्काम सूर्यदेव ने उत्तर दिया- 'मुझे तो कुछ नहीं चाहिये, किंतु यदि तुम मेरे अंश से उत्पन्न कपिराज बाली के छोटे भाई सुग्रीव की रक्षा का वचन दे-सको तो मुझे प्रसन्नता होगी।'

'आज्ञा शिरोधार्य है।'- पवनपुत्र ने गुरु के सम्मुख प्रतिज्ञा की- 'मेरे रहते सुग्रीव का बाल भी बाँका नहीं हो सकेगा; मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।'

'तुम्हारा सर्वविध मंगल हो !' भगवान् सूर्यदेव ने आशीर्वाद दिया और केसरी-किशोर गुरुदेव के चरणों में पुनः साष्टांग लेट गये।

परम विद्वान् पवनकुमार ने गन्धमादन पर लौटकर अपने माता-पिता के चरणों पर मस्तक रखा। माता-पिता के हर्ष की सीमा न थी। उस दिन उनके यहाँ ऐसा अद्भुत उत्सव मनाया गया कि गन्धमादन पर हर्ष और उल्लास के

समारोह का इतना सुन्दर और विशद आयोजन इसके पूर्व कभी किसी ने देखा नहीं था। सम्पूर्ण कपि-समुदाय आनन्द-विभोर हो गया। सबने प्राण-प्रिय अञ्जनानन्दन को अपने अन्तर्हृदय का आशीर्वाद प्रदान किया।

शिशु श्रीराम के साथ

कपूर्वरगौर शिव और नील-कलेवर श्रीराम में अनन्य प्रीति है। सच तो यह है, भगवान् श्रीराम और महेश्वर तत्त्वतः एक ही हैं; इनमें भेद नहीं। इसी कारण जो गोविन्द को नमस्कार करते हैं, वे शंकर को भी नमस्कार करते हैं एवं जो भक्तिपूर्वक श्रीहरि की अर्चना करते हैं, वे वृषभध्वज की भी पूजा करते हैं। जो विरूपाक्ष से द्वेष करते हैं, वे जनार्दन से भी द्वेष करते हैं एवं जो रुद्र को नहीं जानते- जिन्हें रुद्र का स्वरूप विदित नहीं है, वे केशव को भी नहीं जानते।

भगवान् शंकर ने स्वयं अपने मुखारविन्द से कहा है- 'जो इन अव्यक्त विष्णु को और मुझ महेश्वर देव को एक-सा देखते हैं, उनका पुर्नजन्म नहीं होता। किंतु लीला के लिये- अपनी ही रसमयी मधुर लीला के आस्वादन के लिये वे दोनों आशुतोष शिव एवं मुनिमनरञ्जन श्रीराम के रूप में प्रकट होते हैं।

पाप-ताप-निवारण, धर्म-संस्थापन एवं प्राणियों के अशेष मंगल के लिये जब-जब भगवान् श्रीराम धरती पर अवतरित होते हैं, तब-तब सर्वलोकमहेश्वर शिव भी अपने प्रियतम श्रीराम की मुनिमनमोहिनी मधुर मंगलमयी लीला के दर्शनार्थ धरणीपर उपस्थित हो जाते हैं। वे अपने एक अंश से अपने प्राणप्रिय श्रीराम की लीला में सहयोग करते हैं, पर दूसरे रूप में उनकी भुवनपावनी लीला के दर्शन कर मन-ही-मन मुदित भी होते रहते हैं। उस समय उनके आनन्द की सीमा नहीं रहती।

निखिल भुवन-पावन भगवान् श्रीराम महाभागा कौसल्या के सम्मुख प्रकट हुए और अवधी गलियों में उमानाथ लगे घूमने। वे अयोध्यापति दशरथ के राजद्वारपर कभी प्रभु-गुण-गायक साधु के रूप में, तो कभी भिक्षा प्राप्त करने के लिये विरक्त महात्मा के वेष में दर्शन देते। कभी परमप्रभु के अवतारों की मंगलमयी कथा सुनाने प्रकाण्ड विद्वान् के रूप में राज-सदन पधारते, तो कभी त्रिकालदर्शी दैवज्ञ बनकर राजा दशरथ के कमल-नयन शिशु का फलादेश बताने पहुँच जाते। इस प्रकार वे किसी-न-किसी बहाने घूम-फिरकर श्रीराम के समीप जाते ही रहते। भगवान्

शंकर कभी अपने आराध्य को अंक में उठा लेते, कभी हस्तरेखा देखने के लिये उनका कोमलतम दिव्य हस्त-पद्म सहलाते और कभी अपनी जटाओं से उनके नन्हें-नन्हें कमल-सरीखे लाल-लाल तलवे झाड़ते, तो कभी उन देव-दुर्लभ सुकोमल अरुणोत्पल चरणों को अपने विशाल नेत्रों से स्पर्श कर परमानन्द में निमग्न हो जाते। धीरे-धीरे कौसल्यानन्दन राजद्वारतक आने लगे।

एक बार की बात है- पार्वतीवल्लभ मदारी के वेष में डमरू बजाते राम-द्वार पर उपस्थित हुए। उनके साथ नाचनेवाला एक अत्यन्त सुन्दर बंदर था। मदारी के साथ अवध के बालकों का समुदाय लगा हुआ था।

डमरू बजने लगा- और कुछ ही देर में श्रीराम सहित चारों भाई राजद्वार पर आ पहुँचे। मदारी ने डमरू बजाया और बंदर ने दोनों हाथ जोड़ लिये। भ्राताओं सहित राघवेन्द्र हँस पड़े।

मदारी जैसे निहाल हो गया। डमरू और जोर से बजा। बंदर ने नाचना आरम्भ किया। वह ठुमुक-ठुमुककर नाचने लगा।

भगवान् वृषभध्वज अपने एक अंश से अपने प्राणाराध्य के सम्मुख नाच रहे थे और अपने दूसरे अंश से स्वयं ही नचा रहे थे। नाचने और नचाने वाले आप ही थे- श्रीरामचरणानुरागी पार्वतीवल्लभ और बंदर के नाच से मुग्ध होकर बार-बार ताली बजाने वाले थे- सम्पूर्ण सृष्टि को नट-मर्कट की भाँति नचाने वाले अखिलभुवनपति कौसल्या-कुमार भगवान् श्रीराम !

अन्त में भगवान् श्रीराम प्रसन्न हो गये और मचल उठे- 'मुझे यह बंदर चाहिये।'

चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम की कामना कैसे अपूर्ण रहती। मदारी बंदर का मूल्य चाहे जो ले, पर बंदर तो कौसल्या-किशोर के पास ही रहेगा। मदारी को भी तो यही अभीष्ट था। इसी उद्देश्य से- अपने प्रभु के चरणों में समर्पित होने के लिये ही तो वह राजद्वार पर आया था। श्रीराम ने अपने कर-कमलों से बंदर को ग्रहण किया- युग-युग की लालसा पूर्ण हुई बंदर की। वह नाच उठा- थिरक-थिरककर नाचने लगा। अब तक भोलेनाथ बंदर के रूप में अपने को नचा रहे थे; अब वे स्वयं नाच रहे थे और उन्हें नचाने वाले थे मुनि-मन-मानस-मराल दशरथकुमार। बंदर के सुख, सौभाग्य और आनन्द

की सीमा न थी। वह विविध प्रकार के मनमोहक हाव-भाव प्रदर्शित करता हुआ अपने आराध्य के सम्मुख नृत्य करने में तन्मय था; उधर मदारी अदृश्य हो गया। पता नहीं, वह कैलास-शिखर पर चला गया या अपने परमप्रभु की सुखद लीला के दर्शनार्थ अपने दूसरे रूप में प्रविष्ट हो गया।

इस प्रकार हनुमानजी ने अपने स्वामी श्रीराम के समीप रहने का अवसर प्राप्त कर लिया। श्रीराम हनुमानजी को अतिशय प्यार करते। वह हनुमानजी के समीप बैठते, उनके साथ खेलते, उनके सुवर्ण-तुल्य अंगों पर अपने कर-कमल फेरते; कभी उन्हें नाचने के लिये आज्ञा देते तो कभी दौड़कर कोई वस्तु मँगवाते। हनुमानजी अपने प्रभु की प्रत्येक आज्ञा का अत्यन्त आदर-उत्साह एवं प्रसन्नतापूर्वक पालन करते। वे प्रत्येक रीति से भगवान् श्रीराम को प्रसन्न करते। भगवान् श्रीराम को जैसे सुख मिले, उनका जैसे मनोरंजन हो, वे वही करते।

इस प्रकार कई वर्षों का समय क्षणार्ध के समान व्यतीत हो गया। महर्षि विश्वामित्र अयोध्या पधारे और जब उनके साथ श्रीराम के जाने का अवसर आया तो उन्होंने हनुमानजी को एकान्त में बुलाकर कहा- 'मेरे अन्तरंग सखा हनुमान ! मेरे धराधाम पर अवतरित होने का प्रमुख कार्य अब प्रारम्भ होने वाला है। लंकाधिपति रावण की अनीति एवं अनाचार से पृथ्वी विकल हो उठी है। अब मैं उसका वध करके पृथ्वी पर धर्म की स्थापना करूँगा। मेरे इस कार्य में तुम्हारी सहायता अपेक्षित होगी। दशानन ने महाबली बाली को मिला रखा है और वह अपने अनुज सुग्रीव के रक्त का प्यासा है। भयाक्रान्त सुग्रीव ऋष्यमूकपर्वत पर निवास कर रहे हैं। अतएव तुम ऋष्यमूकपर्वत पर जाकर सुग्रीव से मैत्री कर लो। मैं अपने पड़ोस में बसने वाले मारीच, सुबाहु और ताड़का का उद्धार कर कुछ ही दिनों में दण्डकारण्य में खर-दूषण, त्रिशिरा और शूर्पणखा-जैसे भयानक कण्टकों को दूर करता हुआ ऋष्यमूक की ओर आऊँगा। वहाँ तुम मुझसे सुग्रीव की मैत्री स्थापित करवाकर वानर-भालुओं के द्वारा मेरे अवतार-कार्य में सहायता करना।'

हनुमानजी अपने प्रभु से पृथक् होना नहीं चाहते थे, किंतु प्रभु की आज्ञा का पालन ही उनके लिये सर्वोपरि कर्तव्य था। उन्होंने अपने प्राणाराध्य के चरणों में प्रणाम किया और उनके मंगलमय-कल्याणमय मधुर नामों का मन-ही-मन जप करते हुए वे ऋष्यमूक के लिये प्रस्थित हो गये।

सुग्रीव के सचिव बने हनुमान-

ऋक्षराज वानर के दो पुत्र थे- बाली और सुग्रीव। पिता अपने दोनों पुत्रों को समान रूप से प्यार करते थे। दोनों बालक अत्यन्त धीर, वीर, बलवान्, बुद्धिमान् एवं सुन्दर तो थे ही, दोनों में परस्पर अतिशय प्रीति थी। बाली सुग्रीव को प्राणतुल्य चाहते और सुग्रीव बाली के चरणों में पिता की भाँति श्रद्धा रखते थे। दोनों भाई भोजन, शयन, क्रीड़ा, आखेट आदि साथ ही करते- प्रायः सदा साथ रहते।

पिता के दिवंगत होने पर मन्त्रियों ने ज्येष्ठ होने के कारण बाली को वानर-समुदाय के राज्य-पद पर अभिषिक्त किया। वे समस्त वानर-जाति के प्राणाधिक प्रिय थे और अपनी प्रजा को भी पुत्रवत् प्यार करते थे। इस प्रकार बाली किष्किन्धा के विशाल राज्य का शासन करते और सुग्रीव श्रद्धा-भक्ति के कारण अत्यन्त विनीतभाव से दास की भाँति अपने अग्रज की सेवा में प्रस्तुत रहते थे।

उधर कपिराज केसरी अपनी सहधर्मिणी के साथ अपने प्राणप्रिय पुत्र हनुमान की विरक्ति एवं एकान्तप्रियता से अत्यधिक चिन्तित थे। वे कपियों के यूथपति थे और ऋक्षराज के शासन में रहते थे। इस कारण उन्होंने हनुमानजी को राजनीति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये पम्पापुर भेजने का निश्चय किया। मातृ-पितृ-भक्त हनुमानजी ने माता-पिता का आदेश प्राप्त होते ही उनके चरणों में प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद लेकर वे पम्पापुर के लिये चल पड़े।

पवनकुमार के पम्पापुर में आगमन का समाचार प्राप्त होते ही सुग्रीव ने आगे जाकर उनका स्वागत किया। उनके देव-दुर्लभ गुणों से परिचित होने के कारण बाली ने भी उनका अत्यधिक सम्मान किया और उन्हें बड़े ही आदर से अपने पास रखा। हनुमानजी विद्वान्, बुद्धिमान्, बलवान्, धैर्यवान, सदाचारपरायण एवं सरलता की सजीव मूर्ति थे, इस कारण बाली इन्हें अपना अन्तरंग बनाना चाहते थे। किंतु विद्या-वारिधि केसरीकुमार को अपनी गुरु-दक्षिणा की (कि वे सुग्रीव की रक्षा करेंगे) स्मृति सदा बनी रहती थी। अतएव वे सुग्रीव के अभिन्न मित्र बन गये। सुग्रीव के हृदय में भी इनके लिये अतिशय प्रीति थी।

जिस समय वज्रांग हनुमान पम्पापुर पहुँचे, उस समय उस क्षेत्र के चारों ओर राक्षसों के राज्य थे। एक ओर शक्तिशाली खर-दूषणादि, दूसरी ओर विराध और

तीसरी ओर देव-द्विजद्रोही वीरवर दशानन का निष्कण्टक राज्य था। वानरराज बाली अन्यतम वीर एवं योद्धा थे; इस कारण असुर उनसे भयभीत रहा करते। वे उनके राज्य की सीमा में उपद्रव करने का साहस तो नहीं कर पाते; किंतु राक्षसों की दुष्टता से अवगत होने के कारण बाली निश्चिन्त होकर दुष्ट दलन के लिये कहीं दूर जा भी नहीं सकते थे। केसरी-किशोर के पम्पापुर में प्रवेश करते ही उनकी यह चिन्ता प्रायः दूर हो गयी। माता अञ्जना ने अपने अलौकिक पुत्र को राक्षसों की अनेक कथाएँ सुनायी थीं, इस कारण हनुमानजी के मन में बाल्यकाल से ही राक्षसों के प्रति रोष उत्पन्न हो गया था। अतः उनकी दृष्टि में पड़ जाने पर किसी राक्षस का सुरक्षित बच निकलना सम्भव नहीं था। वे असुरों को खोज-खोजकर उनका प्राण-हरण करते और असुर उनके नाम से ही काँपते थे। बाली हनुमानजी की सरलता और साधुता के साथ उनकी अनुपम वीरता, धीरता और पराक्रम को देखकर चकित होते रहते थे।

वीरवर बाली और सुग्रीव की आदर्श प्रीति-कथा सर्वत्र प्रख्यात थी। वे दोनों प्रत्येक रीति से सुखी थे; किंतु क्रूर नियति की निर्दयता की सीमा नहीं होती। उसने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी, जिससे दोनों अपने सहज प्रेम को भूलकर एक-दूसरे के रक्त-पिपासु बन गये।

उस समय मय का पुत्र मायावी नामक दानव अपनी शक्ति एवं वीरता के गर्व से उन्मत्त होकर शत्रु ढूँढ़ता फिरता था।

एक दिन की बात है कि अर्धरात्रि के समय वह बलवान् असुर किष्किन्ध ा के द्वार पर जाकर बाली को ललकारते हुए भयानक गर्जन करने लगा। वीर बाली शत्रुका आह्वान सुनते ही उसका मुख-मर्दन करने के लिये सदैव प्रस्तुत रहते थे। वे प्रगाढ़ निद्रा में थे, किंतु असुर की ललकार सुनते ही शय्या से उठकर तुरंत दौड़ पड़े। अग्रज को शत्रु के सम्मुख जाते देखकर सुग्रीव भी उनके पीछे दौड़े। असुर ने जब बाली को और उनके पीछे सुग्रीव को भी आते देखा तो वह भयभीत होकर तीव्र गति से भागा। दोनों भाइयों ने भी उसी गति से उसका पीछा किया।

अत्यधिक दूर जाने पर उसे घास-फूस से ढका हुआ एक विशाल विवर मिला। असुर उसी विवर में प्रविष्ट हो गया। क्रोधोन्मत्त बाली सुग्रीव को वहीं द्वार पर सावधानी के साथ खड़ा रहने का आदेश देकर स्वयं विवर में घुस गये।

बाली ने अपने भाई सुग्रीव को पंद्रह दिनों तक विवर-द्वार पर सावधानीपूर्वक प्रतीक्षा करने का आदेश दिया था, किंतु सुग्रीव एक मास तक वहाँ सजग होकर डटे रहे। वे विवर के द्वार पर कान लगाकर कुछ सुनने का प्रयत्न करते, पर बाली के स्थान पर राक्षसों का कोलाहल सुनायी पड़ता था। सुग्रीव अपने अग्रज के लिये मन-ही-मन चिन्तित थे कि उनके सम्मुख विवर से फेनसहित रक्त की धारा निकली। भ्रातृ-स्नेह के कारण सुग्रीव व्याकुल हो गये। उनके मन में बाली के लिये शंका होने लगी।

बहुत ध्यान देने पर भी जब उन्हें बाली का कोई शब्द सुनायी नहीं पड़ा, तब उन्होंने सोचा- 'इस विशाल विवर में असुरों ने मिलकर मेरे प्राणाधिक प्रिय अग्रज को मार डाला है, और अब वे बाहर आकर मुझे भी जीवित नहीं छोड़ेंगे।'

अत्यन्त दुःखी सुग्रीव ने अपनी रक्षा के लिये पर्वत-तुल्य एक विशाल चट्टान से विवर का मुख बंद कर दिया और उदास-मन से बाली को जलाञ्जलि देकर वे किष्किन्धा लौट आये।

सुग्रीव अपने अग्रज की मृत्यु का संवाद अप्रकट रखना चाहते थे, किंतु चतुर मन्त्रियों ने युवराज अंगद को छोटा देखकर सुग्रीव को राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। वे नीतिपूर्वक राज्य के दायित्व का निर्वाह करने लगे।

उधर वीरवर बाली असुर के समस्त साथियों का वध कर राजधानी लौटे। जब उन्होंने अनुज सुग्रीव को अपने स्थान पर राज्य-पद का उपभोग करते देखा, तब उनके नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उन्होंने सोचा- 'इसी स्वार्थी भाई ने मेरी स्त्री और राज्य का सुख प्राप्त करने के लिये गुफा-द्वार पर विशाल चट्टान रख दी थी, जिससे मैं बाहर न निकल सकूँ और वहीं मेरा अन्त हो जाय।' यह विचार मन में आते ही बाली क्रोधोन्मत्त हो गये।

सुग्रीव ने अपने बड़े भाई को देखते ही उनका राज्य वापस कर दिया किंतु अतिशय क्रुद्ध बाली सुग्रीव के कट्टर शत्रु हो गये थे। सुग्रीव प्राण-रक्षा के लिये मन्त्रियों सहित भाग खड़े हुए।

भयभीत सुग्रीव भागे जा रहे थे और बाली उन्हें मार डालने के लिये उनके पीछे लगे थे। नद-नदियों, वनों, पर्वतों, समुद्रों एवं नगरों को छोड़ते सुग्रीव दौड़ते जा रहे थे। कहीं कुछ दिन भी रुकने का साहस उनमें न रह गया था- बाली

प्राणघातक शत्रु की तरह पीछे लगे थे।

भागते-दौड़ते सुग्रीव हिमालय, मेरु और उत्तर समुद्रतक जाकर भी बाली से अपना पीछा न छुड़ा सके; उन्हें कहीं शरण नहीं मिली। तब उनके साथ निरन्तर छाया की भाँति रहने वाले ज्ञानिनामग्रगण्य हनुमानजी को दुन्दुभि-वध की घटना स्मरण हो गयी।

उन्होंने भयभीत होकर सुग्रीव से कहा- 'राजन् ! मुझे महामुनि मतंग द्वारा वीरवर बाली को दिये शाप की स्मृति आ गयी है। कुपित होकर महामुनि ने शाप दिया था- 'यदि बाली इस आश्रममण्डल में प्रवेश करेगा तो उसके मस्तक के सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे।'' अतः वहीं निवास करना हम लोगों के लिये सुखदायी और निर्भय होगा।

सुग्रीव तुरंत अपने सचिव हनुमानजी के परामर्श के अनुसार ऋष्यमूकपर्वतपर मतंगाश्रम में चले गये। मतंग-मुनि के शाप-भय से बाली वहाँ नहीं जा सकते थे; विवश होकर वे लौट गये।

राजनीति-विशारद कपिराज बाली पवनकुमार को अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने साथ रखना चाहते थे; किंतु आञ्जनेय सुग्रीव के सच्चे शुभचिन्तक थे। सुख के दिनों में तो सभी घेरे रहते हैं- उस समय क्षुद्र चाटुकारों का अभाव नहीं रहता, किंतु आपत्ति-काल में वे साथ छोड़कर चले जाते हैं। सच्चे सुहृद् और सच्चे सेवक ही विपत्ति में भी अपनी प्रीति एवं भक्ति से विचलित नहीं होते।

श्रीहनुमानजी सदा सुग्रीव के साथ रहते, उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखते और उसकी व्यवस्था करते, उन्हें सत्परामर्श देते और धैर्य बँधाते रहते। महावीर हनुमानजी के साथ एवं उनके सुनिश्चित आश्वासन पर सुदृढ़ विश्वास के कारण सुग्रीव आपदा में सुखानुभूति करते रहते थे। पवनकुमार उन्हें अपने मन्त्री ही नहीं, अन्यतम मित्र, सखा, सुहृद् और सहोदर भ्रातातुल्य प्रतीत होते थे।

बाली के सर्वस्व छीन लिये जाने पर भी बहिष्कृत सुग्रीव अपने अनुपम सचिव हनुमानजी के कारण ऋष्यमूकपर्वत पर शाप के कारण दूसरे वीरों को भेजकर व सुग्रीव को मरवा डालने का प्रयत्न कर सकता था, इसे सुग्रीव भलीभाँति जानते थे; किंतु हनुमानजी की शक्ति, पराक्रम एवं विलक्षण बुद्धि पर सुदृढ़ विश्वास के कारण वे निश्चिन्त रहते थे। महावीर हनुमान सुग्रीव की सेवा एवं उनकी आज्ञा

के पालन में सदा तत्पर रहते। सर्वगुणसम्पन्न पवनकुमार को अपने सखा एवं सचिव के रूप में प्राप्त कर सुग्रीव सदा ही अपने भाग्य की सराहना किया करते।

प्राणाराध्य के पाद-पद्मों में

पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये दशरथनन्दन श्रीराम अपनी सती सहधर्मिणी जनकनन्दिनी और अनुज लक्ष्मण के साथ वन में गये। वे चित्रकूट और दण्डकारण्य में तेरह वर्षों तक ऋषियों-महर्षियों एवं समस्त प्राणियों को कृतार्थ करते हुए विचरण करते रहे। असुर जहाँ-कहीं तपस्वी मुनियों को कष्ट पहुँचाते, भगवान् श्रीराम वहीं असुरों का वध कर मुनियों का जीवन निरापद कर देते। श्रीराम वनवास के चौदहवें वर्ष में पञ्चवटी में एक सुन्दर पर्णकुटी बनाकर रहने लगे। एक दिन रावण ने छल से सीता का हरण कर लिया। उसने भगवती सीता को ले जाकर लंका की अशोक-वाटिका में रख दिया।

जनकदुलारी को ढूँढ़ते हुए सानुज श्रीराम विराध, कबन्ध आदि का वध करते ऋष्यमूकपर्वत की ओर जा निकले।

ऋष्यमूक पर्वत के एक ऊँचे शिखर पर वज्रासन में आसीन, सुग्रीव ने वायुनंदन, हनुमानजी को अपनी ओर आते देख, मधुरवाणी में कहा, "शत्रुवीरों का संहार करने वाले, वीर! श्रेष्ठ वायुनंदन, हनुमान! आओ वत्स! मेरे समीप आसन ग्रहण करो! न जाने क्यों? तुम्हारे सानिध्य में, मैं एक अनोखी शांति का अनुभव करता हूँ।"

"सौम्य केसरी कुमार! मेरे दुःखों का कहीं अंत नहीं दिखाई पड़ता। बन्धुवर! बालि का हिमालय पहाड़-सा भयंकर भय का भूत क्षणमात्र के लिए भी मेरे मस्तिष्क से दूर नहीं होता। यह संताप घनीभूत पीड़ा बनकर घन-घटाओं की तरह सिर पर मड़राते रहने वाले भीषण संकट काल में भी मैं जीवित रहना चाहता हूँ।" इतना कहकर सुग्रीव एकाएक मौन होकर कुछ सोचने लगे।

कुछ क्षण के उपराँत, पुनः बोले, "महाबली वीर! मारुति! देखो न वत्स, यह कैसी विलक्षण बात है? इस भूतल के इतिहास को जहाँ तक मैं देख चुका हूँ, और गहन विश्लेषण कर मैंने देखा है कि मनु, जिनसे मनुष्यों की यह अनुपम सृष्टि हुई, की संतानों में सर्वगुण-संपन्न सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली वीर और योद्धा तुम्हारे सिवा, किसी अन्य वीर-पुरुष का प्रादुर्भाव अभी तक इस-धरती पर नहीं

हुआ है- जिसका बल-विक्रम, विद्या-विनय, विवेक, उदारता, शूरता, दक्षता, वेगता, गमनशक्ति, युद्धकला और समस्त ऋद्धि-सिद्धियों ने इकट्ठे हो कर जन्मकाल से ही स्वामी रूप में वरण किया हो। वत्स! यह कैसी विलक्षण भाग्य की विडम्बना है? जीव का कुछ वश नहीं है! प्रारब्ध ही प्रबल शासक है। यदि बात ऐसी न होती, तो तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ सहायक के होते हुए भी, मैं ऐसी दीन-हीन दशा को कभी भी प्राप्त न होता।" ऐसा कहकर सुग्रीव कुछ सोचते हुए मौन होकर इधर-उध ार दृष्टि दौड़ाकर पुनश्च बोले, "सौम्य! पवनकुमार! बीती रात मैंने कतिपय विलक्षण एवं आश्चर्यजनक, किन्तु दिव्य घटनाएँ देखी हैं, जो मेरे अंतः करण में हर्ष-विषाद की मिश्रित सृष्टि करती हैं- जिनके संवेगात्मक के भँवर-चक्र में पड़कर मेरा मन उद्वेलित हो रहा है। खड़े-खडे क्या देख रहे हो? किस सोच में निमग्न हो? आसन ग्रहण क्यों नहीं करते?" ऐसा कहकर सुग्रीव मौन हो गये।

अपने स्वामीं की आज्ञा पाकर, पवनतनय हनुमानजी ने उछलकर शाल वृक्ष की एक शाखा तोड़ ली, और सुग्रीव के बायें बगल में आसन लगाकर बैठते हुए बोले, "वानरों के अधिपति, बलवानों में श्रेष्ठ, राजन!मानन्द! आपकी सब बातों से मैं कदापि सहमत नहीं हूँ। आपने भाग्य और प्रारब्ध संबंधी कुछ ओछी और निराकृत बातें कहीं हैं, जो आप जैसे श्रेष्ठ वीर, विवेकशील-विद्वान और प्रशंसनीय वीर पुरुष के मुख से शोभा नहीं देती। मानन्द! विचार कर देखिये! इस जगत् में पौरुष ही श्रेष्ठ है, भाग्य नहीं, पुरुषार्थी वीर भाग्य को नहीं कोसते। इस ध ारती पर भाग्य तो बनाया जाता हैं। पुरुषार्थी पुरुष के अधीन ही भाग्य या प्रारब्ध ा रहता है। भाग्य अथवा दैव या प्रारब्ध, तो जीव का सांस्कृतिक धरोहर मात्र है। प्रारब्ध भी पुरुषार्थी से ही फलीभूत होता हैं। वरंच, जन्मजन्मान्तर पर्यन्त गेंद की तरह लुढ़कता ही रहता है। मानन्द!देव!क्यों भूलते हैं कि पुरुषार्थी जीव भाग्य को पलट देता है, मृत्यु को भी टाल देता है। नहीं भूलना चाहिए कि पुरुषार्थ, पराक्रम और उद्योग ही सर्वसिद्धियों की उपलिब्धयों के हेतु-भूत प्रबल साधन है, प्रारब्ध अथवा भाग्य नहीं। भाग्य का भरोसा तो कायर पुरुषों का प्रलापमात्र है।" इतना कहकर कुछ सोचते हुए, हनुमानजी चुप हो गये।

क्षणमात्र में अपनी चुप्पी भंग करते हुए पुनः बोले, "महामते! मानन्द! बड़े ही खेद की बात है कि पौरुष को गौण कर अविवेकी पुरुषों की भाँति प्रारब्ध और

भाग्य का आश्रय लेकर आप अपने को दीन-हीन, निराश्रय मानकर वीरत्व से विमुख हो रहे हैं। महानुभाव! महारत्नाकर की विशालता और मानव शरीर की लघुता पर विचार कीजिए। किसी समय की बात है कि परोपकार की भावना से अभिभूत होकर ऋषिवर अगस्त्य ने पुरुषार्थ और उद्योग का आश्रय लेकर विशाल महासागर को सुखा डाला था, और पुनः अपने तपोबल से उसे जल से भर भी दिया था जिससे सभी जलचर जीव सुखी हो गये थे। आप इस यथार्थ सत्य को क्यों भूलते हैं। देव! आपका स्वाभाविक बल आपके साथ है। विद्याबल और राजनैतिक बल से भी आप विभूषित हैं। इतिहास के आप पंडित हैं। आप एक स्पृहणीय और श्लाघनीय जगत्विख्यात वीर हैं। वेगवानों में श्रेष्ठ और कूटनीति के भी पंडित हैं। उदयाचंल से अस्ताचंल पर्यन्त सारी पृथ्वी का चक्कर काटते-मैंने आपको देखा है। महाबली बालि से भी अधिक लम्बी छलांग भरने में आपकी तुलना नहीं। छलांग लगाने की अद्भुत क्षमता आपके सिवा-और किसमें है? आपकी अद्भुत स्फूर्ति और गमनशक्ति को देखकर आपका पीछा करने वाले आपके अग्रज, बालि भी हतप्रभ हो उठे थे। श्रीमन्त! अनेक गुणों में बालि से आप बढ़-चढ़ कर हैं। आपके अग्रज, श्रीमान बालि बलशाली अवश्य हैं पर आपकी जैसी श्रेष्ठता का उनमें सर्वथा अभाव है। महामते! मैं आपके पलायन-काल में, अतिशय विस्मित था कि आप बालि के ऊपर मुड़कर प्रहार क्यों नहीं करते। ऐसा लगता था कि बड़े-भाई के प्रति अधिक स्नेह और आदर के ही कारण, आप उनसे द्वंद्व-युद्ध करने से भागना ही श्रेयस्कर मान रहे थे। मैंने भी एक सेवक होने के कारण भागने में आपका साथ दिया। अकारण दो बंधुओं के झगड़े में मेरा हस्तक्षेप क्या उचित होता? स्वामी! इस चंचल मन पर नियंत्रण कीजिए। इसी क्षण अपने कार्य-सिद्धि के लिए उद्योग में लग जाइये। मैं आपका सेवक हूँ। आपके हित-साधन में मैं समर्पित हूँ। मानन्द! मनुष्य यदि सौ वर्षों तक जीवित रहे-तो कभी न कभी सुख उसे प्राप्त होकर ही रहेगा।" इतना कहकर हनुमानजी चुप होकर कुछ सोचने लगे।

कुछ क्षण के पश्चात् पुनः प्रश्नसूचक शब्दावली में बोले, "न्यायिकों में श्रेष्ठ, राजन! अन्य दिनों की अपेक्षा आज श्रीमानजी विशेष प्रसन्नचित्त एवं मुखर दिखाई पड़ते हैं। मानन्द! ऋषिवर मतंगाश्रम की आश्चर्यजनक दिव्य घटनाएँ, जो महानुभाव ने गत रात्रि में देखी हैं, उन्हें सुनने के लिए मैं उत्सुक हूँ। जिन

आश्चर्यजनक दिव्य घटनाओं के दर्शनमात्र से आपका मन विशेष संवेदनशील हो उठा है, यदि वे गोपनीय न हों, तो मैं उन्हें जानने के लिए अधिक आतुर हूँ।" ऐसा निवेदन कर, श्रीहनुमानजी उदासीन भाव से चुप हो गये।

श्रेष्ठ सूर्यतनय, सुंदर ग्रीवा वाले कपिवर सुग्रीव हनुमानजी के प्रश्नों के सीध ो उत्तर न देकर, वार्तालाप को एक नया मोड़ देते हुए स्निग्ध वाणी में बोले, "ब्रह्मचारियों में श्रेष्ठ, अशोचनीय वीर! वायुनंदन, हनुमान! जैसा कि तुम जानते हो, मेरे जैसे राजसिंहासन से वंचित और आश्रयहीनों को प्रश्रय देने वाला प्राकृतिक-सम्पदा से संपन्न, यह उदार श्रृष्यमूक पर्वत मतंगवन के पश्चिमी किनारे पर स्थित है। यहाँ से थोड़ी ही दूर पर भावितात्मा महाभूति मतंगजी का पावन आश्रम है- जो नाना प्रकार के उत्तम फलों के भार से लदे हुए वृक्षों, वनवल्लरियों और रंग-बिरंगी पुष्पलाताओं से घिरा हुआ है, जिसमें अनेक जाति के उत्तम पक्षी सदा कलरव करते हैं। वनों में श्रेष्ठ यह मतंगवन पाथिकों के चित्त को आकर्षित करता रहता है। दर्शनीय मतंगवन से थोड़ा हटकर, उत्तर दिशा की-ओर, पुष्पकरणियों में उत्तम अगाध-निर्मल शीतल जल से व्याप्त, पम्पानामक एक विचित्र सरोवर है, जिसमें श्वेत, श्याम, धवल, नीला, पीला और रक्तवर्ण अनेक जाति के कमल-उत्पन्न पुष्प सदा खिले रहते हैं। इसी सरोवर के निर्मल जल में शुद्ध अंतःकरण वाले आश्रम से जब वे भावितात्मा ऋषि स्नानहेतु प्रस्थान करते थे, तब मतंगवन के समस्त जीव-जंतु उन्हें घेरकर सरोवर तक, उनका अनुरक्षण किया करते थे और स्नानोपरांत पुनः उन्हें आश्रम तक पहुंचाते थे। अमित-तेजस्वी, तपोवन महर्षि के प्रभाव के कारण मतंगवन के सभी प्राणी वैर रहित होकर एक साथ सानन्द विचरण करते हैं।"

"वत्स! केसरी कुमार! वयो-वृद्ध महर्षि मतंग अपने जीवन के अंतिम दिनों में, उपवास एवं कठिनव्रतों के पालन के कारण बहुत ही दुर्बल हो गये थे। अधि क आयु और कठिन तपस्या के कारण, उनके सारे अंग अवयव जर्जर हो चुके थे। यहाँ तक कि उनके हाथ-पैर और मस्तक भी कांपने लगा था। ऐसी विषम पारिस्थिति में, जब मन-ही-मन, उन्होंने सातों सिन्धुओं का चिंतन किया तो उनके चिंतन मात्र से मतंगाश्रम के मध्यभाग से, जहाँ ऋषिवर आसन जमाकर देवताओं को पुष्पांजलि दिया करते थे वहाँ सहसा एक विचित्र जलकुण्ड प्रकट हो गया।"

इतना कहने के पश्चात कुछ सोचते हुए सुग्रीव पुनः बोले- 'वेगवानों में श्रेष्ठ मारुति! सभी सागरों के मिश्रित जलाशय को अपनी पूजा की वेदी के निकट प्रस्फुटित हुआ देखकर, महर्षि बड़े प्रसन्न हुए। सभी सागरों को अपने अनुकूल जानकर, महर्षि ने अंतःकरण से संतुष्ट होकर उस नवीन प्रादुर्भूत जल स्रोत का नाम रखा, "सप्तसागरतीर्थ" और आह्लादित अंतःकरण से गद-गद वाणी में बोले, "यह पावन 'सप्तसागर' तीर्थ मेरे आश्रम के मध्यभाग में, मेरी श्रद्धारूप में प्रकट हुआ हैं। माँ वागेश्वरी, जो स्वयंभू हैं, और वाक्‌रुप में मेरी जिह्वा पर आविर्भूत हैं, जिनकी मन, कर्म और वचन से आराधना करता हूँ, वे महिमामयी माँ भगवती प्रसन्न होकर, इस नवीन तीर्थक्षेत्र को वही यश और गरिमा प्रदान करें, जो त्रिवेणी आदि तीर्थक्षेत्रों को पूर्व से ही प्राप्त है। मैं भी आज अपना तपोमय तेज इस नवीन तीर्थराज में स्थापित करता हूँ। स्वर्ग के और इस वन के सभी देवता साक्ष्यरुप में इसे देख लें।" ऋषि के मुख से उनका संकल्प आलोकरुप में निकल कर सप्तसागर तीर्थक्षेत्र को आलोकित करते हुए उस जलाशय में समाहित हो गया। परम संतुष्ट महर्षि पुनश्च बोले "जो प्राणी श्रद्धापूर्वक इस तीर्थ क्षेत्र में मज्जन-पान-और तर्पण करेंगे, उनके सभी अशुभ तत्काल नष्ट हो जायेंगे, और वह श्रद्धावान् मेरी ही जैसी चित्तहर्षक प्रसन्नता को प्राप्त करेंगे।" इस नवीन तीर्थश्रेत्र को इस प्रकार गरिमा प्रदान कर ऋषि मतंग शांत भाव धारण कर मौन हो गये।

"वत्स! मारुति! इस तीर्थ क्षेत्र के प्रादुर्भाव के कुछ ही वर्षों के बाद वे ब्रह्मलीन हो गये, और उसी दिन से यह मतंगाश्रम भी साधारण मरण-धर्मा मनुष्यों एवं पशुओं के दृष्टिपथ से अदृश्य (ओझल) हो गया, जो आज, न जाने क्यों? एकाएक प्रकट हो गया है। अंजना देवी के आनंद को बढ़ाने वाले वीर! केसरी कुमार! महर्षि मतंग की वयोवृद्ध शिष्या, परम धार्मिक, शुद्ध अंतःकरण-तपोमूर्ति-तपस्विनी शबरीजी अभी जीवित हैं। वही मतंगाश्रम और सप्तसागरतीर्थ क्षेत्र की रक्षा करती हैं। यह बड़े ही आश्चर्य की बात हैं कि चिरकाल से अदृश्य पवित्र मतंगाश्रम आज एकाएक सर्वसाधारण के लिए प्रकट हो गया है। इस अद्भुत लीला को देखकर मैं विस्मित हो उठा हूँ।" ऐसा कहकर सुग्रीव एकाएक मौन होकर शैलशिखर के चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर सशंकित मुद्रा में देखने लगे। ऐसा महसूस होने लगा मानो उनकी सभी इन्द्रियाँ किसी अज्ञात

आशंका से क्षुब्ध हो उठी हों।

अपने स्वामी सुग्रीव को सहसा चिंतित देखकर वायुनंदन श्रीहनुमानजी संस्कारित मधुर वाणी में बोले, "वानरों के अधिपति, युक्ति विचारकों में श्रेष्ठ, राजन! आपके मुखमंडल पर उभरी प्रसन्नता की रेखाओं को ही लक्ष्यकर मैंने कुछ प्रश्न किया था। आपने स्वयं ही कुछ दिव्य एवं विस्मयकारी मतंगाश्रम की घटनाओं की ओर संकेत किया था किंतु मूल प्रश्नों को गौण कर आपने आश्चर्यजनक मतंगमुनि के प्रभाव की अति रोचक कथा सुनायी, जिसे सुनकर मैं प्रभावित हूँ। किन्तु देव! मैं उन दिव्य घटनाओं के विषय में जानना चाहता हूँ, जिनके दर्शनमात्र से आप हर्ष-विषाद के मिश्रित संवेगात्मक भँवर-चक्र में पड़कर विशेष संवेदनशील हो उठे हैं। क्या वे गोपनीय प्रवृति की हैं? अथवा वे कुछ अज्ञात कारण मात्र थे, जो पुनरपि अज्ञात में ही समाहित हो गये" इतना कहकर श्रीहनुमानजी चुप हो गये।

महाबली वायुनंदन-हनुमानजी को क्षणिक निराश देखकर कपिवर सुग्रीव ने कहा, "सौम्य! केसरी कुमार! इस वन में प्रायः विस्मयकारी घटनाएँ घटती ही रहती हैं, पर जिन घटनाओं का दर्शन मैंने बीती रात किया है, वे कुछ भिन्न प्रकृति की है। अमित तेजस्वी मतंगमुनि के ही प्रभाव के कारण ही महाबली बालि इस पावन ऋष्यमूक पर्वत का स्पर्श भी नहीं कर सकते। ऋषि के वचन ही मेरे प्राणों के प्रहरी हैं। वत्स! जिन विलक्षण दृश्यों के दर्शन में मुझे अनिर्वचनीय शांति की अनुभूति हुई है, उनके विषय में कहता हूँ। सुनो!"

"गत रात्रि को जब मैं शय्या पर लेटकर सोने का उपक्रम कर रहा था, तो बजाय नींद के, पुरानी स्मृतियाँ मेरे मानस पटल पर धीरे-धीरे उभरने लगी। अनुकूल दिनों में, मेरे द्वारा भोगे गये भोगों की सुमधुर घटनाएँ एक के बाद एक क्रमशः उभरने लगी। शनैःशनै सभी इकट्ठे घनीभूत पीड़ा बनकर मेरे मस्तिष्क में छा गयीं। जिन भोगों को अपने आरम्भिक जीवन में भोग चुका था, वे अब तीखे बाण बनकर मेरे अंतःकरण को बींधने लगे। भूतकाल के भोगे गये सुखद भोग-भविष्य की चिंता और वर्तमान का असहनीय कष्ट-ये सब मिलकर मेरे हृदय को मथने लगे। अंतरद्वन्द्व की मार से मैं मर्माहत हो उठा। मेरी सारी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ने लगीं। मेरा मन व्यथित हो उठा। क्षुब्ध होकर मैंने शय्या

त्याग दी और इस शिखर पर आकर टहलने लगा। मेरा मन थक चुका था। अब तक रात्रि के तीन प्रहर बीत चुके थे।" इतना कहकर सुग्रीव सशंकित होते हुए, पर्वत के पार्श्वभूमि की ओर विस्फोटित नेत्रों से देखने लगे, मानों कोई आक्रमणकारी उनका पीछा कर रहा हो।

फिर शांत होकर पुनश्च बोले "वीर!केसरी कुमार! ब्रह्ममुहूर्त के आगमन के साथ ही मादक सौरभ बिखेरता हुआ मंद-मंद मंथर गति से मलयानिल चलने लगा। इस सुखद वायुमंडल में, मेरे थके हुए मन को स्फूर्ति मिली। मैं स्वस्थ चित्त हो गया। रात की अनिद्रा की कमजोरी जाती रही। वत्स! इस कष्टमय जीवन से मैं निराश हो रहा हूँ, किन्तु प्रभात मलयानिल की मधुर मुस्कान से एक बलशाली स्फूरण मुझे मिला, और मैंने संतोष की साँस ली।"

पुनश्च, "जब मेरी दृष्टि मतंगवन की ओर गयी तो, यह देखकर विस्मित हो उठा कि चिरकाल से अदृश्य मतंगाश्रम एकाएक प्रकट रूप में दीखने लगा,। अभी मेरी आँखे आश्रम पर ही टिकी हुई थीं, कि एक धूम्र रहित अग्निशिखा को आश्रम से ऊपर आकाश की ओर उठते देखा। वह अग्निशिखा अंतरिक्ष में पहुँचकर पाँच समान गोलाकार पिंडों के रुप में विभाजित हो गयी। प्रथम पिंड कुछ और ऊँचा उठकर आकाश को चूमने लगा। दूसरा खारे महासागर में जा गिरा। तीसरे और चौथे पिंडों को बड़ी ही द्रुतगति से उदयाचल और अस्ताचल की ओर जाते देखा। आखिरी और पाँचवें पिंड को मतंगाश्रम की भूमि में प्रत्यावर्तन करते देखकर मैं विस्मित हो उठा। और भी, यह देखकर मेरी बुद्धि भ्रमित हो उठी कि तपस्विनी शबरीजी आश्रम से ऊपर उठकर अपना जर्जर चोला छोड़कर, दिव्यरुप में परिणत हो, अतिशय उत्कृष्ट-शोभनीय दिव्य विमान में आरूढ होकर आकाश की ओर गमन कर गयीं।" इतना कहकर सुग्रीव एकाएक मौन हो गये, और कुछ क्षण के उपरांत स्वयं ही अपनी मौनता को भंग करते हुए बोले- "सौम्य! मारुति!बल विशारद, बजरंग! जब मेरी दृष्टि पम्पासरोवर की ओर गयी, तो यह देखकर मैं और भी विस्मित हो उठा कि पम्पा सरोवर के चारों तटों पर सुमधुर प्रकाश फैल रहा है। यद्यपि अन्य दिशायें अभी भी अंधकारमय थीं। कुछ क्षण के पश्चात् अनेक देवताओं के संरक्षण में, देवराज इन्द्र को विमान से उतरते देखा। थोड़ी देर के बाद मैंने सभी देवाङ्गनाओं को भी, वहाँ देखा।

वत्स! देवागङ्नाएँ बड़ी् निर्लज्ज और बेशर्म होती हैं। मानव ललनाओं की तरह मर्यादा की परवाह उन्हें नहीं रहती। पूर्वकाल में, मैंने देखा था कि जब वे किसी पुष्करणी में स्नान हेतु अर्द्धनग्नावास्था में अंगप्रदर्शन करते हुए, जल में प्रवेश करती हैं, तो अपनी बलिष्ट भुजाओं से मथकर, उस जलाशय को क्षुब्ध कर दिया करती हैं। पर वत्स! यह बड़ी ही विचित्र बात है, कि वे ही अप्सराएँ, आज बड़ी ही मर्यादा और शालीनता के साथ-मनुष्यों की कुलबधुओं की तरह शर्माती हुई सरोवर में डूबकी लगाकर जलाशय से बाहर निकल आयीं और वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर देवताओं के पीछे-पीछे मतंगाश्रम की ओर चली गयीं, किन्तु मतंगाश्रम में न प्रवेश कर, आस-पास की सघन झाड़ियों में छिप गयीं। अंत में भूतभावन-कैलाशवासी-मदन-मर्दन, देवाधिदेव महादेवजी को जगदम्बा उमा के साथ नंदी पर आरूढ़-पम्पा-सरोवर के निर्मल जल को स्पर्श करते मैंने देखा, किन्तु तत्क्षण ही वे अदृश हो गये।"

"वत्स! केसरी कुमार! अब तक प्रभात सूर्य की सुनहली किरणें, वनबल्लरियों के कोमल पत्तों एवं टहनियों पर पड़े कणों को स्वर्णिम आभा प्रदान करने लगी थीं। मतंगाश्रम का सप्तसागर तीर्थ, यहाँ से स्पष्ट दिखाई पड़ता है। वत्स! आश्चर्यमय दिव्यरूप वाले साँवरे और गौर वर्णवाले दो देवकुमारों को, इसी सप्तसागर तीर्थ क्षेत्र के निर्मल जल में स्नान करते मैंने देखा। उनके मस्तक पर विशाल जटाओं का समूह था, जिसे मज्जनकाल में, उन्होंने फहरा रखा था। उनके कंधे पर पीले यज्ञोपवीत और कटि में वल्कल चीर वस्त्र उनकी शोभा को बढ़ा रहे थे। ऐसे रुचिर-रुप की रचना देख कर मेरा शोक जाता रहा और मैं हर्षित हो उठा। जल में खड़े-खड़े उन्होंने तर्पण किया और सूर्यदेव को अर्घ्य अर्पण कर जलाशय से बाहर निकले। वत्कल के सूखे परिधान धारण कर, कटि में दो-दो तूणीर और वीरघातिनी तलवार, तथा बांये कंधे पर विशाल धनुष और दाहिने हाथ में अमोध वाण तथा कलात्मक ढंग से जटाओं का मुकुट बनाकर, मेरे देखते-देखते, वे दोनों राजकुमार के रुप में परिवर्तित होकर एकाएक अदृश्य हो गये। उनके उन्नत ललाट, विशाल वक्षस्थल, लंबी भुजाएँ, कमल सदृश नेत्र, श्याम-गौर वर्ण, वह मोहन रुप मेरे नयनों में बस गये हैं। जाने क्यों मेरा मन बार-बार उन कुमारों की ओंर खिंच रहा है। इन सब शुभ दर्शनों का प्रभाव क्या

हो सकता है? यह मैं नहीं जानता। यदि तुम कुछ अनुमान लगा सको तो ... ...।" ऐसा कहकर सुग्रीव मौन हो गये।

वानरराज सूर्यपुत्र, सुग्रीव को मौन देखकर वायुनंदन हनुमान जी बोले, "वानरों के श्रेष्ठ स्वामी! महामते! तपोधना शबरीजी का जन्म दास वंश में हुआ था। स्वयंभू मनुजी की व्यवस्थानुसार दास वंशोद्भव प्राणियों के निमित्त सेवा-कर्म ही सर्वोपरि परमोधर्म माना या है। परलोक में जो गति द्विजोत्तम जातियों की दुष्कर तपस्या, नैतिकाचार, धर्माचरण, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय अस्तेय और कठिन व्रतों के पालने से मिलती है, वह दास वंशोद्भव प्राणी को सहज ही निश्छल सेवावृत्ति से उपलब्ध हो जाती है। वेदों की भी यही मान्यता है। स्वनामध न्य शबरीजी ने अपने गुरुजनों के नित्य सेवारूपी तप से अपने भौतिक शरीर के मल को जला डाला था। उनके प्रारब्ध के सभी कर्म क्षीण हो चुके थे। वह तपोमयी देवी सांसारिक भोगों से उपरत होकर 'आत्मानन्द' में ही विचरण करने वाली थी। अपने सत्कर्मों द्वारा वह देवताओं के समस्त लोकों पर विजय पा चुकी थी। सभी लोकों के भोगों से असंग होकर वे ब्रह्मलीन हो चुकी है। भोगों में उसकी इच्छा अवशेष न थी। अतः उनके निर्वाण काल में सभी देव उनके गुरु के आश्रम पर मौजूद थे, किन्तु सभी भोगमय लोकों का अतिक्रमण कर वे ब्रह्मपद में लीन हो गयीं। तपोमय देवी शबरीजी के मलरहित शुभ अंग-अवयव को अतिशय प्रसन्न होकर, अग्निदेव अपने प्रचंड तेज द्वारा धूम रहित मार्ग से पाँच पिंडो में विभाजित कर मूल पंचतत्त्वों को समर्पित कर दिये हैं। देव! यह सत्य है कि शबरीजी की ही सुरक्षा हेतु ऋषिवर मतंगजी के तेज से मतंगाश्रम अदृश्य हो गया था, जो देवी के भौतिक देह त्याग के समय एकाएक प्रकट हो गया है।" इतना कहकर हनुमानजी कुछ सोचते हुए चुप हो गये।

कुछ क्षण के पश्चात् पुनश्च बोले, "मानन्द! जिन देव कुमारों को सप्तसागर तीर्थ में अवगाहन करते आपने देखा था, जो जलाशय से निकलकर अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो, आपके देखते-देखते राजकुमारों के रुप में परिवर्तित हो अदृश हो गये, वे दोनों कोई महान् विभूति मनुष्यरूप में इस भूतल पर अवतरित हुए हैं। चिरकाल से अदृश्य मतंगाश्रम का एकाएक प्रकट होना, देवताओं का मतंगाश्रम के सन्निकट आना और पवित्र शबरी जी का ब्रह्मपद में लीन होना-ये सभी संयोग

इकट्ठे, यही इंगित करते हैं कि राजकुमारों के रुप में इन दो विभूतियों के इस पवित्र वन में पर्दापण के कारण ही संभव हुआ है। शबरीजी का एकाएक अक्षय मोक्षपद की प्राप्ति का हेतु मूल कारण ये दोनों राजकुमार ही हो सकते हैं। संभव है, सभी देव-देवगङ्नाएँ, इन्ही विभूतियों के दर्शन हेतु इस वन में पधारी हों? जगत्पूज्य उमा-महेश्वर का सशरीर इस वन में आगमन का हेतु मूल कारण-ये दोनों राजकुमार ही हो सकते हैं। महामते! सौभाग्य की बात है कि इन्द्रदेव के साथ अन्य देवों, देवियों तथा जगज्जननी उमा के साथ महादेवजी का दर्शन और राजकुमारों के रुप में दो दिव्य विभूतियों का शुभ-दर्शन, दूर से ही सही, आपने किया। स्वामी! निश्चय ही इस महान दर्शन से आपके सभी अशुभ मिट गये हैं। आपका अभ्युदय काल उपस्थित है। आपके कथनों का फलादेश यही हो सकता है। इसी क्षण आप अपने अभीष्ट साधन ....।"

हनुमानजी का अभिकथन अभी चल ही रहा था कि बीच में ही सुग्रीव विस्मित होकर बोल उठे- "वीर! हनुमान! देखो-देखो! उस पर्वत के पार्श्वभूमि की ओर! ये, वही दोनों राजकुमार हैं जिनका दर्शन सप्तसागर तीर्थ क्षेत्र में मैंने किया था। मैं सशंकित हो रहा हूँ। कहीं ये दोनों राजकुमार बालि के मित्र तो नहीं हैं? शीघ्र ही गुप्तरुप से इनका भेद लो। यदि मेरे वध के लिए ही बालि ने इन्हें सन्नद्ध किया है, तो मैं तुम्हारा संकेत पाकर एक ही छलांग में समुद्र के तट पर पहुँच जाऊँगा।" हनुमानजी को ऐसा आदेश देकर सुग्रीव पर्वत के दूसरे शिखर के सघन झाड़ियों में जा छिपे और वस्तुस्थिति का आकलन करने लगे।

वायुनंदन-हनुमानजी अविलंब अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर, विद्वान, ब्राह्मण का विश्वसनीय रूप धारण कर, पर्वत शिखर से नीचे उतरे। राजकुमारों के अमित तेज को दूर से ही देखकर चक्कर में पड़ गये। राजकुमारों के सम्मुख उपस्थित होकर अपने विद्वान विश्वसनीय वृद्ध ब्राह्मण का गौरव भूलकर नतमस्तक हो, राजकुमारों का अभिवादन किया, परंतु यह क्या? आर्शीवचन की बातें दूर रही, युगल कुमारों ने संकेतमात्र से भी ब्राह्मणदेव का स्वागत सत्कार न किया। हनुमानजी मन-ही मन सोचने लगे। ऐसे अनुपरुप वाले ये दोनों नवजवान कौन हो सकते है? बाह्य आवरण से तो, इतने सौम्य, इतने मृदुल, मनोहारी रुप और भीतर से इतने अविनीत हैं कि एक देवतुल्य-विद्वान् ब्राह्मण के सत्कार के लिए,

इनके अंग तक नहीं हिलते? ऐसा भाव मन में आते ही, हनुमानजी के हृदय में अमर्ष भाव का संचार हो आया। अतः कुछ तीखे स्वर में बोले, "क्षत्रिय वेश में निर्भीकतापूर्वक इस वीहड़ वन में विचरण करने वाले श्याम-गौर शरीर वाले तुम दोनों कौन हो? किशोरावस्था से अभी-अभी तुम यौवन में प्रवेश कर रहे हो! इस निविडत्तम-निर्जन वन प्रान्त में स्वतंत्र रूप में घूमने का तुम्हारा उद्‌देश्य क्या है? तुमने क्या मौन व्रत ले रखा है?" हनुमानजी के प्रश्नों के उत्तर देने के बजाय, दोनों राजकुमार कौतूहल पूर्वक निर्निमेष नयनों से ब्राह्मण देवता के मुख की ओर देखने लगे, मानो किसी अजनबी जंतु को देख रहे हों। विद्वान् ब्राह्मण द्वारा प्रौढ़ बुद्धि से निष्णात भाव में की गयी जिज्ञासा को निष्फल होते देख, हनुमानजी मन ही मन व्यथित हो उठे। गुप्तचर दौत्य कर्म की गुरुता का उन्हें स्मरण हो आया। तीखे स्वर प्रयोग की चूकें उन्हें महसूस हुई। अतः अब सावधान होकर पाँसा पलटते हुए विनययुक्त सुमधुर वाणी में बोलेः-

'हे स्वामी! हे शुभ दर्शने! मोहवश आपको साधारण मनुष्य मानकर, मेरे मुख से यदि कोई अशुभ वाणी निकल गयी है, जिससे आपका कुछ तिरस्कार सा हो गया है, तो एक वृद्ध ब्राह्मण द्वारा अनजान में की गयी चूक मानकर, उसे क्षमा करें। हे-स्वामी! मेरी अज्ञानता की अवहेलना कर मुझपर प्रसन्न होइए। मनुष्य रुप में आप को नर-नारायण रुप में मैं नमस्कार करता हूँ। मुझ, अकिंचन ब्राह्मण पर अनुग्रह कीजिए। त्रिदेव स्वरुप-ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर रुप में आप दोनों को मैं नमन करता हूँ। मुझपर प्रसन्न होइये। वेद जिन्हें नेति-नेति कहकर, जिनका निरुपण करते हैं, जो अखिल ब्रह्मांड के नायक हैं, उस निर्गुण निराकार ब्रह्म को जो, गो-ब्राह्मण और भक्तों के हेतु सगुण-साकार रुप में इस भूतल पर अवतरित होते है- उन दोनों रुपों में मैं आपका भजन करता हूँ आप प्रसन्न हो जाइए।"

बूढ़े ब्राह्मण देवता की अतिशय आतुरता देखकर श्यामल राजकुमार, अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए बोले- "कोसल देश के चक्रवर्ती सम्राट, रघुवंश विभूषण, राजा दशरथ के हम दोनों औरस पुत्र है। राम-लक्ष्मण हमारा नाम है। हमारे साथ, मेरी सुकुमारी भार्या-विदेह राजकुमारी और राजा दशरथ की पुत्र वधू, वैदेही नामक राजलक्ष्मी मेरे साथ आयी थी, जिसे किसी राक्षस ने मुझसे कपट करके हर लिया है। हम दोनों भाई देवी को ढूँढ़ते हुए, इधर आ निकले हैं। हमारा अन्य

कोई दूसरा उद्देश्य नहीं है। ब्राह्मण देव! हमने अपना चरित्र आपको सुना दिया। अब आप अपनी कथा सुनाइये।" ऐसा परिचय देकर श्रीराम मौन हो गये।

श्रीराम के ही श्रीमुख से निकला रामनाम जब हनुमानजी के श्रवण रंध्र में प्रवेश किया, तो उनके ज्ञान चक्षु खुल गये। मोह के पर्दे फटे। सारी व्यथा मिट गयी। अपने इष्टदेव को पहचान कर, दंड की तरह पृथ्वी पर लेटकर मन ही मन में अपने प्रभु के कमल चरणों को अपनी दोनों भुजाओं में पाकर अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति उन्हें प्राप्त होने लगी। आनन्दातिरेक में उनकी रोमावली पनस फल की तरह खड़ी हो गयी। दोनों नेत्रों से अविरल आँसू-धारा चलने लगी। कपिश्रेष्ठ हनुमानजी की ऐसी विलक्षण दशा होने पर भी, उनके स्वामी, उनपर द्रवित न हुए। अपने स्वामी को निरा तटस्थ देखकर, हनुमानजी घबड़ा उठे! उनके धैर्य के बाँध टूटने लगा। असंयत स्थिति में ही अवरूद्ध कंठ से गद-गद वाणी में सुमधुर स्तुति करने लगे:-

'हे स्वामी! हे दीनबंधो! हे अखिल ब्रह्मांड के नायक! हे भक्त वत्सल, जगतपते! पतितपावन-प्रभो! सृजन, पालन और संहार के हेतुमूल कारण! हे देवाधिदेव! साधुपुरुषों के रक्षक और दुष्टों का दमन करने वाले, विश्व प्राण! हे अनंत! पृथ्वी के भार को हरने के निमित्त ही आप मानवरुप में अवतरित हुए है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मैं सांसारिक जीव हूँ। आपसे बिछुड़ने के कारण ही आपकी प्रबल माया के अधीन होकर भटक रहा हूँ। आपकी माया बड़ी प्रबल है। हे प्रभो! आपकी माया में फंसने के कारण ही अज्ञानतावश, मैं आपको न पहचान सका। यह चराचर जगत् आपकी प्रबल माया के बंधन में पड़कर नाना प्रकार की दुर्गति को प्राप्त हो रहा है। मैं तो, अत्यंत मन्दबुद्धि हूँ। मेरा जन्म भी तो, संयोगवश, वानर ही समाज में हुआ है। अतः मेरे द्वारा आप का परिचय पूछा जाना उचित ही था, किन्तु हे स्वामी! हे सर्वज्ञ! हे सर्वसमर्थ दीन बंधो! आप द्वारा मेरा परिचय पूछा जाना कहाँ तक संगत है? हे स्वामी! यदि यह कवित्वमय वचन सत्य है कि सेवक स्वामी के भरोसे, वैसे ही सुरक्षित रहता है, जैसे अबोध बालक माता की गोद में, तो फिर मेरी अवहेलना आप क्यों कर रहे हैं?" इतना कहते-कहते, हनुमानजी अपनी देह की सुधि-बुधि भूलकर, प्रेमाकुल हो पाहिमाम! पाहिमाम! कहते हुए, भगवान् श्रीराम के कमल चरणों में बेसुध लोट गये। उनकी वाणी अवरुद्ध हो

गयी। उनके हृदय कमल में प्रेमप्रवाह की उत्ताल तरंगे चलने लगीं। आनंदातिरेक में अचेत-से होने के कारण उनके छल-छद्म का अंत हुआ और अब हनुमानजी अपने निजी रुप-वानर शरीर में प्रकट हुए। यही तो स्वामी और सेवक के बीच की दीवार थी। वह छल-छद्म रुपी दीवार अब हट गयी। अब देर क्या थी? भगवान् श्रीराम ने बलपूर्वक अपनी आजानु बाहों में भरकर, उनके माथे को सूँघा और अपने-नयनों से धारा प्रवाह आँसू की वृष्टि कर हनुमानजी को नहलाकर शीतल कर दिये, और उनको सान्त्वना देते हुए दुन्दुभी के स्वर में बोले-

"वायुनंदन! वीर! हनूमति ! तुम अपने मन को छोटा न करो! मेरे प्रिय अनुज लक्ष्मण- सामने खड़े हैं। तुम मेरे सत्य वचनों को सुनो! प्रिय अनुज लक्ष्मण से भी तुम मुझे दूने प्रिय हो! लखन लाल का स्मरण होते ही, प्रेम में विभोर, हनुमानजी, लक्ष्मणजी की ओर मुड़े और कटे वृक्ष की तरह उनके चरणों पर लोट गये। लक्ष्मणजी बलपूर्वक अपनी भुजाओं में भरकर उन्हें हृदय से लगाकर, इतने सुखी हुए-मानो अपने छोटे भाई प्रिय शत्रुघ्नजी से मिल रहे हों। यह दो भक्तों का मिलन था। इस भेंट से दोनों परम संतुष्ट हुए, मानों दो शरीर में एक ही आत्मा हो। अब धैर्यपूर्वक, हनुमानजी ने अपने प्रेमाश्रुओं को पोंछकर, प्रसन्नमन से कहा, "प्रभु! ऋष्यमूक पर्वत पर वानरों के अधिपति-सूर्यपुत्र सुग्रीव विपन्नावस्था में निवास करते हैं। वे आपके सेवक हैं। विदेह राजनंदिनी, वैदेही के अन्वेषण में, वे सहायक होंगे। यदि आज्ञा हो तो, आपको उनसे मिला दूँ। भगवान् श्रीराम का संकेत पाकर- दोनों रघुवंशी बन्धुओं को पीठ पर बैठा कर एक ही छलांग में सुग्रीव के समीप पहुँचकर, एक दूसरे का परिचय कराया और अग्नि को साक्ष्य रुप में प्रज्ज्वलित कर श्रीराम-सुग्रीव एक दूसरे के अभिन्न मित्र बन गये।

वायुनंदन, हनुमानजी बल की अंतिम सीमा है। शोभा-सम्पन्न सुनहले सुमेरु के सदृश उनका विशाल शरीर है। दुष्ट रूपी वन को जलाने के लिए अग्निरूप तेज है। वानरों में सिंह और ज्ञानियों में अन्यतम तथा भगवद् भक्तों में प्रह्लादजी की तरह भक्त शिरोमणि हैं। जैसे विनिता नंदन गरुड़ के पंखों में चारों वेद निवास करते हैं, वैसे ही हनुमानजी के कंठ-प्रदेश में सभी वेद-वेदांग प्रतिष्ठित् हैं। फिर भी रूढ रुप से वानर तन में जन्म के कारण संयोगवश माया की अधीनता, उन्होंने स्वीकार की थी। विचारणीय बात है कि निर्गुण निराकार ब्रह्म तो निश्चय ही

मायापति या मायाधीश हैं- किन्तु वही ब्रह्म जब सगुण-साकार रूप में इस भूतल पर अवतरित होते है, तो माया की अधीनता को स्वीकार करते हैं- किन्तु तब भी उनका बल-विवेक और शौर्य अपरिमित रहता है। अतः हनुमानजी को भी माया की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी।

यहाँ हम देखते हैं कि भक्त और भगवान् दोनों आमने-सामने एक दूसरे से मिलने के लिए व्यग्र हैं, किन्तु हनुमानजी का छद्म ब्राह्मण रूप इस मिलन में दीवार बनकर खड़ा है। भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम क्षत्रिय रुप में हैं, और हनुमानजी का ब्राह्मण रुप कपट पूर्ण छल-छद्म है। फिर भी उस रुप में किया गया अभिवादन उन्हें स्वीकार नहीं था, क्योंकि वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं।

जब सुग्रीव की प्रेरणा से श्रीहनुमानजी प्रभु की परीक्षा लेने आये तो वहाँ पर भक्त और भगवान में कुछ विलक्षण रसमय वार्तालाप हुआ, कुछ उलाहने हुए तथा उलाहनों के पश्चात् श्रीहनुमानजी अपने उस विप्र रूप को छोड़कर अपने वास्तविक रूप में आ गये। इसके बाद के घटना क्रम की चर्चा इस ग्रन्थ में यत्र-तत्र की जा चुकी है। श्रीराम- हनुमानजी के इस मिलन के कौतुक को याद करते हुए, बाद में भगवान राम ने आनन्द के क्षणों में श्रीहनुमानजी से एक दिन विनोद करते हुए कहा कि- हनुमान! तुम ब्राह्मण बनकर तो आये पर नाटक कुछ अधूरा रहा। श्रीहनुमानजी ने कहा कि प्रभु ! मेरे नाटक में आपको क्या कमी लगी? क्योंकि नाटक में अगर आपको कमी लगेगी, तब तो फिर जीव का नाटक ही व्यर्थ है। प्रभु ने कहा कि जब तुम ब्राह्मण बनकर आये और मुझे प्रणाम किया तो क्या यह नाटक के अनुकूल था? ब्राह्मण कहीं क्षत्रिय को प्रणाम करता है? अच्छा बताओ यह तुम्हारे नाटक की कमी है कि नहीं? श्रीहनुमानजी ने कहा कि प्रभु! मुझे तो लगता है कि मेरा नाटक तो सही अर्थों में तभी चरितार्थ हुआ। क्योंकि जब मैंने आपको प्रणाम किया तो क्या क्षत्रिय समझकर किया था? प्रभु ! यह बताइये कि ब्राह्मण की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि 'ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः' जो ब्रह्म को जान ले वही ब्राह्मण है। श्रीहनुमानजी ने कहा-आगे महाराज! सच्चा ब्राह्मणत्व तो मुझमें तभी आया कि जब मैंने आपको पहचानकर पकड़ लिया। इसलिए मेरे नाटक की तो आपको सराहना करनी चाहिए कि जो ब्राह्मणत्व का अन्तरंग लक्षण था, वह मेरे जीवन में आ गया क्योंकि मैंने क्षत्रिय को नमन नहीं

किया अपितु मैंने साक्षात् ब्रह्म को नमन किया। प्रभु को स्वीकार करना पड़ा कि हनुमानजी का नाटक तो परिपूर्ण था लेकिन कठिनाई प्रभु के सामने ही थी।

जब तक श्रीहनुमानजी ब्राह्मण बने रहे तब तक प्रभु के मन में बड़ी समस्या रही। प्रभु सोचने लगे कि अब श्रीहनुमान से मैं कैसा व्यवहार करूँ। प्रभु अगर वर्ण-मर्यादा तथा नाटक की मर्यादा का पालन करें तो प्रभु क्षत्रिय वेष में हैं और उनको चाहिए कि श्रीहनुमानजी को प्रणाम करें और जब ब्राह्मण के रूप में श्रीहनुमानजी प्रभु को प्रणाम कर रहें हैं तो प्रभु के मन में यह चिन्ता हो गयी कि इन्हें प्रणाम करें या आशीर्वाद दें। क्योंकि प्रभु तो श्रीहनुमानजी से ही ब्राह्मण-ब्राह्मण कहकर बात कर रहे हैं। भगवान राम तो श्रीहनुमानजी से अपना परिचय देते हैं तो यही कहते हैं :-

इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही।।
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई।।

"ब्राह्मण देवता, मैंने तो अपना चरित्र गाकर सुना दिया, अब आप भी अपनी कथा सुना जाइये।" इसलिए प्रभु के सामने समस्या यह है कि अगर श्रीहनुमानजी को भक्त मानकर आशीर्वाद दें तो इससे वर्ण-मर्यादा जाती है, यदि वर्ण-मर्यादा को स्वीकार करते हैं तो भक्त और भगवान के बीच दूरी बनी रहती है।

श्रीहनुमानजी सोचते थे कि प्रभु मुझे उठाकर हृदय से लगा लेंगे, मेरे मस्तक पर हाथ रख देंगे, पर प्रभु ने श्रीहनुमानजी को न तो उठाया और न ही उनके मस्तक पर हाथ रखा, अतः श्रीहनुमानजी ने व्याकुल होकर प्रभु को उलाहना देते हुए कहा, "प्रभु, मुझसे आप जो व्यवहार कर रहे हैं, मुझे तो लग रहा है कि वह आपके उपयुक्त नहीं है, क्योंकि-

एकु मैं मन्द मोह बस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहिं बिसारेउ दीनबंधु भगवान।।
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा।।
ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई।।

"महाराज ! मैं आपको नहीं पहचान पाया, यह तो जीव का स्वभाव है, परन्तु आप पहचानने के बाद भी मुझे ब्राह्मण-ब्राह्मण कह कर पुकार रहे हैं। मुझसे दूरी का व्यवहार कर रहे हैं, क्या यह आपके लिए ठीक है। पर प्रभु फिर भी

हृदय से नहीं लगा रहे हैं।" अन्त में श्रीहनुमानजी सोचने लगे कि मैं तो प्रभु को उलाहना दे रहा था लेकिन लगता है कहीं मुझमें ही कोई कमी होगी तभी तो प्रभु ने हृदय से नहीं लगाया और तब उनका ध्यान अपने विरोधाभास की ओर चला गया तथा श्रीहनुमानजी समझ गये कि अरे अभी मैं ब्राह्मण ही बना हुआ हूँ इसलिए तुरत श्रीहनुमानजी एक अनोखा कार्य करते हैं। गोस्वामीजी ने कहा-

अस कहि करेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।।
तब रघुपति उठाइ उर लावा।

श्रीहनुमानजी जैसे ही ब्राह्मण का रूप छोड़कर वन्दर के रूप में हुए, भगवान ने कसकर उन्हें हृदय से लगा लिया। श्रीहनुमानजी ने हृदय में बड़ी धन्यता का अनुभव किया।

एक बार भगवान राम और श्रीहनुमानजी में बड़ा रसमय वार्तालाप यह हुआ कि इस प्रसंग में तो श्रीहनुमानजी बेचैन थे कि प्रभु हृदय से लगायें, परन्तु जब नहीं लगा रहे थे तो श्रीहनुमानजी ने उलाहना दिया। लेकिन जब लंका से श्रीसीताजी का सन्देश लेकर श्रीहनुमानजी लौटे और प्रभु लगे श्रीहनुमानजी की प्रशंसा करने, तो श्रीहनुमानजी भगवान राम के चरणों में गिर पड़े।

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमन्त।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि-त्राहि भगवन्त।।

जब श्रीहनुमानजी प्रभु के चरणों में गिर पड़े, तब प्रभु बार-बार श्रीहनुमानजी को उठाकर हृदय से लगाना चाहते हैं परन्तु श्रीहनुमानजी उठना ही नहीं चाहते-
बार-बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा।।

भगवान राम ने उन्हें याद दिलाया कि हनुमान वह दिन तुम भूल गये जब मैं हृदय से नहीं लगा रहा था तो तुम बेचैन थे और आज मैं तुम्हें हृदय से लगाना चाहता हूँ किन्तु तुम उठना ही नहीं चाहते। इतना बदलाव तुममें कैसे आ गया? श्रीहनुमानजी ने कहा "प्रभु! यह तो माँ की कृपा से बदलाव आ गया है। क्योंकि उस दिन मैं समझता था कि आप यदि मुझे हृदय से लगा लेंगे तो मैं धन्य हो जाऊँगा। मैं उस दिन आपको चाहता था तथा मुझे लगता था कि आप मुझे नहीं चाह रहे हैं। लेकिन जब मैं माँ के पास गया और माँ ने मुझे आर्शीर्वाद दिया कि 'करहु बहुत रघुनायक छोहू'- प्रभु तुमसे प्रेम करें। प्रभु! माँ ने मुझसे कह

दिया कि अब तुम्हें आवश्यकता नहीं है बल्कि आवश्यकता तो उन्हें है। अब तो वही तुम्हें हृदय से लगाने को बेचैन रहेंगे, तुम्हें हृदय से लगने की व्यग्रता की अपेक्षा नहीं। श्रीहनुमानजी ने कहा "प्रभु, माँ का आशीर्वाद तो प्रत्यक्ष दिखायी दे रहा है क्योंकि उस दिन आपने कितना विलम्ब लगाया था और आज आप में कितनी व्याग्रता है, मुझे हृदय से लगाने की। इसलिए माँ के आशीर्वाद का साक्षात् परिचय तो मुझे आज ही प्राप्त हुआ है।"

प्रथम मिलन में भगवान् श्रीराम ने जब श्रीहनुमानजी को हृदय से लगाया, तब भगवान राम की आँखों से आँसू गिरने लगे। क्योंकि इतनी देर तक श्रीहनुमानजी को उन्होंने हृदय से नहीं लगाया यह प्रभु के लिए बड़े कष्ट की बात थी। श्रीहनुमानजी जैसे भक्त को कितनी देर से चरणों में गिरा हुआ देखने के बाद भी हृदय से नहीं लगाया, ऐसी निष्ठुरता भला प्रभु के लिए कैसे सम्भव थी? अतः प्रभु ने अन्त में हनुमानजी से क्षमा माँगते हुए कहा, "हनुमान ! मेरे व्यवहार से तो तुम्हें यह लगा होगा कि मैं तुममें कोई कमी देख रहा हूँ, इसलिए मैंने तुम्हारे प्रति ऐसा कठोर व्यवहार किया, पर तुम मेरे व्यवहार से अपने मन में रंचमात्र भी कमी का अनुभव मत करना। क्योंकि जानते हो कि तुम मुझे लक्ष्मण से भी दूने प्रिय हो- सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तै मम प्रिय लछिमन ते दूना।।

परन्तु मुख्य प्रश्न यह है कि प्रभु का यह वाक्य क्या व्यवहार के अनुकूल है? क्या कोई भी चतुर, व्यवहार-कुशल व्यक्ति इस प्रकार का वाक्य कह सकता है, जैसा प्रभु ने कहा? आप अकेले में किसी की प्रशंसा करते हुए भले ही कह दें कि तुम उससे भी अच्छे हो। जब दो व्यक्ति आमने सामने खड़े हों तथा उन्हीं दो व्यक्तियों के सामने आप एक से कहें कि तुम इनसे दूने अच्छे हो तो शायद यह बड़ी अव्यावहारिक बात होगी। फिर प्रभु जैसे व्यवहारकुशल महापुरुष से जिनमें वचन- रक्षा की कुशलता है क्या कभी इस प्रकार की आशा की जा सकती है ! भगवान का वाक्य कितना भयावह हो सकता था, इसकी आप कल्पना कीजिये। इस वाक्य से दोनों के मन में बुरी प्रतिक्रिया हो सकती थी। श्रीहनुमान को यह अहंकार हो सकता था कि मैं तो लक्ष्मण से दूना श्रेष्ठ हूँ तथा लक्ष्मणजी के अन्तःकरण में श्रीहनुमानजी से ईर्ष्या उत्पन्न हो सकती थी। किन्तु ऐसा हुआ नहीं बल्कि श्रीहनुमानजी ने तो इसे दूने शब्द को दूसरे ही अर्थ में पकड़ लिया।

जब प्रभु ने कहा कि मैं तुम्हें लक्ष्मण से दूना चाहता हूँ तो श्रीहनुमानजी के होठों पर हँसी आ गयी और बोले प्रभु! ईश्वर को तो मैं सम ही सुनता था, परन्तु क्या वहाँ भी दूना-चौगुना होने लगा? ईश्वर का प्रेम दूना होने का अर्थ क्या हुआ? इस दृष्टि से अगर आप विचार करें तो आपको लगेगा कि गणित में तो दो का दूना चार होता है पर ईश्वर के प्रेम की विशेषता तो सर्वथा अनोखी है। क्योंकि संसार में तो व्यक्ति का प्रेम बँटा हुआ है। जब व्यक्ति किसी से प्रेम करता है तो निर्णय करता है कि हम किसको कितना प्यार दें। इस प्रकार वह प्रेम का बँटवारा करता है। संसार में न तो हम दूसरे को पूरा प्रेम दे सकते हैं और न ही दूसरा हमें पूरा प्रेम दे सकता है। इसलिए संसार में हमें प्रेम को चारों ओर खोजना पड़ता है। व्यक्ति को द्वार-द्वार इसलिए भटकना पड़ता है कि एक जगह पेट नहीं भरता। ईश्वर भी बँटवारा करके यदि थोड़ा-सा प्रेम हमें दे तो उसका परिणाम यह होगा कि व्यक्ति की भूख तो मिटेगी नहीं परन्तु ईश्वर के प्रेम की विशेषता यही है कि वह जिसे प्रेम देता है उसे पूरा ही देता है, अधूरा तो देता ही नहीं। इसलिए ईश्वर को पाने के बाद फिर किसी दूसरे की आवश्यकता नहीं रहती।

सकल गुण निधान श्री हनुमान- किसी ने गोस्वामीजी से पूछा कि महाराज श्रीहनुमानजी में कौन-कौन से गुण हैं जरा बता तो दीजिये और तब तुलसीदास ने सोचा कि गुणों को गिनाकर मैंने भूल कर दी क्योंकि इन गुणों को पढ़कर तो लोगों को लगेगा की शायद इतने ही गुण श्रीहुनमानजी में हैं। इसलिए तुरन्त एक शब्द कहकर उन्होंने पढ़ने वाले को सावधान कर दिया। वे कहते हैं कि मुझे कुछ गिनाना चाहिए इसलिए मैं यह गुण गिना रहा हूँ। पर वस्तुतः श्रीहनुमानजी तो सकलगुणनिधानम् हैं। बस कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, बल्कि जितने गुण हो सकते हैं वे सबके सब श्रीहनुमानजी में हैं। कह तुलसीदास बस जासु उर मारूत सुत मूरति बिकट। संताप पाप तेहि पुरुष पहिं सपनेहुं नहिं आवत निकट।। तो इसका अभिप्राय है कि श्रीहनुमानजी में ज्ञान है, वैराग्य है, भक्ति है, प्रेम है और उसके साथ-साथ श्रीहनुमानजी कर्मयोगी भी हैं। इसलिए चाहे जिस पर संकट पड़े श्रीहनुमानजी तुरन्त उसकी रक्षा करते हैं। जब साधनज्ञान पर संकट पड़ता है तो हनुमानजी वैराग्य के द्वारा उसकी रक्षा करते हैं। इसका अभिप्राय है कि व्यक्ति के जीवन में ज्ञान के साथ जब तक वैराग्य नहीं आयेगा तब तक

ज्ञान किसी काम का नहीं है। भौतिक दृष्टान्त के द्वारा इसे यों कह सकते हैं कि जैसे हम जानते तो सब कुछ हैं परन्तु वस्तुओं से हमारा राग है इसलिए जानने के बाद भी हम उन्हें छोड़ नहीं पाते तो जानने का कोई लाभ हमारे जीवन में नहीं दिखायी देता। वस्तुतः जानने का लाभ तो तब है जब हम वस्तु को छोड़ पायें। इसका तात्पर्य है कि जब ज्ञान के द्वारा व्यक्ति जाने और वैराग्य के द्वारा छोड़े तब कहीं जाकर व्यक्ति के जीवन में परिपूर्णता आती है। ठीक इसी प्रकार से सुग्रीव के जीवन में ज्ञान के साथ-साथ वैराग्य की जो कमी थी उसे श्रीहनुमानजी अपने कथा के माध्यम से समाप्त करके उन्हें भगवान से ऐसा मिलाते हैं कि अन्त में सुग्रीव भगवान राम के सहयोगी के रूप में लंका में युद्ध करते हुए दिखायी देते हैं तथा उनकी दुर्बलता दूर हो जाती है। इस प्रकार मानों श्रीहनुमानजी साधन-ज्ञान से सुग्रीव की रक्षा करते हैं।

माता सीता की खोज में

एक अवसर पर मेरे द्वारा श्रीदेवरहाहंस बाबा से जिज्ञासा किये जाने पर कि "बाबा सरकार । परमगुरुयोगिराज श्री देवरहाबाबा के द्वारा पंचभूत शरीर की जल समाधि के वाद आपकी क्या प्रतिक्रिया हुई?' तो बाबा ने सद्गुरु श्रीदेवरहाहंस बाबा ने मेरी इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए बताया कि वे जानते थे कि बाबा ज्ञानगंज में ;जहां कोई मनुष्य शरीरधारी नहीं जा सकताद्ध है तो मैं उनका दर्शन करने को हिमालय क्षेत्र में जा पहुंचा। मैं भूख-प्यास से व्याकुल था। तभी मैंने पाया कि मुझमें अद्भुत क्षमता आ गई है। मेरा एक पैर एक हिमाच्छादि पर्वत श्रंग पर पड़ रहा था तो दूसरा दूसरे पर्वत श्रंग पर। तभी भूख-प्यास से श्रुधित मुझको एक गुफा दिखाई दी और मैनें उसमें प्रवेश किया. ... ।" आगे की वार्ता न हो सकी- बात बीच में इस कारण से रुक गई कि कुछ दर्शनार्थी आ गये थे। इस सन्दर्भ में माता सीता की खोज कर, उन तक पहुंचने की, हनुमानजी की यात्रा की चर्चा करना समीचीन होगा।

सीताजी की खोज में चलते-चलते बन्दर मार्ग भूल गये- लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलइ न जल बन गहन भुलाने।।

अभिप्राय यह है कि जिस पथ पर से चलकर हम भगवान को पा सकें आज बन्दर उस मार्ग को भूल गये हैं। इसका तात्पर्य है कि सही साधना कौन सी है,

सही मार्ग कौन-सा होगा इसका निर्णय कर पाने में बन्दर असमर्थ हैं। इतना ही नहीं अपितु इसके साथ-साथ बन्दर प्यास के मारे मरे जा रहे है। उस संकट से उन्हें उबारने वाले कौन हैं? इसका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी ने लिखा है कि-

मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जल पाना।।

श्रीहनुमानजी ने अनुमान किया कि ये सारे बन्दर जंगल में भटकते हुए प्यास के मारे मर जायेंगे। इसलिए सबसे पहले इनकी प्यास मिटानी चाहिए। उसके पश्चात् फिर हम लोग सही मार्ग की खोज करेगें।

श्रीहनुमानजी ने बन्दरों से प्रस्ताव किया कि आइये-आइये हम लोग उस पर्वत के शिखर पर चलकर वहां जल की खोज करें। किन्तु एक तो थके हुए बन्दर ऊपर चढ़ने में भी अपने को समर्थ नहीं पा रहे हैं और साथ-ही-साथ बन्दरों के मन में यह भी भय है कि चढ़ने में तो बड़ा श्रम होगा और यदि किसी तरह से चढ़ भी गये और चढ़ने के बाद भी यदि जल नहीं मिला तब तो अनर्थ ही हो जायेगा। इसलिए बन्दरों की समर्थता को जानकर श्रीहनुमानजी स्वयं ही पर्वत पर चढ़ गये । ऊपर चढ़ जाने के पश्चात् श्रीहनुमानजी ने उस पर्वत में ऐसी गुफा देखी जिसमें जल के पक्षी भीतर जा रहे थे। तब श्रीहनुमानजी पर्वत के नीचे उतर आयेः 'गिरि ते उतर पवनसुत आवा'। श्रीहनुमान यदि चाहते तो पर्वत के ऊपर से ही बन्दरों को बुला सकते थे पर उन्होंने ऐसा नहीं किया अपितु नीचे उतर आये। श्री हनुमानजी का नीचे उतर आना इसी प्रकार का था। वे बन्दरों को नहीं बुलाते बल्कि स्वयं ही बन्दरों के बीच में आ गये और उनसे यह कहा कि आप लोग मेरे साथ चलिये। श्रीहनुमानजी के प्रोत्साहन से बन्दर ऊपर चले जाते हैं। यहां पर यह आप अवश्य स्मरण रखियेगा कि बन्दरों के सामने (साधनों के सामने) दो समस्याएं हैं। एक तो, वे मार्ग भूल गये, चलते-चलते थक गये तथा दूसरे, उन्हें प्यास लगने लगी। किन्तु पहले तो पर्वत पर चढ़ गये और फिर नीचे उतर आये। क्या आपने श्रीहनुमानजी के इस कार्य पर विचार किया है। समाज में दो तरह के महापुरुष होते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो यदि पर्वत के शिखर पर चढ़ जाते हैं तो फिर अपनी ऊँचाईयों से उतरने का नाम नहीं लेते हैं परन्तु महायोगी सिद्ध सन्त ऐसे होते हैं जो ऊपर उठ जाने के पश्चात भी लोक कल्याण के लिए लोगों को नीचे से ऊपर ले जाने लिए स्वयं भी नीचे उतर आते हैं।

श्रीहनुमानजी यह सम्बोधन *कि कलियुग मैं मैं सन्तों के स्वरूप में राम काज के लिये दूत रहूंगा, चिरंजीवी तथा नित्य जीवी श्रीहनुमानजी ने अपने वचनानुसार योगिराज श्रीदेवरहाबाबा तथा ब्रह्मवेत्ता श्रीदेवरहाहंस बाबा के स्वरूप में क्रमानुसार राम काज संभाल रखा है तथा इन योगिराज तथा महायोगी के स्वरूप में भक्तों को दर्शन देते हे।*

रामचरितमानस में जंगल की तुलना सन्देह से की गयी है: 'संसय बिपिन अनल सुरंजन'– इसका सीधा-सा अर्थ यह है कि साधन में अगर सन्देह उत्पन्न हो गया, साधन में अगर थकान आ गयी तो साधक आगे कैसे वढ़ेगा? अगर यह सन्देह हो जाये कि हमारा साधन ठीक है कि नहीं और सन्देह होने के बाद यदि थकान भी हो गयी तो स्वभावतः व्यक्ति आगे बढ़ना बन्द कर देता है। यही समस्या इन बन्दरों के सामने है। श्रीहनुमानजी तुरन्त बन्दरों को गुफा के पास ले जाकर कहते हैं कि मित्रों! यहां जल है। बन्दर जब देखते हैं तो थोड़े निराश होते हैं क्योंकि गुफा के वाहर जल का झरना नहीं था, हां! यदि झरना बाहर ही होता तो ये बन्दर प्रसन्न होते । इसका तात्पर्य है कि कभी तो जीवन में भगवान की कृपा जब प्रत्यक्ष होती है तब तो प्रत्येक व्यक्ति आनन्दित होता है पर कृपा जब गुफा के अंधेरे में छिपी रहे तो प्रत्येक व्यक्ति उसे देखने का साहस नहीं कर पाता है। इसलिए वर्णन आता है कि जब श्रीहनुमानजी ने बन्दरों से कहा कि मित्रों! इसमें जल अवश्य है तो बन्दर बोले– महाराज! जल दिखायी तो दे ही नहीं रहा है। श्रीहनुमान ने कहा कि जल न सही परन्तु जल के पक्षी तो दिखायी दे रहे हैं। अगर जल न होता तो ये जल के पक्षी भीतर कैसे जाते? किन्तु कुछ जो थोड़ा डरपोक स्वभाव के थे वे बोले पहले यह भी तो सोच लें कि हम जाने योग्य हैं अथवा नहीं? उनकी बात सुनकर श्रीहनुमानजी ने कहा कि प्रश्न करने से पहले आप इन विविध प्रकार के पक्षियों पर ध्यान दीजिये। उस गुफा में चकवे जा रहे थे, बगुले जा रहे थे और हंस जा रहे थे। इसका अर्थ हुआ कि संसार में जीव तो तीन ही प्रकार के होते हैं–

बिषई साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने।।

इसका तात्पर्य है कि यहां पर हंस और बगुले तथा चक्रवाक का भेद नहीं, भगवान की कृपा पाने का अधिकारी तो प्रत्येक व्यक्ति है चाहे वह चक्रवाक की

तरह साधक हो, चाहे बक की तरह विषयी हो और चाहे हंस के समान सिद्ध हो। इसलिए आपमें से कोई रुकिये नहीं अपितु सब भीतर चलिये । इस प्रकार श्रीहनुमानजी सारे बन्दरों को लेकर गुफा में प्रविष्ट हो गये किन्तु क्रम कुछ उलट गया। क्योंकि जब यात्रा का प्रारम्भ हुआ तो अंगद आगे-आगे थे और श्रीहनुमानजी पीछे। किन्तु जब श्रीहनुमानजी पीछे चले तो तुलसीदासजी ने अपनी साहित्यिक लेखनी का प्रयोग करते हुए उनका श्रीहनुमानजी नाम नहीं रखा अपितु उन्होंने कहा कि-'पाछे पवन तनय' पीछे-पीछे पवन के बेटे चल रहे थे। गोस्वामीजी से किसी ने पूछा कि अरे! श्रीहनुमानजी कैसे पिछड़ गये? उन्होंने कहा- भाई! ये तो पवन के बेटे हैं क्योंकि नियम तो यह है कि यात्रा में हवा अगर सामने से आये तो चलने वाले की गति रुकेगी और हवा यदि पीछे से बहे तो चलने वाला अधिक तेज गति से चलेगा। इसलिए ये तो पवनसुत हैं जो बन्दरों को पीछे से आगे ढकेल रहे हैं। सबके पीछे रहकर ये सबको उत्साहित करते चलते हैं कि आप लोग आगे बढ़िये। इसलिए ये सबसे पीछे हैं और आज जब गुफा में घुसने का अवसर आया तो अंगद ने कहा कि नहीं-नहीं मुझे तो गुफा से बड़ा डर लगता है, क्योंकि मेरे परिवार का तो गुफा के कारण ही सर्वनाश हो गया। अगर गुफा की समस्या न आयी होती तो मेरे पिता का वध न होता, इसलिए मैं तो आगे नहीं चलूंगा। तब बन्दरों ने किसको आगे किया? बोले- 'आगे कहं हनुमन्तहि लीन्हा' आगे श्रीहनुमानजी को किया। यहाँ पर तुलसीदासजी ने पवनसुत नहीं कहा अपितु यहां पर हनुमन्त शब्द का प्रयोग किया। 'हनु' संस्कृत में ठोड़ी को कहते हैं और इन्द्र ने जब श्रीहनुमानजी की ठोड़ी पर वज्र का प्रहार किया तो श्रीहनुमानजी की ठोड़ी तो केवल जरा-सी टेढ़ी हुई परन्तु इन्द्र का व्रज टुकड़े-टुकड़े हो गया। इसलिए इनका नाम तो हो गया हनुमान और बन्दरों ने जब श्रीहनुमानजी से आगे चलने के लिए कहा तो उनका अभिप्राय यह था कि महाराज! जब आप अपनी ठोड़ी पर इन्द्र का वज्र झेल सकते हैं तो आगे बढ़ने पर जो संकट आयेगा उसे भी झेल लीजियेगा और हम लोग पीछे बचे रहेंगे। संसार में भी कुछ लोग तो केवल नेता ही नेता बनते हैं जो पीछे नहीं चलना चाहते और कुछ लोग डर के मारे पीछे-ही-पीछे रहना चाहते हैं, वे आगे बढ़ना नहीं जानते। परन्तु श्रीहनुमानजी तो जब आवश्यकता हो तो सबसे पीछे चल लेते हैं और आवश्यकता पड़ने पर सबसे आगे चलने के लिए भी प्रस्तुत

रहते हैं। *वर्तमान में बाबा के स्वरूप में श्रीहनुमान जी इसी प्रकार हमारा कल्याण कर रहे हैं।*

चलते समय भी बन्दरों के मन में थोड़ी हिचकिचाहट भरी हुई थी। उन्होंने श्रीहनुमानजी से कहा कि महाराज! इस गुफा में पक्षी भीतर जाते हुए तो दिखायी दें रहे हैं पर निकलता हुआ तो कोई दिखायी ही नहीं दे रहा है। कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि हमलोग भीतर जायें और वहीं रह जायें? श्रीहनुमानजी ने कहा- मित्रों! इसका अभिप्राय है कि भीतर इतना जल और फल होगा कि उन्हें बाहर निकलने (भटकने) की आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि जब भगवान की कृपा का जल प्राप्त हो जाता है तो फिर बाहर निकलने की, भटकने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। इसलिए आप लोगों को और उत्साहपूर्वक चलना चाहिए। गुफा में ले जाकर श्रीहनुमानजी ने बन्दरों को जल पिलाया, फल खिलाये उसके पश्चात् उन्हें मार्ग का निर्देश देते हुए स्वयंप्रभा ने कहा दिया-

मुदह नयन बिबिर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू।।

आप लोगों ने आंख खोलकर तो बहुत ढूंढा , अब जरा आंख बन्द कीजिए और आपको सीताजी अवश्य मिलेंगी। इस प्रकार बन्दरों का संकट दूर करते हुए श्रीहनुमानजी उन बन्दरों को लेकर समुद्र के किनारे तक तो पहुंच गये लेकिन सामने विशाल समुद्र देहाभिमान है और इस देहाभिमान को पार करने में बड़े-से-बड़े साधक भी सफल नहीं हो पा रहे हैं। अंगद कहते हैं कि मैं जाने के लिए तो प्रस्तुत हूं पर लौट पाऊंगा कि नहीं, इसमें मुझे सन्देह है:

अंगद कहइ जाउं मैं पारा। जियं संसय कछु फिरती बारा।।

अंगद का तात्पर्य था कि इस समय केवल समुद्र को लांघने की कला ही नहीं दिखानी है बल्कि समुद्र को लांघने के बाद लंका में भी तो जाना है। अंगद का तात्पर्य था कि देहाभिमान को तो भले ही एक छलांग में लांघ भी जांऊ लेकिन लंका की प्रवृत्तियों में, लंका के सुनहले दुर्ग में मैं नहीं फसूंगा- इसका दावा मैं नहीं कर सकता और तब उस कार्य को सम्पन्न करने के लिए भी श्रीहनुमानजी ही प्रस्तुत होते हैं। जाम्बवानजी से वार्तालाप करने के पश्चात् श्रीहनुमानजी समुद्र पार करने जाते हैं। इसका अभिप्राय है कि वैराग्य के द्वारा ही देह के अभिमान को पार करना सम्भव है।

आगे चलकर श्रीहनुमानजी की बड़ी कठिन भूमिका आ गयी। इस समय उनकी भूमिका प्रबल वैराग्य की है। श्रीहनुमानजी के लिए तुलसीदासजी ने वैराग्य नहीं अपितु प्रबल वैराग्य शब्द लिखा। इसका अभिप्राय है कि कुछ लोगों को वैराग्य पक्का नहीं होता है। वस्तुओं से तो राग हटा लिया पर अधिक आकर्षण सामने आया तो उलझ गये। लंका में जाकर लौटना तो प्रबल वैराग्य का ही काम है- इसलिए परम योगी श्रीहनुमानजी प्रबल वैराग्य हैं।

राम काज के लिये श्रीहनुमानजी की यात्राएं-

श्रीहनुमानजी को सीता माता को खोजने और उन तक पहुँचने में श्रीहनुमानजी को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तथा वे विघ्नों को कैसे पार करते हैं, उसका थोड़ा-सा संकेत मैं आपके सामने करना चाहुंगा।

बन्दर गुफा के अन्दर गये तो, सबसे पहले इन बन्दरों को स्वयंप्रभा के द्वारा भगवान् की कृपा का संदेश मिला। स्वयंप्रभा ने इनसे कहा कि आप लोग जल पीजिये, फल खा लीजिये, तब मेरे पास आइये।

उसके पश्चात् जब सारे बन्दर जल पीकर तथा फल खाकर आये तो स्वयंप्रभा ने पूछ दिया कि आप लोगों के मन में अब भी पूरी प्रसन्नता नहीं दिखाई दे रही है। आपकी इस उदासी का कारण क्या है? तब बन्दरों ने कहा कि हम लोगों ने जनकनन्दिनी को खोजने की चेष्टा की, लेकिन एक माह व्यतीत हो जाने पर भी विदेहनन्दिनी का साक्षात्कार हमें नहीं हुआ। उस समय स्वयंप्रभा ने उलट कर बन्दरों से ही प्रश्न कर दिया कि श्रीसीता जी को आपने आँख मूँद करके खोजा कि आँख खोलकर? स्वयंप्रभा के इस वाक्य को सुनकर बन्दरों को ऐसा लगा कि शायद यह हमारे ऊपर आक्षेप कर रही हैं कि आपलोगों ने आँख खोलकर सावधानी से नहीं ढूँढ़ा। तो बन्दरों ने कहा कि देवि! एक महीने में एक क्षण के लिए भी हमने आँख नहीं मूँदी तथा चौबीसों घण्टे जागते हुए हमने श्रीसीताजी को खोजने की चेष्टा की। किन्तु फिर भी विदेहनन्दिनी नहीं मिलीं। तब स्वयंप्रभा ने कहा कि यदि जनकनन्दिनी को पाना चाहते हो, तो मेरी सलाह मानो और मुझे विश्वास है कि आप लोगों को सीताजी अवश्य प्राप्त होंगी। जब बन्दरों ने उपाय जानने की जिज्ञासा प्रकट की तो स्वयंप्रभा ने कहा कि 'मूँदहुं नयन' आप लोग जरा आँख मूँद करके तो खोजिये। उसका अभिप्राय था कि सीता

जी को केवल बाहर ही मत खोजते रहिये। उन्हें अपने अन्तःकरण में भी तो खोजने की चेष्टा कीजिये। भक्ति केवल बाहर ही नहीं मिलेगी, अपितु उसे पाने के लिए अन्तर्मुखता की आवश्यकता है।

नेत्र मूँदने का दूसरा तात्पर्य है कि जब पुरुषार्थ की पूर्णता हो जाये, तब ईश्वर पर विश्वास कीजिये। व्यवहार में भी यही देखा जाता है कि दिन भर कर्म करने के पश्चात् अगर रात्रि को भी व्यक्ति आशंकित रहे, कर्म का ही चिन्तन करता रहे, तो नींद नहीं आ पायेगी। क्योंकि व्यक्ति की निद्रा तभी आयेगी जब उसे निश्चिन्तता होगी, विश्वास होगा। स्वयंप्रभा का तात्पर्य था, कि आप लोग पुरुषार्थ करके तो थक चुके, परन्तु अब विश्वास का आश्रय लेकर श्रीसीताजी को अपने अन्तःकरण में खोजिये। पर बन्दर स्वयंप्रभा के वाक्य का ठीक-ठीक अर्थ नहीं ले पाये। बन्दरों ने इस वाक्य का मोटा-मोटा अर्थ ले लिया। स्वयंप्रभा ने कहा था कि आप लोग आँख मूँद लीजिये, गुफा को छोड़कर चले जाइये, आप लोग चिन्ता न करें, श्रीसीताजी अवश्य मिलेगी।

अन्य बन्दरों ने तो केवल इसका इतना ही अर्थ लिया कि 'नेत्र मूँद लेना चाहिए', किन्तु आँख बन्द करने का सही अर्थ तो केवल हनुमानजी ही जानते थे। बन्दरों ने नेत्र मूँदे तो कितनी देर के लिए?

एक क्षण के लिए नेत्र बन्द किये, और फिर आँख खोलकर देखने लगे कि वस्तुतः शान्ति अथवा भक्ति मिली कि नहीं? इसी प्रकार हम लोग भी पूजा करते समय नेत्र बन्द करके बैठ जाते हैं और सोचते हैं कि आंख बन्द करते ही हमें शान्ति अथवा भक्ति प्राप्त हो जायेगी, किन्तु ऐसा नहीं होता है। नेत्र मूँदने का अर्थ केवल आँख बन्द करना ही नहीं है। इसका तात्पर्य है- समस्त इन्द्रियों का निरोध करके पूरी तरह भगवान पर विश्वास कर लेना। भौतिक दृष्टान्त के रूप में इसे हम यों भी कह सकते हैं कि जब व्यक्ति चलते-चलते थक जाता है तो कह देता है कि अब हममें चलने की सामर्थ्य नहीं है और तब थककर बैठ जाता है तथा जीवन में विश्वास का आश्रय ग्रहण करता है। किन्तु बन्दरों में पूर्ण समर्पण की वृत्ति अभी तक नहीं आयी है। वे नेत्र खोलकर देखते हैं और तब उन्हें स्वयंप्रभा के उपदेश पर भी सन्देह होने लगा। वे सोचने लगे कि स्वयंप्रभा ने तो कहा था नेत्र बन्द करने को, पर नेत्र मूँदने के बाद भी सीताजी तो नहीं मिलीं,

अपितु सामने खारा समुद्र दिखाई पड़ रहा है। तब ये बन्दर निराश होकर सोचते हैं कि स्वयंप्रभा की बात सही नहीं है। इसका अभिप्राय है कि साधक को कभी-कभी संत की वाणी तथा कृपा की बात पर अविश्वास भी होने लगता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि यह बात सही नहीं है। जब स्वयंप्रभा के वाक्य पर सन्देह होने लगा, तब सारे बन्दर प्राण त्यागने के लिए बैठ गये। परन्तु अचानक इन लोगों को एक स्वर सुनाई पड़ा। यह स्वर एक गुफा में बैठे हुए सम्पाती का था। यह किष्किन्धाकाण्ड की चौथी गुफा है। सम्पाती ने गुफा में से ही कहा कि जब इतने बन्दर एक साथ प्राण दे रहे हैं तब तो मुझे बहुत दिनों के लिए भोजन मिल गया। मैं भी काफी लम्बे समय से भूखा था किन्तु आज बड़ा आनन्द आयेगा। सम्पाती का वाक्य सुनकर बन्दर बेचारे भय के मारे काँपने लगे। इसका अभिप्राय है कि आत्महत्या करने वाला भी चाहता है कि हम सुख से मरें। व्यक्ति इसके बारे में बड़ी चिन्ता करता है कि मृत्यु के बाद मेरे शव की क्या स्थिति होगी? बन्दरों ने जब यह विचार किया कि मरने के बाद भी यह गीध ही हम लोगों को खायेगा तब उन्हें बड़ी निराशा हुई। किन्तु निराशा के उन क्षणों में भी अंगद ने विवेक नहीं खोया। यहाँ पर एक बात मैं स्पष्ट कर दूँ कि इस प्रसंग में अंगद तो बोले परन्तु हनुमानजी नहीं। हनुमानजी के न बोलने का तात्पर्य है कि स्वयंप्रभा का उपदेश सुनकर हनुमानजी ने केवल आँखें ही बन्द नहीं कीं, अपितु उन्होंने तो आँख, कान, नाक आदि सभी इन्द्रियों को बन्द कर लिया था, वे पूरी तरह से भीतर चले गये, इसीलिए हनुमानजी ने सम्पाती का स्वर तो सुना ही नहीं और जब उन्होंने स्वर सुना ही नहीं तो बोलते कैसे? तब अंगदजी ने विचार का आश्रय लेकर मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा की तथा उन्होंने कहा कि सभी गीध जटायु की भांति धन्य नहीं हो सकते-धन्य जटायू सब कोउ नाहीं। जटायु का नाम सुनते ही सम्पाती ने बन्दरों से कहा कि आप लोग डरिये नहीं, जटायुजी तो मेरे भाई थे। मैं उनकी कथा सुनना चाहता हूँ। फिर सम्पाती तथा बन्दरों में परिचय होता है। उसके पश्चात् सम्पाती ने कहा कि आप लोग आँख बन्द करने से घबरा गये थे, किन्तु अब जरा मेरे कहने से नेत्र खोल लीजिये। आँख खोलना विवेक का परिचायक है तथा नेत्र बन्द करना विश्वास का। परन्तु प्रश्न यह है कि जीवन में विवेक चाहिए कि विश्वास। और इसका उत्तर है कि दोनों का

सन्तुलन होना आवश्यक है। इसलिए एक ओर स्वयंप्रभा तो कहती है कि नेत्र मूँदिये और दूसरी ओर सम्पाती का आदेश है कि आँख खोलिये। सम्पाती ने जब कहा कि वह देखो समुद्र के किनारे उस पार, अशोक वाटिका में अशोक वृक्ष के नीचे सीताजी बैठी हैं तब बन्दर बेचारे आँख फाड़-फाड़ कर देखने लगे, लेकिन उन्हें कुछ भी दिखायी नहीं दिया। तब वे सोचने लगे कि जब नेत्र मूँदे तब भी कुछ नहीं मिला और अब आँख खोलने पर भी कुछ नहीं मिल रहा है। लगता है यह सब केवल कहने की ही बातें हैं, इनमें सत्यता का नाम-मात्र भी नहीं है। परन्तु उनके इस मनोभाव को समझकर सम्पाती ने कहा कि सबकी आँखें एक बराबर नहीं होती हैं। आपलोगों की आँखों तथा मेरी आँखों में सबसे बड़ा अन्तर तो यही है कि:- मैं देखउँ तुम्ह नहीं गीधहि दृष्टि अपार। सम्पाती ने कहा कि 'मैं देख रहा हूँ' तो बन्दरों ने प्रार्थना की कि आप यदि देख रहे हैं, तो फिर आप ही कृपा करके चले जाइये। किन्तु सम्पाती ने असमर्थता प्रकट करते हुए कहा कि भाई! हम तो बूढ़े हो गये, यदि युवा होता तो आपकी सहायता अवश्य करता। किन्तु आप निराश मत होइये, आप लोगों में से ही कोई व्यक्ति इस कार्य को करेगा। बन्दरों ने जिज्ञासा प्रकट की कि कौन करेगा? तब सम्पाती ने उसकी कसौटी बताते हुए कहा कि जो व्यक्ति सौ योजन के इस समुद्र तो पार करेगा, वही प्रभु का कार्य करेगा। उसके पश्चात् प्रत्येक बन्दर अपने-अपने बल का वर्णन करता है।

समुद्रोल्लंघन प्रकरण में अंगद ने कहा- 'अंगद कहइ-जाउँ मैं पारा। जिस संसय कछु फिरती बारा।"....... युवराज वीरवर अंगद ने कहा मैं इधर से कूद कर छलांग लगाकर समुद्र पार जा सकता हूँ किन्तु उधर से समुद्रोल्लंघन कर पाने में संशय है। जब इधर से आठ सौ मील लम्बी कुदान छलांग लगाकर समुद्र पार हो सकते हैं तो उधर से समुद्रोल्लंघन में उन्होंने असमर्थता क्यों प्रगट की, वापसी में समुद्र कूद कर पार करने में उन्हें असमंजस क्यों? आगे सुन्दरकांड में कहा गया है कि हनुमान सुबेलं गिरि पर निर्भीक हो चढ़ गये जैसा कि कहा गया है-"सैल विसाल देखि एक आगे। तापर धाइ चढेउ भय-त्यागे"। इससे ध्वनित होता है पर्वत पर खतरा था, बाधाएँ थीं और भय त्याग कर निर्भीक हनुमानजी दौड़कर पर्वत पर चढ़ गये। कौनसा भय था, इसका रहस्य क्या है?

रामचरितमानस में कहा गया है कि जब सुग्रीव की वानरी-सेना समुद्र तट पर पहुँची तो सम्पाती से मिलन हुआ। सम्पाती ने कपि सैन्य से कहा-आपका कल्याण होगा। सीता का पता आप को लग जायेगा। समुद्र पार लंका में सीताजी हैं। यह सुन वानर योद्धाओं में उत्साह का आर्विर्भाव हुआ परन्तु समुद्रोल्लंघन करने की समस्या उनके सामने आई। वानर नायक समुद्र को पार कर वहाँ पहुचने के महत्वपूर्ण कार्य पर विचार करने लगे, परस्पर मंत्रणा करने लगे कि अपार जलराशि से उफनाते सागर की धारा पर कैसे छलांग लगाकर पार किया जाय? जाम्बवान ने सैनिकों-योद्धाओं की मनःस्थिति भांप ली और साथियों से बोले-यह पुरुषार्थ कौन कर सकता है? सब को धैर्य दिलाते बोले कि कौन वीर सौ योजन लम्बे अर्थात् आठ सौ मील लम्बे समुद्र के पार जा सकता है कौन यह कार्य करने में समर्थ है? वाल्मीकि रामायण में लिखा है-'को वीरों योजन शतं लंध्यते प्लवंगमः।'- इस पर सर्वप्रथम गज ने कहा-मैं दस योजन की छलाँग लगा सकता हूँ। तब गवाक्ष बोले-मैं बीस योजन अर्थात् १६० मील की छलाँग लगाकर कूद सकता हूँ। इस प्रकार अन्य वीरों ने दस-दस योजन बढ़ाकर कूदने की बात कही और अस्सी योजन छलांग करने के बाद सब चुप हो गए। कूदने-छलांग लगाने के क्रम में रुकावट आ गई। सैनिकों ने इससे आगे की छलांग लगाने में असमर्थता-प्रकट की तब जाम्बवानजी ने कहा-यदि मैं तरुण (जवान) होता तो इस समुद्र को कूद कर पार चला जाता किन्तु अब मैं वृद्ध हूँ, बुढ़ापे के कारण कुछ शिथिल हूँ किन्तु फिर भी मैं नब्बे योजन (सात सौ बीस मील) की छलांग लगा सकता हूँ। इसका तात्पर्य है कि समुद्र पार करने में उन्होंने भी असमर्थता प्रगट की। यूथपति जाम्बवान की बात सुनकर अंगद ने कहा- मैं इधर से तो समुद्र पार कर सकता हूँ किन्तु उधर से वापस होने में संदेह है अर्थात् लौटने में असमर्थता प्रकट की।

इससे ज्ञात हो रहा है कि अंगद इधर से कूद कर छलांग लगाकर सागर पार जा सकते हैं किन्तु थकान या अन्य कारण से उधर से वापस होने में उन्हें संदेह है। इस अवरोध के, इस समस्या के कारण क्या हो सकते हैं?

महषि दुर्वासा ने एक बार अंगद को श्राप दिया था कि तुम एक बार लाँघी वस्तु को दुबारा नहीं लाँघ पावोगे। इस शाप की स्मृति कर अंगद ने कहा- मैं

इधर से समुद्रोल्लंघन कर सकता हूँ किन्तु उधर से वापस होने में समुद्र लांघने में संशय है। दूसरा कारण यह है-अंगद ने सोचा कि मंदोदरी और तारा मेरी माता दोनों पंचकन्याओं में हैं। अतः दिव्य पंचकन्याओं की श्रेणी में होने से परस्पर बहिन होती हैं। अतः मेरी मौसी हुईं। 'मौसी' हमें लंका में रोक लेंगी तो उन्हें आग्रह प्रेमाग्रह के कारण उधर से वापस आने में उन्हें संशय हुआ।

अंगद को एक पुरानी बात और याद आ गई। जब वे और महारानी मंदोदरी के पुत्र अक्षय कुमार दोनों साथ-साथ गुरुकुल विद्यालय में पढ़ते थे तब छात्र जीवन में अंगदजी अक्षय की पिटाई किया करते थे। इससे इनके गुरु ने रुष्ट होकर एक दिन इन्हें श्राप दिया- अंगद सुनो अब भविष्य में यदि कभी तुम अक्षय की पिटाई करोगे तो अक्षय एक मुक्का भी यदि आप को मार देगा तो अक्षय के मुष्टि प्रहार से तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। अंगद ने सोचा मैं समुद्र पार लंका की सीमा में पहुंचा और कहीं अक्षय ने प्रतिशोध एवं बदले की भावना से हमें मुक्का मार दिया तो मैं वहीं ढेर हो जाऊँगा, मर जाऊँगा। अतः वापस होने में इस कारण उन्हें संदेह हुआ। जाम्बवान ने जब अंगद की भी असमर्थता-विवशता देखी तो उनकी दृष्टि हनुमानजी की ओर गई। पवनसुत अंजनीनन्दन कुछ ध्यान मुद्रा में बैठे दिखाई दिये। जाम्बवान ने सोचा-हनुमानजी महावीर अप्रतिम योद्धा हैं, राम कार्य के लिये रुद्रदेव ने हनुमदावतार धारण किया है। किन्तु एक बार इनका शौर्य चपलता देखकर भृगु-अंगिरा ऋषि कुलोत्पन्न ऋषि ने शूर वीर आंजनेय को श्राप दिया था कि तुम्हें अपने पराक्रम की सुधि नहीं रहेगी, शौर्य की विस्मृति रहेगी। आवेश में ऋषि ने कह तो यह दिया था परन्तु फिर ध्यान आया उन्होंने सोचा कि यह महान अवतारी महापुरुष राष्ट्रभक्त रामभक्त है तो यह जानकर शाप में संशोधन करते हुये बोले-पवनसुत तुम महान तो हो हीं और श्रीराम का काज तुम करोगे। अतः जब कोई तुम्हें तुम्हारी शक्ति पराक्रम की स्मृति करायेगा तो तुम्हें अपने बल की स्मृति हो जायेगी तब पराक्रम का संचार तुममें हो जायगा। इस घटना को याद कर श्रीजाम्बवान बोले-पवनसुत महावीर हनुमान आप सभी कार्य करने में समर्थ बलशाली हो आपके लिये कोई कार्य करना कठिन नहीं है। आप तो साक्षात् रुद्रावतारी महान हो-"कवन सो काज कठिन जग मांही। जो नहिं होहि तात तुम पांही।" हनुमानजी को उनकी शक्ति की याद दिलाई। महामुनि वेदव्यास

के शब्दों में अध्यात्म रामायण की भी सदुक्ति है- 'रामकार्यार्थमेवत्वं जनिता सि महात्मा।'' "बस यह सुनते ही उत्साह शौर्ययुक्त गर्जना करते हुए हनुमानजी बोले- मैं समुद्र कूद जाऊँगा और सीता का पता लगाकर सूचना आप सबको और श्रीरामजी को दूँगा। अब-'तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे' का रहस्य देखें। भगवान शंकर ने रामकथा सुनाते हुये भवानी शैलजा से कहा- श्रीराम भक्त हुनमान सीता के अन्वेषणार्थ लंका जाने हेतु निर्भीक हो, भय त्याग कर, साहस पूर्वक भयंकर सुवेल पर्वत पर चढ़ गये- सैल विसाल देखि एक आगे। तापर धाइ चढ़े भय त्यागे। 'भयत्यागे' से ध्वनित होता है कि पर्वत पर कई खतरे थे, कई भय थे। भवानी पार्वती ने कहा- भगवन् हनुमान को उस भयानक पर्वत पर चढ़ते कुछ भी डर नहीं लगा और वे जीवित वच गये। वहां लंकेश रावण के द्वारा काल का पहरा बैठा दिया गया था। वहां यदि कोई पहुंच जाय तो काल का ग्रास बन जायगा। हनुमानजी ने यह अद्भुत कार्य कर वहां पहुंच कर वहीं से लंका को देखा। उन्हें चिन्ता भय नहीं हुआ। शिवजी ने कहा- हनुमान के दुर्दमनीय बल को, तीव्रातितीव्र गमन के वेग को देखकर सुबेल पर्वत प्रकम्पित हो उठा, हिलने लगा और आकाशमण्डल से उच्च स्वर हुआ-काल, हनुमानजी आ रहे हैं या तो तुम उनके मार्ग से हट जाओ अन्यथा टूट जाओगे। हनुमान सीताजी की खोज में जा रहे हैं इनका मार्ग रोकने में कोई समर्थ नहीं है। यह ओजस्वी स्वर अम्बर से हुआ। वायुमण्डल में यह स्वर फैलते हुये विटपों को रुलाता गिरि को कँपाता हुआ ज्यों ही काल के कर्ण कुहरों से जा टकराया, काल भयभीत होकर मार्ग से भाग खड़ा हुआ। आँजनेय को देखते ही डर कर भागा। अरे हनुमान तो वह हैं जिन्होंने काल के अध्यक्ष सूर्य को ग्रास बना लिया, सूर्य को निगल लिया। देवताओं की विनती पर दिनकर को छोड़ा। यह तो परम प्रभु श्रीराम का प्रताप हनुमानजी के साथ है। वे काल को भी खा सकते हैं, नष्ट कर सकते हैं। यह तो राम की भक्ति की शक्ति के कारण हनुमानजी में पराक्रम है। हनुमानजी बाधाओं का निराकरण कर लंका में अशोकवाटिका पहुंच गये तथा काल उन पर प्रभाव न डाल सका-

"उमा न कछु कपि की अधिकाई। प्रभु प्रताप जेहि कालहि खाई।"

शैलनन्दिनी गौरी बोलीं-प्रभु! सुवेल पर अन्य भी भय थे। उनकी परवाह अंजनीननदन ने नहीं की। काल का पहरा रावण ने बैठाया वह तो निष्प्रभावी हो

ही गया। वह आंजनेय का कुछ बिगाड़ नहीं सकता था किन्तु ब्रह्माजी ने भी एक बार क्रोधित हो कहा था कि अब कभी कोई इस सुवेल पर्वत पर आ जायगा तो तुरन्त उसका मस्तक कट जायेगा। इस श्राप का भी प्रभाव मारुतनन्दन पर नहीं पड़ा। इसके अलावा सतीजी ने भी ने एक बार श्राप दिया था कि इस पर्वत पर जो भी आ जायेगा वह मस्तक रहित हो जायगा, उसके शिर के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। यह भी प्रभाव उन पर नहीं पड़ा और **'तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे।'** सुवेल पर हनुमानजी पहुंच गये- इस बात पर आश्चर्य है, शंका भी है और ब्रह्माजी और सतीजी के श्राप का प्रभाव कुछ नहीं पड़ा। उनका कथन निष्प्रभावी कैसे हो गया?

महेश्वर शंकरजी बोले-भवानी सुनो हनुमानजी मेरे स्वरूप हैं, वे साक्षात् रुद्र हैं। क्या हमारे पर भी उमा आप का श्राप चलेगा, पार्वती ने कहा-प्रभु रहस्य समझ गई। विश्राम सागर में भी लिखा है- **शिवा शाप युत शैल पर गयउ भयउ नहिं काल।** अतः कोई भी बाधा अवरोध हनुमानजी के मार्ग पर नहीं हुई और वे रामकार्य में सफल हुये। वे रुद्रावतार शिवावतार अनुपम योग्य राम भक्त हैं। वे श्रीराम के प्रताप से सब कुछ कर सकते हैं।

श्रीजाम्बवानजी के द्वारा चैतन्य किये जाने पर हनुमानजी महाराज ने जब यात्रा प्रारम्भ की तो उन्हें मार्ग में सर्वप्रथम मैनाक पर्वत मिल गया। उसने समुद्र से ऊपर आकर हनुमानजी से कहा कि आइये पहले आप विश्राम कर लीजिये, फिर आगे यात्रा कीजियेगा। इस मैनाक पर्वत में दो विशेषताएँ हैं। एक तो यह हनुमानजी के पिता का मित्र है तथा दूसरे यह पर्वत स्वर्ण का है। इसका अभिप्राय यह है कि देह का सम्बन्ध तथा प्रलोभन, यह दो वस्तुएँ हनुमानजी के सामने हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि जो साधक शान्ति-अथवा भक्ति की दिशा में बढ़ रहा है उसे देह के नाते को महत्त्व देना चाहिए कि उसका तिरस्कार कर देना चाहिए? वह प्रलोभनों को स्वीकार करे कि उनसे ऊपर उठने की चेष्टा करे? इन प्रश्नों का उत्तर श्रीहनुमानजी ने अपनी क्रिया के द्वारा दिया। उन्होंने सोने के पर्वत को ठुकरा कर अपने त्याग का प्रदर्शन नहीं किया और न ही उन्होंने यह कहा कि मैं पिता के नाते को कुछ नहीं मानता। अर्पितु हनुमानजी ने तुरन्त मैनाक पर्वत को प्रणाम किया और कहा कि पिताजी के मित्र होने के नाते आप प्रणाम

के योग्य हैं, लेकिन आप यह विचार कीजिये कि मैं एक लक्ष्य लेकर चला हूँ और जब तक वह लक्ष्य पूर्ण नहीं कर लेता तब तक मुझे विश्राम नहीं मिलेगा- राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ निश्राम।

इस प्रकार यहाँ पर श्रीहनुमानजी प्रलोभन से ऊपर उठकर आगे की ओर बढ़ गये। उसके पश्चात् उनके समक्ष सुरसा, सिंहिका तथा लंकिनी के रूप में तीन महाविघ्न आये। इन तीनों ने हनुमानजी को खाने की चेष्टा की। पर हनुमानजी ने तीनों से अलग-अलग प्रकार का व्यवहार किया। हनुमानजी सुरसा से हाथ जोड़कर आशीर्वाद माँगते हैं, सिंहिका का उन्होंने वध कर दिया तथा लंकिनी को वे अधमरा कर देते हैं। ये तीनो कौन हैं तथा इनका हमारे आपके जीवन से क्या सम्बन्ध है यह प्रश्न विचारणीय-है।

श्रीहनुमानजी के सामने सर्वप्रथम सुरसा आती है। सुरसा का अभिप्राय है, 'लोकैषणा'। इसका सीधा-सा तात्पर्य है कि समाज में हमें धन का त्याग कर देनेवाले तो अनेक व्यक्ति मिलेंगे, किन्तु धन के परित्याग के बाद भी जो सुरसा (लोकैषणा) का ग्रास न बने, ऐसा तो हनुमानजी की तरह कोई विरला ही व्यक्ति मिलेगा।

सुरसा वस्तुतः लोकैषणा अर्थात् कीर्ति की आकांक्षा है। यह सुरसा मैनाक पर्वत से आगे बढ़ने के तुरन्त बाद आयी। इसका अर्थ है कि जब कोई व्यक्ति त्याग करेगा तब उसके अन्तःकरण में तत्काल लोकैषणा आजायेगी। तथा वह व्यक्ति इस लोकैषणा के द्वारा खा लिया जायेगा। लेकिन श्रीहनुमानजी ने इस सुरसा का वध नहीं किया। इस कार्य के द्वारा श्रीहनुमानजी ने हम लोगों को यह बताया कि यश की आकांक्षा (लोकैषणा) से प्रेरित होकर ही तो व्यक्ति अच्छे कार्य करता है। जब व्यक्ति की कामना ही समाज से समाप्त हो जायेगी तब तो व्यक्ति में श्रेष्ठ कर्म करने की वृत्ति ही उत्पन्न नहीं होगी। इसीलिए श्रीहनुमानजी ने सुरसा को मारा नहीं। लेकिन वे हम लोगों को सावधान कर देते हैं कि यद्यपि सुरसा को मारना तो नहीं है, पर यह ध्यान हमें सर्वदा रखना है कि यह कीर्ति की कामना हमें कहीं अपना ग्रास न बना ले? हनुमानजी ने सुरसा से कहा कि श्रीराम का दर्शन तो मैं कर ही चुका हूँ। परन्तु श्रीसीताजी का दर्शन करना अभी शेष है। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि पहले मैं जनकनन्दिनी का दर्शन

करके उनका सन्देश प्रभु तक पहुँचा दूँ, उसके पश्चात् मैं स्वतः तुम्हारे मुँह में पैठ जाऊँगा। किन्तु हनुमानजी के वाक्य को सुन कर सुरसा सोचने लगी कि जब यह बन्दर ज्ञान और भक्ति दोनों में पूर्णता प्राप्त कर लेगा तब तो मैं इसे खा ही नहीं सकती। इसका अभिप्राय है कि जिसने अपने जीवन में ज्ञान तथा भक्ति का साक्षात्कार कर लिया, शान्ति को पा लिया, फिर वह तृष्णा का ग्रास कैसे बनेगा? इसलिए सुरसा ने कहा कि मैं तो तुम्हें अभी खाऊँगी। तो हनुमानजी ने कहा कि यदि अभी खाना चाहती हो तब तो मैं चुनौती देता हूँ कि अगर तुम में शक्ति हो तो मुझे खा लो। उसके पश्चात् हनुमानजी को खाने के लिए सुरसा अपना मुँह फैलाती जाती है तथा हनुमानजी उससे दूने होते जाते हैं। किन्तु अचानक सुरसा ने सौ योजन का मुँह फैलाया और इसके पीछे उसकी धारणा यही थी कि अब यह बन्दर दो सौ योजन का बनेगा। इस प्रसंग के पीछे गोस्वामीजी का तात्पर्य है कि लोकैषणा के साथ-साथ जब अभिमान भी सम्मिलित हो जाता है, तब तो होड़ लगी ही रहती है। तथा अन्त में व्यक्ति इस लोकैषणा का ग्रास बन ही जाता है। पर हनुमानजी की विशेषता यह है कि ज्यों ही सुरसा सौ योजन की बनी त्यों ही वे एक नया कार्य करते हैं। श्रीहनुमानजी अत्यन्त छोटे बनकर सुरसा के मुँह में प्रविष्ट हो गये। अब सुरसा चारों ओर आश्चर्यभरी दृष्टि से ढूँढ़ रही है कि यह बन्दर चला कहाँ गया? किन्तु जब उन्होंने सुरसा को व्याकुल देखा तो वे बाहर निकल आये तथा सुरसा से आशीर्वाद माँगा। तब सुरसा ने प्रसन्न होकर कहा कि राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान। तुम अवश्य ही राम कार्य करोगे, क्योंकि इतनी अधिक सामर्थ्य होते हुए भी तुम्हें छोटा बनने की कला का ज्ञान है, इसलिए तुम्हें लोकैषणा नहीं खा सकती। इसका अभिप्राय है कि लोकैषणा के सामने जो केवल बड़ा बनना जाने, किन्तु छोटा न बनना जाने, वह-तो सुरसा के द्वारा अवश्य ही खा लिया जायेगा। लेकिन हनुमानजी तो दोनों कलाओं में निष्णान्त हैं। उनमें यदि एक ओर ज्ञान का बड़प्पन है, तो दूसरी ओर भक्त की विनम्रता भी है। इस प्रकार लोकैषणा को सन्तुष्ट करके हनुमानजी उसका आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

आगे चलकर हनुमानजी को सिंहिका मिल गयी। यह सिंहिका ईर्ष्या की वृत्ति थी। इसका नियम था कि जिसको यह आकाश में उड़ते हुए देखती थी, उसकी

छाया को पकड़ कर तत्काल नीचे गिरा देती थी। इस प्रकार यह आकाश में उड़ने वालों को ही खाती थी। वही व्यवहार सिंहिका ने हनुमानजी के साथ भी किया।

प्रश्न उठता है कि यह सिंहिका जलचरों को क्यों नहीं खाती? केवल आकाश में उड़ने वालों को ही क्यों गिराती थी? ईर्ष्या का स्वभाव यही है कि उसे जो ऊँचा उठता हुआ दिखाई देता है, उसी को गिराने में वह आनन्द का अनुभव करती है। बराबरी वाले को खाकर वह सन्तुष्ट नहीं होती। यही स्वभाव सिंहिका का है। इसे दृष्टान्त के रूप में हम यों कह सकते हैं कि एक व्यक्ति को दौड़ते हुए देखकर दूसरे व्यक्ति के अन्तःकरण में यदि यह प्रेरणा प्राप्त हो कि हम भी दौड़कर उसकी बराबरी कर लें तब तक तो कोई बात नहीं, पर दूसरा व्यक्ति यदि यह सोचे कि इसके समान हम दौड़ तो पायेंगे नहीं, इसलिए इसकी टाँग पकड़ कर खींच लें जिससे कि इसकी भी गति अवरुद्ध हो जाये तो यह अवश्य चिन्ता का विषय है। यही ईर्ष्या की वृत्ति है। इस सिंहिका को देखकर हनुमानजी ने विचार किया कि समाज में लौकेषणा तो रहनी चाहिए, परन्तु ईर्ष्या नहीं। इसलिए इस सिंहिका (ईर्ष्या) को हनुमानजी ने मार डाला।

सिंहिका को मृत्यु का ग्रास बनाने के पश्चात् जब श्रीहनुमानजी आगे बढ़े तो उन्हें लंकिनी मिल गयी। लंकिनी प्रवृत्ति का रूप है। लेकिन इस 'प्रवृत्तिरूपा लंकिनी' का उन्होंने वध तो नहीं किया, परन्तु उसे एक ऐसा मुक्का मारा कि जिससे उसके मुँह से काफी रक्त बह गया। हनुमानजी का अभिप्राय है कि यह प्रवृत्ति जीवित तो रहे लेकिन इसका रक्त अवश्य कुछ कम हो जाये। इसीलिए जब हमलोग किसी महात्मा की प्रशंसा करते हैं तो यही शब्द कहते हैं कि ये तो बड़े 'विरक्त' हैं तथा विरक्त का अर्थ है जिसमें रक्त न हो। तब प्रश्न यह उठता है कि क्या विरक्त महात्मा के शरीर में रक्त नहीं होता है? मन का राग ही रक्त है। जिसके मन में राग कम है वही विरक्त है। इसका सरल-सा तात्पर्य है कि प्रवृत्ति में रहते हुए भी हमारे अन्तकरण में उसके प्रति राग न हो। इसीलिए हनुमानजी ने मुक्के के प्रहार से उसका राग-रूपी रक्त कम कर दिया। थोड़ा-सा रक्त निकलते ही लंकिनी को नये सत्य का साक्षात्कार हुआ कि रावण को राजा मानना तो मेरा भ्रम था। हनुमानजी प्रश्न करते हैं कि अब तुम किसको राजा स्वीकार कर रही हो? तो उसने उत्तर दिया कि प्रबिसि नगर कीजै सब काजा।

हृदयँ राखि कोशलपुर राजा।।

उसंने कहा कि मैं अब समझ गयी कि वास्तविक राजा तो श्रीराम ही हैं, और वे आपके हृदय में विराजमान हैं, इसलिए आप निश्चिन्त होकर लंका में प्रविष्ट हो जाइये। इस प्रकार श्रीहनुमानजी इन समस्त विघ्नों को पार करके उस संशय की वाटिका में पहुँच गये जहाँ पर श्रीकिशोरीजी राक्षसियों से घिरी हुई बैठी हैं। अब उनके समक्ष सबसे कठिन कार्य है कि श्रीसीताजी के अन्तःकरण का संशय कैसे दूर किया जाये। संशय को विनष्ट करने के लिए हनुमानजी ने भगवत्कथा का आश्रय लिया।

वे माँ को ऐसी कथा सुनाते है कि जिसे सुनकर उनका दुःख भाग गया- सुनतहिं सीता कर दुख भागा।। जब कथा सुनी तो जगज्जननी को इतना आनन्द आया कि अब उनके हृदय में कथावाचक को देखने की इच्छा हुई। तब श्रीकिशोरीजी ने कहा कि कथा तो बढ़िया थी, लेकिन कथावाचक भी तो जरा सामने आये- श्रवनामृत जेहिं कथा सुनाई। कही सो प्रगट होति किन भाई।। परन्तु जब हनुमानजी सामने आगये तब माँ ने सबसे अनोखा कार्य यह किया कि वे उनकी ओर पीठ करके बैठ गयीं- फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ।।

इसका तात्पर्य है कि जब कथा पर विश्वास हुआ तो कथावाचक पर संदेह हो गया। उन्होंने संदेह के कारण कहा 'माँ'! सबसे बड़ी समस्या यही है कि आपको तो प्रभु के बाण की महिमा याद है, परन्तु मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि आपकी स्मृति में भगवान् श्रीराघवेन्द्र अपने बाण की महिमा ही भूल गये हैं- तव वियोग सम्भव दारुण दुःख बिसरि गई महिमा स्वबान की। वे कहते हैं कि यदि भगवान् श्रीराघवेन्द्र को अपने बाण की महिमा का भान होता तब तो आपको छुड़ाने में कोई विलम्ब था ही नहीं। श्रीसीता तो इस उत्तर को सुनकर आश्चर्यचकित हो गयीं और उन्होंने यही कहा कि हनुमान! पहले तो मैं तुमसे यही कहना चाहती थी कि तुम प्रभु को मेरी याद दिलाना, पर अब तो मुझे यही कहना पड़ेगा कि- तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु।। अब तो तुम उसको बाण का ही प्रताप समझाना, मेरी स्मृति बिल्कुल न दिलाना। इस प्रकार उन्होंने इस संशय को भी दूर कर दिया। किन्तु सन्देह दूर करते-करते अचानक हनुमानजी ने कहा- माँ! घबराइये मत, आप कुछ दिन धैर्य धारण

कीजिये, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हम बन्दरों के साथ भगवान् श्रीराघवेन्द्र आवेंगे और वे राक्षसों का वध करने के पश्चात् आपको छुड़ा कर ले जायेंगे। किन्तु अभी तक सन्देह ने श्रीसीताजी का साथ छोड़ा नहीं। वे मन ही मन सोचने लगीं और हनुमानजी से ही पूछ दिया कि :- "नर बानरहि संग कहु कैसे। " हनुमान जरा यह तो बताओ कि बन्दर और मनुष्य में मित्रता कैसे सम्भव हुई? तब हनुमानजी ने विचार किया कि इनके अन्तःकरण में मेरे प्रति भी तो विश्वास होना चाहिए। क्योंकि वक्ता पर ही यदि व्यक्ति को अविश्वास होगा तब तो वह कथा के द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर ही नहीं सकता है। तब उन्होंने समस्त कथा विदेहनन्दिनी को सुनाई। कथा का लाभ भी प्रत्यक्ष दिखाई दिया। माँ के मन में हनुमानजी के प्रति पूरी तरह विश्वास उत्पन्न हो गया-

"कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास।। "

किन्तु अभी भी संशय का अन्त नहीं हुआ, अपितु इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया। क्योंकि अभी तक तो उन्हें हनुमानजी के ऊपर ही सन्देह था, परन्तु अव तो श्रीसीताजी को भगवान् श्रीराम के स्वभाव पर ही सन्देह हो गया। उन्होंने कहा कि हनुमान! यह बताओ कि "कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई।। " श्रीकिशोरीजी ने कहा कि हमारे प्रभु तो बड़े कोमल स्वभाव के थे, पर लगता है, अब वे कठोर हो गये। उन्होंने मुझे भुला दिया है। श्रीसीताजी का अभिप्राय था कि यदि सचमुच उन्हें मेरा स्मरण होता तो क्या वे मुझे छुड़ा कर नहीं ले जाते? मुझे छुड़ाने में प्रभु के सामने कोई समस्या भी नहीं थी क्योंकि उनका बाण तो अमोघ है। किन्तु जनकनन्दिनी के इस उलाहना भरे प्रश्न का श्रीहनुमानजी ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया। बन्दर है तो अत्यन्त छोटा, लेकिन दावा यह कर रहा है कि हम लोग आकर आपको छुड़ाकर ले चलेगे। तब जगज्जननी ने कहा कि "हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना।। " "पुत्र! क्या सब बन्दर तुम्हारी तरह ही हैं? उनका तात्पर्य था कि अगर सब बन्दर इतने छोटे ही हैं तब फिर तुम लोग इतने विशालकाय राक्षसों पर कैसे विजय प्राप्त करोगे? मेरे मन में तो बड़ा सन्देह है।"

हनुमानजी समझ गये, सचमुच माँ का संशय इतना विचित्र है कि यह एक

स्थान से हटता है तो दूसरी जगह अटक जाता है। तब हनुमानजी ने माँ के हृदय का सन्देह दूर करने के लिए अपना विशाल रूप प्रकट किया- "सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा। कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा।। "

उस रूप को देखकर श्रीसीताजी के मन में विश्वास हो गया। 'सीता मन भरोस तब भयऊ' और तब प्रसन्न होकर श्रीसीताजी ने आशीर्वाद दे दिया- "अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।। "

किन्तु हनुमानजी ने सोचा कि माँ के हृदय में सन्देह कहीं छिपा हुआ तो नहीं रह गया है। इसलिए परीक्षा लेने के उद्देश्य से उन्होंने कहा कि माँ! देखिये वृक्षों पर कितने सुन्दर फल लगे हुए हैं, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इन्हें खा लूँ। किन्तु श्रीसीताजी कहने लगीं कि मुझे तो डर लग रहा है, क्योंकि यहाँ पर तो राक्षस पहरा दे रहे हैं। तब वे सोचने लगे कि इतना आशीर्वाद देने के बाद भी जगज्जननी के मन में डर बना हुआ है। इसका तात्पर्य यह है कि सन्देह अभी नष्ट नहीं हुआ है। तब हनुमानजी ने विचार किया कि जबतक इस संशय के बाग (अशोक वाटिका) को मैं उजाड़ नहीं डालूंगा तब तक इनके अन्तःकरण का संशय पूरी तरह मिटेगा नहीं। यही विचार कर हनुमानजी ने इस संशय के बाग को उखाड़ दिया, दुर्गुण-दुर्विचारों पर प्रहार करके उन्हें विनष्ट कर दिया तथा माँ का वात्सल्य प्राप्त करे हनुमानजी स्वयं तो कृतकृत्यता का अनुभव करते ही हैं, किन्तु जो पात्र श्रीसीताजी तक स्वयं नहीं पहुँच पाते, उन्हें भी कथा सुनाकर वे उनके जीवन में धन्यता का संचार करते हैं।

आपको स्मरण दिला दूँ कि श्रीसीताजी का अन्वेषण केवल त्रेतायुग का ही सत्य नहीं है, अपितु इस युग का भी सत्य है। हम और आप उन्हीं की खोज में तो लगे हुए हैं। कथा के माध्यम से भी उन्हीं की खोज की जा रही है और मुझे विश्वास है कि भगवान् श्रीराघवेन्द्र अपनी कृपा के द्वारा हमें जगज्जननी श्रीसीता के स्वरूप का साक्षात्कार अवश्य करायेंगे।

गोस्वामीजी से किसी ने पूछ दिया कि पहली बार तो इनमें से प्रत्येक बन्दर कह रहा था कि मैं नहीं जा सकता, मैं नहीं जा सकता लेकिन इस समय भगवान राम के साथ ये समुद्र को पार कर रहे हैं। तुलसीदासजी ने कहा- भाई! जब तक प्रवृत्ति की लंका बनी हुई थी तब तक तो केवल वैराग्य ही जा सकता था,

दूसरा जाने में समर्थ नहीं था, परन्तु एक बार जब वैराग्य ने प्रवृत्ति की लंका को फूंक दिया तब चाहे जो चला जाये। श्रीहनुमानजी बन्दरों को आश्वस्त करते हैं कि आप लोग नहीं जा सकते तो कोई बात नहीं। हां, आप लोग प्रतीक्षा कीजिये और मैं विश्वास दिलाता हूं कि मैं अवश्य ही कार्य करके लौटूंगा: **'होइहि काजु मोहि हरषविसेषी।'**

आगे चलकर हनुमानजी के लंका से वापिस आने पर बन्दरों के लौटने के पश्चात जिस समय भगवान राम प्रत्येक बन्दर को हृदय से लगाकर कहने लगे कि आप लोगों को धन्यवाद, आपलोगों ने मेरा बड़ा कार्य किया तो जाम्बवानजी ने भगवान राम से कह दिया कि महाराज! हमलोगों में से कोई धन्यवाद का पात्र नहीं है। यह धन्यवाद तो श्रीहनुमानजी को है, क्योंकि सारा कार्य तो श्रीहनुमान ने किया और महाराज! केवल आपका ही काम नहीं बल्कि हमारा भी काम किया है:

नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना।।

उन्होंने तो हमलोगों के प्राण भी बचा लिये। इसका अभिप्राय है कि अगर विश्वास नहीं होगा तो साधन मर जायेंगे। अगर भगवान की कृपा की अनुभूति नहीं होगी तो साधन नष्ट हो जायेंगे। किन्तु श्रीहनुमानजी मार्ग दिखाकर, अनुभूति कराकर उन्हें भी बचा लेते हैं।

आगे चलकर श्रीहनुमानजी की जो महानतम भूमिका है, वह यह है कि श्रीहनुमानजी ने पूछा- प्रभु! मुझे क्या आदेश है! तो भगवान राम ने कहा- हनुमान ! आज तुम्हें एक बड़ा कठिन कार्य मैं दे रहा हूं। रामचरितमानस में लिखा है कि अगर कोई व्यक्ति अपनी बुद्धि को सुन्दर बनाना चाहे तो वह भगवान शंकर का आश्रय ले- क्योंकि शंकर की कृपा से बुद्धि सुन्दर हो जाती हैं: **'सम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी'**, यदि कोई बुद्धि को निर्मल बनाना चाहे तो वह श्रीसीताजी का आश्रय ले क्योंकि जब सीताजी कृपा करती हैं तो व्यक्ति की बुद्धि निर्मल हो जाती है। इस तरह यह बुद्धि के स्तर हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि जब श्रीसीताजी प्रसन्न होती हैं तो बुद्धि परम शुद्ध (निर्मल) हो जाती है-

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुणानिधान की।।
ताके जुग पद कमल मनावउं। जासु कृपा निरमल मति पावउं।।

लेकिन आज श्रीहनुमानजी को बड़ा अनोखा काम सौंपा गया? आज

श्रीहनुमानजी को यह काम नहीं सौपा गया कि सीताजी के पास जाकर निर्मल बुद्धि लेकर लौटो, अपितु उन्हें तो अटपटा-सा काम सौंपा गया कि जो सीता जी निर्मल बुद्धि देने वाली हैं वे आज संकट में पड़ गयीं हैं और तुम्हें तो सीताजी को समझाना है- 'बहुप्रकार सीतहिं समुझाएहु'- तुलसीदासजी का अभिप्राय है कि अन्य लोग जिन श्री सीताजी की कृपा से निर्मल बुद्धि प्राप्त करके अपने संकट का निवारण करते हैं वे सीताजी जब स्वयं संकटग्रस्त हो गयीं तब उनके संकट का निवारण श्रीहनुमानजी ही कर सकते हैं और सचमुच श्रीहनुमानजी श्रीसीताजी को समझाते हैं परन्तु श्रीसीताजी ने तो श्रीहनुमानजी को और भी कठिन कार्य सौंप दिया।

जब श्रीहनुमानजी सीताजी के पास से लौटने लगे तो श्रीसीताजी ने पूछा कि प्रभु ने तुम्हें यहाँ क्यों भेजा था? तो श्रीहनुमानजी ने बड़े संकोच से प्रभु के शब्दों को दोहराते हुए कहा, मां! प्रभुने तो आपको समझाने के लिए भेजा है 'बहुप्रकार सीतहिं समुझाएहु'- किन्तु यह वाक्य सुनकर श्री सीताजी ने कहा- हनुमान मैं भी तुम्हें एक काम सौंप रही हूं और तब सीताजी ने कहा कि क्या तुम समझते हो कि समझाने की आवश्यकता केवल मुझे ही है? नहीं-नहीं बल्कि उन्हें भी समझाना।

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु।।

और अन्त में वे भगवान राम को भी समझाते हैं। इसका अभिप्राय है कि श्रीसीताजी भक्ति हैं और रामायण में लिखा हुआ है- 'बिनु बिस्वास भगति नहीं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु'- बिना विश्वास के भक्ति नहीं रहती। परन्तु जब श्रीसीताजी के हृदय में भी संशय आ गया तो बड़ी कठिनाईयाँ उत्पन्न हो गयीं और तब भगवान राम ने कहा- हनुमान! आज भक्ति देवी संकट में है और तुम साक्षात् शंकर (विश्वास) के अवतार हो, इसलिए सीताजी के खोये हुए विश्वास को फिर से लौटाने की सामर्थ्य तो तुम्हीं में है और तुम्हीं जाकर उसका विश्वास लौटाओ तथा उनके अन्तःकरण में जो दुःख है उसे मिटाओ। आगे चलकर जब श्रीसीताजी ने श्रीहनुमानजी से उलाहना देते हुए यह पूछा कि ठीक है, मैं तो संशय में पड़ गयी थी, प्रभु से दूर हो गयी लेकिन प्रभु तो मुझे छुड़ाकर ले जा सकते थे परन्तु प्रभु को क्या हो गया? हनुमान! जब तुम यह कहते हो कि:- जानि जननी

मानहु जियं ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम के दूना।। मेरी अपेक्षा भी प्रभु का दूना प्रेम है तो फिर वे मुझे छुड़ाकर क्यों नहीं ले जाते? क्या उनमें मुझे छुड़ाने की सामर्थ्य नहीं है? क्या मैं उनके धनुष और बाण की महिमा नहीं जानती? क्या तुम उनके धनुष बाण की महिमा नहीं जानते? श्रीहनुमानजी ने कहा- मां! समस्या तो यही है कि उनके वाण की महिमा हम और आप तो जानते हैं परन्तु स्वयं प्रभु नहीं जानते। प्रभु अपने बाण की महिमा क्यों नहीं जानते ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए श्रीहनुमानजी ने कहा, माँ- "तव वियोग संभव दारुण दुःख बिसरि गयी महिमा स्वबान की- माँ अब तो वे केवल आपकी ही याद करते हैं, अपने बाण की महिमा ही भूल गये हैं- इतना सुनते ही श्रीसीताजी ने कहा कि पहले मैं तुमसे यही कहने वाली थी कि तुम प्रभु को मेरी याद दिलाना लेकिन अब मैं यह नहीं कहूंगी कि मेरी याद दिलाना, अपितु अब तो मैं तुमसे यही कहूंगी कि:- तात सक्रसुतकथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु।।

इस प्रकार श्रीहनुमानजी भक्ति देवी के अन्तःकरण में प्रभु के स्वभाव के प्रति विश्वास पैदा करते हैं और ईश्वर को उसके पराक्रम की याद दिलाते हैं। श्रीहनुमानजी पग-पग पर सबकी रक्षा करते हुए चलते हैं।

भगवती माता सीताजी की खोज में श्रीहनुमानजी की महान यात्रा अद्भुत और अलौकिक गाथाओं से भरी पड़ी है। इस यात्रा में श्रीहनुमानजी ने जो लीला-कृत्य किये उनमें सेवाभाव की पूर्णता दिखती है और इस यात्रा के क्रम में जब माता सीता का साक्षात्कार हो जाने पर खोज पूरी होती है, तो सेवा से प्राप्त फल की पूर्णता का भी परिचय मिलता है। इस यात्रा की समग्रता भक्ति में है। मानस-सर के प्रारम्भ में भक्तिसाधन पद्धति के क्रम का संकेत देते हुए बताया गया है-

सन्त सभा चहुं दिसि अंबराई। श्रद्धा ऋतु बसन्त सम गाई।।
समजम नियम फूल फल ग्याना। हरिपद रति रस वेद बखाना।।

श्रीहनुमानजी का सारा चरित जिस साधना से भरापूरा है उसका आधार भक्ति ही है। उन्होंने सूर्य को गुरु रूप में वरण करने के उपरान्त जिस साधना पद्धति को अपनाया- उसका पहला परिणाम यह हुआ कि उन्हें भगवान का साक्षात्कार हुआ। भगवान श्रीराम अखण्ड ज्ञान के सागर हैं। श्रीहनुमानजी को भगवान श्रीराम द्वारा माता सीताजी के पास भेजा जाना- यह बताता है कि फल को और पकने दो। भक्ति

तथा ज्ञान को और दृढ़ होने दो। श्रीहनुमानजी माता सीताजी के पास पहुँच जाते हैं तो मानो फल पक चुका है। जब श्रीहनुमानजी फल खाने के लिये मात सीता से प्रार्थना करते हैं तो उसका अभिप्राय यह है कि अब पका हुआ फल तृप्ति प्रदान करेगा और तब माता सीताजी अनुमति देती हैं-

देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकी जाहुं
रघुपति चरन हृदय धरि तात मधुर फल खाहु।।

इस तरह भक्तिस्वरूपा माता भगवती श्रीसीताजी ने भक्त श्रीहनुमानजी को कृतार्थ कर दिया- "अब कृत-कृत्य भयउँ मैं माता।"

श्रीहनुमानजी द्वारा माता सीता को खोज निकालने की यात्रा के प्रसंग में अंगूठी या मुद्रिका की चर्चा आती है। प्रथमतः श्रीराम ने हाथ की उंगली से मुद्रिका उतार कर श्रीहनुमानजी को सीताजी से परिचय के लिये चिन्हस्वरूप दी और जो कार्य करना है, उसे बताया-

परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी।।
बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि बल आवहु।

श्रीहनुमानजी ने मुद्रिका लेकर अपने जन्म को सफल माना-

हनुमत जन्म सफल करि माना। चलेउ हृदयँ धरि कृपा निधाना।।

मुद्रिका को श्रीहनुमानजी ने कहाँ संभाल कर रखा? इस विषय में 'श्रीरामचरितमानस' में कोई संकेत नहीं है। 'श्रीहनुमानचालीसा' में इस विषय में संकेत मिलता है-

प्रभु मुद्रिका मेल मुख माहीं। जलधि लांघ गये अचरज नाहीं।

'रामाज्ञा' में गोस्वामी तुलसीदासजी ने स्पष्ट शब्दों में बताया है-

नाथ हाथ माथे धरेउ प्रभु मुदरी मुख मेलि।
चलेउ सुमिरि सारंगधर आनिहि सिद्धि सकेलि।

इस प्रकार 'श्रीहनुमानचालीसा' और 'रामाज्ञा' का अनुशीलन यह सिद्ध करता है कि श्रीहनुमानजी ने प्रभु द्वारा दी गई मुद्रिका को मुख में रखा। ठीक भी है। बन्दरों को प्रायः ऐसा करते देखा जा सकता है कि वे खाने की चीजें मुख में रखकर गले के पास बनी थैली में पहुँचा देते हैं और समय पड़ने पर उन चीजों को निकाल कर खाते हैं। वानरस्वरूप श्रीहनुमानजी द्वारा मुद्रिका को सुरक्षित रखने

के लिये उसे मुख में रखना स्वाभाविक था। मुँह में रखकर गले के नीचे की थैली में रखी अंगुठी पूरी तरह सुरिक्षत थी। निश्चित रूप में अंगूठी इस थैली में ही थी- क्योंकि यदि वह मुख में रहती तो श्रीहनुमानजी अपने मुख से बोल नहीं सकते थे। जबकि सीता माता तक अंगूठी पहुँचाने में वे अनेक अवसरों पर बोले थे।

मुद्रिका के विषय में एक अन्य रोचक वात यह है कि श्रीरामजी के पास यह अंगूठी कैसे आ गई? वे तो वस्त्राभूषण त्यागकर वल्कल धारण करके अयोध्या से चले थे। इसका उत्तर यह है कि यह अंगूठी माता सीता की थी। अन्तिम बार यह अंगूठी सीताजी ने प्रभु श्रीराम को अपने करकमलों से तब दी थी, जब वे केवट को उतराई देने में संकोचग्रस्त थे-

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता।।
केवट उतारि दण्डवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा।।
पिय हिय की सिय जाननि हारी। मनि मुंदरी मन मुदित उतदरी।।
कहंउ कृपाल लेहि उतराईं केवट चरन गहे अकुलाई।
नाथ आजु मैं काह न पाया। मिटे दोष दुख दारिद-दावा।।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह विधि वनि भलिभूरी।
अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें।।

चरण धोकर नाव से गंगाजी के पार उतारने वाले केवट ने अंगूठी नहीं ली। अस्वीकार कर दिया। भला सोचिये कि प्रभु श्रीराम और भगवती माता सीता की तदाकारता और एकत्व की प्रतीक मुद्रिका को प्रभु द्वारा स्वतः दिये जाने पर, कर्म करने के उपरान्त फल दिये जाने पर, केवट मुद्रिका नहीं लेता। भक्त तो थोड़ी सी भी भक्ति करके ईश्वर को पूरे का पूरा पा लेना चाहता है। फिर केवट क्यों चूक गया?

किसी भी पथ पर चलता हुआ व्यक्ति यह आशा करता है कि एक न एक दिन वह लक्ष्य पर पहुँच जायेगा। अतः लक्ष्य क्या है? कहाँ पहुँचना है? इसका अता-पता होना भी आवश्यक है। परन्तु जब व्यक्ति को लक्ष्य का ही अता-पता न हो तो वह लक्ष्य तक पहुँचने की सोच भी नहीं सकता। जब भक्त को उद्देश्य की प्राप्ति होती दिखाई नहीं देती, तब वह अन्तर्द्वन्द से भर जाता है। केवट चूका नहीं। जो भगवान को भुलावे में डालकर, उनके चरण धो लेने मात्र से परिवार सहित भवसागर पार कर लेने की बात जानता है, वह उन प्रभु को पार उतारता

है जो सबको पार उतारते हैं तो अब उसके लिये पाने को बचा ही क्या? अतः केवट ने दिव्य मुद्रिका लेना स्वीकार नहीं किया- "अब कछु नाथ न चाहिए मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें"।

भगवान श्रीराम ने श्रीहनुमानजी को मुद्रिका दी। उन्होंने वाणी अथवा पत्र द्वारा श्रीहनुमानजी के माध्यम से कोई संदेश नहीं दिया। श्रीहनुमानजी से इतना ही कहा-

बहु प्रकार सीतहि समुझावहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आवहु।।

भगवान श्रीराम ने मुद्रिका के माध्यम से कहे-अनकहे को कह डाला। मुद्रिका में सब कुछ था। जब तक वह माता सीता की उंगली में थी तो वह उन्हें श्रीराम से उनकी तदाकारता और एकता की स्मृति दिलाती रहती थी और तबतक, जबकि वह भगवान श्रीराम की उंगली में थी तो वह उन्हें माता सीता की तदाकारता और एकत्व की स्मृति दिलाती रहती थी। आज जब उन्होंने वह मुद्रिका श्रीहनुमानजी के माध्यम से भगवती सीताजी को प्रेषित की तो सीताजी को उनका यह सन्देश था कि वाणी और पत्र के माध्यम से वह सब कुछ कह पाना संभव नहीं है जो यह मुद्रिका अभिव्यक्त कर देगी।

श्रीहनुमानजी ने मुद्रिका मुख में रखली। मुख में रखना कोई साधारण सी बात नहीं थी। साधना की दृष्टि से भगवान का नाम मुख में रहना चाहिये। मुद्रिका 'राम' नाम से अंकित थी। अतः श्रीहनुमानजी ने भगवान नामांकित मुद्रा को मुख में धारण कर अपनी साधना को दृढ़ से सुदृढ़ किया।

श्रीहनुमानजी माता सीता की खोज में चल पड़े। इस यात्रा में अंगद और जाम्बवन्त हैं। वीर वानरों का समूह भी है। खोज निकालने की अवधि निर्धारित है। एक मास की अवधि में ही सीताजी की खोज पूरी करनी है। एक के बाद दूसरी कठिनाई सामने आती है और प्रत्येक कठिनाई से उबारने में श्रीहनुमानजी ही सहायक होते हैं। उनके मुख में 'राम' नामांकित मुद्रिका जो है। मुद्रिका ने उन्हें 'रघुपति का अमोघ बाण' बना दिया।

'रामचरितमानस' का अनुशीलन यह बताता है कि सुग्रीव द्वारा श्रीराम लक्ष्मण का भेद लेने के लिये श्रीहनुमानजी को भेजना और तब उनकी श्रीरामजी से प्रथम भेंट होने से लेकर श्रीहनुमानजी द्वारा प्रभु की मुद्रिका धारण करने तक

श्री हनुमानजी द्वारा कोई अलौकिक कार्य सम्पन्न नहीं होता। किन्तु जब से मुद्रिका उनके मुख में आ जाती है तो सारे अलौकिक कौतुक होने लगते हैं-

- जेहिं गिरि चरन देई हनुमन्ता। चलेउ सो गा पाताल तुरन्ता।
- जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एहि भाँति चलेउ हनुमाना।।

अब तो श्रीहनुमानजी में काल को भी खा जाने की क्षमता आ गई-

उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभुप्रताप जो कालहि खाई।।

समुद्र तट से लंका के लिये प्रस्थान से श्रीहनुमानजी उत्तरोत्तर अष्टसिद्धियों से परिपूर्ण होते दिखाई देते हैं। कभी वे लघु बन जाते हैं तो कभी वे पर्वताकार दिखाई देते हैं। कोई भी बाधा-बाधा नहीं रह जाती। प्रत्येक स्थल पर वे अपने प्रभु का सान्निध्य अनुभव करते हैं। श्रीहनुमानजी लंका में पहुँचते हैं। माता सीता को खोजते हैं। विभीषण से भेंट करते हैं और उससे कहते हैं 'भाई सुनो। मैं जानकी माता को देखना चाहता हूँ" तब-

जुगति विभीषण सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत विदा कराई।।
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन अशोक सीता रह जहवाँ।

अशोकवाटिका में श्रीहनुमानजी देखते हैं कि रावण आता है। माता सीता को धमकाता है। मन्दोदरी के आग्रह से माता सीता के वध की चेष्टा से विरत हो जाता है और एक मास की अवधि सीमा निर्धारित करता है कि या तो मैथिली को उसकी इच्छा के अनुकूल होना पड़ेगा अथवा एक मास में स्वयं के विनाश के लिये प्रस्तुत होना पड़ेगा। फिर त्रिजटा अपने स्वप्न की घटनाओं से राक्षसियों को सम करती है और माता सीता के नैराश्य को दूर करने का प्रयास करती है। माता सीता का नैराश्य चरम सीमा पर पहुँचता है और वे अपना आत्मदाह करने के लिये त्रिजटा से सहायता देने को कहती हैं।

त्रिजटा ने प्रभु के प्रताप बल और सुयश को सुनाकर सीताजी को समझाया। निराशा दूर करने का प्रयास किया। प्रयास में असफल होने पर उसने अनुरोध ा किया कि सूर्योदय होने तक प्रतीक्षा करें, क्योंकि रात में आत्मदाह करने के लिये अग्नि नहीं मिल सकेगी। श्रीहनुमानजी यह सब देख रहे थे। त्रिजटा के चले जाने पर सीताजी को एकान्त असह्य प्रतीत होने लगा। अब वे व्याकुलता की मनः स्थिति में अशोकवृक्ष से अग्नि की याचना करती हैं- "हे अशोक वृक्ष ! मेरी

विनती सुनकर 'अशोक' अर्थात शोकरहित करने वाले अपने नाम को सार्थक करो।"

श्रीहनुमानजी ने सब कुछ देखा। वे उसी अशोक वृक्ष के पत्तों के बीच छुप कर बैठे थे, जिससे माता सीता अग्नि की याचना करते हुए अपने 'अशोक' नाम को सत्य प्रमाणित करने के लिये कह रही थी। अर्थात् माता सीताजी ने नामी से नाम की सार्थकता को सिद्ध करने को कहा। श्रीहनुमानजी के मुख में 'राम' नामांकित मुद्रिका थी और ऐसे समय में श्रीहनुमानजी हृदय में विचार करते हैं, मुद्रिका को ऊपर से ही नीचे डाल देते हैं।

यह अजीब सा लगता है कि मुद्रिका को ऊपर से नीचे डाल दिया। श्रीहनुमानजी ने स्वयं वृक्ष से उतरकर आदरपूर्वक प्रभु द्वारा भेजी अंगूठी माता सीता को नहीं दी। मुद्रिका को ऊपर से नीचे डाल दिया। यह तो शिष्टता से दूर हटने की बात हुई। परन्तु श्रीहनुमानजी ने यह अशिष्टता सोच विचार कर की थी– 'कपि करि हृदय विचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।'

श्रीहनुमानजी द्वारा मुद्रिका को ऊपर से नीचे डालना सुविचारित कार्य था। माता सीता दस महीनों से 'राम' नाम का अखण्ड जाप कर रही थीं। किन्तु अब वे परम व्याकुल हो गई थीं। रामनाम का निरन्तर जाप करते रहने पर भी उनकी विरह वेदना बढ़ती ही जा रही थी और अन्ततोगत्वा रावण ने उन्हें अन्तिम चेतावनी दे डाली थी।

इस चेतावनी और धमकी से माता सीता अपना धैर्य खो देती हैं और 'राम' नाम के स्थान पर 'अशोक' शब्द के अर्थ को महत्त्व देते हुए अशोक से शोक दूर करने का अनुरोध करती हैं। ऐसे समय में श्रीहनुमानजी विचार करते हैं और उन्हें प्रतीत होता है कि यहाँ पर रामनाम की सामर्थ्य समाप्त हो रही है। वे सोचते हैं कि जब माता सीता 'राम' नाम में आस्था खो चुकी हैं, तो क्या उनकी अपनी आस्था 'राम' नाम में अडिग रह पायेगी। यह भक्त की परीक्षा की घड़ी न बनकर उनके भगवान की परीक्षा की घड़ी बन जाती है। मानो मनही मन श्रीहनुमानजी ने माता सीता से कहा 'मां ! जब प्रभु ने आपको खोज निकालने की यात्रा पर भेजते समय अपने नाम से अंकित मुद्रिका को मुझे दिया तो मुझे अपने नाम का आश्रय दिया। कठिन यात्रा में प्रतिक्षण मुझे प्रभु के नाम से सफलता मिली। किन्तु

यहाँ आकर मैं देख रहा हूँ कि रामनाम की सामर्थ्य समाप्त हो रही है और माता 'अशोक' वृक्ष से 'अशोक' नाम की सामर्थ्यता को प्रमाणित करने की प्रार्थना कर रही हैं।" ऐसा सोच विचार कर श्रीहनुमानजी यह निर्णय करते हैं कि प्रभु के नाम की महिमा से मुद्रिका के गौरव की रक्षा माता सीता के द्वारा ही संभव है और अब वे ही इस कठिन समय में राम नाम के गौरव की रक्षा करें। अतः वे छुपे रहकर मुद्रिका को ऊपर से नीचे डाल देते हैं।

माता सीता को लगा कि जड़ अशोक वृक्ष ने उनके अनुरोध से द्रवित होकर अग्नि दी है। इससे पहले कि मुद्रिका भूमि पर गिरे, वे पहले से उठकर उसे करकमलों में ले लेती हैं। मुद्रिका पहचानते ही वे चकित हो जाती हैं-

"चकित चितव मुंदरी पहिचानी। हरष विषाद हृदयँ अकुलानी।।
जीति को सकई अजय रघुराई। माया तें असि रचि न जाई।।

सीता माता के मन में इसी प्रकार के विचार आ रहे हैं और तब श्रीहनुमानजी भगवान श्रीराम के गुणों का बखान करने लगते हैं। इसके उपरान्त माता सीता और श्रीहनुमानजी के बीच हुए वार्तालाप में भक्ति, प्रीति, एकत्व, तदाकारिता तथा ऐश्वर्य ज्ञान की अनुभूति होती है।

भगवान श्रीराम द्वारा दी गई मुद्रिका पर अंकित रामनाम की महिमा को श्रीहनुमानजी मुख में रखकर माता सीता तक पहुँचे और मुद्रिका को माता सीता तक पहुँचाया। अब श्रीहनुमानजी मुद्रिका से वंचित थे, परन्तु अब उन पर भगवती माता सीता का वरदहस्त था-

आसिष दीन्ह राम प्रिय जाना। होहु तात बलसील निधाना।।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।।

श्रीहनुमानजी कृतकृत्य हो गये-

"अब कृतकृत्य भयऊँ मैं माता। आसिष तव अमोघ विख्याता।।

श्रीहनुमानजी ने कहा- "हे माता ! मुझे कोई चिन्ह दीजिए, जैसे श्रीरघुनाथजी ने मुझे दिया था। तब सीताजी ने चूड़ामणि उतारकर दिया। श्रीहनुमानजी ने उसको हर्षपूर्वक ले लिया।

आञ्जनेय के अतुल पराक्रम से लंका कुछ ही क्षणों में जलकर विनष्ट हो गई। महावीर को समुद्र की प्रेरणा से मैनाक पर्वत द्वारा दिये गए निमन्त्रण की

स्मृति हो आई। उस समय उन्होंने "रामकाजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम" कहकर उसे अस्वीकार कर दिया था। सफलता के इस क्षण में जब प्रभु का कार्य पूरी तरह सम्पन्न हो चुका था, हनुमानजी ने श्रमापनयन के लिए समुद्र के निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। समुद्र में स्नान कर उनका सारा श्रम दूर हो गया।

विनयपत्रिका में लंका को आवृत किए हुए समुद्र को देहाभिमान के रूप में चित्रित किया गया है :

कुणपि अभिमान सागर भयंकर घोर अमित अवगाह दुस्तर अपारं।
नक्र रागादि संकुल मनोरथ सदा संग संकल्प वीची बिकारं।।

साधक के मार्ग में देहाभिमान बहुत बड़ा बाधक है। देह पर दृष्टि जाते ही शरीर से उत्पन्न होने वाली समस्याएँ साधन-मार्ग में अवरोध बन जाती हैं। समुद्र ने जब मैनाक से यह अनुरोध किया कि वह पवनपुत्र को विश्राम का निमन्त्रण दें तब उसका तात्पर्य यही तो था कि मैनाक पवन के मित्र हैं और इस नाते हनुमानजी उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लेंगे। समुद्र की दृष्टि से सम्बन्ध का केन्द्र शरीर था। उधर भक्त सारे नाते प्रभु के आधार पर ही स्वीकार करते हैं। जितने भी प्रियता और पूज्यता के नाते हैं उसका आधार श्रीराम का सम्बन्ध है। जिन्हें वैदेही और श्रीराम से प्रेम नहीं है वह शारीरिक दृष्टि से भले ही सम्बन्धी हो किन्तु उसका परित्याग कोटि-कोटि बैरी के समान कर देना चाहिए। इसीलिए प्रह्लाद ने पिता का, विभीषण ने भाई का और श्रीभरत ने माँ का परित्याग कर दिया। व्रजगोपियों ने पतियों का परित्याग करने में रंच-मात्र संकोच अनुभव नहीं किया। बहिरंग दृष्टि से साधारण धर्म का परित्याग करने पर भी वे भक्तों के चरम आदर्श हैं। अञ्जन का उद्देश्य नेत्र के सौन्दर्य की वृद्धि-मात्र नहीं है, उसका मुख्य कार्य नेत्रों की ज्योति की वृद्धि है। यदि वह आँखों के सौन्दर्य को बढ़ाकर भी अन्धता ला दे तो उस अञ्जन को नष्ट कर देना चाहिए। साधारण धर्म के पालन का उद्देश्य भी अन्तःकरण व बुद्धि के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार ही है। यदि वह धर्म ईश्वर के साक्षात्कार से वंचित कर दे तो उस धर्म का परित्याग कल्याणकारी है।

समुद्र ने रघुपति का दूत समझकर ही विश्राम का निमन्त्रण देना चाहा था, किन्तु स्वयं आगे न आकर मैनाक के द्वारा निमन्त्रण दिलवाने में यही भ्रम कार्य

कर रहा था कि सम्भव है मेरे द्वारा दिये गए निमंत्रण को स्वीकार न करें। इसलिए उसने मैनाक से अनुरोध किया : जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी।। किन्तु आञ्जनेय ने मैनाक के निमंत्रण को उस दिन अस्वीकार करते हुए भी लंकादहन के पश्चात् समुद्र की भावना को स्वीकार कर लिया। देहाभिमान भले ही त्याज्य हो पर जब देह के द्वारा प्रभु की सेवा का कार्य सम्पन्न हो सके तब भक्त उसे पूजा का उपकरण मानकर स्वीकार कर लेता है। उस समय भक्त में देह के प्रति जो महत्त्व-बुद्धि होती है वह इसी सेवा-भावना से ही होती है। आञ्जनेय का जन्म ही 'रामकाजु' के लिए हुआ है। इसलिए जब वे सेवा के उपकरण शरीर को लेकर, देहाभिमान के समुद्र में कूदते हैं तब मृत्यु के स्थान पर उन्हें विश्राम की अनुभूति होती है। देहाभिमान के समुद्र में डूबकर अनेक व्यक्ति मृत्यु के ग्रास वन जाते हैं किन्तु मारुति-जैसे संतरण की कला में निपुण भक्त उसमें विश्राम पा लेते हैं :

पूँछ बुझाइ खोई श्रम, धरि लघु रूप बहोरि।
जनक-सुता कें आगे ठाढ़ भयउ कर जोरि।।

अपने विशाल स्वरूप को समेटकर नन्हे-से रूप में माँ के समक्ष उपस्थित होने वाले कपिप्रवीर का यह चित्र उनकी कर्तृव्यशून्यता और निरभिमानता का प्रतीक है। संसार में प्रत्येक बालक क्रमशः बढ़ता ही चला जाता है। प्रारम्भ में उसकी यह वृद्धि उत्थान के प्रतीक के रूप में जान पड़ती है। पर किशोर के पश्चात् युवा और युवावस्था के पश्चात् वृद्धावस्था की ओर बढ़ता हुआ पतन की दिशा में गिरता चला जाता है, किन्तु मारुति माँ मैथिली के समक्ष एक नन्हे-से शिशु के रूप में ही बने रहे। उन्होंने माँ के समक्ष अपने कार्यों की चर्चा तक नहीं की। अब तक आञ्जनेय ने जो कार्य किए थे वे बड़ी सरलता से सम्पन्न हो गए थे, किन्तु अब उनके समक्ष सबसे कठिन कार्य था, माँ मैथिली से विदा लेना। एक पुत्र के लिए माँ से अलग होना वैसे भी महान् कष्टकारी है। पर जिस स्थिति में जनकनन्दिनी वहाँ थीं, उन्हें छोड़कर जाना उन्हें अपराध-सा प्रतीत हो रहा था। किन्तु कर्त्तव्य का जो गुरुतर बोझ प्रभु के द्वारा सौंपा गया था उसे स्वीकार करना उनकी बाध्यता थी। हनुमानजी ने विदा शब्द का उच्चारण किए बिना ही माँ से विदा लेने की सूचना दे दी। उन्होंने कहा, "माँ आप भी कोई वैसा ही चिह्न प्रदान

करें जैसा प्रभु ने मुझे दिया था।"

माँ का अन्तःकरण करुणा और पीड़ा के असह्य भार से बोझिल हो उठा। हनुमानजी की उपस्थिति ने उन्हें एक अनोखी मनःस्थिति प्रदान की थी। घोर रेगिस्तान के बीच जल और छाया पाकर पथिक को जिस दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है, माँ को अपने लाड़ले पुत्र के सान्निध्य से वैसा ही परमानन्द प्राप्त हुआ था। किन्तु विदा की इस वेला में उनका हृदय विदीर्ण होने लगा। जब उनके मुख से यह वाक्य निकला कि पुत्र तुम्हें देखकर छाती शीलत हो गई थी किन्तु अब मेरे समक्ष वे ही भयावने दिन तथा अन्धकार और निराशा से भरी हुई रात्रियाँ हैं।

माँ की इस विकल अवस्था को देखकर मारुति का हृदय रो पड़ा, और वे व्याकुल होकर सोचने लगे, "हा, माँ ने मुझे अमरता का वरदान क्यों दे दिया? यदि मेरी इसी क्षण मृत्यु हो जाती तो माँ की आँखों में आँसू और विकलता-भरे शब्द सुनने को तो न मिलते।" उस समय उन्हें अमरता मृत्यु से भी अधिक दुःखदायी प्रतीत होने लगी।

एक ओर माँ के अन्तःकरण में पुत्र से विलग होने की व्याकुलता थी तो दूसरी ओर प्रियतम तक अपनी व्यथा-कथा पहुँचाने की आतुरता। श्रीहनुमान विदा की मुद्रा में माँ के समक्ष खड़े थे। मैथिली ने चूड़ामणि उतारकर आञ्जनेय को दे दिया। हर्षित हृदय से आञ्जनेय ने उसे सिर माथे चढ़ा लिया। आते समय उन्हें प्रभु की मुद्रिका प्राप्त हुई थी, और जाते समय वात्सल्यमयी माँ ने चूड़ामणि देने की कृपा की। मुद्रिका नाममयी थी, उस पर रामनाम अंकित था। चूड़ामणि रामभक्ति का प्रतीक है। इसका उल्लेख उत्तरकाण्ड में ज्ञान और भक्ति के तुलनात्मक प्रसंगों में किया गया है। मुद्रिका में अंकित रामनाम नाम-साधना का संकेत करता है। नाम का जप और स्मरण मुद्रिका के द्वारा प्राप्त होने वाला उपदेश है। इसी नाम के आश्रय से श्रीहनुमानजी ने लंका-यात्रा सम्पन्न की। किन्तु भक्तिमणि में चरम सिद्धि का संकेत है। चिन्तामणि की विशेषता ही यह है कि वह जिसके पास होती है उसके मन में उठने वाली प्रत्येक इच्छा को वह पूर्ण करती है। यहाँ इसे प्रज्ज्वलित रखने के लिए घृत, दीपक अथवा वर्तिका की आवश्यकता नहीं है। यह सर्वथा निरपेक्ष है। नाम-साधना में जहाँ पर साधक को सजग रहकर

जप में संलग्न रहना है वहाँ भक्ति की पूर्णता में भक्त इस कर्त्तव्य से भी मुक्त हो जाता है। वह प्रेम की ऐसी दिव्य स्थिति में पहुँच जाता है कि जहाँ उसे कुछ भी स्मरण नहीं रह जाता। उस समय स्वयं प्रभु ही ऐसे भक्त का स्मरण करने लगते हैं। नन्हा बालक दिन में संकेत और स्वर के माध्यम से अपनी कुछ बातें माँ तक पहुँचा देता है, किन्तु रात की प्रगाढ़ निद्रा में यह प्रक्रिया भी समाप्त हो जाती है। बालक सुख की नींद सो सके यह चिन्ता माँ को ही करनी पड़ती है। दिन में भले ही बालक और माँ एक-दूसरे का स्मरण करें किन्तु रात्रि में इसका पूरा भार माँ पर ही होता है। इसी स्थिति का उल्लेख सन्त दादू के इस दोहे में किया गया है-

माला जपौं न कर जपौं जिह्वा जपौं न राम।
सुमिरन मेरा हरि करैं मैं पावा विश्राम।।

माँ ने निर्भरा भक्ति का वरदान देकर श्रीहनुमानजी को यही स्थिति प्रदान की। चूड़ामणि को उसी का प्रमाण पत्र कह सकते हैं। जब तक घृत के द्वारा दीपक प्रज्ज्वलित किया जाता है तब तक उसमें घृत न चुकने पावे, इसका ध्यान रखना होगा। साधक की स्थिति इसी प्रकारकी होती है। मणि में घृत आदि की कोई अपेक्षा नहीं है। यही निर्भरा भक्ति की स्थिति है। आञ्जनेय उसी स्थिति में पहुँच चुके हैं। इसलिए चूड़ामणि के द्वारा माँ ने आञ्जनेय को मानों भक्त चूड़ामणि की उपाधि दी। सुंदरकाण्ड के प्रारम्भ में प्रभु की वन्दना "भूपाल चूड़ामणिम्" के रूप में की गई है :

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपाल चूड़ामणिम्।।

श्रीहनुमानजी की इस यात्रा की समाप्ति "भक्ति चूड़ामणि" के "भूपाल चुड़ामणि" से मिलन में होती है। सचमुच ही आञ्जनेय समग्र भक्तों में सिरमौर हैं। जहाँ अन्य भक्त भक्तिदेवी की कृपा से प्रभु को प्राप्त करते हैं वहाँ स्वयं भक्ति देवी और प्रभु, मारुति के माध्यम से एक-दूसरे को अपना संदेश पहुँचाते हैं। भक्त माँ से प्रार्थना करते हैं कि वे प्रभु को उनकी सुधि दिला दें। क्योंकि प्रभु बड़े भूलने

वाले स्वभाव के हैं। विनयपत्रिका में भक्तों के इसी भाव की अभिव्यक्ति होती है। किन्तु यहाँ तो स्वयं जगज्जनी ही आञ्जनेय से अनुरोध करती हैं कि प्रभु तक उनकी व्याकुलता को पहुँचाकर उनकी पीड़ा को दूर करने में सहायक बनें :

कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा।।
दीनदयाल बिरिदु सँभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।।

इस सभी दृष्टियों से विचार करने पर श्रीहनुमानजी का चूड़ामणित्व पूरी तरह सिद्ध हो जाता है। मुद्रिका और चूड़ामणि के माध्यम से प्रभु और किशोरीजी ने एक-दूसरे को सांकेतिक स्नेह-संदेश भेजा, ऐसा जान पड़ता है। यह मुद्रिका किशोरीजी और प्रभु के करकमलों में निवास करने का सौभाग्य प्राप्त कर चुकी है। सर्वप्रथम विवाह के अवसर पर यह प्रभु के करकमलों में दिखाई देती है :

पीत जनेउ महाछबि देई। कर मुद्रिका चोरि चित लेई।।

यह मुद्रिका भक्तों का चित्त चुराकर प्रभु के चरणों में अर्पित कर देती है। किन्तु स्वयं प्रभु का चित्त श्री किशोरीजी के द्वारा अपहृत कर लिया गया। इसलिए विजय-चिन्ह के रूप में यह मुद्रिका राघव के द्वारा मैथिली को दे दी गई। तब से यह मुद्रिका उनके ही कर-कमलों में सुशोभित रही। पुनः यह मुद्रिका श्री किशोरीजी के द्वारा गंगातट पर प्रभु के करकमलों में हस्तांतरित होती है। केवट को उतराई देने के लिए प्रभु को संकुचित होते देखकर मैथिली ने यह मुद्रिका प्रभु को दे दी। किन्तु केवट ने उतराई के रूप में इस मुद्रिका को लेना अस्वीकार कर दिया। तब से यह मुद्रिका प्रभु के करकमलों में ही सुशोभित रही। इस तरह यह मुद्रिका विवाह से लेकर वनवास तक की मधुर स्मृतियों से जुड़ी हुई है। वियोग की वेला में इस मुद्रिका को मैथिली के पास भेजकर प्रभु ने यह स्मरण दिलाने का प्रयास किया था कि तुम्हें मेरे मन के संकोच का कितना ध्यान है इसकी साक्षी यह मुद्रिका है। तुम इस मुद्रिका के माध्यम से ही मेरे हृदय की भावनाओं को समझ लो। मिथिलेशनन्दनी ने चूड़ामणि के माध्यम से अपने मस्तक पर प्रभु के वरदहस्त की कामना की। प्रियतम अपने कोमल करकमलों से जब श्री किशोरीजी के मस्तक का स्पर्श करते थे तब इस मुद्रिका और चूड़ामणि का भी मिलन होता था। इस चूड़ामणि में स्नेह की जितनी स्मृतियाँ जुड़ी हैं उन्हें केवल प्रिया-प्रियतम को छोड़कर और कोई नहीं जानता। यह चूड़ामणि उन्हीं घटनाओं की याद दिलाने

के लिए भेजी गई। दस मास के इस वियोग में मुद्रिका और चूड़ामणि का मिलन नहीं हुआ। दोनों ही प्रभु और प्रिया के वियोग की मूल द्रष्टा हैं। श्रीहनुमानजी के माध्यम से मुद्रिका और चूड़ामणि दोनों की अन्तर्व्यथा को एक-दूसरे के सन्निकट पहुँचाती हैं।

समस्त रामकथा में पवनपुत्र श्रीहनुमानजी ही एक ऐसे विरले पात्र हैं जिन्होंने न केवल प्रभु श्रीराम के कार्यों के प्रधान सम्पादक तथा सूत्रधार की भूमिका निभाई है अपितु जिनकी निस्वार्थ सेवाओं के कारण भगवान स्वयं को उनका ऋणी मानते हैं तथा उनसे परमस्नेह करते हैं। चाहे रावण द्वारा हरण कर ली गई माता सीता की खोज का अभियान हो अथवा मेघनाद की वीरघातिनी शक्ति से लक्ष्मण की प्राणरक्षा, श्रीहनुमानजी अपने प्रभु का कार्य सदैव अनन्यभाव से सम्पन्न करने को व्यग्र रहते हैं (राम काज करिबे को आतुर)। यही कारण है कि वे सदैव भगवान के अंतरंग एवं प्रिय विश्वासपात्र बने रहते हैं तथा भगवान श्रीराम भी उन पर दुर्लभ स्नेह की वर्षा किया करते हैं। तभी तो उनकी स्तुति करते हुये गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है- श्री रघुवीर हरिष उर लाये।

'श्री रघुवीर हरिष उन लाये' के प्रसंग को ध्यान में रखकर इस स्तुतिपद का शाब्दिक अर्थ यह है कि जब श्रीहनुमानजी मृतसंजीवनी लाकर शक्ति के आघात से मूर्छित लक्ष्मण के प्राणों की रक्षा करते हैं तब अति हर्षित हो कर प्रभु श्रीराम पवन-तनय को अपनी छाती से लगा लेते हैं और भावावेश में अश्रु ढरने लगते हैं। श्रीहनुमानजी भगवान श्रीराम के कितने प्रियपात्र हैं, और उनसे प्रभु कितना प्रेम करते हैं, इस सम्बन्ध में कतिपय प्रसंगों का संक्षिप्त परिचय यहाँ कराया जा रहा है।

इस संदर्भ में सर्वप्रथम प्रसंग ऋष्यमूक पर्वत के निकट सीता माता की खोज में इधर-उधर विचरण कर रहे श्रीराम-लक्ष्मण तथा श्रीहनुमानजी की भेंट का है। श्रीराम तथा लक्ष्मणजी को देखकर वानरराज सुग्रीव के मन में भय होता है कि कहीं वे दोनों बाली के द्वारा भेजे हुये न हों। अतः श्रीहनुमानजी को ब्रह्मचारी के वेष में जाकर उनकी वास्तविकता का वे पता लगाने का आदेश देते हैं। ब्राह्मण का रूप ध ार कर वह उनके पास जाते हैं और उनसे उनका परिचय पूछते हैं। श्रीराम स्वयं तथा अपने भ्राता लक्ष्मण का परिचय देते हुये सीता माता के अपहरण की बात बताते हैं तथा हनुमानजी से उनका परिचय पूछते हैं। प्रभु श्रीराम को पहचान कर

श्रीहनुमानजी उनके चरण पकड़कर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, उनका सुख वाणी से परे है, उनका शरीर पुलकित है, मुख से वचन नहीं निकलता।

पुराणों के अनुसार श्रीहनुमानजी भगवान शंकर के अंश हैं। भगवान विष्णु के श्रीराम अवतार लेने के साथ ही शंकरजी भी उनकी लीला के दर्शन हेतु ध रती पर उपस्थित होते हैं और मदारी और बंदर का रूप धारण कर व दशरथ के राजद्वार तक पहुँच जाते हैं। बालक राम शिवरूप मदारी से शिवरूप हनुमान बंदर मांग लेते हैं और श्रीहनुमानजी बंदर के रूप में बालक श्रीराम के साथ रहने लगते हैं। वे हर प्रकार से बालक को प्रसन्न करते हैं और बालक श्रीराम भी उनसे बहुत स्नेह करते हैं। जब महर्षि विश्वामित्र अपने साथ श्रीराम को ले जाने के लिये आते हैं तब श्रीराम वानररूप श्रीहनुमान से कहते हैं कि उनके अवतरित होने का मुख्य कार्य अब आरंभ होने वाला है और रावण का वध करके धर्म की स्थापना का समय आने वाला है। उनके इस कार्य में श्रीहनुमानजी की सहायता अपेक्षित होगी, बाली अपने भ्राता सुग्रीव का वध करना चाहता है, भयवश सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर छिप कर रहता है अतः श्रीहनुमानजी वहीं जाकर प्रभु की प्रतीक्षा करें। प्रभु के आदेशानुसार श्रीहनुमानजी तब से वहीं रहने लगते हैं और लंबे अंतराल के बाद वे प्रभु को पहचान नहीं पाते।

अपने स्वामी को पहचान कर उनके हृदय में अपार हर्ष छा जाता है तथा वह प्रभु से कहते हैं- हे स्वामी ! मैंने जो पूछा वह मेरा पूछना तो न्याय था (वर्षों के बाद आपको देखा, वह भी तपस्वी वेष में और मेरी वानरी बुद्धि, इससे मैं तो आपको पहचान न सका और अपनी परिस्थिति के अनुसार आपसे पूछा) परन्तु आप मनुष्य की तरह किस प्रकार पूछ रहे हैं? मैं तो आपकी माया के वश भूला फिरता हूँ इससे मैंने अपने स्वामी (आप) को नहीं पहचाना। एक तो मैं यों ही मन्द हूँ, दूसरे मोह के वश में हूँ, तीसरे कुटिल और अज्ञानी हूँ, फिर हे दीनबंध ु भगवान प्रभु आप ने भी मुझे भुला दिया? हे नाथ, यद्यपि मुझ में बहुत से अवगुण हैं तथापि सेवक स्वामी की विस्मृति में न पड़े (अर्थात् आप उसे न भूलें)। हे नाथ, जीव आप की माया से मोहित है। वह आप ही की कृपा से निस्तार पा सकता है। उस पर हे रघुवीर, मैं आपकी दुहाई (शपथ) करके कहता हूँ कि मैं भजन-साध न कुछ नहीं जानता। ऐसा कहते हुये श्रीहनुमानजी अकुला कर प्रभु के चरणों

में गिर पड़ते हैं तथा अपना वास्तविक रूप प्रकट कर देते हैं। उनके हृदय में प्रेम छा जाता है। तब श्रीरघुनाथजी उन्हें उठा कर अपने हृदय से लगा लेते हैं और अपने नेत्रों के जल से सींच कर शीतल कर देते हैं- तब रघुपति उठाई उर लावा। निज लोचन जल वीचि जुड़ावा।।

इतना ही नहीं प्रभु उनसे इस प्रकार प्रिय वचन भी कहते हैं- 'हे कपि सुनो, मन में ग्लानि मत मानना। तुम मुझे लक्ष्मण से भी दूने प्रिय हो। सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं पर मुझे सेवक प्रिय है क्योंकि वह अनन्य-गति होता है अर्थात मुझे छोड़कर उसका दूसरा आश्रय नहीं होता। और हे हनुमान, अनन्य वही है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ और यह चराचर जगत मेरे स्वामी भगवान का रूप हैं।' स्वामी को अनुकूल पाकर श्रीहनुमानजी के हृदय में हर्ष छा जाता है और उनके सब दुख जाते रहते हैं। भगवान इसी प्रकार अपने भक्तों तथा सेवकों को समय समय पर अपने प्रेम का अमृत-रस-पान कराते रहते हैं। इस सम्बन्ध में महर्षि अगस्त्य के शिष्य सुतीक्ष्ण का दृष्टांत अत्यन्त प्रासंगिक है। वन में भगवान श्रीराम का आगमन सुनकर अनेक प्रकार के मनोरथ कहते हुये सूतीक्ष्ण आतुरता से दौड़ने लगते हैं। वह मन ही मन सोचते जाते हैं कि क्या उनके स्वामी श्रीराम छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित उनसे अपने सेवक की भाँति-मिलेंगे क्योंकि उनके मन में भक्ति वैराग्य या ज्ञान कुछ भी नहीं है। पुनः यह सोचकर कि जिसे किसी दूसरे का सहारा नहीं है वह प्रभु को प्रिय होता है, वह आनन्द-मग्न होकर मन ही मन कहने लगते हैं- 'अहा, भव-बन्धन से छुड़ाने वाले प्रभु के मुखारविन्द को देख कर आज मेरे नेत्र सफल होंगे।' मुनि प्रेम में पूर्ण रूप से निमग्न हो जाते हैं और प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति प्राप्त कर लेते हैं। प्रभु श्रीराम वृक्ष की आड़ में छिपकर अपने भक्त की दशा देख रहे हैं। मुनि का अत्यन्त प्रेम-भाव देखकर प्रभु उनके हृदय में प्रकट हो जाते हैं। प्रभु के बार बार जगाने पर भी जब मुनि नहीं जागते तब वह अपना चतुर्भुज रूप प्रकट करते हैं। मुनि अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं और अपने समक्ष श्रीराम-सीता-लक्ष्मण को पाते हैं। प्रेम मग्न होकर यह बड़भागी श्रेष्ठ मुनि लाठी की तरह गिरकर श्रीराम के चरणों में लग जाते हैं और दयालु श्रीराम अपनी विशाल भुजाओं से पकड़कर उन्हें उठाते हैं और बड़े प्रेम से हृदय से लगा लेते हैं।

इसी संवंध में भक्तराज जटायु का उल्लेख भी समीचीन है। अपहरण करके माता सीता को ले जाते हुये रावण से युद्ध करते करते भक्तराज जटायु आहत होकर गिर पड़ते हैं और उनकी खोज के उद्देश्य से वन में यत्र-तत्र विचरण करते श्रीराम को दिखाई दे जाते हैं। जटायु श्रीराम से यह बताता है कि माता सीता को मुक्त कराने के लिये रावण से युद्ध करते जब वह थक गया तब रावण उसके पंख काटकर विदेह-कुमारी को लेकर उड़ गया। यह सुनकर श्रीराम अपना धनुष फेंक देते हैं और गृद्धराज जटायु को गले से लगाकर शोक से विवश हो पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं और लक्ष्मणजी के साथ ही रोने लगते हैं। फिर आँखों में आँसू भर उस पर हाथ फेरते हुये वह कहते हैं- जटायु कहो? मेरी समुखी भार्या सीताजी को कौन ले गया है। तुम मेरे कार्य के लिए मारे गये। अतः तुम अवश्य ही मेरे प्रिय बन्धु हो।' जटायु कहता है- हे रघुश्रेष्ठ, वैसे तो अन्त समय आपका दर्शन करने से ही मैं मुक्त हो गया तथापि आप मुझे अपने करकमलों से स्पर्श कीजिए। फिर मैं आपके परमपद को जाऊँगा। भगवान मुस्कुराते हुये 'बहुत अच्छा' कह उसका शरीर अपने कर-कमलों से छूते हैं और जटायु के प्राण छोड़ने पर कहते हैं- जटायु, तुम मेरे परमपद को जाओ और आज सब के देखते देखते मेरा सारूप्य प्राप्त करो। गीध की देह त्यागकर जटायु हरि का रूप धारण कर लेता है और अखंड भक्ति का वर मांग कर वह श्रीहरि के परमधाम को चला जाता है।

भगवान श्रीराम द्वारा पवनसुत श्रीहनुमानजी को आलिंगन करने के सम्बन्ध । में एक अन्य प्रसंग उस समय का है जब वे सीता माता से भेंट करके लंका से लौटते हैं और जाम्बवंत उनके सुन्दर चरित्र श्रीरघुनाथजी को सुनाते हैं। चरित्र सुनने पर कृपानिधि श्रीराम के मन को वे बहुत ही अच्छे लगते हैं और हर्षित होकर वे श्रीहनुमानजी को हृदय से लगा लेते हैं और कहते हैं- 'कहो तात, सीता किस प्रकार रहती और अपने प्राणों की रक्षा करती है?'

श्रीहनुमानजी से सारा समाचार जानने तथा सीताजी द्वारा भेजे गये संदेश तथा चूड़ामणि प्राप्त करने के उपरांत श्रीराम के नेत्रों में जल भर आता है और वे इस प्रकार कहते हैं- हे हनुमान, सुन ! तुम्हारे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई शरीर-धारी नहीं हो सकता।' देवताओं के रक्षक प्रभु बार-बार श्रीहनुमानजी को देख रहे हैं, उनके नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का जल भरा है

और शरीर अत्यंत पुलकित है। प्रभु के वचन सुनकर और उनके प्रसन्न-मुख तथा पुलकित अंगों को देखकर श्रीहनुमानजी हर्षित हो जाते हैं और यह सोचकर कि भगवान भक्त के प्रति उपकार का भाव प्रदर्शित कर रहे हैं वे प्रेम में विकल होकर 'हे भगवान, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए उनके चरणों में गिर पड़ते हैं। इधर प्रभु उन्हें बारबार उठाना चाहते हैं परन्तु प्रेम में डूबे हुये श्रीहनुमानजी को चरणों से उठना सुहाता नहीं। प्रभु का कर-कमल श्रीहनुमानजी के सिर पर है और वे प्रभु की कृपा के सुधा-समुद्र में बार-बार अवगाहन कर रहे हैं। तभी प्रभु श्रीहनुमानजी को उठाकर अपने हृदय से लगा लेते हैं और हाथ पकड़कर अत्यन्त निकट बैठा लेते हैं।

भगवान अपने भक्त को प्रेम से विकल होकर अपने अंक में भर लें इससे बढ़कर कौन सा सुख हो सकता है, यह बता पाना कठिन है और कदाचित ऐसा सौभाग्य श्रीहनुमानजी के समान किसी अन्य भक्त को ही सुलभ हो पाता है। 'अध्यात्म-रामायण' में भगवान श्रीराम इस अवसर पर श्रीहनुमानजी से कहते हैं- तुमने जो कार्य किया है वह देवताओं से भी होना कठिन है। मैं उसके बदले में तुम्हारा क्या उपकार करूँ सो नहीं जानता। मैं अभी तुम्हें अपना सर्वस्व सौंपता हूँ।' ऐसा कह वह वानरश्रेष्ठ श्रीहनुमानजी का गाढ़ आलिंगन करते हैं। उनके नेत्रों में जलभर आता है और हृदय में परम प्रेम उमड़ने लगता है। तब भक्त-वत्सल रघुनाथजी श्रीहनुमानजी से कहते हैं- संसार में मुझ परमात्मा का आलिंगन मिलना अत्यन्त दुर्लभ है, हे वानरश्रेष्ठ (तुम्हें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ)। अतः तुम मेरे परम प्रिय भक्त और प्रिय हो। इसी प्रकार वाल्मीकि-रामायण में भी इस अवसर पर भगवान श्रीहनुमानजी की अनेक प्रकार से प्रशंसा करते हुये कहते हैं- आज हनुमान ने विदेहनंदिनी सीता का पता लगाकर उन्हें अपनी आँखों से देखकर धर्म के अनुसार मेरी, समस्त रघुवंश की और महाबली लक्ष्मण की रक्षा की है। आज मेरे पास पुरस्कार देने योग्य वस्तु का अभाव है। यह बात मेरे मन में वड़ी कसक उत्पन्न कर रही है कि यहाँ जिसने मुझे ऐसा प्रिय संवाद सुनाया उसका मैं कोई वैसा ही प्रिय कार्य नहीं कर पा रहा हूँ। इस समय इन महात्मा हनुमान को मैं केवल अपना प्रगाढ़ आलिंगन प्रदान करता हूँ-क्योंकि यही मेरा सर्वस्व है।' ऐसा कहते कहते श्रीरघुनाथजी के अंगप्रत्यंग प्रेम से पुलकित हो जाते हैं और वे अपनी आज्ञा के पालन

में सफलता प्राप्त कर लौटे हुये पवित्रात्मा हनुमान को हृदय से लगा लेते हैं।

लंका प्रवेश के बाद अशोकवाटिका में जाकर और सीताजी को प्रभु का संदेश सुनाकर श्रीहनुमानजी ने सीताजी को प्रेम निमग्न तथा बेसुध कर दिया। इसके बाद उन्होंने इतना धैर्य बँधाया, इतनी हिम्मत दी कि जगज्जनी श्रीहनुमानजी पर अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं और उनका सच्चा मातृत्व उमड़ आया। तब वात्सल्य भाव में डूब जाने के कारण सीतामाता ने श्रीहनुमानजी को सहजही अपना पुत्र स्वीकार कर लिया और मातृरूप में बोली- **हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना। जातुधान अति भट बलवाना।।**

जिसे स्वयं जग्गजननी ने ही अपना सुत स्वीकार कर लिया, कौन थाह पा सकता है उसके सौभाग्य सागर की? कौन तौल सकता है उसके सौभाग्य सुमेरु को? अब श्रीहनुमान के समान महान् भाग्यवान् कौन रह गया?

श्रीहनुमानजी के द्वारा सीताजी के समाचार और उनका संदेश सुनकर परमकृपालु और परमकृतज्ञ श्रीरामजी जब कृतज्ञता के भाव में विभोर हो गए, तब श्रीहनुमानजी पर ऐसी पुत्र-वत्सलता उमड़ पड़ी कि आपने भी श्रीहनुमानजी को अपना लाड़ला भाव-पुत्र स्वीकार करते हुए कहा- **सुन सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेऊँ करि विचार मनमाहीं।।** अब भगवान राम ने भी अनायास श्रीहनुमानजी को अपना पुत्र स्वीकार कर लिया। जग्गजननि और जगतपिता दोनों ही जिसको अपना प्यारा भाव-पुत्र मान रहे हों, उससे भी अधिक भाग्यवान श्रीहनुमान ही हैं। इससे सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहनुमानजी में प्रेम और सेवा की अन्यतम गहराई, ऊँचाई और समग्रता है। आप प्रेमाकाश के अप्रतिम प्रकाशकार हैं तथा सौभाग्य संसार के लोकोत्तर चमत्कार। आपके प्रेम और सेवा का गुणोत्कर्ष मनसा चिन्तनीय, वचसा वर्णनीय, शिरसा वन्दनीय तथा कर्मणा अनुकरणीय है।

रामकाज के लिये श्रीहनुमानजी की दूसरी यात्रा तब हुई जब लंका के रणांगण में भगवान श्रीराम के प्रिय अनुज लक्ष्मण की मूर्च्छा को दूर करने का भार श्रीहनुमानजी को सौंपा जाता है। जब वैद्य के द्वारा यह आदेश दिया गया कि द्रोणाचल पर्वत पर विषल्यकर्णी नामक जो औषधि है आप उसे लेने के लिए जाइये, तब तुरन्त श्रीहनुमानजी उस कार्य को सम्पन्न करने के लिए द्रोणाचल

पर्वत की ओर चल पड़े। जब आंजनेय वहाँ से यात्रा प्रारम्भ करने लगे तो "राम चरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजनसुत बल भाषी।।"

भगवान श्रीराम के चरणों को हृदय में धारण करके प्रभंजन-पुत्र श्रीहनुमानजी अपने बल का वर्णन करते हैं तथा उसके पश्चात् वे औषधि लेने के लिए चल पड़ते हैं। इस प्रकार श्रीहनुमानजी की दो महान यात्राएँ होती हैं। पहली यात्रा तब होती है जब कि वे जनकनन्दिनी के पास प्रभु का सन्देश लेकर जाते हैं, दूसरी यात्रा में वे लक्ष्मणजी की मूर्च्छा दूर करने के लिए औषधि लेने द्रोणाचल पर्वत पर जाते हैं। यद्यपि दोनों यात्राओं में श्रीहनुमानजी के द्वारा बड़े महानतम कार्य किये गये, परन्तु इन दोनों यात्राओं में कुछ अन्तर है।

आगे चलकर जब श्रीभरत ने श्रीहनुमानजी से यह प्रस्ताव किया कि आप पर्वत सहित मेरे बाण पर बैठ जाइये और जहाँ पर कृपानिधान श्रीराम हैं, मैं वहाँ आपको पहुँचा दूँ। उस समय आंजनेय के अन्तः करण में यह अभिमान उत्पन्न हुआ कि: 'सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरें भार चलिहि, किमि बाना।।' एक तो मेरा ही बहुत अधिक भार है और फिर जिस पर्वत को लेकर मैं जा रहा हूँ वह भी गुरुतर है और दूसरी ओर श्रीभरत हैं जिनका शरीर अत्यन्त क्षीण है तथा श्रीराम के वियोग में अत्यन्त दुबले हो गये हैं, वे यह कहते हैं कि मैं अपने बाण पर बैठाकर तुम्हें लंका पहुँचा दूँ! यद्यपि इसे इस अर्थ में नहीं देखा जाना चाहिए कि श्रीहनुमानजी में अभिमान हो गया, वस्तुतः इस अभिमान का उद्देश्य भी अन्ततोगत्वा परम कल्याण की ही उपलब्धि है। लेकिन प्रारम्भ में ऐसा दिखायी देता है कि उनके अन्तःकरण में अहंकार उपजा। आपने देखा होगा कि खेत में जब भी कोई वस्तु उपजती है तो उसकी क्या प्रक्रिया है। जब कोई अन्न उपजता है, अथवा अंकुर फूटता है तब उस अंकुर में फूटने से पहले खेत में बीज पड़ जाता है। यद्यपि जब बीज पड़ता है उस समय प्रत्यक्ष रूप से अंकुर नहीं दिखायी देता, लेकिन जहाँ पर भूमि में थोड़ी बहुत कोमलता है, नमी है, वहाँ पर यदि बीज डाल दिया जाये तो कुछ दिन बार वह बीज अंकुरित होकर बाहर निकल आता है। किन्तु श्रीभरत से वार्तालाप के क्षण में श्रीहनुमानजी के अन्तःकरण में जो अहंकार उपजा उसका बीज कहाँ पड़ा?

उपर्युक्त सन्दर्भ को दृष्टिगत रखकर अगर आप दोनों यात्राओं की

तुलनात्मक समीक्षा करें तो दोनों यात्राओं में आपको कुछ अन्तर दिखायी देगा। यहाँ पर जिस बीज के लिए मैंने अभी आप से कहा उसका बीज वहीं पर प्रारम्भ हो गया जिस समय समुद्र के किनारे श्रीहनुमानजी की यात्रा प्रारम्भ होती है। उस समय प्रत्येक बन्दर ने अपने बल का वर्णन किया। यद्यपि वहाँ पर प्रत्येक वन्दर अपने-अपने बल का वर्णन करता है, परन्तु एकमात्र श्रीहनुमानजी वहाँ पर मौन है। वे अपने बल का वर्णन नहीं करते है और श्रीहनुमानजी को जो कार्य भगवान राम ने सौंपा है वह वड़ा अनोखा-सा है। पहली यात्रा में श्रीहनुमानजी ने प्रभु के चरणों में प्रणाम कर के पूछा कि लंका में जगजननी सीता के समक्ष जव मैं जाऊँगा तो वहाँ से मैं कौन-सा कार्य करके लौटूँ, यह आदेश कृपा करके मुझे दीजिये। तो उस समय प्रभु ने कहा कि हनुमानः- "बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु।।" वहाँ जाकर तुम जनकनन्दिनी को बहुत प्रकार से समझाना तथा उनके समक्ष मेरे बल और वियोग का वर्णन करने के पश्चात् तुम चले आना। ये दो कार्य श्रीहनुमानजी को सौंपे गये और इन दोनों कार्यों के सौंपे जाने के पीछे विचित्रता है। भगवान राम ने अपना कार्य अंगद, नल, नील, द्विविद अथवा मयन्द को नहीं सौपा, केवल श्रीहनुमानजी को सौंपा और दूसरा कार्य जो सौंपा वह तो जानकर ही बड़ा अटपटा लगता है। क्योंकि भगवान श्रीराम ने कहा कि सीता के प्रति जो मेरा विरह है उसका वर्णन सीता को सुनाना। अगर व्यावहारिक दृष्टि से विचार करके देखें तो भगवान राम ने यह जो कार्य सौंपा वह बड़ा विचित्र है क्योंकि श्रीहनुमानजी तो बाल ब्रह्मचारी हैं और बाल-ब्रह्मचारी को जो काम सौंपा गया उसका सम्बंध श्रृंगार-रस से है, तो क्या भगवान राम के लिये यह उचित है कि वे एक ब्रह्मचारी से श्रृंगार रस का सन्देश भेजें? दूसरी ओर श्रीहनुमानजी जितनी सरलता से उस कार्य को स्वीकार कर लेते हैं उसे श्रीहनुमानजी को छोड़कर अन्य कौन स्वीकार करता!

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि श्रीहनुमानजी जब सुग्रीव के चरणों में प्रणाम करते हैं तो आश्चर्य होता है कि श्रीहनुमानजी जैसा महान् चरित्रवाला सुग्रीव जैसे व्यक्ति के चरणों में प्रणाम करे और हाथ जोड़कर यह प्रार्थना करे कि यदि आप आज्ञा दीजिये तो मैं दस दिनों तक भगवान राम के चरणों की सेवा करूँ। यह श्रीहनुमानजी की विनम्रता की पराकाष्ठा है। आप ब्रह्मचारी होकर एक

गृहस्थ के चरणों में प्रणाम करें, विषयी के चरणों में प्रणाम, करें, इससे बढ़कर आश्चर्य क्या होगा? क्योंकि लोग तो आश्रम-मर्यादा में बड़ा भेद मानते हैं। एक ओर कोई ब्रह्मचारी किसी गृहस्थ को प्रणाम करना स्वीकार नहीं करता है तो दूसरी ओर कोई संन्यासी किसी गृहस्थ को अपने समान आसन देना स्वीकार नहीं करता और श्रीहनुमानजी को चाहे आप श्रेष्ठ संन्यासी कह लीजिये या बाल-ब्रह्मचारी कह लीजिये। क्योंकि श्रीहनुमानजी तो सर्वोत्कृष्ट स्थिति में हैं। वे श्रीहनुमानजी, सुग्रीव जैसे विषयी के चरणों में गिरे हुए हैं और जब श्रीहनुमानजी से पूछा गया कि महाराज! सुग्रीव जैसे गृहस्थ के चरणों में गिरने में उनको संकोच नहीं लगता। तो उन्होंने कहा- क्योंकि उनके प्रभु ही गृहस्थ हैं और वे उनकी सेवा करते हैं तो दूसरे गृहस्थ की सेवा करने में क्या आपत्ति है। जब हमारा ईश्वर ही गृहत्यागी नहीं है, ब्रह्मचारी नहीं है, संन्यासी नहीं है तो फिर सुग्रीव का गृहस्थ होना उनकी दृष्टि में उनकी कोई कमी नहीं है।

श्रीहनुमानजी इतने अन्तर्ज्ञानी हैं कि यह जानते हुए कि अरे! यही तो वे सुग्रीव हैं जिन्होंने भगवान को भुला दिया था। सुग्रीव भले ही भूल गये परन्तु भगवान तो सुग्रीव को नहीं भूले न! तब तो सुग्रीव और भी बड़े हैं। हनुमानजी तो भगवान को याद करते हैं तथा भगवान सुग्रीव को याद करते हैं, ऐसी स्थिति में धन्य तो सुग्रीव हैं। इसलिए जब पहली बार श्रीहनुमानजी प्रभु से मिले तो प्रभु ने पूछ दिया कि ब्राह्मण देवता आप कौन हैं? जब श्रीहनुमानजी ने उलाहना देते हुए कहा कि क्या आप भूल गये? भूलने के सन्दर्भ में बहुधा भक्तों ने यह कहा है कि भगवान बड़े भूलने वाले स्वभाव के हैं। विनयपत्रिका में वह बड़ा प्रसिद्ध पद आता ही है जिसमें गोस्वामीजी जगजननी सीता से प्रार्थना करते हैं, 'कबहुक सुधि द्याइबी मेरी मातु जानकी' -माँ जानकी! आप कृपा करके कभी मेरी याद प्रभु को दिला दीजियेगा और याद दिलाना इसलिए आवश्यक है क्योंकि-'बानि बिसारन सील है मानद अमान की'- भगवान राम बहुधा भूल जाया करते हैं। उन्होंने कहा कि चार बातें प्रभु को याद नहीं रहतीं। मनुष्य का स्वभाव है कि अगर वह दूसरे का थोड़ा-सा भी उपकार कर दे तो उसको सर्वदा याद रहता है कि मैंने इसे यह दिया, इसी तरह से व्यक्ति का यह भी स्वभाव है कि दूसरा अगर थोड़ा सा भी बुरा कर दे तो वह यह नहीं भूलता है कि इस व्यक्ति ने

मेरे प्रति ऐसा व्यवहार किया और दूसरे के दोष पर भी व्यक्ति की दृष्टि बड़ी सजग रहती है तथा अपने दिये गये दान की याद भी व्यक्ति को बनी रहती है। पर प्रभु को इन चारों वस्तुओं की याद नहीं रहती। विनयपत्रिका के पद में गोस्वामीजी उन चारों बातों का स्मरण दिलाते हुए कहते हैं-

कबहुँक सुधि द्याइबो मेरी मातु जानकी।
बानि बिसारनसील है मानद अमान की।।
निज कृत हि अरिकृत अनहितौ दास दोष।
न सुरति चित रहत किए दान की।।

श्रीहनुमानजी ने कहा कि जब प्रभु ने मुझसे ही पूछ दिया कि तुम कौन हो? तो मैं समझ गया कि सचमुच ये तो बड़े भूलनेवाले स्वभाव के हैं। लेकिन धन्य हैं सुग्रीवजी महाराज! जिनसे भगवान राम ने इतना प्रेम किया कि उनके लिए अपना स्वभाव ही बदल दिया। यद्यपि सुग्रीव चार महीने प्रभु से मिलने नहीं गये। इस-प्रकार जीव भगवान को भूल गया तो उसने जो कुछ किया सो तो किया ही, पर भगवान तो बड़े भूलने वाले स्वभाव के हैं, उन्हें तो सुग्रीव की याद आनी ही चाहिए थी। लेकिन सुग्रीव ने भले ही प्रभु को भुला दिया हो पर प्रभु ने सुग्रीव को नहीं भुलाया।

एक महात्मा प्रज्ञाचक्षु (दोनों नेत्र नहीं) थे। एक बार कुछ लोग वृन्दावन में बिहारीजी के दर्शन करने जा रहे थे, उस भीड़ में वे भी सम्मिलित हो गये। जब लोगों ने उन्हें मन्दिर में देखा तो यह सोचकर लोगों को बड़ी हँसी आयी कि भाई! आँख वाले दर्शन करने आये हैं ये तो समझ में आता है किन्तु यह अन्धे होकर क्या करने आये हैं। अचानक किसी मुँहफट ने पूछ दिया कि महाराज! हम लोग तो दर्शन करने आये, समझ में आता है पर आपके पास आँखें तो हैं नहीं, इसलिए आप कैसे दर्शन करेंगे? किन्तु उन महात्मा ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि अरे भाई! मेरे पास तो आँखे नहीं हैं पर जिनके पास आया हूँ उसके पास तो आँखे हैं न। मैं भले ही उसे न देख पाऊँ लेकिन कम-से-कम वह तो मुझे देख लेगा और अगर वह मुझे देख ले इससे बढ़कर हमारे जीवन की धन्यता क्या होगी? प्रभु की याद तो हजारों व्यक्ति करते हैं लेकिन उस याद का उत्तर मिलता तो दिखाई देता नहीं है। भगवान राम जैसा भूलनेवाला भी अगर किसी

की याद करता है तो सुग्रीव की। भगवान राम ने अपना पूरा स्वभाव बदल दिया क्योंकि ये चारों ही बातें प्रभु में आ गयीं। हनुमानजी मानते हैं कि भगवान अपने दास के दोष की याद नहीं करते, इससे भगवान के स्वभाव का बड़प्पन तो प्रकट होता है पर इसमें दास के लिए हानि है कि लाभ? वस्तुतः दास की तो इसमें बड़ी हानि है। क्योंकि अगर भक्त का दोष भगवान नहीं देखेंगे तो उसका परिणाम होगा कि उनके मन में यह सोचकर स्वच्छन्द आचरण करने की इच्छा आयेगी कि जब भगवान दोष देख ही नहीं पाते है तो फिर हम मनमाना आचरण करें, मनमाना पाप करें। ऐसी स्थिति में भगवान अगर दोष देखें तो भक्त के लिए अधिक कल्याणकारी है और भगवान ने सुग्रीव के प्रसंग में सचमुच यही किया था।

भगवान ने लक्षमण से कहाः 'सुग्रीवहुं सुधि मोर बिसारी' अरे! सुग्रीव ने भी मुझे भुला दिया। प्रभु का तात्पर्य था कि मैं तो अपने को ही सबसे बड़ा भुलक्कड़ समझता था पर मेरा मित्र तो मुझसे भी बड़ा भूलने वाला निकला। प्रभु को अपना दिया गया दान याद नहीं रहता, अपना किया गया भला याद नहीं रहता, पर वह भी याद आ गया और क्या कहने लगे?

सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी।।

राज्य, सम्पत्ति तथा पत्नी पाकर उसने मुझे भी भुला दिया। उसके पश्चात् भगवान को दास में दोष भी दिखायी दिया और कहने लगे कि उस मूर्ख सुग्रीव का वध मैं उसी बाण से करुंगा जिस बाण से मैंने बाली का वध किया था। जब तक सुग्रीव को भगवान भूले रहे तब तक सुग्रीव के जीवन की धन्यता नहीं है पर जब भगवान श्रीराघवेन्द्र को सुग्रीव पर क्रोध आता है, तब यद्यपि प्रभु क्रोधा में दिखायी दे रहे हैं पर वस्तुतः वह क्रोध भूले हुए जीव को पुनः अपनी शरण में लाने की ही एक प्रक्रिया है। जब सुग्रीव भगवान राम के पास आये तो प्रभु ने सुग्रीव से यह नहीं पूछा कि आपने इतने दिनों तक मुझे कैसे भुला दिया। बल्कि सुग्रीव अपनी ओर से भगवान राम को सफाई देते हुए कहने लगे कि प्रभु! जिसके जीवन में काम, क्रोध लोभ न हो वह तो बिल्कुल आपके समान है। भगवान राम फिर भी नहीं बोले, तब सुग्रीव को ऐसा लगा कि मानों प्रभु यह कह रहे हैं कि भाई! मेरे मित्र को तो मेरे समान ही होना चाहिए। तो सुग्रीव ने कहा कि महाराज! मैं तो होना चाहता था। प्रभु ने जानना चाहा कि यदि होना चाहते थे तो फिर

हो क्यों नहीं पाये? तो उन्होंने तुरन्त कहा कि महाराज! होना तो चाहता था पर यह होना किसी व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है, क्योंकि- "यह गुन साधन तें नाहि होई। तुम्हारी कृपा पाव कोई कोई।।" यह गुण व्यक्ति की साधना से नहीं बल्कि आपकी कृपा से मिलता है, इसका मानों घुमाकर अर्थ यह हुआ कि प्रभु! आपने कृपा नहीं की होगी इसलिए मुझमें बुराई रह गयी। यह तो उलटी-सी बात हो गयी क्योंकि भूल करने के बाद भी सारा दोष भगवान के माथे मढ़ दिया कि आपने कृपा की होती तो मुझमें यह दोष कैसे रहता पर भगवान राम तो सुग्रीव की बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये तथा प्रसन्न होकर कहने लगे- तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई।। भाई! तुम तो मुझे बिलकुल भरत के समान प्यारे लगते हो। श्रीहनुमानजी से जब पूछा गया कि आप सुग्रीव के चरणों में कैसे झुकते हैं तो श्रीहनुमानजी ने कहा कि मैं तो श्रीभरतजी का परम भक्त हूँ और श्रीभरतजी महाराज को ही मैं सर्वश्रेष्ठ भक्त मानता हूँ। लेकिन स्वयं प्रभु जिन सुग्रीव को भरत के समान कहकर प्यार करते हैं उनके चरणों में यदि मैं प्रणाम करूँ तो इसमें आश्चर्य क्या है? और श्रीहनुमानजी की यह ऐसी व्याख्या है कि जिसमें विनम्रता तथा अभिमान का लेश नहीं है। बहुधा व्यक्ति का जाति अथवा आश्रम में अभिमान हो जाता है कि मैं इस जाति वाला हूँ तो दूसरे व्यक्ति सामने कैसे झुकूँ? अमुक आश्रम वाला व्यक्ति हूँ तो दूसरे आश्रम वाले के सामने कैसे झुकूँ? परन्तु श्रीहनुमानजी के चरित्र में आपको यह बात नहीं मिलेगी।

जब मेघनाद की शक्ति से आहत होकर लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये तब सुषेण वैद्य का निर्देश पाकर श्रीहनुमानजी संजीवनी बूटी लेने के उद्देश्य से द्रोण पर्वत पर पहुँचे थे। उस क्षेत्र विशेष को सिद्धाश्रम भी कहा जाता था। वहाँ हनुमानजी ने देखा कि गहन अंधकार में डूबे पर्वत के एक शिखर पर हरित-नील दिव्य प्रकाश जगमगा रहा है, साथ ही दिव्य गंध सारे क्षेत्र में व्याप्त है। उस शिखर पर जाकर उन्होंने जैसे ही संजीवनी लेने के लिए हाथ बढ़ाया, वैसे ही घुप्प अँधेरा हो गया और दिव्य गंध भी लुप्त हो गयी। साथ ही गंभीर ध्वनि हुई।

"रुक जाइए पवन पुत्र! हम संजीवनियों को हाथ मत लगाइए।"

हनुमानजी एक क्षण आश्चर्य-चकित रहे, फिर बोले, "संजीवनीरूपा दिव्य शक्तियों! आप तो जानती हैं कि मैं अपने लिए आपकी कामना नहीं करता, वरन्

अपने प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के छोटे भाई लक्ष्मणजी हेतु आपको ले जाना चाहता हूँ।"

"इसीलिए तो हम छुप गई हैं। यदि आपको हमारी आवश्यकता होती, तो हम सहर्ष आपकी सेवा करतीं। किन्तु लक्ष्मणजी को जीवन दान देने के प्रति हमारी कोई रुचि नहीं है और हमारी इच्छा के बिना कोई भी हमें यहाँ से नहीं ले जा सकता।"

"देवियों! आप तो परम दयामयी हैं। संसार के कल्याण के लिए आपका जीवन समर्पित है, फिर संसार का भार धारण करने वाले भगवान शेषनाग के अवतार लक्ष्मणजी के प्रति ऐसी अप्रसन्नता क्यों?"

"हमारी अप्रसन्नता अकारण नहीं है। इसके दो कारण हैं।"

"यदि आप मुझे अधिकारी समझती हों, तो उन कारणों को बताने की कृपा करें।"

"लक्ष्मणजी ने श्रद्धा-भक्ति-आस्था-विश्वास आदि सात्विक गुणों का हनन किया है। यह पहला कारण है।"

यह सुनते ही हनुमानजी स्तब्ध रह गये। दूसरे क्षण उनके मुँह से अविश्वास के भाव में निकला-"श्रीराम-श्रीराम" फिर उन्होंने विनीत होकर कहा, "ऐसा आप किस आधार पर कहती हैं।"

तब गंभीरता के साथ दृढ़ता मिश्रित भाव में वही वाणी सुनाई पड़ी "बिना आधार के हम ऐसी बात कैसे कह सकती हैं। देखिए हनुमानजी! यह विश्व जिन शक्तियों से निर्मित है, जिन तत्वों से इसका अस्तित्व है तथा जिसके आधार पर इसकी स्थिरता विद्यमान है, उनमें समर्पण, श्रद्धा, भक्ति और विश्वास का बहुत महत्वपूर्ण योग है....।

बीच में ही बात काटकर हनुमानजी बोले- "आपका यह सिद्धांत तो अकाट्य है देवियों! किन्तु इसमें लक्ष्मणजी का प्रसंग कहाँ से आ गया?"

"वह प्रसंग आप जानते हैं। फिर भी सुन लीजिए। शबरी ने अगाध श्रद्धा-भक्ति के साथ बेर तोड़कर फिर चख-चख कर अपने प्रभु श्रीराम को देने के लिए रखे थे। उनके आने पर उस प्रेम-विह्वला ने वही जूठे बेर श्रीराम को समर्पित कर दिये। साथ में लक्ष्मण को भी उन्हीं बेरों का एक दोना दिया। लक्ष्मण ने दोना तो ले लिया, किन्तु हर बेर को चखा हुआ देखकर उनके मन में ग्लानि

हुई और सोचा कि भीलनी के जूठे बेर कैसे खाऊँ? उधर श्रीराम स्वाद और मिठास की सराहना करते हुए बड़े प्रेम से बेर खा रहे थे। लक्ष्मण ने श्रीराम के डर से अपने मन का भाव प्रकट नहीं होने दिया और वे खाने का अभिनय करते रहे। वे एक बेर उठाकर मुँह तक ले जाते, फिर ओठों से स्पर्श कराये विना इस प्रकार बाहर फेंक देते, मानो गुठली फेंक रहे हों। इस प्रकार सारा दोना खाली कर दिया। अव आप ही वताइए पवनकुमार! बेचरी शबरी की श्रद्धा-भक्ति और उसके समर्पण का अनादर हुआ कि नहीं?"

बिना कुछ टीका-टिप्पणी किये हनुमानजी ने धीमे स्वर में पूछा,

"और दूसरा कारण?"

उत्तर में संजीवनियों की जो वाणी सुनाई पड़ी, उसमें गंभीरता के साथ थोड़ा स्वाभिमान भी मिला हुआ था। "हमारी अप्रसन्नता का दूसरा कारण यह है कि लक्ष्मण ने हमारा भी अपमान और तिरस्कार किया है।"

"वह कैसे?"

"वह ऐसे कि बेर भले ही संसार का एक साधारण: फल है, किन्तु है तो एक वनस्पति ही। वनस्पति होने के नाते वह हमारा सजातीय है। सब सजातीय समान होते हैं। उनमें कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। अतः बेर के तिरस्कार को हम अपना तिरस्कार समझती हैं। तब उस प्राणी को जीवन दान देने में हमारी रुचि कैसे हो सकती है, जिसने हमारा अनादर किया हो?"

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हनुमानजी ने तब एक दूसरा मार्ग निकाला। बोले, "दिव्य शक्तियों! श्रद्धा, भक्ति, आस्था और विश्वास निस्सन्देह महान गुण हैं, किन्तु क्षमा का महत्व इनसे कम नहीं है। भगवान विष्णु के वक्षस्थल पर महर्षि भृगु ने तो पाद-प्रहार किया था, फिर भी भगवान ने उन्हें क्षमा कर दिया। माता सबसे अधिक क्षमाशील होती है और आप मातृ-तुल्य हैं। अतः आपसे मेरा नम्र निवेदन है कि आप लक्ष्मणजी के अपराध को क्षमा करें और उन्हें जीवन दान देने की बात पर विचार करें।"

तब संजीवनियों की जो ध्वनि निकली, उसमें सौम्यता तथा मधुरता थी। वे बोलीं, "मारुतिनंदन! आप ज्ञानियों में अग्रगण्य और गुणों के निधान हैं। आपकी बात का कोई उत्तर हमारे पास नहीं है। फिर भी हमारे संतोष के लिए आपको

एक कार्य करना होगा।"

"अवश्य करूँगा देवियों! आप शीघ्र बताइए कि मुझे क्या करना है।"

"आप शबरी के आश्रम जाइए। वहाँ आपको बेर के बहुत से पेड़ दिखायी देंगे, जो श्रीराम द्वारा फेंकी हुई गुठलियों तथा लक्ष्मण द्वारा फेंके हुए बेरों से उगे हैं। उनमें कुछ पेड़ों की पत्तियाँस्निग्ध होंगी और कुछ की खुरदरी। यह भिन्नंता मन की भाव-भिन्नता से पैदा हुई है। आप दोनों प्रकार के पेड़ों की बहुत सी पत्तियाँ तोड़कर ले आइए। फिर उनका रस निचोड़कर हमारा और इस शिखर का सिंचन कर दीजिए। ऐसा करने पर हम तत्काल आपके सम्मुख प्रकट हो जायेंगी। हाँ एक बात और भी है।"

"आज्ञा कीजिए।"

"जब लक्ष्मणजी सचेत हो जायें, तो उनसे कहिएगा कि जिन बेरों की उन्होंने उपेक्षा की थी, उनकी पत्तियों का भी उनके जीवनदान में किंचित सहयोग है।"

"अवश्य कहूँगा। आज्ञा मिले तो मैं शबरी के आश्रम की ओर प्रस्थान करूँ।"

"अच्छा, जाइए। आपका कल्याण हो।"

वायुवेग से गमन करनेवाले हनुमानजी पलक झपकते शबरी के आश्रम पर जाकर दोनों प्रकार के वृक्षों को तत्काल पहचान गये। दो क्षण विचार करने के बाद उन्होंने ८४ स्निग्ध पत्तियाँ तोड़ी और ३३ खुरदरी। ऐसा निर्णय शायद उन्होंने इसलिए किया कि संसार में ८४ लाख योनियाँ (जीवों के प्रकार) कही गयी हैं और स्वर्ग के देवताओं की संख्या ३३ कोटि बताई गई है। अतः उन्होंने भूलोक और स्वर्गलोक के हित-साधन की दृष्टि से कुल ११७ पत्तियाँ तोड़ी और फिर जिस गति से आये थे, उसी गति से लौट पड़े।

वस्तुतः ११७ पत्तियाँ तोड़ने का रहस्यमय कारण कुछ और ही था। श्रीहनुमानजी ज्योतिष शास्त्र में परम निपुण थे। वे किसी भी समस्या का समाध ाान ज्योतिष शास्त्र के अनुसार करने में पूर्ण सक्षम थे। इस अवसर पर उन्होंने ज्योतिष विज्ञान की एक शाखा 'अंक ज्योतिष' का प्रयोग किया।

सीताजी की खोज में लंका भ्रमण के समय श्रीहनुमानजी ने यह बात भलीभाँति देख-समझ ली थी कि रावण महाबलशाली होने के साथ-साथ प्रकाण्ड शास्त्रविद् भी है। यही नहीं, वह एक महान धुरन्धर तांत्रिक, मांत्रिक और यांत्रिक

भी है। इसीके बल पर उसने नवग्रह, त्रिशक्ति, पंच महाभूत, दस दिक्पाल, बारह आदित्य, आठ वसु, उन्चास मरुत, इन्द्र, अग्नि, वरुण, पवन आदि समस्त देवता- इन सबको अपने वश में कर रखा था। इन शक्तियों का स्वातंत्र्य लगभग समाप्तप्राय था। सारी शक्तियाँ रावण के संकेत पर, उसी के अनुकूल कार्य करती थीं। उसके प्रतिकूल जाने का साहस किसी में नहीं था। इसी कारण से कोई भी व्यक्ति, किसी भी साधना के द्वारा, रावण का अहित करने में समर्थ नहीं था।

काँटे से काँटा निकलता है-इस सिद्धांत के अनुसार हनुमानजी ने महान तांत्रिक रावण की युक्ति की काट करने के लिए अंक ज्योतिष का प्रयोग किया। अंकों में सबसे बड़ा अंक ९ होता है। तोड़ी गई पत्तियों का योगफल ८४+३३=११७ होता है। इस संख्या के तीनों अंकों का योग ९ है। फिर ८४ और ३३ के सब अंकों को जोड़े, तो ८+४+३+३=१८ होगा, जो ९ का दोगुना है। १८ के दोनों अंकों का योग भी १+८=९ होता है। इस प्रकार ८४ स्निग्ध तथा ३३ खुरदरी पत्तियाँ तोड़कर हनुमानजी ने रावण पर दोहरा प्रहार किया।

सिद्धाश्रम पहुँचकर हनुमानजी ने पत्तियों को निचोड़कर जैसे ही रस का सिंचन पर्वत-शिखर पर किया, वैसे ही पहले जैसा दिव्य प्रकाश जगमगा उठा। वही दिव्य गंध सर्वत्र व्याप्त हो गई और सभी प्रकार की संजीवनियाँ उमंग से लहलहाने लगीं।

यह देखकर श्रीहनुमानजी आनन्दमग्न हो गये। उसी समय हर्ष तथा स्नेहपूरित वाणी ध्वनित हुई- "हे पवनपुत्र! आपके इस कृत्य से हम सब पूर्ण संतुष्ट हो गयीं।"

"यह मेरा सौभाग्य है। अब विलम्ब करना उचित नहीं है। आज्ञा दीजिए, मैं आपको ग्रहण करूँ।"

"एक क्षण रुकिए अंजनी कुमार! हमारे मन की अभिलाषा सुनिए।"

"कहिए"।

"देखिए, यहाँ अगणित दिव्य औषधियाँ हैं, जिनमें हम चार प्रमुख हैं- विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी, संधानी, और मृतसंजीवनी। इनके प्रयोग से शरीर में चुभे अस्त्र-शस्त्र अपने आप शीघ्र निकल जाते हैं। इससे शरीर का वर्ण (रंग) पहले-जैसा कान्तिमान हो जाता है। इसके द्वारा शरीर की टूटी हड्डियाँ जुड़ जाती

हैं और घाव शीघ्र भर जाते हैं। यह मृत प्राणी को जीवित कर देती है। हम सबकी लालसा प्रभु श्रीराम का दर्शन करने की है।"

"अहा! यह तो और भी सुन्दर बात है। मैं सबको ले चलूँगा।"

"किन्तु इतनी सारी औषधियों को आप हाथ में सँभालेंगे कैसे? अच्छा होता, यदि आप इस पर्वत-खण्ड को ही ले चलते।"

"प्रभु की कृपा से इस समूचे पर्वत को ले चलने में मुझे कोई कठिनाई नहीं होगी।"

"हम जानती हैं। महावीर! किन्तु समस्या प्राकृतिक नियम की है। जब कोई वस्तु आकाश में तीव्र गति से चलती है या वहन की जाती है, तब वायुमण्डल में घर्षण उत्पन्न होता है और इससे असंतुलन पैदा होता है। असंतुलन के निवारण के लिए आवश्यक है कि वह वस्तु भार-मुक्त हो। भार-मुक्त होने से उस पर गुरुत्वाकर्षण शक्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। आप तो अणिमा-गरिमा आदि आठों सिद्धियों के स्वामी हैं और भार-मुक्त होने की विद्या जानते हैं, तभी तो लंका से उड़कर यहाँ तक आ सके। पर्वत सहित हम सब भी भार-मुक्त हो जाती हैं।"

"तो फिर शीघ्रता कीजिए, भार-मुक्त हो जाइए।"

कुछ समय तक कोई ध्वनि नहीं आयी। वातावरण में पूर्ण शांति थी। हनुमानजी को उतावली थी। अतः मौन भंग करते हुए उन्होंने कहा, "आपने कोई उत्तर नहीं दिया।"

"अतुलित बल के धाम हनुमानजी! हमने पर्वत सहित अपने आपको भार-मुक्त कर लिया है। अब आप प्रभु श्रीराम का दर्शन कराने के लिए पर्वत सहित हमें ले चलिए।"

श्रीहनुमानजी ने संजीवनी वाले पर्वत-खण्ड को उठाने से पूर्व अत्यन्त आदर एवम् भक्ति सहित उसकी परिक्रमा करनी आरंभ की। तब उन्हें आभास हुआ मानो उनके शरीर में अपार शक्ति तथा स्फूर्ति का संचार हो गया है और मन असीम उत्साह से पूर्ण है। कोई भी सत्कर्म आरंभ करते समय ऐसे लक्षणों का प्रायः प्रकट होना स्वाभाविक है।

एक क्षण के उपरान्त हनुमानजी ने नेत्र खोले, तो देखा कि लक्ष्मणजी जहाँ थे, वहाँ अर्द्धनारीश्वर रूप में भगवान शंकर त्रिशूल लिए हुए सुशोभित हैं। तब

हनुमानजी के दोनों हाथ अपने आप जुड़ गये और उन्होंने श्रद्धापूर्वक नतमस्तक होकर शंकरजी को प्रणाम किया।

शंकरजी ने मुस्कारते हुए कहा, "वायुनंदन! आश्चर्यचकित क्यों हो रहे हो? सर्वेश्वर प्रभु श्रीराम की लीला विचित्र है। उसे देख-सुनकर सभी मोहित होते हैं, तुम तो 'ज्ञानिनामग्रगण्यं-बुद्धिमतांवरिष्ठं' हो। अपने मूल स्वरूप को स्मरण करो। जो मैं हूँ, वही तुम हो और जो तुम हो, वही मैं हूँ। मुझमें-तुममे कुछ अन्तर नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि संजीवनियों को ले जाने के उत्साह तथा उल्लास के कारण तुम्हारी विचार-धारा भौतिक स्तर पर उतर गई है। तनिक सोचो, संपूर्ण सृष्टि की उद्भव-स्थिति-संहारकारिणी जगज्जननी आदि शक्ति सीता माता को दुष्ट भाव से स्पर्श भी करने की शक्ति किसमें है? फिर तुच्छ रावण द्वारा उनका अपहरण प्रभु की लीला नहीं, तो और क्या है? इसी प्रकार धरा को धारण करनेवाले शेषावतार लक्ष्मण किसी राक्षस के प्रहार से मूर्छित हो सकते हैं क्या? अब प्रभु श्रीराम की बात लो। वे सच्चिदानंद स्वरूप हैं। माया, सत-रज-तमगुण, राग, द्वेष, हर्ष, विषाद आदि दोषों से वे रहित हैं। फिर भी राज-सुख त्यागकर वन-पर्वत में विचरण करते हुए सर्दी-गर्मी-वर्षा का कष्ट सहन कर रहे हैं। क्यों? उन्होंने मानव-शरीर धारण किया है। अतः मर्यादा पुरुषोत्तम की भूमिका का निर्वाह करते हुए संसार में मानव-जीवन का आदर्श स्थापित करना है। अपनी भगवत्ता का प्रदर्शन वे नहीं करना चाहते। यही प्रभु द्वापर में जब श्रीकृष्ण रूप से अवतरित होंगे, तब पग-पग पर मर्यादा का उल्लंघन करने में वे तनिक भी नहीं हिचकेंगे। यही नहीं, वे अपनी भगवत्ता का उद्घोष भी करेंगे। तब भगवान श्रीकृष्ण की प्रभुता एवम् सर्वशक्तिमत्ता देखकर समस्त ऋक्षि-मुनि तथा देवगण इस सिद्धांत की घोषणा करेंगे कि 'सर्व देव प्रति कृतं पूजा वासुदेव स्वयम ग्रहणाति।' फिर ऐसे प्रभु की लीला में आश्चर्य क्या करना कि जो श्रीराम लंका में मूर्छित लक्ष्मण के पास शोकमग्न बैठे थे, वे यहाँ कैसे दिखायी पड़े।"

श्रीहनुमानजी कुछ कहें, इसके पहले अर्द्धनारीश्वरी, आद्याशक्ति, भगवती पार्वती बोलने लगीं, "हे अंजनीकुमार! यद्यपि अणिमा-गरिमा आदि सिद्धियाँ तुम्हें पहले से ही प्राप्त हैं तो भी तुम्हारी सिद्धियों को सुदृढ़ करने की दृष्टि से मैं तुम्हें वरदान देती हूँ कि तुम अपने शरीर को जब चाहो तब अति सूक्ष्म, स्थूल,

भारहीन, महाभारयुत, लुप्त या प्रकट कर सकते हो। साथ ही मेरे इस निर्देश को ध्यान में रखना कि इन सिद्धियों का उपयोग अपने लिए न करके प्रभु की सेवा या भगवद्भक्तों का संकट दूर करने के लिए वर्तमान अथवा भविष्य काल में करना। अच्छा, अब मैं तुम्हारे मस्तक पर विजयश्री के रूप में सिन्दूर का तिलक लगाती हूँ।"

ऐसा कहकर भगवती ने अपनी माँग में लगे सिन्दूर से थोड़ा सा सिन्दूर निकाला और हनुमानजी को तिलक कर दिया। तब आकाश से पुष्प-वर्षा हुई तथा विभिन्न वाद्यों की मधुर ध्वनि गूँजने लगी। श्रीहनुमानजी ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक जगज्जननी आद्याशक्ति के पावन चरण-कमल स्पर्श किये। अर्द्धनारीश्वरी ने कहा, "हनुमान! अब से सदैव तुम सिन्दूर से पूजित होंगे, सिन्दूर तुम्हें बहुत प्रिय होगा, तथा प्रत्येक नारी सिन्दूर के माध्यम से अपने पति का आयु-वर्धन करती रहेगी।"

अर्धनारीश्वरी, आद्याशक्ति, भगवती पार्वती ने श्रीहनुमानजी के मस्तक पर विजय श्री का टीका लगाया और पवनपुत्र ने माता के चरण स्पर्श किये। इसके उपरान्त हनुमानजी ने समय का अनुमान करने के लिए ऊपर आकाश की ओर देखा। वे यह जानकार आश्चर्य में डूब गये कि समय लगभग वही है, जो लंका से चलते समय था। वे सोचने लगे कि मायावी राक्षस कालनेमि के चक्कर में काफी समय बीता, वहाँ से उड़कर यहाँ पहुँचने में भी कुछ समय लगा, फिर संजीवनियों के आदेश से बेर की पत्तियाँ लाने के लिए शबरी-आश्रम गया और आया। किन्तु समय वही का वही है। हनुमानजी के मन में यह प्रश्न घुमड़ने लगा कि क्या समय स्थिर हो गया? शास्त्र कहता है कि समय एक पल के लिए भी नहीं रुकता।

अन्तर्यामिनी, महाकाल-भामिनी, जगदंबा ने हनुमानजी के मन की ऊहा-पोह को जान लिया। उन्होंने ममतामयी वाणी में कहा, "क्या सोच रहे हो वत्स? समय की बात सामान्य बुद्धिवालों के लिए है, तुम जैसे महाज्ञानियों के लिए नहीं। तुम सर्वज्ञ हो, सर्वगुणसम्पन्न हो तथा सर्वसमर्थ हो। बचपन में ऋषियों द्वारा शाप दिये जाने के कारण भोले बने रहते हो। अच्छा सुनो, मैं तुम्हें समझाती हूँ। योग-योगेश्वर भगवान शिव अथवा सच्चिदानंद श्रीसीताराम अथवा सर्वेश्वर श्रीराधाकृष्ण अपने भक्तों के लिए जब कोई लीला या खेल करते हैं, तब काल प्रकृति अपना अस्तित्व खो देती है। प्रकृति के शास्त्रीय नियमों का प्रकृति-नियामक के

सामने कोई महत्व नहीं रह जाता। सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की गति रुक जाती है। आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी इन पंच महाभूतों को अपनी स्थिति का विस्मरण हो जाता है। हे मारुति! तुम भगवान श्रीसीताराम के परम कृपापात्र हो। आशा है, तुम सब समझ गये होगे। अब अपने विवेक के अनुसार आगे का कार्य सम्पन्न करो।"

इतना कहकर भगवान अर्द्धनारीश्वर अंतर्ध्यान हो गये। हनुमानजी ने श्रद्धापूर्वक शीश झुका लिया। आगे के घटनाक्रम की चर्चा अन्यन्त्र की जायेगी।

●●●

अध्याय–सात

श्रीहनुमानजी की लीलाओं का उद्‌भव और विकास

श्रीरामदूत पवनात्मज श्रीहनुमानजी की गाथाओं में किंवा अनन्त कथायें हैं। उनका कोई पार नहीं पा सकता है। उनके चरित्र के विभिन्न पहलुओं पर विद्वान सुजन विशद विचार करते हैं। यहाँ उनके एकाध प्राचीन एवं प्रसंगों की अंशभूता स्वर्ण कणिकायें दर्शाने का प्रयत्न किया गया। जिससे सुजनों की, श्रद्धालुओं की निष्ठा को दृढ़ता प्राप्त होः-

साहिब से सेवक बड़ो, जो निज धर्म सुजान।
राम बांधि उतरे उदधि, लांधि गये हनुमान।।

इस दोहे में अपने अनुपम अलौकिक सेवा भाव के कारण श्रीहनुमानजी को जो सिद्धि प्राप्त हुई- उसका वर्णन है। सेवाभाव की यह सिद्धि कि सेव्य स्वामी श्रीराम को तो समुद्र पर पुल बनवाकर पार जाना पड़ा परन्तु श्रीराम के सेवक श्रीहनुमान स्वामी के प्रताप को हृदय में धारण कर एवं रामनाम को मुख में रखकर उसी विशाल सागर को सहज में ही लांघ गये। अहा ! ऐसे श्रीहनुमानजी का स्मरण, भजन कर क्या हम भी इस संसार-सागर को सरलतापूर्वक पार नहीं कर सकते?

श्रीहनुमंतलालजी का समग्र जीवन सेवाभक्ति का ही स्वरूप है। उनके द्वारा सेवा में पूर्ण समर्पण, दिव्य कौशल एवं सरलता, सरसता का दर्शन होता है। कहाँ क्या करना है, कैसे करना, क्यों करना, जिससे स्वामी की प्रसन्नता पूर्ण हो जाये- यह श्रीमारुतनन्दन खूब समझते हैं।

अवधपुरी के भव्य राजभवन में स्वर्ण श्रृंखलाओं से बंधा चंदन पाटी का सुन्दर झूला पड़ा हुआ है जिस पर रेशमी आच्छादन है। अनूपरूप भगवान श्रीरामचन्द्र जगज्जननी अलौकिक शोभामयी श्रीजानकीजी के साथ उस झूले पर विराजमान झूला-झूल रहे हैं। पवनकिशोर झूला झुला रहे हैं। श्रीसीता-रामजी ने परस्पर नेत्रों के संकेत के द्वारा कुछ वार्ता की। श्रीहनुमानजी तो मस्त थे सेवाभाव में और मुख से अनवरत मधुरस्वर में 'सीताराम' 'सीताराम' जप रहे थे, सो वे स्वामी स्वामिनी की संकेत वार्ता नहीं समझ पाये। संकेतों में यह बात हुई कि

श्रीकिशोरीजी ने कहा "श्रीहनुमान मुझे बहुत चाहता है।" श्रीराघवेन्द्र बोले नहीं कि मुझे अधिक चाहता है। निश्चय हुआ कि आज इस बात की परीक्षा हो जाये कि किसे अधिक चाहते हैं पवनसुत। रामभद्र बोले- आंजनेय प्यास लगी है। श्रीकिशोरी जी बोलीं- गर्मी बहुत हो रही है पंखा करो। श्रीरामचन्द्र बोले- पहले पानी ले आओ। सीताजी बोलीं- पहले पंखा करो। अब जब युगल स्वामी का आदेश सुना तो श्रीहनुमान ने विचार किया कि झूला झूलने के आनन्द में भी व्यवध ान न हो। सो देखिये उनका चातुर्य कि यहाँ झूले को भी धक्का दे रहे हैं वहां एक पल में बाहु बढ़ाकर एक हाथ में जल भरा पात्र ले आये दूसरा हाथ बढ़ाकर पंखा ले आये। अब जहां थे वहीं के वहीं प्रभु के सामने खड़े किशोरीजी को पंखा झल रहे हैं एवं श्रीराघवेन्द्र को जल पिला रहे हैं। सो दोनों ही प्रसन्न, दोनों ही संतुष्ट। कमल नयनों की सुधाभरीचितवनि से वे अपने लाड़ले श्रीहनुमान पर कृपा वर्षा कर रहे हैं। श्रीअन्जनानन्दन के बहुत से अन्य कथा प्रसंग हैं जिससे उनका सेवा चातुर्य, भावभक्ति, कार्य कौशल आदि प्रकट होते हैं-प्रभु श्रीराम के अवतारकाल में।

श्रीमारुतात्मज श्रीसीताराम के आर्शीवाद स्वरूप श्रीराम के अवतारकाल के पश्चात् आज भी सिद्धसन्तों के रूप में, भक्तजनों को यथायोग्य दर्शन देते हैं तथा उनकी मनोकामना पूर्ण करते हैं। इन सन्तों तथा उनकी ऐसी कथा-वार्ता भी सुजनों की श्रद्धा का पोषण, भक्तों की भक्ति का वर्धन एवं संतजनों को भक्ति की शक्ति प्रदान करती हैं। लगभग १०० वर्ष पूर्व श्रीअयोध्याजी में एक परमभक्त एवं विद्वान पं. रामबल्लभाशरणजी महाराज हुये हैं जो जानकीघाट पर रहा करते थे। वे बिहार प्रान्त के थे। उन्होंने युवावस्था पर्यन्त कोई शिक्षादि प्राप्त नहीं की थी। एक रामानुरागी विद्वान महात्मा का का आशीर्वाद उन्हें प्राप्त हुआ। उन्होंने इनसे पूछा कि तुम क्या चाहते हो? पं. रामबल्लभाशरणजी ने विद्या एवं श्रीराम भक्ति की प्राप्ति की अभिलाषा प्रकट की। उन दयालु संत ने उन्हें अंजनी किशोर के स्मरण का विधान बतलाया। पंडितजी ने परम श्रद्धा एवं विधिपूर्वक ऐसा ही किया। श्रीहनुमानजी ने उन्हें दर्शन दिया और कहा ३ दिन के अन्दर तुम जितने ग्रन्थ देख लोगे वे सब तुम्हारे स्मृतिगम्य हो जायेंगे, उनका अभिप्राय भी तुम्हारे हृदय में प्रकट हो जायेगा और साथ ही श्रीरामभक्ति का वरदान भी दिया।

पंडितजी अविलम्ब काशी रवाना हो गये और वहाँ के बड़े-बड़े ग्रंथालयों के ग्रंथों का दर्शन करके आ गये। इस प्रकार बिना विधिवित् विद्याध्ययन किये ही वे कितने बड़े रामभक्त एवं विद्वान हो गये श्रीहनुमंतलाल की कृपा से, यह तो उनका सत्संग करने वाले को ही समझ में आता था। उस समय सारा संत समाज विद्वत्जन एवं बड़े-बड़े सम्माननीय सज्जन भी उनका अभिनंदन वंदन किया करते थे।

अभी कुछ वर्षों पूर्व रामलीन हुए सुप्रसिद्ध रामायणी पंडित रामकिंकर उपाध्यायजी महाराज लगभग ३ वर्ष पूज्यवाद उड़िया बाबाजी के आश्रम में वृन्दावन में ब्रह्मलीन सतुगुरु स्वामी अखंडानन्दजी सरस्वती महाराज के सान्निध्य में रहे। एक बार हरिद्वार के स्वर्गाश्रम में वे स्वामीजी के साथ निवास कर रहे थे। पूज्यपाद स्वामीजी के ही शब्दों में :- 'एक दिन कथा व्यास यह आग्रह करने लगे कि मुझे भगवान का दर्शन होना चाहिये। मैंने समझाया कि भगवान किसी के आधीन नहीं होते कि कोई जब चाहे तब उनका दर्शन करा दे। उसके लिये दीर्घकाल व्यापी साधनाभ्यास एवं प्रभु की अकारण करुणा के अवतरण की अपेक्षा होती है। वे निराश होकर रूठ गये और हमसे थोड़ी दूर पर जाकर कमरे में व्याकुल होकर रोने छटपटाने लगे। उनका कहना था कि जब भगवत्प्राप्ति की आशा ही टूट गयी तो अब जी कर क्या करूंगा? घंटे दो घंटे के बाद दण्डी स्वामी ने मुझसे कहा कि ब्राह्मण मर जायेगा, जाकर समझाओ। मैंने जाकर उनका सिर गोद में ले लिया, आंसू पोंछने लगा, समझाने लगा, आश्वासन देने लगा। थोड़ी ही देर में उस कमरे के अन्दर एक स्वर्ण वर्ण वानर अचानक प्रकट हो गया। हाथों में वर अभयमुद्रा थी। वह दो पांवों पर खड़ा था। मेरे मुंह से निकला 'जय जय हो !' कथा व्यास के नेत्र खुले। सहसा उठकर वानर के चरणों में दण्डवत किया और वे उसमें से एक बेल का फल उठाकर चलते बने। कहना न होगा कि तबसे कथा-व्यास पं. रामकिंकर उपाध्याय जी महाराज के जीवन में एक अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया।"

जबलपुर के एक श्रीहनुमान मन्दिर के पुजारीजी का एकमात्र पुत्र गम्भीररूप से बीमार हो गया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि अब इसके प्राण ही चले जायेंगे सो मन्दिर में स्थित श्रीहनुमानजी से प्रार्थना की कि 'प्रभु ! हमारे पुत्र को अच्छा कर दीजिये। हम ५०० ब्राह्मणों को भोजन करायेंगे। प्रार्थना पूर्ण होते ही श्रीहनुमानजी के विग्रह पर चढ़ा हुआ एक फूल टप्प से नीचे गिर पड़ा। पुजारीजी

उसे उठा ले आये और पुत्र के सिरहाने रख दिया। श्रीहनुमान कृपा से पुत्र पूर्ण स्वस्थ हो गया किंतु वे ब्राह्मण भोजन का अपना वचन पूरा न कर सके। इसमें जो भी कारण हो सो श्रीहरि इच्छा। कालान्तर में वह मन्दिर उनके हाथ से निकल कर एक दूसरे पंडित के हाथ चला गया जो अभी भी वहां जमे हुए हैं। यह लगभग ३० वर्ष पूर्व की सत्य घटना है।

श्रीहनुमानजी के विषय में यह बात भी प्रसिद्ध है कि वे रामभक्तों की किंवा राम नाम का जप, सुमिरन, कीर्तन करने वालों की स्वयं ही रक्षा करते हैं यथा (श्रीहनुमान चालीसा) **'साधु संत के तुम रखवारे।'** एक प्रतिष्ठित ब्रह्मलीन महात्मा ने यह कथा प्रसंग वर्णित किया है कि किसी ग्राम में एक श्रीराम के परमभक्त सिद्ध संत पधारे। ग्रामवासी उनकी भक्ति, ज्ञान, रहनी-सहनी से बहुत प्रभावित हुए। सभी ग्रामवासी उनके निकट जाकर लाभ उठाते। उनके सत्संग के प्रभाव से बहुत से दुर्जन सुजन बन गये। दुर्गुणी सद्गुणी हो गये। बहुत से ग्रामवासियों ने उनसे दीक्षा ले ली। एक साधारण अत्यधिक कर्मव्यस्त किसान उनके सत्संग में नहीं जाता था। अन्य लोगों के बारम्बार कहने से वह भी एक दिन सत्संग में गया तथा उनसे बहुत प्रभावित भी हुआ। संत उसके कल्याण की इच्छा से ओत प्रोत हो उससे बोले 'नित्य रामनाम का जप किया करो'। वह बोला महाराज ! समय ही नहीं मिलता कब रामनाम जपें? संत बोले अपनी दिनचर्या बताओ, अब उस कृषक ने अपनी सारी दिनचर्या बतलायी और बोला 'महाराज ! आप ही बतलाओ मेरे पास कहां समय है? राम नाम जपने के लिये। महात्मा बोले 'अच्छा तो तुम शौच क्रिया के लिये दिशा मैदान तो जाते ही होगे सो ज्यों ही पानी का लोटा उठाओ तब से लेकर स्नानादि पर्यन्त 'राम राम' का जप किया करो।' किसान ने पूछा- महाराज! क्या शौच क्रिया के समय भी राम राम कहें? महात्मा ने कहा- बेशक बेधड़क ! श्रीराम नाम जप में शुद्धि अशुद्धि का प्रश्न ही नहीं है। वह तो हर स्थिति में, हर स्थान पर, हर समय किया जा सकता है।" किसान यह उपदेश प्राप्त कर अपने घर लौट आया।

अब वह कृषक संतगुरु के कथनानुसार नित्य 'राम राम' का जप करने लगा। एक दिन ग्राम के बाहर जंगल में जब शौच क्रिया करते हुए ही 'राम-राम' कह रहा था वहां से संयोगवश श्रीहनुमानजी जा रहे थे तो उन्होंने यह देखा कि

यह किसान हमारे स्वामी का नाम ले रहा है तो उन्हें क्रोध आ गया। उन्होंने उसे एक थप्पड़ लगाया और बिना यह देखे कि क्या हुआ- आगे चले गये। अब जब वे राघवेन्द्र सरकार की सेवा में उपस्थित हुए तो प्रभु के मुखारविन्द पर दृष्टि जाते ही सन्न रह गये। प्रभु के सुंदर सुकोमल कपोल पर पांच उंगलियों के उभरे हुए चिन्ह् स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे। श्रीहनुमानजी बोले 'प्रभु ये क्या हो गया, ऐसा दुस्साहस किसने किया?'' वे आवेशित हो उठे। प्रभु कहते हैं 'हनुमान! मत पूँछो।' जब श्रीहनुमानजी ने बारम्बार आग्रह किया तो प्रभु बोल उठे 'उसका नाम है हनुमान।' श्रीहनुमानजी को काटो तो खून नहीं। किसी तरह बोले 'दीनबन्धु यह कैसे?' भगवान बोले-'हनुमान ! आज प्रातः का स्मरण करो ! वह कृषक हमारा नाम ले रहा था। तुमने उसे एक थप्पड़ मारा। तुम्हारे थप्पड़ की मार से रावण जैसा महाबली मूर्छित हो गया था, तब वह कृषक क्या तुम्हारा तमाचा सह सकता था? वह तो बीच में मैं आ गया सो वह बच गया। हमारा तुम्हें यह आदेश है कि कोई कैसे भी शुद्धि अशुद्धि में, किसी भी स्थान पर, किसी भी समय में श्रीराम नाम जपे तो तुम उसकी रक्षा करो''। श्रीहनुमानजी ने करबद्ध हो चरणों में शीश रखा। तभी से वे राम नाम जापकों की रक्षा में और भी सजग हो गये।

संत तुलसीदासजी ने 'मानस' के नाम महिमा प्रसंग में कलिकाल को कपट शिरोमणि कालनेमि की उपमा देते हुए श्रीरामनाम से बुद्धिमान समर्थ श्रीहनुमान का तादात्म्य स्थापित किया है-यथा 'कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू।।' श्रीहनुमानजी ने श्रीरामनाम के जप के द्वारा ही भगवान श्रीराम को अपने वशीभूत कर रखा है यथा 'सुमिरि पवन सुत पावन नामू। अपने वस करि राखे रामू।।' श्रीराम नाम लेते हुए ही उन्होंने सारे असंभव कार्य संभव दिखाये और नाम महिमा को भुवन में प्रतिष्ठित किया।

इस कठिन कलिकाल में भी उनकी अलौकिक लीला भक्तों को, साधकों को संतों के रूप में सन्तों के सत्संग में प्रत्यक्ष होती रहती हैं। पूर्ण पवित्रतापूर्वक, ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए नियम संयम एवं दृढ़ निष्ठा से किये हुए उनके अनुष्ठान मनवांछित फल प्रदान करते हैं। श्रीराम नाम जापकों, श्रीराम भक्तों के लिये तो वे कल्पवृक्ष ही हैं। उन्हें श्रीरामनाम कीर्तन एवं श्रवण से अत्यन्त प्रेम है। तत्संबंधी यह श्लोक लोक प्रसिद्ध है:-

यत्र यत्र रघुनाथ कीर्तन तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्ण लोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्।।

श्रीहनुमानजी को प्रसन्न करने की सबसे सरल प्रक्रिया यह है कि प्रीतिपूर्वक भगवान श्रीराघवेन्द्र राम के नाम का कीर्तन किया जाय या कराया जाय। यथा-'श्रीराम जय राम जय जय राम।' अथवा 'श्रीसीताराम सीताराम सीताराम सीताराम' किंवा 'सर्वशक्तिमते परमात्मने श्रीरामाय नमः।' या अन्य कोई कीर्तन ध्वनि जो स्वयं को प्रिय हो और उस समय ऐसी ध्यान-भावना की जाये कि श्रीहनुमानजी सामने विराजमान हुए हमारा संकीर्तन श्रवण कर प्रसन्न हो रहे हैं एवं अपना अभयपाणि उठाकर आर्शीवाद दे रहे हैं। यदि यह भी कठिन मालूम पड़े तो श्रीहनुमानजी की ऐसी किसी भव्य तस्वीर की स्थापना करके उसमें ही ध्यान केन्द्रित करके कीर्तन करें। फिर देखिये उनकी कृपा की अनुभूति कैसे नहीं होती है? वे तो आपके समग्र जीवन का ही भार स्वयं अपने ऊपर ले लेंगे।

एक अवसर पर ब्रह्मवेत्ता श्रीदेवरहाहंस बाबा ने श्रीहनुमानजी के विषय-प्रसंग में बड़ी रहस्यमयी मुद्रा में कहा- "बच्चा! ग्यारह में ग्यारह - बाबा तेरा न्यारा।" बाबा के इस सम्बोधन तथा अन्य अनेक अनुभवों से प्रेरित होकर ही इस ग्रन्थ की रचना को आगे बढ़ाते हुए मैं कहना चाहुंगा कि- सम्पूर्ण जगत् में परब्रह्म परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी का अस्तित्व नहीं है, स्थावर-जंगम रूप में जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है वह सब उस ब्रह्म का ही लीला-विलास है, चराचर के समस्त प्राणी उस एक परमेश्वर के ही अंश रूपी अवतार हैं, अंश की न्यूनाधिकता के अनुपात से ईश्वर, देवता, मनुष्य, पशु आदि कोटियों का विभाजन होता है, इनमें जो लोकोत्तर शक्ति सम्पन्न होते हैं, वे ईश्वर, देव आदि नाम से अभिहित (पहचाने गए) हुए और जो केवल लौकिक बल-बुद्धि से सम्पन्न हुए वे मनुष्य, पशु आदि प्राणी कहलाए। सत्वगुण सम्पन्न परमात्मा के अवतारों की कोई संख्या नहीं- वे संख्यात हैं। सत्वगुण सम्पन्न शक्तियां दो कारणों से अवतरित होती हैं-धर्म संस्थापना के उद्देश्य से या दृष्ट संहार के प्रयोजन से। प्रभु अपनी लीला प्रयोजन के अनुसार कुछ को लोक में अभिव्यक्त करते हैं, कुछ को परोक्ष रखते हैं तथा कुछ को अपने में ही अन्तर्निहित रखते हैं। अभिव्यक्त शक्तियों में से कुछ ईश्वरीय शक्तियां (ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, हनुमान

आदि) तथा कुछ देवशक्तियां (वायुदेव, अग्निदेव, जलदेव आदि) नित्य एवं स्थायी होती हैं तथा कुछ कार्य कर पुनः परब्रह्म में तिरोहित हो जाती हैं।

रुद्रावतार पवनत्रय श्रीहनुमान अपनी मनोजवता, अखण्ड जितेन्द्रियता, अतुलनीय बल क्षमता एवं ज्ञान-भण्डार से परिपूर्ण, दिव्य गुणों से सम्पन्न होने के कारण ईशत्व की श्रेणी में स्थापित हुए। इन्हें नित्य स्थायी (चिरंजीवी) माना गया। ईश्वरलीला सदैव ही रहस्यपूर्ण हुआ करती है। उनकी लीलाओं को तो योगी, ऋषि, मुनि एवं देवगण भी नहीं समझ सकते फिर कामादि दोषों से युक्त जीव उसे कैसे समझ सकते हैं? जब धर्म संस्थापना के लिए प्रभु अवतार लेते हैं तो वे धर्मानुकूल प्राणी जैसा ही आचरण करते हैं। इसमें उनका मुख्य उद्देश्य यही होता है कि सांसारिक जीव आचरण विषयक ज्ञान को प्राप्त कर सकें।

श्रीहनुमानजी के चरित्र का विस्तृत वर्णन वाल्मिकीय रामायण तथा तत्सम्बद्ध अन्य रामायणों में तो मिलता ही है, परन्तु पुराण साहित्य उनके चरित्र को अद्भुत गरिमा प्रदान करता है। हनुमत चरित्र को दर्शानेवाले विपुल साहित्य के अन्वेषण एवं अनुशीलन की अनुपस्थिति में उनके पौराणिक आख्यान का यथार्थ परिचय नहीं मिल सकता। परब्रह्म रुद्र रूप श्रीहनुमान जी के चरित्र, लीला एवं महिमा का तो वेद भी पार नहीं पा सकते फिर मुझ अज्ञानी की तो सामर्थ ही कितनी है। श्रीहनुमानजी के परब्रह्म स्वरूप का वर्णन शुक्ल यजुर्वेदीय तार सारोपनिषद् १/५ में इस प्रकार मिलता है : "ओमित ब्रह्मा भवति न कारो विष्णुर्भवति मकारो रुद्रो भवति।" मिथिला के राजकीय उद्यान में राजर्षि विदेह जनक को परब्रह्म विद्या का उपदेश देते समय महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने दो शिष्य वृहस्पति और भरद्वाज के प्रश्न करने पर अविमुंक्त क्षेत्र ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तथा 'ॐ नमो नारायणाय अष्टाक्षर मन्त्र के तत्व पर प्रकाश डाला। भरद्वाज द्वारा तारक के रूप का विवेचन करने के लिए आग्रह किये जाने पर महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा-"पर ब्रह्म नारायण" ही शिवस्वरूप श्रीहनुमान हैं। "ॐ" ब्रह्मा, "न" कार विष्णु और "म" कार रुद्र हैं। तारक ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य ने तारक तत्व के निरूपण में रुद्र के रूप पर हनुत्परक विचार व्यक्त किये। "ॐ" पर ब्रह्म है। यही उपास्य है। अकार प्रथमाक्षर है, उकार द्वितीयाक्षर है एवं मकार तृतीयाक्षर शिव हनुमान हैं- "मकाराक्षरसम्भूतः शिवस्तु हनुमान स्मृत"

(तारसारोपनिषद्)

परब्रह्म नारायण ही शिवस्वरूप हनुमान हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को बोध प्रदान किया कि- "ॐ" परमात्मा नारायण ही रुद्रावतार श्रीहनुमान हैं :

ॐ यो ह वै श्री परमात्मा नारायणः
स भगवान मकार वाच्यः
शिव स्वरूपो हनुमान भूर्भुवः
सुवस्तस्मै वै नमो नमः (तार सारोपनिपद् ३/३)

एक मानस मर्मज्ञ ने किष्किन्धा को काशी, श्रीहनुमान को शिवरूप मान कर किष्किन्धाकाण्ड में श्रीराम-हनुमत् सम्बन्ध का विवेचन अद्भुत रूप से किया है। उन्होंने राम और लक्ष्मण को क्रमशः इन्दीवर और कुन्द के फूल का रूपक दिया है जिस प्रकार कमल का पुष्प शिवजी पर चढ़ता हैं और सूर्य को देख कर प्रफुल्लित होता है, उसी प्रकार श्रीराम श्रीहनुमान रूपी शिव पर चढ़ते हैं और सुकण्ठ-सुग्रीव रूपी-सूर्य को देख कर प्रसन्न होते हैं। कुन्दरूपी लक्ष्मणजी श्रीरामरूपी चन्द्रप्रकाश में अखण्ड रूप से प्रकाशित होते हैं। विद्वान का कथन है कि-रामदूत श्रीहनुमान किष्किन्धा रूपी काशी में शिवस्वरूप हैं। उनकी महाशक्ति ही भवानी है। काशी में श्रीहनुमान भवानी सहित एक ही रूए में अवस्थित हैं।

रामदूत हैं शंभु जू, शक्ति महाभवानी
एक रूप है के बसे, गुणयुक्त काशी जानी।

श्रीरामप्रोक्त कवच के प्रसंग में श्रीसनत्कुमार की श्रीहनुमान के सम्बन्ध में प्रशस्ति है कि- वे (श्रीहनुमान) सब रूपों में अभिव्यक्त हैं, सर्वज्ञ हैं, सृष्टि करते हैं तथा पोषण करते हैं। वे स्वयं ही ब्रह्मा, विष्णु एवं साक्षात् महेश्वर हैं-

स सर्वरूपः सर्वज्ञः सृष्टि स्थिति करोऽवतु
स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णु साक्षेंदेवो महेश्वर

त्रिपुरानाश के पहले देवताओं ने भगवान शंकर की विभूतियों का वर्णन करते हुए उनके श्रीहनुमत् स्वरूप का वर्णन किया- आदित्यानां वासुदेवो हनुमान् वानरेषु च। नन्दीश्वर ने सनत्कुमार से श्रीशंकरजी के हनुमत् रूप में आविर्भूत हो कर लीला करने के वृतांत का वर्णन किया है: "मुने! अब श्रीहनुमान का चरित्र सुनिये- उनके रूप में प्रकट हो कर शिवजी ने सुन्दर लीलाएं की हैं-"

अतः परं श्रृणु प्रीत्या हनुमच्चरितं मुने
यथा चकाराशु हरो लीलास्तद्रूपतो बराः

शिलाद ऋषि के तप से प्रसन्न होकर वर मांगने पर भगवान शंकर ने उन्हें वरदान दिया- "मैं ही कालान्तर में नन्दी नाम से तुम्हारे पुत्र रूप में प्रकट होऊंगा।"- तव पुत्रेः भविष्यामि नन्दीनाम्ना त्ययोनिजः। एकादश रुद्र ही शिलाद पुत्ररूप में अवतरित हुए। स्कन्द पुराणानुसार एकादश रुद्र भगवान ही बने थे नन्दीश्वर। ये नन्दीश्वर ही भगवान विष्णु की सहायतार्थ श्रीहनुमान रूप में अवतरित हुएः

शिलादतनयो नन्दी शिवस्यानुचरः प्रियः
यो वै चैकादशो रुद्रो हनुमान् स महाऋषिः
अवतीर्णः सहायार्थ विष्णोरभिततेजसः

वायु पुराण के पूर्वार्ध में वर्णन आता है कि- "श्रीमहादेवजी" अंजनी के गर्भ से पवन-पुत्र बन कर सत्य विक्रमी श्रीहनुमान् के रूप में अवतीर्ण हुए-

अंजनी गर्भ सम्भूतो हनुमान् पवनात्मजः
यदा जातो महादेवो हनुमान् सत्यविक्रमः

श्रीहनुमान-जन्म के विषय में वायुपुराण में वर्णित है- "आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को स्वाति नक्षत्र और मेष लग्न में अंजना के गर्भ से स्वयं भगवान शंकर धरा पर अवतरित हुए।"

आश्विन स्यासिते पक्षे स्वात्यां भौमे च मारुतिः
मेष लग्नेऽजनागर्भात् स्वयं जातो हरः शिवः

अगस्त्य संहितानुसार- "कार्तिक मास कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, भौमवार (मंगलवार), स्वाति नक्षत्र, मेष लग्न में अंजना के गर्भ से स्वयं भगवान शिव ने कपीश्वर श्रीहनुमान के रूप में अवतार ग्रहण किया-"

ऊर्जे कृष्ण चतुर्दश्यां भौमे स्वात्यां कपीश्वरः
मेष लग्नेऽन्जनागर्भात् प्रादुर्भूतः स्वयं शिवः

रावण के अत्याचारों से दुखी होकर सभी देवता लोककर्ता श्रीब्रह्माजी के पास गए तथा उनसे आग्रह किया कि उन्हें रावण से त्रास दिलाएं। उनकी पुकार सुनकर श्रीब्रह्माजी ने श्रीविष्णु का आह्वान किया तथा उनसे आग्रह किया कि-

धर्मज्ञ, उदार तथा महर्षियों के समान तेजस्वी अयोध्या नरेश श्रीदशरथ की तीन महारानियों के गर्भ से अपने चरस्वरूप से अवस्थित हो संसार में अवतार ग्रहण करें तथा जगत् को रावण के अत्याचारों से मुक्त करें। उन्हें आश्वासन दे कर गरुड़ध्वज वहां से विदा हो गए। सबसे विदा होकर विष्णु चिन्तन करने लगे– रावण और लंकापुरी दोनों ही शिवसेवित हैं। शिव की सहायता बिना लंका व रावण का विनाश असम्भव है। श्रीविष्णु ने श्रीशिव की आराधना का निश्चय किया। ऐसा निश्चय कर गोदावरी के तट पर शिवलिंग की स्थापना कर, रुद्राक्ष तथा भस्म धारण कर गोतमी नदी के पवित्र जल से एवं नाना प्रकार के पुष्प, फलादि से पूजन अर्चना कर सिंहचर्म पर समाधिस्थ हो वर्षा ऋतु के चतुर्मास में शिव सहस्त्रनाम का जाप किया। तत्पश्चात् एक हजार दिनों तक एकान्तवासी एवं मौनव्रती रहकर प्रतिदिन एक सहस्त्र रक्त कमलों से अभिषेक करने का संकल्प लिया। ९९९ दिनों तक क्रम सुन्दर रीति से चलता रहा। अन्तिम दिन गिरजापति को लीला करने की सूझी। अतः हजार पद्मों में से चुपके से एक पद्म चुरा लिया। अचानक एक पद्म के कम हो जाने पर कमलापति व्यथित हो उठे। संकल्प में यह व्यवधान उन्हें परेशान कर रहा था। अचानक श्रीविष्णु के हृदय में एक भाव उभरा कि– "मेरे नेत्रों की तुलना रक्त कमलों से की जाती है फिर क्यों न मैं अपना एक नेत्र ही निकाल कर अर्पित कर दूं।" ऐसा चिन्तन कर हर्षित मन से श्रीविष्णु ने अपना एक नेत्र निकाल कर ज्यों ही अर्पण करना चाहा, उसी समय सदाशिव ने आकर मुस्कराते हुए उनका हाथ पकड़ लिया तथा इस उग्र तप का रहस्य पूछा। स्तुति करने के पश्चात् श्रीविष्णु ने अपना उद्देश्य प्रगट किया। भगवान शंकर ने प्रलयंकारी पिनाकी धनुष एवं अक्षयतूणीर देकर श्रीविष्णु के कष्ट का निवारण करना चाहा पर श्रीविष्णु ने उसे लेने से इनकार करते हुए अपने हृदय की आशंका श्री शिव के सन्मुख व्यक्त की। विनीत भाव से श्रीविष्णु ने कहा– "हे प्रभो ! लंका विजय इतनी सहज नहीं कि पिनाकी और अक्षय तूणीर से लंका विजय हो जाए। वहां के बलिष्ठ मायावी दैत्य तथा उनकी नगरी, दोनों ही, आपसे रक्षित हैं। लंका तक पहुंचने के मार्ग में एक सौ योजन (८०० मील) चौड़ा यह समुद्र भी बाधित है। अतः आपके पिनाकी और तूणीर मुझे धैर्य देने में असमर्थ हैं।' इस पर कपूर गौरांग शंकर ने आश्वासन देते हुए कहा– 'हे प्रभो आप

भयरहित हो जाइये। वे सभी दैत्य धर्म विरुद्ध आसुरी वृत्तियों की ओर प्रवृत्त हो चुके हैं तथा जब से रावण ने कैलाशपुरी का (नन्दीश्वर के रूप में) अनादर किया है, मैंने उसका त्याग किया है, अतः विजयी होना अब आपके लिए अतिसहज है।" इस पर श्रीविष्णु ने पुनः अपनी आपत्ति बताते हुए कहा- "उस दुर्गम समुद्र को लांघना मानव देहधारी जीव के लिए सर्वथा असम्भव है।" इस पर शिवजी ने कहा- "आपका यह भय निराधार है। श्रीब्रह्मा की आज्ञा से सभी देवता आपकी सहायता हेतु वानर, रीछ स्वरूप धारण कर प्रकट होने जा रहे हैं। वे सभी तेजस्वी वानर, रीछ ओजपूर्ण होंगे, वे छलांग लगाने में पूर्ण दक्ष तथा समुद्र में सेतु बांधने में पूर्ण कुशल होंगे।" इस पर अति सकुचाते हुए श्रीविष्णु ने कहा- "हे नाथ ! आप ही मेरे आराध्य हैं, आप ही के द्वारा प्रदत्त सुदर्शन चक्र मेरा रक्षक है। पर प्रभो ! इस कार्य हेतु आपको भी मेरे साथ पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करना पड़ेगा।" श्रीविष्णु के प्रेमयुक्त वचनों से प्रसन्न होकर गौरीपति ने कहा- "मेरा एकादश रुद्र का हनुमान के रूप में किष्किन्धा में आपके कार्य सिद्धि हेतु अवतरण होगा। असुरों की शक्ति हरण कर मैंने उन्हें अभी से मृतप्राय कर दिया है। अब तो सिर्फ आपको यश और कीर्ति दिलाने की क्रियायें अवशेष हैं।" इतना कह कर शंकर अन्तर्धन हो गए।

महाकाल भूतभावन महारुद्र भगवान शंकर कैलाश पर्वत के उतंग शिखर पर समाधिस्थ थे। मृगचर्म पर विराजित सदाशिव के दाहिनी ओर त्रिशूल तथा शक्ति स्वरूपा भगवती सती विराजमान थीं। सती बड़ी व्यग्रता से प्रभु के समाधि से जागने की प्रतीक्षा कर रहीं थीं। कुछ ही काल की प्रतीक्षा के बाद भूतभावन महाप्रभु ने 'राम राम' का उद्घोष करते हुए समाधि भंग की। समाधि की समाप्ति से सती को अपार प्रसन्नता हुई पर इस उद्घोष से वह बड़े असमंजस में पड़ गई। शंका का समाधान करने के लिए हाथ जोड़ अनुनय भरी वाणी में सती ने प्रभु से प्रश्न किया- "हे त्रिपुरारी ! तीनों लोकों के स्वामी ! जगदाधार ! जीवमात्र की आत्मा ! अखिल विश्व के हेतु और सर्वोपरि तो आप ही हैं। देवता, गण, मनुष्य, सर्प, जड़, जंगम सभी आपके चरणारविन्द के दास हैं। हे समर्थ ! आप सब कुछ जानने वाले, कल्याणरूप, सर्वकला एवं गुण के धाम, योग, ज्ञान और वैराग्य की खान हैं- फिर निरन्तर आप किस राम का स्मरण करते हैं।" भगवती

के मुख से निःसृत इन शब्दों को सुन कर मुस्कराते हुए भगवान ने पुनः एक बार राम शब्द का उच्चारण किया। फिर अत्यन्त प्रेममयी वाणी में बोले- "हे प्रिये! सम्पूर्ण जगत् का आधार, सब का कारण स्वरूप तथा अखिल प्रपंच की हेतु सर्वोपरि पराशक्ति एक ही है, जिसे ब्रह्म नाम से पहचाना जाता है। सृष्टि संचालन हेतु यही परब्रह्म तीन रूपों में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के रूप में अवतरित हुए हैं। ये त्रिधा विभक्त रूप ही रज, सत् और तम के रूप में क्रमशः उत्पत्ति, पालन एवं प्रलय सम्बन्धी कार्यों का संचालन करते हैं। मैं भी उसी पराशक्ति का एक रूप शिव हूं।"

"हे देवी ! राम शब्द के मुख्यतः दो अर्थ होते हैं- प्रथम जिसमें योगी रमण करे (जिसका योगी ध्यान करे) वह राम कहलाता है। यह ब्रह्म शब्द का ही पर्यायवाची शब्द है। द्वितीय, अवध नरेश श्रीदशरथ के पुत्र श्रीराम भी अन्य कोई नहीं श्रीविष्णु के अंश अवतार हैं। मुझमें और श्रीविष्णु में कोई भेद नहीं है। ब्रह्मा एवं विष्णु, हम तीनों उसी एक परब्रह्म के ही त्रिविध स्वरूप हैं।"

"हे देवी ! सृष्टि के कालचक्र की निरन्तर पुनरावृत्ति होती रहती है। एक कालचक्र का चार युग में विभाजन होता है। ये क्रमशः सत्, त्रेता, द्वापर एवं कलि के नाम से प्रसिद्ध हैं। सम्पूर्ण चार युगों का एक चक्र महायुग कहलाता है। ऐसे चार महायुग बीतने की अवधि को मन्वन्तर युग तथा चार मन्वन्तर युग बीतने पर एक कल्प युग की सृष्टि मानी गई है। पुनः पुनः यही क्रम आता है। इस प्रकार यह कालचक्र (सृष्टि चक्र) निरन्तर आवृत्ति के साथ गतिशील रहता है। जो घटनाएं एक कल्प में घटती हैं वही पुनरावृत्ति के साथ दूसरे कल्प में भी घटती हैं। इस प्रकार प्रत्येक कल्प में ब्रह्म विभिन्न रूपों में बराबर प्रकट होते हैं। श्रीविष्णु रामरूप में अनेक पूर्व कल्पों में अवतार ग्रहण कर चुके हैं तथा आगे आने वाले कल्पों में भी करेंगे। हे शुभे ! वर्तमान काल में घोर अत्याचारी, आसुरी वृत्ति से पूर्ण रावण के अत्याचारों से सृष्टि दग्ध हो उठी है। हर कल्प में श्रीविष्णु ने राम अवतार के रूप में रावण संहार के लिए जन्म धारण किया है। अब पुनः इस कथा की पुनरावृत्ति होने जा रही है। इस अवसर पर सभी प्रेरित देवगण भी वानर, रीछ रूप में श्रीराम सहायतार्थ प्रकट होने जा रहे हैं। हे देवी ! मुझे भी उनकी सहायता हेतु अवतार ग्रहण करना होगा।"

सम्पूर्ण वृत्तांत सुनकर पुनः एक चिन्तन सती के हृदय में उभरा। तथा पूछा– "हे स्वामी ! रावण आपका अनन्य भक्त है। उसने अपने दस शीश भक्तिपूर्वक काट कर आपको अर्पित किए हैं। ऐसे अनन्य भक्त के विनाश में आप कैसे हेतु बनेंगे?" इस पर सदाशिव ने कहा– "भगवती ! यह सत्य है कि उसने मेरे दस रुद्रों को प्रसन्न किया है, पर मैं अपने एकादश रुद्र से अवतार लूंगा। रावण अब धर्म के विरुद्ध हो चुका है तथा विष्णु मेरे अनन्य भक्त एवं सखा हैं। मैंने अपने एकादश रुद्र से अभिमान शून्य वानररूप धारण कर श्रीराम सहायतार्थ अवतरित होने का निश्चय किया है।"

वेदों में आग्नेय प्राण "शिव" एवं सौम्य "शक्ति" शब्द से अभिहित होता है। इन दोनों के संयोग से उत्पन्न सप्तविध प्राण ही मरुद्गण भौतिक वायु के जनक हैं। अतः वायु को "मारुत" भी कहा जाता है। पुराण विज्ञान के अनुसार अदिति (सूर्य संयुक्त पृथ्वी) से मरुद्गण की उत्पत्ति हुई है। इन्द्र ने अदिति के गर्भ में प्रविष्ट हो कर पहले उस गर्भ के सात भाग किए। पुनः एक-एक भाग के सात-सात खण्ड किये। इस प्रकार मरुतों की संख्या उनचास हुई। ये पृथ्वी से ले कर द्युलोक (आकाश) पर्यन्त बहने वाली वायु के उनचास प्रकार हैं। इनमें से पृथ्वी में स्थित घनभावापन्न सर्वादिमरुत्प्राण श्रीहनुमान हैं। मरुदगण के अन्तर्गत होने से ये (हनुमान) रुद्र पुत्र साक्षात् शिव हैं। वैदिक परिभाषा में रुद्र अग्नि भी है एवं प्राण भी, अतः पौराणिक दृष्टि से यह सिद्ध होता हे कि श्रीहनुमान साक्षात् रुद्रावतार श्रीविष्णु के सहायतार्थ धरती पर अवतरित हुए थे।

त्रेतायुग में रामावतार के पूर्व पृथ्वी पर बढ़ते पापाचार-अनाचार से धरती माता अत्यन्त भयातुर हो गयी थी। पृथ्वी ने गौ का रूप धारण कर ब्रह्मा आदि देवताओं के पास जाकर अपना दुखड़ा सुनाया। सभी रावण के पापाचार-अनाचार से संत्रस्त थे। वे पृथ्वी की सहायता करने में असमर्थ थे। ब्रह्माजी ने परामर्श दिया कि इस समस्या का निदान तो अविनाशी परमब्रह्म परमेश्वर नारायण ही कर सकते हैं। फिर ब्रह्माजी ने हाथ जोड़कर विनती की। ब्रह्माजी की प्रार्थना पर आकाशवाणी हुई कि– "हे मुनि, सिद्ध और देवताओं के स्वामियों ! डरो मत। तुम्हारे लिये मैं मनुष्य का रूप धारण करुंगा और उदार (पवित्र) सूर्यवंश में अंशों सहित मनुष्य का अवतार लुँगा। कश्यप और अदिति ने बड़ा भारी तप किया था।

मैं पहले ही इनको वर दे चुका हूँ। वही दशरथ और कौशल्या के रूप में मनुष्यों के राजा होकर श्रीअयोध्यापुरी में प्रकट हुये हैं। उन्हीं के यहाँ मैं रघुकुल में श्रेष्ठ चार भाइयों के रूप में अवतार लूँगा। मैं पृथ्वी का सब भार हर लूंगा। नारद के सब वचन मैं सत्य करुंगा और अपनी पराशक्ति के सहित अवतार लूँगा। हे देववृन्द ! तुम निर्भय हो जाओ।' आकाश में ब्रह्म (भगवान्) की वाणी सुनकर देवतागण लौट गये। उनका हृदय शान्त और शीतल हो गया। तब ब्रह्माजी ने पृथ्वी को समझाया। वह भी निर्भय हुई और उसके जी में भरोसा आ गया। देवताओं को यही सिखाकर कि वानरों का शरीर धारणकर तुम लोग पृथ्वी पर जाओ और प्रभु श्रीहरि के चरणों की सेवा करो, ब्रह्माजी अपने लोक चले गये।

एक अन्य स्थान पर वर्णन आता है एक दिन भगवान् आशुतोष शशांक शेखर देवाधिदेव शिव अपनी परमप्रिया पार्वतीजी के साथ कैलाश पर्वत पर प्रसन्न मुद्रा में बैठे थे। पार्वतीजी ने पूछ ही लिया- 'प्रभो ! आप आनन्दचित्त प्रसन्न मुद्रा में बैठे अपने इष्ट का ध्यान कर रहे हैं। क्या इसका विशेष प्रयोजन है? भोलेबाबा शंकर बोले- 'पार्वती ! सुनो पृथ्वी पर पापाचार-अनाचार बढ़ जाने से पृथ्वी व्याकुल हो गयी है। उस पर इस बढ़ते भार को दूर करने के लिये शीघ्र ही नररूप में भगवान् नारायण अवतरित होंगे। उनके चरणों की सेवा करने और उनकी लीला में सहायता करने हेतु मैंने भी वानर रूप में रुद्रावतार हनुमान के रूप में अवतरित होने का निश्चय किया है।

जब भगवती पार्वतीजी ने महादेव के रुद्रावतार के अवतरण होने की खबर पायी तो उन्होंने दुखी होकर भोलेबाबा से जिज्ञासा प्रकट की कि हे प्रभो! रावण तो आपका भक्त है। उसने आपकी पूजा में अपने दसों सिरों को काटकर अर्पित किया है। अब आप उसी के विरुद्ध कैसे लड़ेंगे? भोलेबाबा ने कहा- "हे पार्वती ! मेरे एकादश रुद्र हैं। उसने दस रुद्रों को तो प्रसन्न किया लेकिन ग्यारहवें रुद्र की उपेक्षा की थी। वहाँ उसने पंक्ति-भेद का अपरा । किया है। मैं अब ग्यारहवें रुद्र के रूप में अवतरित होकर अपने इष्ट भगवान् श्रीराम की सेवा करूँगा और श्रीहनुमान रूप में उसे पंक्ति-भेद अपराध का दण्ड दूँगा।" भगवती पार्वतीजी ने महादेव भोलेबाबा से कहा- 'हे प्रभो ! मैं अकेले यहाँ क्या करूँगी? आप मुझे भी साथ ले चलें।' भोलेबाबा बोले- "भला मैं कैसे साथ ले चलूं?" पार्वतीजी

बोलीं- "मैं हनुमान की पूँछ बनकर आपके साथ रहकर रामकाज में आपकी सहायता करूँगी।" भोलेबाबा महादेव ने सहर्ष इसकी स्वीकृति दे दी। इसी आध ार पर कहा जाता है कि श्रीहनुमानजी की पूँछ शक्ति स्वरूपा मातेश्वरी पार्वतीजी हैं। माता पार्वातीजी ने न केवल रामकाज में सहायता की थी, बल्कि श्रीहनुमानजी की रक्षा पूँछ से की थी। श्रीहनुमानजी की पूँछ में पार्वतीजी निवास करती थीं, इसी कारण लंका दहन में अग्नि का प्रभाव श्रीहनुमानजी की पूँछ पर नहीं पड़ा। अर्थात् जिस पूँछ से सारी स्वर्णमयी लंका राख हो गयी उसी पूँछ पर अग्नि का प्रभाव नहीं हुआ।

अग्नि का काम जलाना होता है, लेकिन रामकाज में एवं रामभक्तों की रक्षा में अग्नि शीतल भी हो जाती है। सतयुग में भक्त प्रह्लाद को जलाकर मार डालने की योजना में हिरणाकश्यपु ने बहन होलिका के साथ षड़यन्त्र रचा। होलिका को वरदान प्राप्त था कि अग्नि उसे जला नहीं सकती। लकड़ी की होली बनायी गयी। लकड़ी में आग लगायी गयी। उस अग्नि की ज्वाला में होलिका धू-धू कर जल गयी, लेकिन प्रह्लाद पर उस अग्निज्वाला का तनिक प्रभाव नहीं पड़ा था। त्रेता में भी अग्निदेव ने लंका को जलाकर राख कर दिया लेकिन श्रीहनुमानजी की पूंछ ज्यों की त्यों रही।

श्रीहनुमत्कथा-लीला का मूल उत्स वाल्मीकि रामायण है और हनुमत्कथा रामकथा के साथ अविच्छिन्न भाव से सम्बद्ध रही है। न तो रामकथा के बिना हनुमत्कथा-लीला पूर्ण है, न हनुमत्कथा-लीला के अभाव में रामकथा। कालक्रम से रामकथा का पूर्ण विस्तार हुआ। अतएव, हनुमत्कथा-लीला के पूर्ण विस्तार तथा उसके तुलनात्मक रूप पर विचार करने की आवश्यकता है। सम्पूर्ण हनुमत्कथा दो रूपों में उपलब्ध है- (१) प्रधान या मुख्य कथाएँ, जो राम कथा के साथ मिलती हैं। (२) गौण कथाएँ, जो किंवदन्तियों और जनश्रुतियों के रूप में जन-मानस में बिखरी पड़ी हैं।

श्रीहनुमज्जन्म की कथा-हनुमत्कथा का कोई क्रमबद्ध स्वरूप 'वाल्मीकि रामायण' से पूर्व नहीं मिलता। अतएव वाल्मीकि रामायण को ही हनुमत्कथा का 'प्रस्थान बिन्दु' माना जाता है। वाल्मीकि रामायण के तीन स्थलों पर हनुमज्जन्म की कथा दी गयी है। जैसे :-

प्रथम स्थल-'रामायण' के किष्किन्धा काण्ड के सर्ग ६६ में श्रीहनुमज्जन्म की एक कथा इस प्रकार है। एक बार पुजिंकस्थला नाम की अप्सरा शापवश कपि-योनि में अवतीर्ण हुई। वह तीनों लोक में अप्रतिम सुन्दरी और स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाली थी। उसका नाम अंजना पड़ा और वह वानरराज केसरी की पत्नी के रूप में गृहीत हुई। एक दिन रूपयौवन सम्पन्ना अंजना मानवी रूप धारण कर एक पर्वत शिखर पर विचरण कर रही थी। अंजना के उस अनिंद्य सौन्दर्य को देखकर मारुत उस पर आसक्त हो गए और अंजना के साथ समागम किया। अंजना के आपत्ति करने पर उन्होंने बल पराक्रम से सम्पन्न एवं बुद्धिमान पुत्र प्राप्त होने का वरदान दिया। इस वरदान के पश्चात् अंजना ने एक गुफा में हनुमान को जन्म दिया। बाल्यावस्था में एक दिन उगते सूर्य को देखकर, उसे फल समझ कर हनुमान सहसा आकाश की ओर उछल पड़े। तीन सौ योजन जाने के बाद भी सूर्य की प्रखर प्रभा से हनुमान के मन में खेद या चिन्ता नहीं हुई। ज्योंही हनुमान सूर्य के पास पहुँचे, इन्द्र ने कुपित होकर वज्र का प्रहार किया। उस समय उदयगिरि पर्वत पर गिरने से हनु (ठोड़ी) का बायाँ भाग खण्डित हो गया। तभी से इनका नाम 'हनुमान' पड़ा। अपने पुत्र की इस दशा को देखकर पवन ने अपना कार्य-व्यापार बन्द कर दिया। फलस्वरूप, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में खलबली मच गयी। देवताओं के अनुरोध पर पवनदेव प्रसन्न हुए। उसी समय ब्रह्मा ने हनुमान को समरांगण में किसी भी अस्त्र-शस्त्र से अवध्य होने का वरदान दिया। इन्द्र ने स्वेच्छानुसार मृत्यु का वरदान दिया।

हनुमज्जन्म की दूसरी कथा 'युद्धकाण्ड' में है। इस प्रसंग में भी जन्म की कथा पूर्वोक्त किष्किन्धा काण्ड की कथा से मिलती है। इसमें अन्तर इतना ही है कि यहाँ अंजना और पवन की कथा नहीं दी है और हनुमान सूर्य तक नहीं पहुँच सके और एक शिलाखण्ड पर गिर पड़ने से उनकी टुड्डी की हड्डी टूट गई।

उत्तर काण्ड का पैंतीसवाँ और छत्तीसवाँ सर्ग है, जहाँ हनुमज्जन्म की तीसरी कथा वर्णित है। रावण-चरित्र सुनने के पश्चात् राम की जिज्ञासा पर अगस्त्य ऋषि ने हनुमान की पूरी कथा सुनायी। यह कथा बहुत अंशों तक किष्किन्धा काण्ड की कथा से मिलती है, परन्तु कुछ अन्तर स्पष्ट है। यहाँ अंजना के शापग्रस्त होने

का कोई वर्णन नहीं है। कथा इस प्रकार दी गयी है- सुमेरु नाम का एक प्रसिद्ध पर्वत था, जहाँ हनुमान के पिता केसरी राज्य करते थे। उनकी अंजना नाम से विख्यात प्रियतमा पत्नी थी। उसके गर्भ से वायुदेव ने एक उत्तम पुत्र को जन्म दिया। एक दिन अंजना फल लाने के लिए वन में चली गयी। हनुमान को भूख सताने लगी। उदित सूर्य को देखकर वे फल समझ कर उसे लाने के लिए उछले। इधर वायुदेव भी पुत्र के पीछे शीतल होकर चलने लगे। सूर्य के समीप जाने पर सूर्य ने उन्हें जलाया नहीं। संयोग से जिस दिन हनुमान सूर्य को पकड़ने के लिए निकले उसी दिन राहु सूर्य पर ग्रहण लगाना चाहता था। हनुमान ने जब राहु को स्पर्श किया तो वह भय से भाग खड़ा हुआ और इन्द्र को इसकी सूचना दी। इन्द्र राहु को साथ लेकर सूर्य के समीप चले। हनुमान ने सूर्य को छोड़ राहु की तरफ झपट्टा मारा। हनुमान को अपनी ओर आता देख राहु पीछे भागा। उसने इन्द्र की टेर लगाई। इधर हनुमान राहू को छोड़ ऐरावत की ओर दौड़ पड़े। यद्यपि इन्द्र को क्रोध नहीं हुआ, पर उन्होंने हनुमान के ऊपर वज्र का प्रहार किया। इन्द्र के वज्र की चोट खाकर ये एक पहाड़ पर गिर पड़े, वहाँ गिरते समय उनकी बायीं टुड्डी टूट गयी। हनुमान को इस प्रकार देख पवनदेव ने अपनी गति रोक ली और हनुमान को वहाँ से गुफा में उठा लाये। वायु के निरुच्छ्वास होने से सारी सृष्टि में खलबली मच गयी। सभी देवतागण ब्रह्मा के समीप गए। ब्रह्मा ने वायु के निरुच्छ्वासित होने का कारण बतलाया। अंततः सभी देवतागण उस स्थान पर गए, जहाँ हनुमान को गोद में लिए पवनदेव बैठे थे। ब्रह्माजी ने हनुमान के शरीर पर हाथ फेरा और वे मूर्च्छा विगत हो गए। हनुमानजी को पूर्व रूप में देख वायुदेव ने अपना कार्यकलाप प्रारम्भ कर दिया। पुनः ब्रह्मा के कहने पर सभी देवताओं ने अलग-अलग वरदान दिये। इन्द्र ने कहा-'मेरे हाथ से छूटे हुए वज्र के द्वारा इस बालक की हनु (ठुड्डी) टूट गयी थी। इसलिए इस कपि का नाम हनुमान होगा। इन्द्र के अतिरिक्त सूर्य, वरुण, यम, कुबेर, शंकर आदि ने भी वरदान दिये।

वर जनित शक्ति से युक्त होने पर हनुमानजी ने ऋषियों के आश्रमों में उत्पात मचाना शुरू किया। केसरी, वायुदेव और अंजना के कहने पर भी वे नहीं मानते थे। अन्ततः भृगु और अंगिरा के वंश में उत्पन्न ऋषियों ने शाप दिया-'वानर वीर! तुम जिस बल का आश्रय लेकर हमें सता रहे हो, उसे हमारे

शाप से मोहित होकर तुम दीर्घकाल तक भूले रहोगे। तुम्हें अपने बल का पता नहीं चलेगा। जब तुम्हें तुम्हारी कीर्ति का स्मरण दिलाया जायगा तब तुम्हारा बल बढ़ेगा। कथा के अन्त में यह वर्णित है कि हनुमान ने सूर्य की सहायता से व्याकरण का अध्ययन किया। हनुमज्जन्म की यही उपुर्यक्त कथायें- पुराणों, साम्प्रदायिक रामायणों, कतिपय संस्कृत ग्रन्थों, जैन रामायणों, हिन्दीतर रामायणों, लोक साहित्य तथा विदेशों में विभिन्न स्वरूप में प्राप्त होती हैं।

श्रीहनुमत्कथा का प्रस्थान बिन्दु-'वाल्मीकि रामायण' के बालकाण्ड के मात्र तीन श्लोकों में ही हनुमानजी का परिचय मिलता है, जिसमें उनकी उत्पत्ति, उनके बल एवं बुद्धिमत्ता आदि गुणों का उल्लेख किया गया है। अयोध्या एवं अरण्यकाण्ड में हनुमानजी की कोई चर्चा नहीं मिलती। वस्तुतः वाल्मीकि और तुलसी दोनों महाकवियों ने मुख्यरूप से हनुमत्कथा का प्रारम्भ किष्किन्धा काण्ड के राम-हनुमान-मिलन से ही किया है।

राम हनुमान मिलन-राम और लक्ष्मण को वन में भटकते देखकर सुग्रीव को उनके 'बालि-दूत' होने की आशंका होती है। इसलिए उनका सच्चा पता लगाने के लिए वे अपने सचिव हनुमानजी को उनके पास भेजते हैं। हनुमानजी ने विचार किया कि कपि रूप पर किसी का विश्वास नहीं हो सकता। अतः उन्होंने कपि रूप का परित्याग कर भिक्षु का रूप धारण कर लिया।

संस्कृत के प्रायः सभी ग्रन्थों में हनुमानजी के द्वारा राम-लक्ष्मण का परिचय-पता लगाया जाना एवं उनके द्वारा रूप परिवर्तन का वर्णन मिलता है। 'रामायण-मंजरी' में हनुमान ब्राह्मण का भेष बनाकर जाते हैं किन्तु राघवीय, चम्पू रामायण एवं भट्टिकाव्य में वाल्मीकि रामायण के समान भिक्षु का रूप बनाकर राम-लक्ष्मण के समीप उपस्थित होते हैं। 'रामचरितमानस' में ऐसा वर्णन आता है कि वे विप्र का भेष बनाकर राम-लक्ष्मण के समीप आते हैं। इस प्रकार राम-लक्ष्मण के समीप जहाँ वाल्मीकि के हनुमान 'भिक्षु' रूप में उपस्थित होते हैं वहाँ तुलसी के हनुमान 'विप्र' रूप में। भिक्षु रूप धारण करने के उपरान्त हनुमान विनीत भाव से उन दोंनो रघुवंशी वीरों के पास जाकर उन्हें प्रणाम करके हृदय में अत्यन्त प्रिय लगने वाली वाणी में उनके साथ वार्तालाप प्रारम्भ करते हैं। तुलसीदास के हनुमानजी भी राम-लक्ष्मण के समीप पहुँचने पर उन्हें प्रणाम

करते हैं। कपिवर हनुमानजी दोनों वीरों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं और उन्हें सूर्य तथा चन्द्र के समान कान्तिवान बतलाते हैं। वे स्वयं को सुग्रीव के द्वारा प्रेषित तथा अपना नाम हनुमान बतलाते हैं और अपनी जाति बन्दर भी कहते हैं। वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि सुग्रीव राम-लक्ष्मण से मित्रता चाहते हैं तथा वे उन्हीं सुग्रींव के मंत्री हैं। अन्त में वे पुनः भिक्षु रूप को त्याग कर वानर रूप धारण कर उन दोनों वीरों को पीठ पर बैठाकर वहाँ से चल पड़े।

संस्कृत के ग्रन्थों में भी राम-हनुमान-मिलन का प्रसंग आया है। रामायण मंजरी पर अल्पांश में वाल्मीकि का प्रभाव है। इसमें हनुमान राम-लक्ष्मण को सूर्यचन्द्र, इन्द्रोपेन्द्र तथा नर-नारायण, चम्पू रामायण में दो मेघ, दो जंगम कल्पवृक्ष तथा सूर्यचन्द्र और राघवीय में भी सूर्यचन्द्र तथा इन्द्रोपेन्द्र आदि होने का तर्क करते हैं। राघवीय में वे उनको 'योगियों के अन्वेष्टव्य' कहकर और भगवान के रूप में पहचान कर भक्तिपूर्वक उनके चरणों पर भी गिर पड़ते हैं। रामायण मंजरी के लक्ष्मण परिचय के पश्चात् हनुमान से यह भी कहते हैं कि कबंध के आग्रह से ही लोक को शरण और इन्द्र को अभय देने वाले राम अब सुग्रीव की शरण में आये हैं। यह अंश वाल्मीकि से पूर्णतः प्रभावित है जहाँ कबंध ा की जगह दनु का नामोल्लेख है। राघवीय के राम सुग्रीव को सूर्य-पुत्र होने के कारण अपना सगोत्र भाई बतलाकर उनसे मिलने की उत्सुकता व्यक्त करते हैं।

राम हनुमान-मिलन का प्रसंग संस्कृत नाटकों में केवल हनुमन्नाटक में ही मिलता है। इसमें हनुमान को 'रौद्ररुद्रावतारे' कहा गया है। 'राघवीय' में उन्हें 'शब्द विद्या में सूर्य-शिष्य' और 'सर्वगीर्दाणसार से अधिक' कहा गया है। हनुमन्नाटक में परिचय के पश्चात् हनुमानजी ही राम को सीताजी के आभूषण दिखलाते हैं, जिससे अधिक भावालुप्त होकर राम सुग्रीव से मित्रता करने के लिए उनके साथ शीघ्र चल देते हैं।

वाल्मीकि के राम-हनुमान-मिलन से तुलसी का यह प्रसंग कई दृष्टियों से भिन्न है। वाल्मीकि के हनुमान जहाँ अपना परिचय देते हुए अपने को वायु देवता का पुत्र तथा वानर गोत्रीय बतलाते हैं। वहाँ तुलसी के हनुमान अपना कोई भी परिचय नहीं देते। लगता है राम से उनका पूर्व परिचय था।

वाल्मीकि के हनुमान की बातचीत सीधे राम से नहीं होती, बल्कि लक्ष्मण

से कथोपकथन के रूप में होती है। तुलसी के हनुमान का वार्तालाप सीधे राम से होता है। लक्ष्मण यहाँ मौन हैं। वाल्मीकि का यह संवाद लम्वा और यथार्थवादी है जबकि तुलसी का लघु और मार्मिक है।

अग्निसाक्षी मित्रता कराना- श्रीहनुमानजी द्वारा श्रीराम की सुग्रीव के साथ राम और लक्ष्मण को ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव के वास स्थान में बैठाकर हनुमानजी वहाँ से मलयपर्वत पर चले गये और वहाँ वानरराज सुग्रीव को राम-लक्ष्मण का परिचय दिया। हनुमानजी के वचन को सुनकर सुग्रीव प्रसन्नता के साथ चल देते हैं और राम से निवेदन करते हैं कि 'यदि मेरी मैत्री आपको पसन्द है तो मेरा यह हाथ फैला हुआ है। आप इसे अपने हाथ में ले लें और परस्पर, मैत्री का अटूट सम्बन्ध बना रहे, इसके लिए स्थिर मर्यादा बाँध दें। 'सुग्रीव के इस प्रकार के सुन्दर प्रस्ताव को सुनकर राम प्रसन्न होते हैं। वे अपने हाथ से सुग्रीव का हाथ पकड़कर दबाते हैं और सौहार्दवश वड़े हर्ष के साथ सुग्रीव को छाती से लगा लेते हैं। राम और सुग्रीव के मैत्री के समय हनुमान ने भिक्षु रूप को त्याग कर (मलय पर्वत पर जाने से पूर्व हनुमान ने पुनः भिक्षु वेश बना लिया होगा) अपना स्वाभाविक रूप धारण कर लिया और दो लकड़ियों को रगड़कर अग्नि उत्पन्न की। तत्पश्चात् अग्नि को प्रज्ज्वलित करके उन्होंने फूलों द्वारा अग्नि का पूजन किया। फिर, एकाग्रचित्त हो राम और सुग्रीव के बीच में साक्षी के रूप में उस अग्नि को प्रसन्नतापूर्व स्थापित कर दिया। इसके अनन्तर सुग्रीव और राम ने उस प्रज्ज्वलित अग्नि की प्रदक्षिणा की और दोनों एक दूसरे के मित्र बन गये।

अग्नि को साक्षी के रूप में रखकर हनुमानजी द्वारा राम-सुग्रीव को मित्रता के बन्धन में बाँधने का वर्णन वाल्मीकि और तुलसी दोनों महाकवियों ने किया है। किन्तु, अग्नि साक्षी से पूर्व ही राम और सुग्रीव 'पाणि पीडन' द्वारा अपनी मित्रता की आधार शिला को रख लेते हैं। यह वर्णन केवल वाल्मीकि में है, तुलसी में नहीं। तुलसी के रामाज्ञा प्रश्न में भी इसका थोड़ा सा संकेत है।

राम-सुग्रीव के मैत्री सम्बन्ध को स्थापित करने के पश्चात् हनुमानजी का थोड़ा-सा चरित्र उस स्थल पर आता है, जहाँ बालि की मृत्यु के पश्चात् विलाप करती हुई तारा को वे एक ज्ञानी के समान समझाते हैं और ढाढ़स बँधाते है।

तुलसी में इस वर्णन का नितान्त अभाव है। वहाँ राम तारा को ज्ञान प्रदान करते हैं और लौकिक माया के आवरण को हटा देते हैं। बालि का दाह-संस्कार सम्पन्न होने के पश्चात् हनुमानजी सुग्रीव को राज्य पर प्रतिष्ठित करने के लिए श्रीराम से आज्ञा मांगते हैं और राम से किष्किन्धापुरी में चलने का अनुरोध करते हैं। परन्तु, श्रीराम कहते हैं कि पिता की आज्ञानुसार मैं १४ वर्षों तक नगर में नहीं जा सकता।

सुग्रीव को प्रमाद से मुक्त कर के राम-कार्य में लगाना- सुग्रीव के राज्याभिषेक के पश्चात् वर्षा आरम्भ हो जाने से सीता-शोध का कार्य स्थगित हो जाता है और राम प्रवर्षण पर्वत पर प्रवास करते हैं। इधर हनुमानजी ने यह देखा कि सुग्रीव अब मित्र के कार्य से विरत हो सांसारिक प्रपंचों में आसक्त हो गये हैं। उन्होंने सुग्रीव से हितकर, सत्य, लाभदायक, राजधर्म और अर्थनीति से युक्त शास्त्र-विश्वासी पुरुषों के सुदृढ़ निश्चय से सम्पन्न तथा प्रेम और प्रसन्नता से भरी बात कही। सुग्रीव को समझाते हुए अन्त में श्रीहनुमानजी कहते हैं- 'आपकी आज्ञा हो जाय तो जल में, थल में, नीचे-ऊपर कहीं भी हम लोगों की गति रुक नहीं सकती।' इसके बाद सुग्रीव जागृत होते हैं और बन्दरों को यह आज्ञा देते हैं कि सीता का समाचार लेकर जो बन्दर १५ दिनों के बाद यहाँ पहुँचेगा, उसे प्राणदण्ड दिया जायेगा। इस प्रकार व्यवस्था करके सुग्रीव महल के भीतर चले गये।

मित्रकार्य से विरत सुग्रीव को उद्‌बोधित करने का कार्य तुलसी के हनुमानजी द्वारा भी सम्पादित होता है। वाल्मीकि के हनुमानजी राजोचित कार्यों का उल्लेख करते हुए राम के पुरुषार्थ का भय सुग्रीव को दिखलाते हैं। वहाँ तुलसी के हनुमान 'चारिहु विधि तेहि कहि समुझावा' तक ही सीमित हैं। वाल्मीकि का यह प्रसंग किंचित् विस्तृत है और वाल्मीकि का यह विस्तार ही तुलसी में प्रसंग गर्भत्व बन गया है।

वाल्मीकि के सुग्रीव नील नामक बन्दर को यह आदेश देते हैं कि वह बन्दरों को यत्र-तत्र भेजे, जबकि तुलसी के सुग्रीव स्वयं हनुमानजी को ही यह आदेश देते हैं।

जिस समय हनुमानजी बन्दरों को सीता-शोध के लिए प्रेषित कर रहे थे,

उसी समय राम द्वारा भेजे गये लक्ष्मण का आगमन होता है। यह वर्णन वाल्मीकि और तुलसी दोनों में है। जब लक्ष्मण किष्किन्धापुरी में पहुँचते हैं तो उनके आने की सूचना अंगद के द्वारा सुग्रीव को दी जाती है। सुग्रीव अत्यन्त चिन्तित होते हैं। वहीं पर श्रीहनुमान उन्हें समझाते हैं। राम के औदार्य रूप तथा लक्ष्मण के आने का कारण बतलाते हैं और कहते हैं कि आपको हाथ जोड़कर लक्ष्मण से मिलने में ही कल्याण है। अन्त में सुग्रीव तारा को क्रोधित लक्ष्मण को शान्त करने के लिए भेजते हैं। तारा के आग्रह पर लक्ष्मण सुग्रीव के महल में जाते हैं। वहाँ सुग्रीव को विलास में निमग्न देखकर उन्हें फटकारते हैं। पुनः सुग्रीव हनुमानजी को यह आदेश देते हैं कि दूतों को दुबारा विभिन्न प्रदेशों में भेजा जाय। हनुमानजी ने विभिन्न प्रदेशों में पुनः बन्दरों को भेजा। इसके बाद सुग्रीव लक्ष्मण सहित श्रीराम के पास पहुँचते हैं।

भयभीत सुग्रीव को जहाँ वाल्मीकि के हनुमानजी एक चतुर मंत्री की भाँति समझाते हैं, वहाँ तुलसी में इसका बिलकुल अभाव है। क्रोधित लक्ष्मण को प्रसन्न करने के लिए जहाँ तुलसी के श्रीहनुमान तारा के साथ जाते हैं, वहाँ वाल्मीकि में केवल तारा के जाने का निर्देश है। यहाँ पर तुलसी के व्यवहारिक ज्ञान का उत्तम परिचय मिल जाता है।

दोनों महाकवियों ने इस बात का निर्देश किया है कि हनुमानजी की ही आज्ञा से विभिन्न प्रदेशों में दूत भेजे गये।

रूद्रावतार राम काज के लिए ही हुआ था। यहाँ मूल प्रसंग से हटकर कहना चाहूँगा कि जैसा कि अन्यन्त्र कहा जा चुका है कि कई पुराणों में हनुमानजी को रुद्रावतार अथवा रुद्रांश माना गया है। स्कन्द पुराण के अवन्तीखण्ड तथा रेवाखण्ड में इन्हें रुद्रांश कहा गया है। महाभागवत पुराण के अनुसार जब विष्णु रावण को मारने के हेतु उद्यत होते हैं उस समय विष्णु से शिव कहते हैं कि वायु के पुत्र के रूप में मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। 'बृहद्धर्म पुराण' में भी भागवत की इस शिव प्रतिज्ञा का उल्लेख है। नारद पुराण और ब्रह्मवैवर्त पुराण में हनुमान को शिव के अंश से उत्पन्न बताया गया है। भविष्य पुराण में हनुमान के पिता केसरी ही माने गए हैं परन्तु रुद्र तथा वायु उनको उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। जब रावण से देवता त्रस्त होकर शिव की आराधना करते हैं तो ग्यारह वर्ष पश्चात्

यह वरदान मिलता है कि रावणविरोध करने के उद्देश्य से शिव अवतार धारण करेंगे। शिव का रुद्र तेज केसरी के मुख में प्रवेश कर जाता है। कामातुर केसरी अंजना से रमण करते हैं, इतने में वायु भी केशरी के शरीर में प्रवेश कर के उसके साथ रमण करते हैं। दम्पति के बारह वर्ष तक संभोग के पश्चात् अंजना गर्भवती होती है तथा उसे वानरानन पुत्र प्राप्त होता है। अंजना यहाँ गौतम की पुत्री है। शिवपुराण के अनुसार प्रभंजन ने केसरी की पत्नि अंजनी से रुद्रावतांश हनुमान को उत्पन्न किया। 'शिव महापुराण शतरुद्र संहिता' के अनुसार विष्णु को मोहिनी के रूप में देख शिव का वीर्यपतन हुआ जिसे सप्तर्षियों ने गौतम पुत्री अंजना के कान में रख दिया और बाद में अंजना हनुमानजी को जन्म देती है।

महानाटक में रावण रुद्रावतार हनुमानजी द्वारा लंका जलाई जाने पर यह कहता है कि, "मैंने अपने दस सिर चढ़ा कर दस रुद्रों को तो प्रसन्न किया परन्तु हनुमान तो ग्यारहवें रुद्र हैं इनका रुष्ट होना स्वाभाविक है क्योंकि मैंने पंक्ति भेद कर दिया है। कम्ब रामायण तथा तत्वसंग्रह रामायण में भी हनुमानजी को रुद्रावतार माना गया है। कृत्तिवासीय रामायण में सीता रामाभिषेक के पश्चात् हनुमानजी को भोजन कराने को बैठाती हैं परन्तु उन्हें तृप्त नहीं कर पातीं। इस पर वे शिव की वन्दना करती हैं क्योंकि वे शिव के अवतार हैं। तुलसीकृत रामायण में हनुमान को स्पष्ट रूप से रुद्रावतार तो नहीं कहा गया है परन्तु संकेत इस बात का मिलता है। 'प्रभु पद पंकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा।' दोहावली में तुलसीदास ने स्पष्ट रूप से हनुमान को रुद्रावतार कहा है। विनयपत्रिका में कई स्थानों पर इन्हें रुद्रावतार कहा है।

उड़िया महाभारत के आदिपर्व के अनुसार भी हनुमान शिव के अवतार हैं। इसके अनुसार अहिल्या ने अपनी लड़की को शाप दिया कि तुम्हारा लड़का बन्दर होगा। इस पर अंजना ने विवाह करना अस्वीकार कर दिया और तप करने लगी। उसके शरीर के चारों ओर वाल्मीकि वन जाने पर पवन देवता उसको सप्ताह में एक बार भोजन देने लगे। उधर शिव पार्वती विभिन्न पशुओं का स्वरूप धारण करके रमण करते थे। वानरों के रूप में रमण करते समय पार्वती शिव के तेज को सहन न कर सकी। इस तेज का कुछ अंश पवन ने अंजना को दे दिया, उससे वह हनुमान की माता बन गयी। तत्वसंग्रह रामायण में इस विवरण का संक्षिप्त

रूप प्राप्त होता है।

रामकथा से सम्बन्धित हनुमानजी का चरित्र वाल्मीकि रामायण के अनुसार किष्किन्धाकाण्ड के अन्तर्गत सुग्रीव की मैत्री के प्रकरण से प्रारम्भ होता है। इस कथा के अनुसार हनुमानजी सुग्रीव के साथ बैठे थे जब सुग्रीव राम और लक्ष्मण को देखकर यह सन्देह करते हैं कि कदाचित् इन्हें बाली ने भेजा हो। इस पर हनुमान को सुग्रीव ने इनका भेद लेने को भेजा। ये ब्राह्मण के वेष में उपस्थित होते हैं तथा राम, लक्ष्मण से उनका सब वृत्तान्त समझकर उन्हें सुग्रीव की सहायता का आश्वासन देते हैं और अपने वास्तविक रूप में प्रकट होकर राम, लक्ष्मण को अपने कन्धों पर सुग्रीव के पास ले आते हैं और सुग्रीव तथा राम की मित्रता करा देते हैं।

इस कथा के विपरीत अद्भुत रामायण के अनुसार जब हनुमानजी राम से प्रथम बार मिलते हैं तो राम उनको अपना विराट रूप दिखाते हैं। तब हुनमानजी को विश्वास होता है कि ये भगवान के अवतार हैं।

भावार्थ रामायण में हनुमानजी श्रीराम की शक्ति की परीक्षा लेने के हेतु राम-लक्ष्मण के पास साल वृक्ष लेकर पहुँचते है और उनसे बड़े ऊँचे स्वर में पूछते हैं कि तुम कौन हो। राम उन पर बाण चला कर उन्हें परास्त कर देते हैं तब हनुमानजी वायु की आज्ञा मान कर राम से क्षमायाचना करते हैं।

बंगाली रामकथा में हनुमानजी को शिव की वाटिका का द्वारपाल वर्णित किया है। यहाँ लक्ष्मण वाटिका में से फल तोड़ने जाते हैं। हनुमानजी उनको रोकते हैं। इस पर दोनों में युद्ध होने लगता है। लक्ष्मण के लौटने में देर होने पर राम भी वहाँ पहुँचते है और शिव भी आ जाते हैं, दोनों में युद्ध होता है। युद्ध के अन्त में शिव राम को अपने द्वारपाल हनुमानजी को समर्पित करते हैं। उसी समय से हनुमानजी राम के भक्त हो जाते हैं।

श्याम के 'रामकियेन' में राम को एक वृक्ष के नीचे शयन किए हुए वर्णित किया गया है। हनुमानजी उसी वृक्षपर आसीन हैं। वे वृक्ष की शाखा हिलाते हैं। लक्ष्मण उनको भगाने का प्रयत्न करते हैं परन्तु ये उनका धनुषबाण छीन लेते हैं। विवश होकर लक्ष्मण राम को जगाते हैं। हनुमानजी राम को देखकर अपनी माता से सुने हुए लक्षणों को स्मरण करके अपने को राम को समर्पित करते हैं

और दोनों भाइयों को सुग्रीव के पास पहुँचा देते हैं। जैन पद्मपुराण के अनुसार हनुमानजी की भेंट राम से सुग्रीव के मरने के पश्चात् होती है। वैष्णव पद्नपुराण में जब राम लक्ष्मण की गोद में सिर रख कर विश्राम कर रहे है तो उन्हें एक 'मणि कुंडल हेम पिगलं वानरम्' को देखा। कम्ब रामायण में भी हनुमानजी के कुण्डलों की चर्चा मिलती है। इसी बीच में यह भी वर्णन मिलता है कि हनुमानजी ने अपनी प्रथम भेंट में श्रीराम को अपना शरीर बढ़ा कर अपनी शक्ति का परिचय दिया था।

रामकीर्ति के वर्णन में, हनुमानजी जो वायु के पुत्र हैं, वे सुग्रीव द्वारा भेजे जाते हैं और लक्ष्मण को हराते हैं। राम उनके कुण्डलों को देख लेते हैं, इस पर उन्हें उनकी माता अंजना की कही हुई बात स्मरण आ जाती है कि जो तुम्हारे कुण्डल देख सकेगा वही तुम्हारा पिता है। राम को हनुमानजी अपना स्वामी मान लेते हैं और सुग्रीव को समाचार देने जाते हैं। भावार्थ रामायण के अनुसार अंजना ने हनुमानजी से कहा था कि जो तुम्हारी लंगोटी देख सकेगा वही तुम्हारा स्वामी होगा। इसके अनुसार हनुमानजी लंगोटी पहिने हुए उत्पन्न होते हैं।

अध्यात्म रामायण के अनुसार हनुमानजी राम से प्रथम भेंट के अवसर पर ही उनकी परमेश्वर के रूप में आराधना करते हैं।

गुणभद्र कृत उत्तर पुराण के अनुसार नारद हनुमानजी और सुग्रीव को साथ-साथ राम के पास भेज देते हैं।

वाल्मीकि रामायण में हनुमानजी को राम पहिचान के हेतु चिन्ह रूप में अपनी नामांकित अंगूठी देते हैं (स्वानामांकोपशोभितं अंगुलीयम्) और कहते हैं कि 'इसे देख कर ही सीता मेरी उद्विग्नता समझ जायेगी।' इसे हनुमान लेकर मस्तक पर रखते हैं।

गुणभद्र कृत उत्तरपुराण (जो प्रायः ९०० ई. में लिखा गया) तथा राम लिंगामृत में हनुमानजी को अंगूठी के साथ राम एक पत्र भी देते हैं। जिस समय ये काव्य लिखे गए अर्थात् ९०० ई. के पश्चात् यह प्रथा भारत में थी कि सन्देशवाहक को चिन्ह के रूप में कोई परिचित वस्तु दी जाती थी तथा लिखित संदेश अलग से दिया जाता था। यह प्रथा बहुत दिन तक चलती रही तथा मुगलकाल में भी थी।

अभिनन्दन कृत रामचरित में हनुमानजी को राम एक अंगूठी, सीता का नूपुर तथा उत्तरीय भी देते हैं जो सुग्रीव के स्थान पर गिरायी गयीं थीं। इनके अतिरिक्त पहिचान के हेतु उन्हें अपनी वंशावली भी बताते हैं।

आनन्द रामायण के अनुसार हनुमानजी को राम अपनी अंगूठी तो देते ही हैं उसके साथ अपना मंत्र भी अर्पित करते हैं तथा सीता के भाल पर तिलक की बात भी बताते हैं, जिससे सीता समझ जाय कि हनुमानजी राम के दूत हैं। कम्ब रामायण में राम सीता के नखशिख का वर्णन करते हैं तथा भावार्थ रामायण में राम कहते हैं कि सीता के हनु पर मेरा चित्र अंकित है।

श्रीहनुमानजी द्वारा रूप विस्तार-

देवता सुरसा को जो नागों की माता थी उसे विघ्न करने को तथा हनुमानजी के पराक्रम की परीक्षा लेने को भेजते हैं। यह समुद्र के मध्य में राक्षसी का रूप धारण करके खड़ी हो जाती है और हनुमानजी से कहती है कि मैं तुम्हें खाऊँगी। इस पर हनुमानजी कहते हैं कि तुम अपना मुँह बड़ा करो। सुरसा जैस-जैसे अपना मुख बढ़ाती है हनुमानजी भी अपना शरीर बढ़ाते जाते हैं। अन्त में हनुमानजी अंगुष्ठ मात्र का शरीर धारण करके उसके मुख में प्रवेश कर बाहर आ जाते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि इन्हें शरीर को बड़ा तथा छोटा दोनों करने की शक्ति थी। इसके पश्चात् इन्हें सिंहिका नाम की राक्षसी मिलती है जो इनकी छाया को पकड़ कर इनकी गति अवरुद्ध कर देती है। इसको मार कर हनुमान आगे बढ़ते हैं। लंका पहुँचने पर ये लंका को सुवर्ण के परकोटे से घिरा हुआ तथा राक्षसों से रक्षित देखते हैं। हनुमानजी विचार करते हैं कि रावण घोर रिपु है तथा लंका अजेय दुर्ग है। यहां विघ्नों का क्रम मैनाक, सुरसा तथा लंका हैं। अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, कंब रामायण इत्यादि में क्रम बदल गया है यथा सुरसा, मैनाक तथा सिंहिका। लंकापुरी में रात्रि में ये रूप बदलकर प्रवेश करने का निश्चय करते हैं। सूर्य के अस्त होने पर ये अपनी देह को छोटा करते हैं। लंका में प्रवेश करने पर लंका नगरी को हनुमानजी राक्षसी के रूप में देखते हैं। रामचरितमानस में इसका अर्थ मच्छर के समान छोटा किया गया है- 'मसक समान रूप कपि धरी'। गुणभद्र कृत उत्तर पुराण में हनुमानजी भ्रमर का रूप धारण करते हैं। वह्नि पुराण में ये मूषिका का रूप धारण करते हैं। सेरीराम के

अनुसार ब्राह्मण का रूप धारण करते हैं। विहोरे आदिवासी कथा के अनुसार ये शुक का रूप धारण करते हैं। पंजाब के एक लोकगीत में ये काक का रूप धारण करते हैं। हिन्द एशिया की रामकथा में ये भैंसे का रूप धारण करते हैं। पउम चरिय के अनुसार लंका में प्रवेश करते समय वह त्रमुख का बध करते हैं और उसके बाद उसकी पुत्री लंका सुन्दरी से युद्ध करते हैं। इस कथा के अनुसार श्रीहनुमान रावण के मित्र हैं, इस कारण उनको किसी छद्मवेश की आवश्यकता नहीं है। बृहद्धर्म पुराण तथा महाभागवत पुराण के अनुसार हनुमानजी शिव के अवतार हैं और लंका में देवी निवास करती हैं। लंका पहुंच कर हनुमान उनसे लंका को त्याग देने को कहते हैं। सीता के अपमान के कारण देवी लंका को छोड़ देती हैं। महाशिवपुराण के अनुसार भी हनुमानजी शिव के अवतार हैं। अध्यात्मक रामायण के अनुसार हनुमानजी राम के अमोघ बाण की भाँति चलते हैं जिसका अर्थ है कि 'जाय कार्य करे और लौट आवे'। वाल्मीकि रामायण में ये अपना छोटा रूप कर लेते हैं। अध्यात्म रामायण के अनुसार सीता के सामने आते समय हनुमानजी चटक पक्षी के बराबर छोटे बन्दर का रूप धारण करते हैं। आनन्द रामायण के अनुसार हनुमानजी छोटे बालक का रूप धारण करके सीता के पास जाते हैं। रामचरित मानस के अनुसार हनुमानजी एक छोटे बन्दर का रूप धारण करके सीता के पास जाते हैं। वाल्मीकि रामायण में लंका प्रवेश करने पर सीता की खोज ये रावण के प्रासाद में करते हैं तत्पश्चात् ये अशोकवन में जाते हैं। लंका में विभीषण से मिलने का वर्णन कई रामायणों में मिलता है। विमलसूरं कृत पउम चरिअ में विभीषण हनुमानजी का स्वागत करते हैं तथा रावण से सीता को लौटा देने के विषय में बात करने की प्रतिज्ञा करते हैं। उत्तर पुराण में हनुमानजी सीता से मिल कर राम के पास लौट आते हैं और पुनः श्रीराम द्वारा लंका भेजे जाते हैं। रावण सीता को वापस लौटाने से मना करता है और हनुमानजी राम के पास वापस जाते हैं।

आनन्द रामायण के अनुसार हनुमानजी सीता की खोज करते हुए विभीषण को रामकीर्तन करते हुए देखते हैं और इन्हें रामभक्त समझ कर उनसे मिलते हैं। रामचरित मानस के अनुसार तुलसी के वृक्ष को विभीषण के आंगन में देखकर हनुमानजी उनसे मिलने जाते हैं। उसी समय विभीषण जागते हैं और राम राम

स्मरण करने लगते हैं। विभीषण ही हनुमानजी को बताते हैं कि सीता कहाँ हैं और वहाँ जाने की कौन सी युक्ति है।

सुग्रीव के आदेशानुसार प्रमुख बन्दरगण सीतान्वेषण के लिए दक्षिण दिशा की ओर जाते हैं। सुग्रीव ने विशेषरूप से सीतान्वेषण के प्रयोजन को हनुमानजी के समक्ष रखा; क्योंकि वे जानते थे कि इस कार्य में श्रीहनुमानजी ही सफल हो सकते हैं। अतः वे हनुमानजी की प्रशंसा भी करते हैं। श्रीराम ने देखा कि हनुमानजी पर सुग्रीव की विशेष कृपा दृष्टि है। अतः उन्होंने स्वानामांकित अंगूठी सीता को पहचान के रूप में देने के लिए दी। हनुमानजी उस अंगूठी को मस्तक पर रख और प्रणाम कर चल देते हैं। रामायण मंजरी, राघवीय, भट्टिकाव्य, हनुमन्नाटक आदि में भी इस अवसर पर हनुमान राम संवाद तथा मुद्रिका दान का वर्णन किया गया है। रघुवंश चम्पू रामायण, अग्निपुराण, प्रसन्नराघव आदि में संवाद न होने पर भी मुद्रिका का उल्लेख 'सीता हनुमान-संवाद' में अवश्य मिलता है। किन्तु महाभारत पद्मपुराण में मुद्रिका का कोई भी संकेत नहीं है।

वाल्मीकि के सुग्रीव जब हनुमानजी के बल तथा पराक्रम की प्रशंसा कर लेते हैं एवं राम को जब पूर्ण विश्वास हो जाता है कि श्रीहनुमान ही कार्यसिद्धि में सफल होंगे तब वे मुद्रिका देते हैं। तुलसी के हनुमानजी 'निज जन'-हैं। अतः उन्होंने सहर्ष उन्हें मुद्रिका प्रदान की।

वाल्मीकि के हनुमानजी अंगूठी को मस्तक पर रखते हैं जबकि तुलसी के हनुमान ने कहाँ मुद्रिका रखी- इसका वर्णन मानस में नहीं है। रामाज्ञा प्रश्न, हनुमान चालीसा एवं गीतावली में इसको मुख में रखने का उल्लेख है। तुलसी का यह संवाद भक्त्यात्मक है, जिसकी झलक 'परसा सीस सरोरुह पानी, चलेह हयदथरि कृपा निधाना।' में मिलती है। वाल्मीकि का यह संवाद विशुद्ध दूत और स्वामी का संवाद है।

सीतान्वेषण के क्रम में अनेक पर्वत, नदी, तालाब, गुफा आदि में भ्रमण करते हुए कपिगण थक गए और विन्ध्यगिरि पर ऋक्षविल नामक गुफा में पहुँचे। गुफा में पहुँचने पर बन्दरों ने एक तेजमयी तपस्विनी को देखा। हनुमानजी के पूछने पर उसने अपना नाम स्वयंप्रभा बतलाया। तपस्विनी के पूछने पर श्रीहनुमान ने भी अपना सम्पूर्ण वृतान्त सुनाया। पुनः तपस्विनी की कृपा से आँख बन्द कर

बन्दरगण गुफा के बाहर आते हैं। तपस्विनी भी गुफा से बाहर आकर बन्दरों को प्रसर्वणगरि, विन्ध्यगिरि और सागर को दिखलाकर गुफा में लौट जाती है।

'रामचरित मानस' में गुफा में प्रवेश करते ही वानरों की पहली भेंट दुर्दभ नामक राक्षस से होती है, जिसे अंगद समाप्त करते हैं। वहीं पर एक बन्दरी हनुमानजी से दो बार प्रेम प्रस्ताव करती है और तिरस्कृत होती है, फिर स्वयंप्रभा के जाते ही वह अदृश्य हो जाती है। वहाँ स्वयंप्रभा के सौन्दर्य और उसके जन्म वृत्तान्त का विस्तृत वर्णन किया गया है। यह भी वाल्मीकि से प्रभावित भाग है। वाल्मीकि रामायण में गुफा का रक्षक एक राक्षस है, परन्तु उसका नाम नहीं दिया गया है। महाभारत में उस तपस्विनी का नाम प्रभावती है और वहाँ उसके द्वारा किए गये वानरों के केवल स्वागत का ही उल्लेख हैं। 'अग्नि-पुराण' के अनुसार उसका नाम 'सुप्रभा' है। वहाँ स्वागतादि का कोई संकेत नहीं है। वाल्मीकि और तुलसी दोनों महाकवियों के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि हनुमानजी ही इस सीता-शोध-अभियान के अग्रणी हैं। वाल्मीकि में स्वयंप्रभा से वार्त्तालाप का सारा आयोजन हनुमानजी के द्वारा ही पूरा होता है। तुलसी में पर्वत शिखर पर चढ़कर गुफा का अनुमान करना एवं उसमें सबसे आगे प्रवेश होना उनके अग्रणीपन का द्योतक है। वाल्मीकि में इस तपस्विनी का नाम 'स्वयंप्रभा' बतलाया गया है। तुलसी में इसका कोई नामोल्लेख नहीं है। यहाँ उसे केवल 'तपपुंज नारि' कहा गया है।

समुद्र-तट पहुँचने पर सीता-शोध की अवधि बीत जाने के कारण से बन्दरगण चिन्तित होते हैं। सुग्रीव के दण्डभय से अंगदादि वानर उपवास के द्वारा प्राण त्याग करना चाहते हैं। बन्दरगणों को अंगद के पक्ष में देखकर हनुमानजी चिन्तित होते हैं। उन्हें स्वामी के राज्य में फूट होने की आशंका होती है। वे तुरन्त भेद नीति का सहारा लेते हैं और साम, दाम, भेद और दण्ड इन चारों उपायों में से तीसरे का सहारा ले बन्दरों में फूट डालने लगते हैं। जब बन्दरगणों में फूट उत्पन्न हो जाती है तब वे दण्डनीति के द्वारा अंगद को डराते हैं और सुग्रीव की प्रशंसा करते हैं तथा कहते हैं कि अंगद को किष्किन्धापुरी लौट जाना चाहिए। परन्तु, अंगद सुग्रीव की निन्दा करते हैं और सभी बन्दरों सहित प्रायोपवेशन करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। पर्वत के जिस स्थान पर बन्दरगण आमरण उपवास के लिए बैठते हैं, वहीं सम्पाति (जटायु के भाई) आते हैं और अपने भोजन की

चर्चा करते हैं। किन्तु, इसी बीच अंगद जटायु का प्रसंग चलाते हैं। सम्पाति भी अपने पंख जलने की कथा सुनाते हैं और बन्दरों की सहायता से समुद्र तट पर जलांजलि देते हैं तथा सीता का पता बतलाते हैं। अब समस्या थी समुद्रोल्लंघन की। समुद्र की विशालता को देखकर विषाद में पड़े बन्दरों को अंगद आश्वासन देते हैं और पृथक्-पृथक् समुद्र-लंघन की उनकी शक्ति पूछते हैं। इसके बाद गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धिमादन, द्विविंद, सुषेण और जाम्बवान अपनी-अपनी शक्ति का वर्णन करते हैं। अंगद ने पार जाकर प्रत्यार्वतन में सन्देह प्रकट किया। जाम्बवान ने अंगद को भेजना उचित न समझा। अन्ततः एकान्त में मौज से बैठे, निश्चित और दूर की छलांग मारने वाले हनुमानजी को जाम्बवान प्रेरित करते हैं। जाम्बवान हनुमानजी को उनकी जन्म-कथा सुनाकर समुद्र-लंघन के लिए उत्साहित करते हैं। जाम्बवान द्वारा उद्‌बोधित करने पर हनुमानजी उस प्रकार जागृत हो गए जिस प्रकार सिंह कन्दरा में अंगड़ाई लेता है। बन्दरों को सीता-शोध का आश्वासन देकर हनुमानजी महेन्द्र पर्वत पर चढ़कर टहलने लगे। हनुमानजी के बल से पर्वत चूर-चूर होने लगा। इस प्रकार अपने बल को प्रदर्शित करते हुए श्रीहनुमान समुद्र-लंघन के लिए उद्यत होते हैं।

समुद्र-तट पर दुखित बन्दरों से सम्पाति-मिलन की कथा वाल्मीकि के समान तुलसीदास में भी उपलबध होती है। द्रष्टव्य यह है कि जहाँ वाल्मीकि के हनुमान भेद-नीति के द्वारा अंगद के पक्ष से बन्दरों को अपने पक्ष में मिलाने के लिए तत्पर दीख पड़ते हैं, वहाँ तुलसीदास में इसका सर्वथा अभाव है।

हनुमानजी को उनके बल की याद दिलाकर उनको प्रोत्साहित या उद्‌बोधित करने का कार्य जहाँ वाल्मीकि में जाम्बवान के द्वारा वर्णित है वहाँ तुलसी के ग्रन्थों में जामवंत का नाम है। वस्तुतः, ये एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं।

श्रीहनुमान द्वारा समुदोल्लंघन-

सीता-दर्शन के लिए लंका पहुँचने के विचार से वाल्मीकि' के श्रीहनुमान छलांग मारकर चलते हैं। देवतागण उनके ऊपर फूलों की वर्षा करते हैं। सूर्य और वायु भी सहायता करते हैं। हनुमानजी अबाध गति से आगे बढ़ रहे हैं। उसी समय इक्ष्वाकुवंश की सेवा से प्रभावित होकर समुद्र ने मेनाक से अनुरोध किया कि हनुमानजी एक विषम कार्य सम्पादन के लिए आ रहे हैं अतः इनकी सहायता

करनी चाहिए। मैनाक के आतिथ्य को मौखिक स्वीकृति देकर हनुमानजी आगे बढ़ते हैं। तदनन्तर देवताओं के आग्रह से नागमाता सुरसा राक्षसी का वेश धारण कर मार्ग में उपस्थित होती है। सुरसा अपने मुख का जितना विस्तार करती है, हनुमानजी इससे दस योजन अधिक बड़े हो जाते हैं। अन्ततः मुख में प्रविष्ट होकर सुरसा पर विजय प्राप्त कर आगे बढ़ते हैं। तत्पश्चात् आगे बढ़ने पर स्वेच्छानुसार रूप धारण करने वाली सिंहिका नाम वाली राक्षसी से हनुमानजी की भेंट होती है। वह श्रीहनुमान की छाया को पकड़ कर अपनी ओर खींचती है। हनुमानजी उसके मर्मस्थल को भेदकर उसे समाप्त कर देते हैं। इस प्रकार, अनेक बाधाओं को पार कर हनुमानजी समुद्र के उस पार उतर जाते हैं और वहाँ से लंका नगरी का निरीक्षण करते हैं।

रामचरित मानस में नागमाता सुरसा के स्थान पर देवमाता' सरमा' का वर्णन है। वहाँ दोनों (हनुमान एवं सरमा) एक दूसरे को पराजित करने के लिए आकाश में अपने शरीर का दो गुना विस्तार करते हैं। अन्त में हनुमान वहाँ अणु रूप होकर उसकी स्तुति करते हैं और विदा माँग लेते हैं। वहाँ सरमा के बाद मैनाक का वर्णन मिलता है फिर हनुमान और सिंहिका का विस्तृत संवाद भी है।

वाल्मीकि और तुलसी दोनों महाकवियों के हनुमत्समुद्रोल्लंघन प्रसंग में पर्याप्त-समानता लक्षित होती है, किन्तु कुछ वैषम्य भी है। जहाँ वाल्मीकि के हनुमानजीं सुरसा के मुख से दस योजन अधिक अपने शरीर का विस्तार करते हैं, वहाँ तुलसी में यह विस्तार दुगुना दिया गया है। वाल्मीकि की सुरसा राम-कार्य के लिए हनुमानजी को आज्ञा देती है। वहाँ तुलसी की सुरसा आशीर्वाद देती है। तीसरी बाधा के रूप में एक निश्चिरी आती है, जिसे मानसकार के शब्दों 'छायाग्रहिणी' कहा जा सकता है। वाल्मीकि ने इसका नाम सिंहिका दिया है। दोनों महाकवियों ने हनुमानजी के समक्ष समान बाधा क्रम को उपस्थित किया है और वह है- मैनाक, सुरसा और सिंहिका।

लंका में प्रवेश

समुद्र की उत्तल तरंगों को पारकर कपिवर हनुमानजी त्रिकूट नामक पर्वत पर उतर कर लंका की शोभा का अवलोकन करने लगे। हनुमानजी एक प्रवीण गुप्तचर की भाँति विचार करते हुए कहते हैं कि 'मुझे निशा काल में नगर में प्रवेश

कर सीतान्वेषण कार्य समयोजित ढंग से पूरा करना चाहिए। इसके लिए मुझे उस रूप का अवलम्ब लेना चाहिए, जो चक्षु गोचर न हो। लोगों को मेरे कार्य से यह विदित न हो कि कोई कपि यहाँ आया था। वे नाना प्रकार के रूप धारण का विचार करते हैं और अन्त में प्रदोषकाल में बिल्ली के बराबर होकर लंकापुरी में प्रवेश करते हैं।

लंका में प्रवेश करने से पूर्व वाल्मीकि के हनुमानजी एक कुशल राजनीतिक, गुप्तचर की भाँति लगभग २३ श्लोकों में तर्क-वितर्क करते हैं। जबकि तुलसी ने इतना ही लिखा 'पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह विचार।' दोनों के हनुमान रात्रि में ही लंका प्रवेश का विचार करते हैं। दोनों महाकवियों के 'हनुमान-रूप-परिवर्तन' में यह अन्तर है कि जहाँ वाल्मीकि के हनुमान बिल्ली के बराबर होकर लंका में प्रवेश करते हैं, वहाँ तुलसी के हनुमान मच्छर के समान होकर प्रविष्ट होते हैं।

लंकिनी से भेंट-

हनुमानजी ज्यों ही लंकापुरी में प्रविष्ट होते हैं, उसी समय लंका की अधिष्ठात्री देवी उन्हें देखती है। तदनन्तर हनुमानजी और लंका में वाद-विवाद होता है। हनुमान उसे 'क्रूर स्वभाववाली नारी' कहते हैं तो वह हनुमान को 'खोटी बुद्धिवाला नीच बानर' भी कहती है। वह हनुमान से कहती है कि मुझे परास्त किये बिना तुम लंका में नहीं प्रविष्ट हो सकते। हनुमानजी ने कहा- मैं लंका नगरी को देखकर जैसे आया हूँ, उसी तरह लौट जाऊँगा। इस पर लंका एक थप्पड़ मारती है। फिर हनुमान भी उसे मुक्का मारते हैं और वह गिर पड़ती है। तब कहती है-'वानर वीर! मैं स्वयं लंकापुरी हूँ। आपने मुझे अपने पराक्रम से परास्त कर दिया है।' इसके पश्चात् लंका ब्रह्मा के वरदान का उल्लेख करती है, जिसके अनुसार सीता के कारण दुरात्मा रावण के विनाश की घड़ी आ पहुँची है। अन्ततः वह हनुमानजी से अनुरोध करती है कि आप इस रावणपुरी में प्रवेश कीजिए और जहाँ जो कार्य करना चाहते हो, उन सबको पूर्ण कर लीजिए।

वाल्मीकि की लंका हनुमानजी पर थप्पड़ का प्रहार करती है और प्रत्युत्तर में हनुमानजी भी उसे मुक्का मारते हैं। तुलसीदास की मर्यादावादी दृष्टि एवं सुरुचि ने इस प्रसंग को अत्यंत आदर्शवादी बना दिया है। हनुमानजी द्वारा प्रहार का

उल्लेख है, किन्तु लंकिनी द्वारा किसी भी प्रकार का प्रहार नहीं किया गया है। वाल्मीकि की लंका हनुमानजी के लिए अपशब्दों का प्रयोग करती है, जबकि तुलसीदास ने लंकिनी द्वारा केवल 'सठ' एवं 'चोर' कहलाया। परन्तु भक्त हनुमानजी के मुख से एक भी दुर्वचन नहीं निकलने दिया।

लंका भ्रमण-

लंका नाम की राक्षसी को परास्त करने के उपरान्त वानर शिरोमणि श्रीहनुमान परकोटा फांदकर लंकापुरी में प्रवेश कर गए। सीता-शोध के क्रम में वे विभीषण और कुम्भकर्ण के भवनों का निरीक्षण करते हुए रावण की हवेली, उसके शयनकक्ष तथा मधुशाला को भी देख लेते हैं। अपार ऐश्वर्य एवं कामोत्तेजक वस्तुओं के रहने पर भी हनुमानजी का मन लेशमात्र भी डिग न सका। सीता का पता न मिलने से वे अत्यन्त चिन्तित होते हैं। यहाँ तक कि वे मृत्यु का भी वरण करना चाहते हैं। अन्ततोगत्वा अशोकवाटिका में अशोक वृक्ष पर बैठकर चैत्य प्रासाद में अवस्थित सीता को देखते हैं।

तुलसीदास में इस प्रकार के व्यापक वर्णन का अभाव है। यद्यपि तुलसी के श्रीहनुमान 'मन्दिर-मन्दिर प्रति करि सोधा' को चरितार्थ करते हैं। किन्तु, उनके अन्वेषण में एक विपन्न की विवशता है। तुलसी के हनुमानजी को वाल्मीकि के हनुमानजी के समान अधिक भटकने की आवश्यकता नहीं पड़ती; क्योंकि भक्त तुलसी ने भक्त हनुमानजी को भक्त विभीषण से मिला दिया जिससे सीता का पता लग गया। वाल्मीकि के हनुमानजी स्वयं सीता की खोज करते हैं एवं अशोकवाटिक में पहुँचते हैं।

विभीषण-हनुमान-संवाद गोस्वामी तुलसीदास की मौलिकता है। वाल्मीकि में इस संवाद का सर्वथा अभाव है। संस्कृत के ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख नहीं है। संस्कृत साहित्य में रावण और विभीषण के भवनों में कोई बाह्य अन्तर नहीं दिखाया गया है। इसीलिए हनुमानजी वहाँ दोनों में समान रूप से शोध करते हैं। तुलसी ने विभीषण के रामभक्त होने के नाते उसके भवन में सीता-शोध को अनुचित समझकर उसे एक अलग रूप दे दिया और विभीषण के मुख से श्रीहनुमान को सीता की प्रवृत्ति कहलाकर उन्होंने राम मिलन से पूर्व ही विभीषण को सक्रिय रामभक्ति का स्पष्ट प्रमाण भी दे दिया है।

मन्दोदरी को देखकर सीता का भ्रम होना वाल्मीकि के हनुमानजी को अभीष्ट था। परन्तु तुलसी के हनुमानजी को नहीं।

सीता-हनुमान भेंट-

अशोक वृक्ष पर बैठे हुए श्रीहनुमान, रावण का आगमन, उसके द्वारा सीताजी को दिया जाने वाला प्रलोभन, राक्षसियों द्वारा सीताजी को समझाना, सीताजी का करुण विलाप एवं उनके प्राण त्यागने का निश्चय, त्रिजटा स्वप्न और श्रीसीता के शुभ-शकुन आदि की क्रियाओं को देखते हैं। अब हनुमानजी जो विचार करते हैं कि यदि सीताजी को बिना सन्देश दिए वे चले जाते हैं तो राम उन्हें भस्म कर डालेंगे। अंतएव इस विचार से मानवोचित संस्कृत भाषा में बात-चीत करना चाहते हैं, लेकिन तुरंत ही विचार परिवर्तन होता है और वे अयोध्या के आसपास की साधारण जनता में प्रयुक्त बोली का आश्रय लेते हैं। हनुमानजी अत्यन्त संक्षेप में रामकथा सुनाते हैं। सीताजी श्रीहनुमान के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क करती हैं। पुनः हनुमानजी उस अशोक वृक्ष से नीचे उतर कर सीताजी के सम्बन्ध में जिज्ञासा करते हैं। श्रीसीता उन्हें अपना परिचय और अपने अपहरण का वृत्तान्त सुनाती है। हनुमानजी स्वयं को श्रीराम का दूत एवं उनका संदेश वाहक बतलाते हैं। सीताजी के कहने पर श्रीहनुमान राम के गुणों का वर्णन करते हैं। वे सीताजी के पूछने पर रामजी के शारीरिक चिन्हों एवं गुणों का विस्तार से वर्णन करते हैं तथा नर-वानर की मित्रता का प्रसंग सुनाकर उनके मन में विश्वास उत्पन्न करते हैं। श्रीहनुमान उन्हें राम द्वारा प्रदत्त मुद्रिका देते हैं और कहते हैं- महाभागे! मैं परम बुद्धिमान भगवान राम का दूत हूँ। देवी यह श्रीराम नामांकित मुद्रिका है, इसे लेकर देखिए। मुद्रिका प्राप्त कर सीता प्रसन्न होती हैं, एवं हनुमानजी को असाधारण वानर की संज्ञा से अभिहित करती हैं। श्रीहनुमान सीताजी को अपनी पीठ पर बैठाकर श्रीराम से मिलाने का प्रस्ताव रखते हैं। किन्तु, सीताजी इसे वानरोचित चपलता ही समझती हैं, जिस पर हनुमानजी उन्हें विकराल शरीर दिखलाते हैं और तब सीताजी को श्रीहनुमान की शक्ति के प्रति विश्वास होता है। सीताजी हनुमानजी की पीठ पर न चढ़कर जाने का प्रथम कारण यह बतलाती हैं कि वायु के तीव्र वेग के कारण वे समुद्र में गिर सकती हैं तथा स्वेच्छा से श्रीराम के अतिरिक्त वे किसी दूसरे पुरुष का स्पर्श करना नहीं चाहतीं। श्रीहनुमान सीताजी

के पातिव्रत्यपूर्ण वचनों को सुनकर प्रसन्न होते हैं। तदनन्तर, सीताजी हनुमानजी को पहचान के रूप में एक कौवे की कथा (जो इन्द्र का पुत्र था) सुनाती हैं और राम को शीघ्र आने का आग्रह करती हैं। हनुमानजी उन्हें विभिन्न प्रकार के आश्वासन देते हैं। श्रीसीता हनुमानजी को दिव्य चूड़ामणि देती हैं। चूड़ामणि को ग्रहण करने के उपरान्त श्रीहनुमान सीताजी की प्रदक्षिणा करते हैं। जब वे जाने के लिए उत्सुक होते हैं तब भाव-विह्ल सीताजी उन्हें एक दिन किसी गुप्त स्थान में निवास करने के बाद कल जाने का आग्रह करती हैं और पुनः सन्देश देने के लिए मनः शिला तिलक की याद दिलाती है। श्रीहनुमान सीताजी को यथाविधि समझा-बुझाकर उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं। संस्कृत के ग्रन्थों में भी ये प्रसंग थोड़े-बहुत अन्तर के साथ उपलब्ध होते हैं।

रावण-सीता-संवाद

'रामायण मंजरी' पर स्पष्ट रूप से वाल्मीकि रामायण का प्रभाव लक्षित होता है। सीता को रावण द्वारा दिये गये प्रलोभनों का वर्णन वाल्मीकि रामायण में विस्तार से मिलता है। सीता तृण की ओट से उसे धिक्कारती है। सीता वध ा के लिए रावण दो मास की अविध निश्चित करता है। 'राघवीय' का रावण सीता से अप्रसन्न होकर जब उनकी हत्या के लिए आगे बढ़ता है तब उसके साथ की स्त्रियाँ उसे रोक लेती हैं। वहाँ हनुमान के द्वारा क्रोधपूर्वक देखते रहने का भी संकेत है। रामचरित में भी रावण की स्त्रियाँ उसको सीतावध से रोकती हैं। वहाँ सीता सुपार्श्व के सन्मुख व्यक्त की गयी रावण की दीनता का उससे उल्लेख करती है और स्वयं को राक्षसकुल की कालरात्रि बतला कर उसे लंका दहन एवं सपरिवार मरण का शाप देती है। वहाँ भी रावण द्वारा सीता को त्रास देने के समय उसका सामना करने के लिए हनुमानजी के सर्तकतापूर्वक छिपे-छिपे आगे बढ़ने और उसके लौट जाने पर उनके भी शान्त होने का वर्णन किया गया है। चम्पू रामायण का रावण अधिकतर मौन ही रहता है। वहाँ पर सीता तृण की ओट से यह प्रार्थना करती हुई रावण से कहती है कि तुम मुझे पंचवटी पहुँचा दो। वहाँ पर एक दिन की अवधि का संकेत है। महाभारत में रावण के दर्प एवं प्रलोभन आदि का विस्तृत वर्णन मिलता हैं। वहाँ भी सीता उसे तृण की ओट से फटकारती है। वहाँ रावण के द्वारा अवधि दान का कोई संकेत नहीं है।

संस्कृत नाटकों में से 'प्रसन्न राघव' के संवाद में 'रामचरित मानस' का अक्षरशः प्रभाव है। वहाँ दो विद्याधरों के इन्द्रजाल (मायानाटक) में (जिसे राम और लक्ष्मण भी देख रहे हैं) इस प्रसंग का अभिनय किया गया है। वहाँ रावण सीता को धमकाने के लिए अपनी तलवार चन्द्रहास का प्रयोग करता है। फिर, वह उनके रक्तपान की कामना से एक कपाल मांगता है। उसी समय अशोक वृक्ष पर बैठे हनुमानजी वहीं से 'अक्ष' का कटा हुआ शिर उसके हाथों में फेंक देते हैं, जिससे खिन्न और क्रुद्ध होकर वह वहाँ से चला जाता है। 'आश्चर्य चूड़ामणि' का रावण तो अपना शिर भी सीता के चरणों पर रख देता है जिसे वे ठुकरा देती हैं। वहाँ रावण के क्रुद्ध होने पर मन्दोदरी उसे रोक लेती हैं। 'अभिषेक' की सीता जब अपने पतिव्रत के तेज प्रभाव से रावण को शाप देने का प्रयत्न करती हैं, उस समय रावण उनके तेज की हंसी उड़ाता है। वहाँ हनुमानजी रावण को देखकर पहले उसके वध का विचार करते हैं, फिर पराजय की शंका से रुक जाते हैं। हनुमन्नाटक एवं महानाटक का रावण सीता को प्रवंचित करने के लिए राम लक्ष्मण के कटे हुए नकली शिरों को प्रस्तुत करता है। परन्तु भेद खुलने पर वह भाग जाता है। दुबारा अपने ही कटे हुए दस शिरों को लेकर वह राम के वेश में सीता के समक्ष उपस्थित होता है। सीता उसे राम समझकर उससे मिलने के लिए दौड़ती हैं तब वह एक शाप के कारण क्लीव की भाँति भाग खड़ा होता है। वहाँ सीता सरमा से रावण के इन षड्यंत्रों के रहस्य को जानकर बहुत खेद प्रकट करती हैं।

'रामायण मंजरी' का हनुमान-सीता-संवाद वाल्मीकि रामायण का छायावाद है। चम्पू रामायण का वर्णन भी इसी से मिलता-जुलता है, परन्तु, वहाँ पर 'विन्ध्य राक्षस' का उल्लेख नहीं है। 'नट्टिटकाव्य' में हनुमानजी के विशाल रूप का भी संकेत नहीं है। राघवीय में हनुमानजी स्वयंमेव अपना विशाल रूप दिखलाकर उन्हें 'वानर शक्ति' का विशेष परिचय देते हैं। 'रामचरित' की सीताजी हनुमानजी से त्रिजटा और विभीषण के सुन्दर कार्यों की प्रशंसा करती हैं। वहाँ यद्यपि यह प्रसंग विस्तृत है, परन्तु न तो हनुमानजी के विशाल रूप की ही चर्चा है और न विन्ध्य राक्षस की सूचना का ही कोई संकेत है।

नाटकों में 'प्रसन्न राघव' नाटक का यह प्रसंग 'रामचरित मानस' के प्रसंग

से बहुत मिलता है। वहाँ एक तो नाटक होने के कारण अभिनीत किया जा रहा है, जिसे राम-लक्ष्मण देखते हैं और टीका-टिप्पणी भी करते हैं, दूसरे न तो वहाँ सीता के साथ त्रिजटा भी उपस्थित रहती है। इसके अतिरिक्त यहाँ यह प्रसंग, नाटिका-भंग और राक्षस वध के पश्चात् वर्णित किया गया है जब कि अन्य ग्रन्थों में यह प्रसंग पूर्ण है। महानाटक और हनुमन्नाटक में यह संवाद कुछ श्लोकों में प्रश्नोत्तर रूप में प्रस्तुत किया गया है। वहाँ सीता के विरह में राम इतने दुर्बल हो गये हैं कि उनकी मुद्रिका उनके लिए कंगन के समान हो गयी है। अभिषेक की सीता तो हनुमानजी को 'राक्षसी वंचना' समझकर अंत तक उन पर विश्वास ही नहीं करती हैं।

प्रत्यभिज्ञान-दान

संस्कृत के ग्रन्थों में सीताजी द्वारा हनुमानजी को दिये जाने वाले प्रत्यभिज्ञान की संख्या, उद्देश्य एवं समय के वर्णन में पर्याप्त विभिन्नताएँ लक्षित होती हैं। रामायण मंजरी एवं हनुमन्नाटक में तीन प्रत्यभिज्ञान हैं-जयन्त कथा, मनःशिला तिलक तथा चूड़ामणि। चम्पूरामायण और महाभारत में मनःशिला तिलक का उल्लेख नहीं है। महानाटक में सीता विदा के समय हनुमानजी को ६ फल देती हैं, जिनमें एक राम के लिए, एक सुग्रीव के लिए, एक लक्ष्मण के लिए, एक स्वयं हनुमानजी के लिए और शेष दो वानर सेना के लिए हैं। राघवीय में चूड़ामणि का प्रदान केवल उनकी सुरक्षा की दृष्टि से किया जाता है। रामायण मंजरी, राघवीय, भट्टिकाव्य, चम्पू रामायण, और रामचरित में हनुमान प्रथम मिलन में ही प्रत्यभिज्ञान ग्रहण कर लेते हैं। लंका दहन के पश्चात् सीता से दुबारा मिलते हैं और विदा हो जाते हैं। यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण से पूर्णतः प्रभावित हैं, वहाँ भी हनुमानजी प्रथम मिलन में ही प्रत्यभिज्ञान ग्रहण कर लेते हैं।

तुलसीदास के अनुसार हनुमानजी अशोकवाटिका में सीता के प्रथम दर्शन का ज्यों ही विचार करते हैं, उसी समय रावण का आगमन होता है। अतः हनुमानजी वृक्ष से ही रावण-सीता संवाद, रावण द्वारा सीता वध के लिए उद्यत होना, मन्दोदरी द्वारा सीता की रक्षा, रावण द्वारा सीता वध के लिए एक मास की अवधि देना, राक्षसियों द्वारा सीता को भयभीत करना, त्रिजटा द्वारा सीता को स्वप्न सुनाना, सभी राक्षसियों का सीता के पैर पर गिरना, सीता द्वारा त्रिजटा

से चिता बनाने तथा अग्नि लगाने की याचना, त्रिजटा द्वारा राम का सुयश सुनाना तथा रात्रि में अग्नि मिलने में असमर्थता प्रकट करना आदि प्रसंगों को देखते हैं। सीता अशोक वृक्ष के नये-नये किसलयों से अग्नि की याचना करती हैं। हनुमानजी उन्हें विरह से अत्यन्त व्याकुल देखते हैं और उचित अवसर समझकर मुद्रिका गिरा देते हैं। सीता उस मुद्रिका को प्राप्त कर नाना प्रकार के तर्क-वितर्क करती हैं। हनुमानजी को रामदूत के रूप में प्राप्त कर सीता के मन को विश्वास होता है। वे सीता को आश्वासन देते हैं और कहते हैं कि राम की आज्ञा नहीं है, नहीं तो मैं आपको अभी ले जाता। सीता के कहने पर हनुमानजी कनकभुध ाराकार शरीर को दिखलाते हैं जिससे सीता के मन को सन्तोष होता है। वे हनुमानजी को अनेक गुणों से सम्बलित होने का आशीर्वाद देती हैं। तुलसीदास के अन्य ग्रन्थों में भी यह वर्णन बड़ी रोचकता के साथ आया है। गीतावली में हनुमानजी जब सीता को विरहावस्था में देखते हैं तब प्रेम से भर जाते हैं। राम के गुणों को जानकर वे मुद्रिका को गिरा देते हैं। तब सीता मुद्रिका से कुशल समाचार पूछती हैं। मुद्रिका उन्हें सारा समाचार बतलाती है और श्रीहनुमान के आने का समाचार देती है। इस प्रकार गीतावली के लगभग ११ पदों में सीता-हनुमान मिलन का हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया गया है।

सीता-हनुमान-मिलन के इस प्रसंग में महाकवि वाल्मीकि और तुलसी में कई मूलभूत अन्तर हैं।

तुलसीदास के हनुमानजी सीताजी के समक्ष सहसा मुद्रिका गिराते हैं, जिससे इस प्रसंग में विशेष नाटकीयता आ गयी है। वाल्मीकि रामायण में हनुमानजी इक्ष्वाकु वंशावली द्वारा सीता का ध्यान आकृष्ट करते हैं और तब मुद्रिका हाथ में प्रदान करते हैं।

वाल्मीकि के हनुमानजी सीता के प्रथम दर्शन में ही उनसे प्रत्यभिज्ञान प्राप्त करते हैं। तुलसी में द्वितीय दर्शन (लंका दहन के पश्चात्) में प्रत्यभिज्ञान प्राप्त करते हैं। तुलसी ने यहाँ अपने सरस विवेक का परिचय दिया है, क्योंकि प्रथम मिलन में प्रत्यभिज्ञान प्राप्त करने पर अनेक आशंकाएँ हो सकती थीं।

इस प्रसंग से यह ध्वनित होता है कि वाल्मीकि के हनुमानजी भाषाविद कुशल दूत हैं जबकि तुलसी के हनुमान दूत के साथ-साथ रामभक्त एवं जानकी के

वात्सल्य स्नेह के भाजन हैं।

वाल्मीकि के हनुमानजी सीता को पीठ पर बैठाकर लाने का आग्रह करते है, परन्तु तुलसी के आदर्शवादी हनुमानजी कहते हैं- 'प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई।'

वाल्मीकि की सीता हनुमानजी को एक दिन गुप्त स्थान में रहने का आग्रह करती हैं जबकि तुलसी की सीता उन्हें अशोक वन में फल खाने की आज्ञा देती हैं।

अशोक वाटिका-विध्वंस एवं राक्षस-नाश

सीता से प्रत्यभिज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर हनुमानजी विचार करते हैं कि सीता का पता लगने के पश्चात् हमें शत्रु की शक्ति का जानना अत्यावश्यक है। साम, दाम और भेद इन तीन उपायों से राक्षसों को परास्त नहीं किया जा सकता। अतएव वे दण्डनीति का सहारा लेते हैं और अपने पराक्रम का जौहर दिखलाना चाहते हैं। उनका मत है कि 'जो पुरुष प्रधान कार्य के सम्पन्न हो जाने पर दूसरे-दूसरे बहुत से कार्यों को भी सिद्ध कर देता है और पहले कार्य में बाधा नहीं आने देता, वही कार्य को सुचारू रूप से कर सकता है।' अतएव, रावण से युद्ध करने की अभिलाषा से हनुमानजी ने वाटिका को विध्वंस करना प्रारंभ कर दिया। राक्षसियों के मुख से एक वानर के द्वारा प्रमदावन के विध्वंस का समाचार सुनकर रावण किंकर नामधारी राक्षसों को भेजता है। हनुमानजी उन्हें युद्ध में काल के हवाले कर देते हैं। इसी क्रम में चैत्य प्रासाद (जो राक्षसों के कुल देवता का स्थान था) को नष्ट कर वे उसके रक्षकों को भी मौत के घाट उतार देते हैं। किंकर नामधारी राक्षसों के वध के पश्चात् प्रहस्त-पुत्र जम्बुमाली लड़ने के लिए जाता है, परन्तु उसकी भी वही गति होती है, जो किंकर नामधारी राक्षसों की हुई। अब राक्षस-राज रावण क्रुद्ध होकर मंत्री के सात पुत्रों को लड़ने के लिए भेजता हैं, परन्तु हनुमानजी ने उन्हें भी यमराज के मार्ग पर प्रस्थित कर दिया। रावण ने पाँच सेनापतियों विरूपाक्ष, धूम्राक्ष, दुर्धर्ष, प्रघस और भासकर्ण को लड़ने के लिए भेजा। वीरवर हनुमान ने सेनासहित इन मंत्रियों को मृत्यु की गोद में सुला दिया। अब रावण ने पराक्रमी पुत्र अक्षकुमार को लड़ने के लिए भेजा। भीषण संघर्ष के बाद हनुमानजी उसका भी काम तमाम कर देते हैं। हनुमानजी के प्रबल

पराक्रम को देखकर रावण ने इन्द्रजित को उनको पकड़ने के लिए भेजा। मेघनाद ने हनुमानजी को मारने की लाख चेष्टाएँ की, परन्तु एक भी न चली। अन्ततः उसने ब्रह्मशस्त्र का प्रयोग किया। उसके इस प्रयोग से हनुमानजी निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। हनुमानजी ने सोचा कि लोक गुरु ब्रह्मा के प्रभाव से मुझमें इस अस्त्र के बंधन से छुटकारा पाने की शक्ति नहीं है, ऐसा मानकर ही मुझे बांधा है तथा मुझे ब्रह्मा के सम्मानार्थ इस अस्त्र बन्धन का अनुसरण करना चाहिए। आगे हनुमानजी ने विचारपूर्वक सोचा कि मुझे इस बन्धन से लाभ ही लाभ दिखाई देता है; क्योंकि राक्षसराज रावण के साथ बातचीत करने का अवसर मिलेगा। ऐसा निश्चय करके वे निचेष्ट हो गये। राक्षसों ने जब देखा कि हनुमान अब हाथ-पैर नहीं हिलाते तब उन्होंने सुतली और वल्कल से बनाए गये रस्सों से उन्हें बांधा। वल्कल से बान्धने पर हनुमान ब्रह्मास्त्र के बन्धन से मुक्त हो गए; क्योंकि उस अस्त्र का बन्धन किसी दूसरे बन्धन के साथ नहीं रहता। हनुमानजी यद्यपि अस्त्र के बंधन से मुक्त हो गए थे, तो भी उन्होंने ऐसा व्यक्त किया, मानों वे इस बात को जानते ही न हों। क्रूर राक्षस उन्हें बन्धनों से पीड़ा देते हुए और कठोर मुक्कों से मारते हुए खींचकर आगे ले चलते थे। इस प्रकार हनुमानजी राक्षसराज रावण के दरबार में पहुँचाये गये।

वाटिका भंग एवं राक्षस-नाश का प्रसंग संस्कृत के ग्रन्थों में भी अति विस्तार से आया है। 'रामायण मंजरी' पर पूर्णरूपेण वाल्मीकि का प्रभाव है। वहाँ वृक्षों की नाम गणना के अतिरिक्त उनके गिरने और कोलाहल आदि का, ८० हजार राक्षसों, प्रहस्त पुत्र जम्बुमाजी, सात मंत्री पुत्र, पाँच सेनापतियों, अक्ष आदि के युद्ध एवं वध का वाल्मीकि के समान विस्तार से वर्णन किया गया है। रामचरित, राघवीय, चम्पू रामायण आदि में भी मंत्री-पुत्रों, सेनापतियों, जम्बुमाली और अक्ष आदि के वध का विस्तृत वर्णन मिलता है। अभिषेक में एक सहस्र किंकरों, पाँच सेनापतियों और अक्ष के वध का उल्लेख किया गया है।

वाटिका-विध्वंस के मूल में निहित महाकवि वाल्मीकि और तुलसी की भावना में राजनीति और भक्ति का अन्तर है। वाल्मीकि रामायण में हनुमानजी रावण के पास तक पहुँचने, उसकी शक्ति का पता लगाने एवं लंका की सामयिक स्थितियों को परखने तथा उससे दूतवार्ता का अवसर प्राप्त करने के लिए

अशोकवाटिका (प्रमदावन) के ध्वंस को साधन बनाते हैं। 'रामचरितमानस' में हनुमानजी रावण को राम का प्रताप दिखलाना चाहते हैं एवं उसे सुशिक्षा देते हैं। एक और भी कारण प्रतीत होता है, सीता को राम के प्रताप एवं उनके उद्धार के विषय में आश्वस्त करना।

जहाँ वाल्मीकि के हनुमानजी किंकर, प्रहस्त पुत्र जम्बुमाली, मंत्री के सात पुत्रों , पाँच सेनापतियों एवं अक्षकुमार का वध करते हैं वहाँ तुलसी के हनुमान मात्र अक्ष को ही मौत के घाट उतारते हैं।

मेघनाद के ब्रह्मास्त्र में बन्धने के कारण, दोनों महाकवियों ने ब्रह्मास्त्र की मर्यादा की रक्षा ही बताया है। यद्यपि तुलसी में भक्ति का पुट अधिक दिखलाई पड़ता है। ब्रह्मास्त्र से बन्धने के पश्चात् राक्षसों ने हनुमानजी को सुतली और वल्कल के रस्सों से भी बांधा। तुलसी में इस प्रकार के बन्धन का कोई उल्लेख नहीं है। ब्रह्मास्त्र में बन्धने पर तुलसी का मेघनाद नागपाश का प्रयोग करता है।

हनुमान-रावण-संवाद

मेघनाद के द्वारा लाये जाने पर हनुमानजी जब रावण के दरबार में पहुँचते हैं तो उसे (रावण को) सूर्य के समान तेज और बल से सम्पन्न देखते हैं। रावण के प्रभावशाली स्वरूप को देखकर हनुमानजी के मन में अनेक प्रकार के विचार उठते हैं। रावण भी शंकित होकर प्रहस्त के द्वारा हनुमानजी के लंका में अनाधिकृत प्रवेश का कारण पूछवाता है। प्रहस्त हनुमानजी से अनेक प्रकार के प्रश्न करता है। हनुमानजी बड़ी शालीनता के साथ सारे प्रश्नों का उत्तर देते हैं और स्वयं को राम का दूत तथा राम के सर्वशक्तिमान रूप का परिचय देते हुए सीता को लौटाने का आग्रह भी करते हैं। हनुमान की युक्तियुक्त एवं यथार्थ वाणी को सुनकर रावण क्रुद्ध होता है और हनुमान-वध की आज्ञा देता है। विभीषण दूत-वध को अनैतिक बतलाते हुए उसके लिए चार प्रकार के दण्डों का (किसी अंग को भंग या विकृत कर देना, कोड़े से पिटवाना, सिर मुड़वा देना तथा शरीर में कोई चिन्ह या दाग देना) उल्लेख करते हैं। रावण विभीषण की बात स्वीकार करता है और हनुमानजी की पूँछ में आग लगाने की आज्ञा देता है। रावण की आज्ञा शिरोधार्य कर राक्षसगण हनुमानजी की पूँछ में कपड़े लपेटने लगे।

संस्कृत के ग्रंथों में भी यह संवाद थोड़ा बहुत अंतर के साथ उपलब्ध होता

है। रामायण मंजरी, चम्पू रामायण और राघवीय आदि में हनुमानजी अपने पूरे परिचय के साथ श्रीराम के पराक्रम का वर्णन करते हैं। अन्त में वे सीता के न लौटाने तथा राम से विग्रह करने के दुष्परिणामों की व्यापक चर्चा करते हैं। 'रामचरित' में हनुमानजी को देखकर राक्षसों में विभिन्न प्रकार की भावना हिलोरें लेती हैं, जिसका वर्णन बहुत विस्तार से किया गया है। वहाँ भी हनुमानजी सीताजी को वापस करने तथा श्रीराम की शरण गहने का आग्रह करते हैं, जिससे क्रुद्ध होकर रावण राक्षसों को उनको वध की आज्ञा देता है। जब राक्षस अनेक शस्त्रास्त्र लेकर दौड़ते हैं, तब हनुमानजी उन्हें पराजित कर देते हैं। फिर, रावण हनुमानजी को जला देने के लिए राक्षसों को संकेत करता है और वे उनकी पूँछ में चुपचाप आग लगा देते हैं।

वाल्मीकि और तुलसी दोनों महाकवियों के हनुमानजी का उत्तर रावण के समक्ष अत्यन्त ही संक्षिप्त, सारगर्भित और उचित है। परन्तु, तुलसीदास का वह संवाद अधिक रोचक और सरस है, क्योंकि यहाँ हनुमानजी के प्रत्युत्तर में व्यंग्य का पुट झलकता है, जो संवाद का अपरिहार्य गुण है। वाल्मीकि रामायण में उत्तर-प्रत्युत्तर का कार्य प्रहस्त और हनुमानजी के बीच होता है। यद्यपि रावण वहाँ उपस्थित है, परन्तु तुलसी के 'मानस' में स्वयं रावण हनुमानजी से प्रश्न करता है। दोनों महाकवियों के रावण ने हनुमानजी की पूँछ में ही आग लगाने का आदेश दिया है। किन्तु आनन्द रामायण का रावण हनुमानजी की पूँछ काटने का आदेश देता है। परन्तु राक्षसों के असफल होने पर स्वयं हनुमान ही पूँछ जलाने का परामर्श देते हैं। इसी प्रकार का प्रसंग भावार्थ रामायण में भी आता है।

लंका-दहन

राक्षसराज रावण की आज्ञा से जब हनुमानजी की पूँछ में वस्त्र लपेटने का कार्य प्रारम्भ हुआ। उस समय वनों में सूखी लकड़ी पाकर भभक उठने वाली आग की भाँति उस महाकपि का शरीर बढ़कर बहुत बड़ा हो गया। राक्षसों ने वस्त्र लपेटने के पश्चात् उनकी पूँछ पर तेल छिड़क कर आग लगा दी। अपनी पूँछ में लगी अग्नि से ही हनुमानजी उन्हें पीटने लगते हैं। राक्षस उन्हें पुनः बांध देते हैं। हनुमानजी विचार करते हैं कि मैं इस बन्धन से मुक्त होकर राक्षसों का संहार कर सकता हूँ। किन्तु, ऐसा करने से मुझे समूची लंका में विचरण करने और

उसका निरीक्षण करने का अवसर हाथ से जाता रहेगा। रात्रि के परिभ्रमण में मैंने लंका को अच्छी प्रकार से नहीं देखा है। अतः राक्षसगण उन्हें बाजे-गाजे के साथ उनके अपराधों को घोषित करते हुए नगर में घुमाते हैं और हनुमानजी मौज से लंका के विभिन्न भवनों को देखते हुए आगे बढ़ते हैं। जब हनुमानजी की पूँछ में आग लगायी जा रही थी, उसी समय राक्षसियों ने सीता को इसकी सूचना दी। सीता इस समाचार से व्याकुल होती हैं और अग्नि से मंगल कामना करते हुए, अपने सौभाग्य को भी दांव पर लगाकर, श्रीहनुमान की रक्षा की प्रार्थना करती हैं। फलस्वरूप, हनुमानजी अग्नि में शीतलता का अनुभव करते हैं और इसका श्रेय सीता की दयालुता, राम के तेज तथा पिता की मित्रता को देते हैं। तदन्तर, हनुमानजी राक्षसों के बन्धन से मुक्त होकर, विभीषण के घर को छोड़कर अन्य सभी राक्षसों के घर में आग लगा देते हैं। राक्षसगण हनुमानजी के इस अप्रमेय कौशल को देखकर उनको इन्द्र, यमराज, वरुण, वायु, रुद्र, अग्नि, सूर्य, कुबेर, चन्द्रमा, साक्षात् काल, ब्रह्मा का चण्डकोप, विष्णु का महान तेज, वानर रूप में होने का अनुमान करते हैं। समस्त लंका को भस्म करने के पश्चात् हनुमानजी अपनी पूँछ की अग्नि को समुद्र में बुझाते हैं। सीता को अग्नि में जलने की आशंका से हनुमानजी बहुत चिन्तित होते हैं। किन्तु कुछ शुभ शकुन एवं चारणों की बातचीत से यह शंका निर्मूल हो जाती है और वे प्रसन्न होते हैं तथा सीता के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए पुनः जाते हैं।

'लंका-दहन' घटना की मूलभूत प्रेरणाएँ 'वाल्मीकि रामायण' और 'रामचरितमानस' में भिन्न-भिन्न हैं। वाल्मीकि के अनुसार हनुमानजी लंका-दहन का कार्य शत्रु की शक्ति का अनुमान लगाने और शत्रु शक्ति का क्षय करने की प्रेरणा से करते हैं। जबकि मानसकार की दृष्टि में ये घटनाएँ श्रीहनुमानजी की कौतुकी प्रकृति से प्रेरित थीं।

वाल्मीकि रामायण में पूँछ में आग लगने का समाचार मिलने पर सीता ने हनुमानजी के प्रति अनेक शुभकामनाएँ व्यक्त कीं। हनुमानजी भी अग्नि परिश्रमण के कारण सीता की दयालुता, राम का तेज और पिता के वायु सम्बन्ध को समझते हैं। तुलसी ने इस प्रसंग में न तो किसी भय आशंका की कल्पना की है और न उनकी सुरक्षा के प्रति कोई चिन्ता दिखलाई है। इसके मूल में राम के दूतत्व का

संकेत करके उन्होंने वहाँ अलौकिकता को सन्निविष्ट कर दिया है।

संस्कृत के प्रायः सभी ग्रन्थों में लंका-दहन का प्रसंग बड़े ही कारुणिक और वीभत्स रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'रामायण मंजरी, 'चम्पूरामायण' और रामचरित आदि पर स्पष्ट रूप से वाल्मीकि रामायण का प्रभाव है। यहाँ भी स्वयं सीता उनकी सुरक्षा के लिए अग्निदेव से प्रार्थना करती हैं। यहाँ भी वाल्मीकि के समान ही सीता को अग्नि में जलने की आशंका से हनुमानजी के खेद का विस्तृत वर्णन है। 'रामचरित' में लंका-दहन के पश्चात् रावण के द्वारा भय और विश्वकर्मा की सहायता से लंका को पहले से भी अधिक वैभवपूर्ण बना लेने का वर्णन किया गया है।

इस सन्दर्भ में कुछ और रामायणों के भी प्रसंगों को देखना सीमचीन प्रतीत होता है। कृत्तिवास रामायण में प्रसंग आया है कि हनुमानजी की पूँछ पचास योजन लम्बी थी। उसे तीन लाख राक्षसों ने पकड़कर दबाया था और तीन मन कपड़ा लपेट दिया गया था। डॉ. कामिल बुल्के ने उरांव नामक आदिवासियों का उल्लेख किया है, जो अपने को रावण का वंशज समझते हैं। उनके यहाँ यह प्रचलित है कि जब हुनमानजी लंका गये थे तो उनकी पूँछ को जलाने के लिए रावण ने प्रजा के सब कपड़े ले लिए। उसी समय से रावण की प्रजा तथा उनके वंशजों को शरीर ढँकने के लिए कपड़े की कमी है। 'आनन्द रामायण' में हनुमानजी ने अपनी पूँछ को बढ़ाना तभी बन्द किया, जब उनके सुनने में आया कि राक्षस सीता का कपड़ा लाने के लिए जा रहे हैं। तोरवे रामायण, भावार्थ रामायण, पाश्चात्य वृत्तान्त नं. ८ आदि में इसी प्रकार का मिलता-जुलता वर्णन किया गया है। आनन्द रामायण, तोरवे रामायण, भावार्थ रामायण तथा पाश्चात्य वृत्तान्त में रावण की दाढ़ी के जलने का वर्णन है।

वाल्मीकि रामायण में विभीषण के महल को अग्नि से सुरक्षित रहने का उल्लेख हैं, किन्तु सेसीराम के अनुसार केवल सीता का घर जलने से बच गया था। वाल्मीकि में सीता के विषय में हनुमानजी को चिन्तित रहने का भी प्रसंग है। किन्तु आनन्द रामायण के अनुसार हनुमानजी को एक आकाशवाणी द्वारा सीता के कुशल क्षेम का आश्वासन मिला था। भावार्थ रामायण में वायु ने अपने पुत्र को विषय में सीता का आश्वासन दिया था।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार हनुमानजी ने अपनी जलती पूंछ को समुद्र में डुबाया, जिससे वह बुझ गयी। कृत्तिवास में सीता के कहने पर उसे मुख में बुझाया, जिससे मुख जल गया। उसके विषय में सीता से उन्होंने शिकायत की कि सभी लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे। सीता ने उत्तर दिया- सभी कृष्णमुख हो जायेंगे।

सेसीराम के अनुसार रावण ने लंका दहन के पश्चात् स्वर्ग से एक महर्षि बुलाकर उनकी प्रार्थनाओं द्वारा लंका का जीर्णोद्धार किया था। बलरामदास रामायण में यह माना गया है कि देवताओं ने विश्वकर्मा को भेज दिया था, जिससे उन्होंने एक रात में ही लंका का पुनर्निर्माण कर लिया था।

स्वयम्भू के पउम चरियं में लंका दहन का बिल्कुल अभाव है। यहाँ रावण ने हनुमानजी को केवल नगर में घुमाने का आदेश दिया जिससे प्रजा देख सके।

श्रीहनुमान का लंका से प्रत्यावर्त्तन एवं हनुमान-राम-संवाद-

श्रीहनुमान का प्रत्यावर्त्तन एवं हनुमान-राम संवाद की कथा वाल्मीकि रामायण एवं तुलसीदास के ग्रन्थों में थोड़ा-बहुत अन्तर के साथ उपलब्ध होती है।

लंका को जलाने के अनन्तर वाल्मीकि और तुलसी दोनों के हनुमानजी सीता से मिलते हैं। यहीं पर तुलसी के हनुमानजी सीता से 'चूड़ामणि' प्राप्त करते हैं और सीता जयन्त की कथा राम से कहने के लिए हनुमानजी को सन्देश रूप में कहती हैं। वाल्मीकि में यह प्रत्यभिज्ञान हनुमान 'प्रथम मिलन' में ही प्राप्त कर लेते हैं।

दोनों महाकवियों के हनुमान सीता को राम के आने का आश्वासन देते हैं और उन्हें धैर्य धारण करने को कहते हैं। गीतावली में हनुमान १० दिन विपत्ति सहन के लिए कहते हैं, परन्तु कवितावली में केवल छःया सात दिन।

हनुमानजी जब समुद्र पार करते हैं, तो वाल्मीकि उनके गत्यात्मक सौन्दर्य का बड़ा ही सुन्दर चित्र-प्रस्तुत करते हैं। तुलसीदास में इसका अभाव है। वाल्मीकि के हनुमानजी ने लौटते समय मैनाक का स्पर्श किया। तुलसीदास ने इस प्रकार का कोई संकेत नहीं दिया है।

'हनुमान-राम-संवाद' के अन्तर्गत वाल्मीकि के हनुमानजी सीता के समाचार एवं संदेश को बड़े ही व्यापक रूप में प्रस्तुत करते हैं। जिसमें वे चूड़ामणि देने के अतिरिक्त काक-वृत्तान्त तथा मन-शिला तिलक की भी चर्चा करते हैं। तुलसी के हनुमानजी सीता-सन्देश को अत्यन्त मार्मिक, हृदय द्रावक एवं संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत

करते हैं। तुलसी ने यहाँ हनुमानजी को भक्ति की सरिता में अवगाहन कराने का सफल प्रयास किया है, जबकि वाल्मीकि के हनुमानजी केवल सन्देश वाहक हैं।

श्रीहनुमान का युद्ध विक्रम-

'वाल्मीकि रामायण' के युद्धकाण्ड में हनुमत्कथा का विकास प्रमुख रूप से उनके यौद्धिक पराक्रम में ही हुआ है। हनुमानजी ने अनेक राक्षसों का वध किया, जिनमें जम्बुमाली, धुमाक्ष, अकंपन, देवान्तक, एवं निकुम्भ आदि प्रमुख है।

तुलसीदास ने प्रमुख राक्षस वीरों के नाम तो गिनाए हैं, परन्तु उनका वध किसके द्वारा हुआ इसका संकेत नहीं दिया है। हनुमानजी के युद्ध-कौशल का वर्णन तुलसीदास ने प्रमुख रूप से कवितावली में किया है। इसके अतिरिक्त हनुमान-रावण-युद्ध, हनुमत्-कुम्भकर्ण-युद्ध एवं हनुमत्-इन्द्रजित-युद्ध में भी हनुमान के विक्रम का मनोहारी वर्णन मिलता है।

हनुमान द्वारा औषधि आनयन-

'वाल्मीकि' रामायण' में हनुमान के द्वारा औषधि लाने का दो बार वर्णन मिलता है। प्रथम बार मेघनाद के ब्रह्मास्त्र द्वारा राम-लक्ष्मण के घायल होने पर जाम्बवान के आदेश से हनुमानजी के द्वारा हिमालय पर्वत पर स्थित चार औषधियों (मृत संजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकर्णी और सँघानी) के लाने का वर्णन है। हनुमानजी पर्वत पर पहुँचकर औषधियों को ढूँढ़ते हैं। पर्वत की औषधियाँ समझती हैं कि कोई हमें लेने के लिए आया है। अतः वे अदृश्य हो जाती हैं। औषधियों को न देखकर हनुमानजी क्रोधित होते हैं और पर्वत सहित राम के पास पहुँचते हैं। औषधि की सुगन्धि से राम-लक्ष्मण और सभी योद्धा स्वस्थ हो जाते हैं। हनुमानजी उस पर्वत को पुनः उसी स्थान पर रख आते हैं।

द्वितीय स्थल वह है, जहाँ रावण की शक्ति से आहत होकर लक्ष्मण के गिरने, राम द्वारा विलाप करने तथा सुषेण के परामर्श से हनुमानजी द्वारा महोदय पर्वत पर जाने एवं विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी, संजीवकरणी तथा सँघानी नाम की औषधियों को लाने का वर्णन है। सुषेण औषधियों को कूट-पीसकर लक्ष्मण को सुँघाते हैं और वे स्वस्थ हो जाते हैं।

इसके अनन्तर वाल्मीकि रामायण के उदीच्य पाठों में निम्नलिखित अतिरिक्त वर्णन मिलते हैं- कालनेमि और ग्राही का वृत्तान्त, हिमालय के गन्धर्वों की चुनौती

तथा हनुमानजी द्वारा उनका वध, औषधि पर्वत को वापस ले जाते समय राक्षसों का आक्रमण तथा पराजय। इसके अतिरिक्त भरत-हनुमान-संवाद का प्रसंग केवल गौड़ीय पाठ में मिलता है।

संस्कृत के ग्रन्थों में भी हनुमानजी के द्वारा औषधि लाने का वर्णन मिलता है। इन ग्रन्थों पर स्पष्ट रूप से वाल्मीकि रामायण का थोड़ा-बहुत प्रभाव है। चम्पू रामायण, रामचरित और राघवीय में रावण-लक्ष्मण पर दो बार शक्ति का प्रहार करता है। प्रथम बार में तो 'मानस' के समान ही लक्ष्मण स्वयं सचेत हो जाते हैं, किन्तु द्वितीय प्रहार में वहाँ भी तथा रामायण मंजरी, भट्टिकाव्य, महावीर चरित, रघुवंश, पद्मपुराण, और हनुमन्नाटक आदि ग्रन्थों में वे हनुमान के द्वारा प्रस्तुत सपर्वत औषधि के प्रयोग से ही स्वस्थ होते हैं। पदमपुराण, रामकथा, राघवीय, भट्टिकाव्य, चम्पूरामायण, रामायण मंजरी, और रामचरित आदि ग्रन्थों में हनुमान के द्वारा दुबारा वही औषधि उसी प्रकार से लाने का उल्लेख मिलता है जब मेघनाद अपने वाण-प्रहार से वानर-सेना को क्षत-विक्षत करके चला जाता है।

'वाल्मीकि रामायण' में हनुमान प्रमुख रूप से औषधि के निमित्त दो बार यात्रा करते हैं। किन्तु, रामचरितमानस में यह यात्रा मात्र एक बार ही होती है। वाल्मीकि के अनुसार हनुमान औषधि लाने के लिए एक बार जाम्बवान के कहने पर जाते हैं और दूसरी बार सुषेण के कहने पर। 'मानस' में जामवंत की सलाह पर हनुमान सुषेण वैद्य को लंका से उठा लाते हैं और उनके कहने पर औषधि ा को लाते हैं। गीतावली जामवंत के कहने पर हनुमान चन्द्रमा को निचोड़ने, पाताल से अमृत कुण्ड लाने और मृत्यु को समाप्त करने की बात कहते हैं, परन्तु राम के कहने पर वे सुषेण को घर सहित लाते हैं।

वाल्मीकि के हनुमान मृत संजीवनी, सुवर्णकरणी, विशल्यकरणी और सँधानी नाम की औषधि लाते हैं। किन्तु, तुलसी ने इनका कोई विशेष नाम नहीं दिया। मानस में औषधि शब्द और गीतावली में जरी, औषधि और मूलिका शब्द आया है।

कालनेमि-वध-

हनुमान के द्वारा कालनेमि वध का वृत्तान्त वाल्मीकि रामायण के उद्दीच्य पाठ में आया है। वाल्मीकि द्वारा निर्दिष्ट कथा थोड़े अन्तर के साथ परवर्ती ग्रन्थों में पायी जाती है। उदाहरण के लिए अध्यात्म रामायण में कालनेमि का विस्तृत

वर्णन मिलता है। इनके अतिरिक्त रामचरितमानस, में भी कालनेमि वध का वृत्तान्त आता है।

भरत-हनुमान-संवाद-

वाल्मीकि रामायण में भरत से हनुमानजी की भेंट औषधि के निमित्त जाते हुए हिमालय यात्रा के क्रम में ही होती है। भरत-हनुमान का मिलन औषधि के लिए हिमालय जाते समय ही होता है जबकि तुलसीदास के हनुमान संजीवनी लेकर लौटते हैं, तब भरत से मिलते हैं। गीतावली का भरत हनुमान-संवाद प्रसंग विशेष द्रष्टव्य है। जहाँ माता सुमित्रा के अपूर्व त्याग एवं कौशल्या के वात्सल्य को चरम उत्कर्ष प्रदान किया गया है।

श्रीहनुमान-प्रेषण-

लंका विजय के अनन्तर हनुमानजी द्वारा सीता को संदेश सुनाने का वर्णन वाल्मीकि रामायण एवं मानस में लगभग समान रूप से आया है। इसी प्रकार हनुमानजी द्वारा भरत को राम के अयोध्या प्रत्यार्वतन का समाचार सुनाने का भी वर्णन वाल्मीकि और तुलसी दोनों महाकवियों ने यथारुचि किया है।

'वाल्मीकि रामायण' में हनुमत् विदाई का भी प्रसंग आया है। वानर-रीछों और राक्षसों की विदाई के प्रकरण में हनुमान राम से भक्ति का वरदान मांगकर एवं राम द्वारा उज्ज्वल हार से सम्मानित होकर सभी के साथ चले जाते हैं। तुलसी के हनुमान सुग्रीव से अनुमति प्राप्त कर राम की सेवा के लिए आयोध्या में ही रह जाते हैं।

लंका में पहुँचने पर हनुमानजी के कार्य-

कई रामायणों में हनुमानजी लंका में प्रवेश करने के पश्चात् बहुत से उत्पात करते हैं। आनन्द रामायण के अनुसार हनुमानजी रावण के वस्त्र विभीषण के पलंग पर रख देते हैं। दक्षिण भारत की एक रामकथा में श्रीहनुमान मंदोदरी के बाल पलंग के खम्बे में बाँध देते हैं और उसके आभरण उठा लेते हैं। रामजातक में हनुमानजी रावण और मंदोदरी के बाल एक साथ बाँध देते हैं तथा मंत्र पढ़ कर लिख देते हैं कि जब तक मंदोदरी रावण को थप्पड़ न मारे कोई भी बाल की गाँठ नहीं खोल सकेगा। इस प्रकार के उत्पात का विवरण युद्ध के समय जब हनुमानजी लंका में प्रवेश करते हैं तब भी मिलता है।

एक ज्योतिषी राम से कहता है कि सीता आत्महत्या करना चाहती है, इस पर हनुमानजी भेजे जाते हैं। वाल्मीकि रामायण में भी सीता द्वारा आत्महत्या की चर्चा मिलती है। सीता आत्महत्या करने लगती हैं और हनुमानजी ठीक समय पर पहुँच कर फाँसी की गाँठ खोल देते हैं। आश्चर्य चूड़ामणि में श्रीहनुमान के पहुँचने के समय सीता पानी में कूदने को तैयार हैं परन्तु प्रसन्नराघव तथा रामचरितमानस के अनुसार सीता हनुमानजी के पहुँचने के समय चिता में कूदने की इच्छा त्रिजटा से व्यक्त करती हैं। सिंहलद्वीप की रामकथा में श्रीहनुमान सीता को ले कर राम के पास युद्ध के पहिले लौटते हैं।

समुद्र पर सेतु बाँधना-

वाल्मीकि रामायण में सेतु बाँधने की कथा वैसी ही है जैसी रामचरित मानस में मिलती है। यहाँ समुद्र के आदेशानुसार नल द्वारा पुल बाँधा जाता है। विहोर रामकथा में श्रीहनुमान अपनी पुँछ बढ़ाते हैं और राम तथा लक्ष्मण उसी पर समुद्र पार करते हैं, रामकियेन के अनुसार सीता की खोज में श्रीहनुमान इसी प्रकार अपने साथियों को एक नदी पार उतारते हैं। सेतु के स्थान पर श्रीहनुमान की पूँछ का उल्लेख पाश्चात्य वृत्तान्त में भी मिलता है।

समुद्र पर सेतु बाँधते समय नल तथा हनुमानजी के झगड़े का वृत्तान्त कई परवर्ती रामकथाओं में मिलता है। कृत्तिवास के रामायण में झगड़े का कारण यह दिया गया है किं नल हनुमानजी द्वारा लाए हुए पर्वत को बांयें हाथ से पकड़ते हैं। क्रुद्ध होकर श्रीहनुमान एक बार में चार पर्वत लाते हैं। इन्हें जब नल नहीं पकड़ सकते तो आपस में झगड़ा होता है और दोनों श्रीराम के पास जाते हैं तथा एक दूसरे पर अभियोग लगाते हैं। पाश्चात्य वृत्तान्त के अनुसार हनुमानजी अपने शरीर में जितने बाल थे उतने पत्थर ला कर अकेले ही सेतु बाँधते हैं।

एक कथा के अनुसार रावण का पुत्र जो समुद्र की रानी गंगा महादेवी के गर्भ से उत्पन्न था, मछलियों को समुद्र नष्ट करने की आज्ञा देता है। इस पर हनुमानजी अपनी पूँछ पानी में हिलाते हैं जिससे पानी गंदला हो जाता है और मछलियाँ ऊपर आ जाती हैं, तब इन्हें वानर जाल डाल कर फँसा लेते हैं। उसी समय एक केकड़ा हनुमानजी की पूँछ पकड़ना चाहता है। उसे श्रीहनुमान पकड़ कर किनारे पर फेंक देते हैं। यह केकड़ा इतना बड़ा है कि उसे खाकर सारी सेना तृप्त हो जाती है।

यही कथा हमें अन्यत्र भी मिलती है। रामकियेन में रावण अपनी नागकन्या को सेतु नष्ट करने को भेजता है। वह अपनी सेना के साथ सेतु को नष्ट करती है। इस पर श्रीहनुमान उसके पास जाते हैं और उससे सेतु पुनः बनवाते हैं। रामजातक में नागकन्यायें सेतु नष्ट करती हैं।

सेतुबन्ध के समय तथा बाद में वहाँ शिवप्रतिष्ठा के विषय में स्कन्द पुराण के सेतु माहात्म्य तथा कृत्तिवास के रामायण में सेतुबन्ध माहात्म्य में यह विवरण मिलता है कि युद्ध के पश्चात् गंधमादन पर्वत पर जाकर दण्डकारण्य के मुनि रामजी से पूछते हैं कि रावण के वध का प्रायश्चित कैसे किया जाय? इस पर वे शिवलिंग की स्थापना करने का परामर्श देते हैं। इस पर हनुमानजी शिवलिंग लाने को कैलाश भेजे जाते हैं। वहाँ जा कर उन्हें तपस्या करनी पड़ती है। इसमें समय लग जाने के कारण उनके आने में देर होती है। इस पर श्रीराम को मुनि लोग बालू का लिंग स्थापित करने का परामर्श देते हैं। प्रतिष्ठा के पश्चात् पहुँचने पर हनुमानजी बहुत दुखी होते हैं। तब राम हनुमानजी को प्रतिष्ठित लिंग को हटाने की आज्ञा देते हैं परन्तु हनुमानजी इस कार्य में असमर्थ रहते हैं और मूर्छित हो कर गिर पड़ते हैं। इस पर राम उनको सचेत करते हैं और उन्हें उस लिंग के स्थापना का भी आदेश देते हैं। हनुमानजी उसको बालू के लिंग के उत्तर में स्थापित करते हैं। यही विग्रह आज भी रामेश्वरम् में है, ऐसी किम्बदन्ती है। ऐसी ही कथा आनन्द रामायण में भी है परन्तु इसे सेतुबन्ध के पूर्व ही वर्णन किया गया है।

कुम्भकरण से युद्ध-

रामकियेन में कुम्भकरण अपने मोक्ख शक्ति नामक भाले की शक्ति को जाग्रत करने के हेतु एक यज्ञ करता है जिसे हनुमानजी और अंगद भंग करने में सफल होते हैं। महानाटक में श्रीहनुमान कुम्भकरण के मस्तक पर ऐसा प्रहार करते हैं कि वह हिमालय पर जाकर गिरता है। उसके पश्चात् हनुमानजी उसका धड़ पूँछ में लपेट कर आकाश में फेंक देते हैं। वाल्मीकि रामायण के अनुसार राम ही कुम्भकरण को मारते हैं। कंबन कृत तामिल रामायण में राम ही कुम्भकरण का मस्तक समुद्र में फेंक देते हैं। रामचरित मानस के अनुसार इसका मस्तक रावण के समक्ष राम के बाणों द्वारा पहुँचाया जाता है।

इन्द्रजीत से युद्ध-

रामचरित मानस के अनुसार श्रीहनुमानजी लक्ष्मण को शक्ति लगने पर उन्हें उठा कर लाते हैं और इन्द्रजीत को भी उसके मरने पर लंका के द्वार पर रख आते हैं। आनन्द रामायण में हनुमानजी इन्द्रजीत की बाहु लंका में फेंक देते हैं। इन्द्रजीत की सती स्त्री सुलोचना के पास यह बाहु पहुंच कर लिखने लगती है। उस लेख के अनुसार सुलोचना को यह ज्ञात होता है कि शेष द्वारा मारे जाने से उसकी मुक्ति हो गयी है। उसीसे यह भी आदेश मिलता है कि वह राम के पास जाकर उसका मस्तक माँग ले और उसके साथ अग्नि में सती होकर उसके पास पहुंचे। इसी से मिलती-जुलती कथा अन्यत्र अन्य रामायणों में भी मिलती हैं।

रावण से युद्ध-

हनुमानजी को रावण के यज्ञ के विध्वंस करने को भेजे जाने की कथा वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तर पाठ में मिलती है। इसके अनुसार हनुमानजी इत्यादि उसके ध्यान को भंग करने में असमर्थ रहते हैं। इस पर श्रीहनुमान की आज्ञा से अंगद मंदोदरी का केश पकड़कर उसे बाहर ले आता है जिससे रावण उत्तेजित हो जाता है और अंगद से लड़ने लगता है। रामचरितमानस में हनुमानजी और रावण के युद्ध का भी वर्णन मिलता है।

रावण के मर्म स्थान के विषय में विविध विवरण विविध रामायणों में मिलते हैं। विर्होर रामायण के अनुसार रावण का जीव उसके महल में एक मंजूषा में सुरक्षित है। हनुमानजी और लक्ष्मण दोनों लंका पहुँचकर उसको मुक्त कर देते हैं। श्याम के रामकियेन में भी यह वृत्तान्त मिलता है, इसके अनुसार रावण का जीव गोपुत्र नामक उसके गुरु के यहाँ मंजूषा में बन्द है। उससे हनुमानजी छल से प्राप्त कर लेते हैं। आनन्द रामायण में एक कथा यह मिलती है कि रावण के वध के बहुत काल पश्चात् राम को अवध में एक आवाज सुनाई देती है। वशिष्ठ इसका भेद खोलते हुए बताते हैं कि रावण का शरीर अभी भी जल रहा है और हनुमानजी उसकी चिता के हेतु निरन्तर लकड़ी ले जाते हैं क्योंकि रावण के पापों का अन्त होने पर ही उसका शरीर भस्मीभूत हो जायगा।

सेरीराम में रावण अपने पुत्र बलविस को पाताल से बुलाकर उसे राम सेना के नाश करने को भेजता है। विभीषण द्वारा इसका प्रतिकार एक वृहत् दर्पण बनवा

कर किया जाता है। उस दर्पण को हनुमानजी अपनी पूँछ से उसके सामने रख देते हैं जिसमें वह अपना मुख देखकर भस्म हो जाता है। रामकियेन में सहस्रतेज नामक राक्षस का विवरण मिलता है जिसकी गदा का यह प्रभाव है कि वह जिसकी ओर कर दी जाय वह मर जायेगा। हनुमानजी सूक्ष्म रूप धारण करके उस गदा को प्राप्त कर लेते हैं और उसका सहस्र शीश काट कर उसे निर्जीव कर देते हैं। महिरावण की कथा बहुत सी रामकथाओं में मिलती है परन्तु वाल्मीकि रामायण में नहीं है। जैमिनी भारत के मैरावण चरित में मैरावण रावण का सखा है। यह रावण को आश्वासन देता है कि मैं राम लक्ष्मण को पाताल ले जाकर दुर्गा को बलि चढ़ा दूँगा। विभीषण यह भेद खोल देता है। हनुमानजी सेना की रक्षा करते हैं परंतु यह राक्षस विभीषण का रूप धारण करके वानरों को माया चूर्ण से सुला देता है और राम लक्ष्मण को एक पेटी में बन्द करके पाताल में ले जाकर काली के मंदिर में रख देता है। हनुमानजी को जब यह ज्ञात होता है तो वे सूक्ष्म रूप धारण करके पाताल पहुँचते हैं। वहाँ द्वारपाल के साथ युद्ध करते हैं और असफल होते हैं, इस पर यह पता लगता है कि द्वारपाल मत्स्यराज नामक उनका पुत्र है। तब पुनःसूक्ष्म रूप धारण करके मत्स्यराज की सहायता से पाताललोक के भीतर पहुँचते हैं। वहाँ महिरावण को द्वन्द्व युद्ध में परास्त नहीं कर पाते। तब दुर्दण्डी से यह पता चलता है कि महिरावण का जीव राजधानी से ३० योजन दूर पर सात भृंगों में निवास करता है। इस पर हनुमानजी वहाँ जाकर उनका नाश करते हैं। इसके पश्चात् महिरावण को परास्त करके राम लक्ष्मण को सुप्त अवस्था में लंका ले आते हैं।

आनन्द रामायण में यह वृत्तान्त भी है कि अश्विनीकुमार शापवश ऐरावण तथा महिरावण के रूप में प्रकट होते हैं। दोनों ही रावण के मित्र बन जाते हैं। ऐरावण तथा महिरावण दोनों हनुमानजी की बढ़ाई हुई पूँछ की दुर्गम परिधि को पार कर आकाश मार्ग से निद्रामग्न अवस्था में राम तथा लक्ष्मण को ले जाते हैं। हनुमानजी जब पाताल में राम लक्ष्मण को खोजने जाते हैं तो उन्हें मकरध्वज जो वहाँ का रक्षक है, हरा देता है। पीछे जब मकरध्वज को यह पता लगता है कि ये उसके पिता हैं तो वह राम लक्ष्मण का पता बता देता है। हनुमानजी कामाक्षा देवी के मंदिर में सूक्ष्म रूप धारण करके प्रवेश करते हैं और देवी वाणी में आदेश

देते है कि राम लक्ष्मण को जीवित ही मेरे समक्ष उपस्थित किया जाय। उपस्थित होने पर राम लक्ष्मण ऐरावण और महिरावण को एक सौ बार मार डालते है परन्तु वे पुनः जीवित हो जाते हैं। अन्त में ऐरावण हनुमान को इस शर्त पर दोनों की मृत्यु का उपाय प्रकट करने को तैयार हो जाती है कि यदि उसे राम अपनी पत्नि के रूप में स्वीकार करें। हनुमानजी इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते हैं, इस प्रतिबन्ध के साथ कि उसका पर्यक राम के भार से टूट न जाय। तब वह कहती है कि ऐरावण तथा महिरावण के शयनागार में भ्रमर रहते हैं वे ही अमृत लाकर दोनों को पुनजीर्वित कर देते हैं। हनुमानजी एक को छोड़ कर सब भ्रमरों को मार डालते हैं। यह भ्रमर हनुमानजी के आदेश पर भोगपत्नि के पलंग की पाटी को खोखला कर देता है। अन्त में राम ऐरावण और महिरावण को मार डालते हैं। इसके पश्चात् हनुमानजी राम को तथा लक्ष्मण को लंका पहुँचा देते हैं। तत्वसंग्रह रामायण में भी इसी ओर निर्देश किया गया है। कृत्तिवास ने महिरावण की कथा अधिक विस्तार से लिखी है। इसमें महिरावण रावण का पुत्र है। रावण उसे अपनी माता निकषा के कहने से बुलाता है।

यही कर्मयोग है। कर्म तो कीजिये, पर अहंकार का भार न आने दीजिये। यह कर्त्तव्यरहित कर्म है। 'मैं करने वाला हूँ।' यही भावना ही सबसे बड़ा बोझ है। जहाँ यह भावना आयी तो व्यक्ति आधार से गिरा। तो हनुमानजी भक्तियोग के द्वारा नागपाश से मुक्त होते हैं; ज्ञानयोग के द्वारा विशाल होते हैं और कर्मयोग के द्वारा कर्त्तव्य के अहंकार से मुक्त होकर लंका को जला देते हैं। इस प्रकार वे तीनों योगों का समन्वय करते हैं और तीनों योगों की परिपूर्णता साधकर वे समुद्र में कूद पड़ते हैं उसके बाद जब वे सीताजी के सामने जाते हैं तो- धरि लघु रूप बहोरि। उन्होंने अत्यन्त छोटा-सा रूप धारण कर लिया। इसका अभिप्राय यह कि हनुमानजी ज्ञानयोग-भक्तियोग और कर्मयोग के आचार्य होते हुए भी अपने आप को अत्यन्त दीन-हीन मानते हैं। यह उनका दैन्ययोग है। भक्तिस्वरूपा श्रीसीताजी के सामने वे उस दैन्ययोग का आश्रय लेकर एक नन्हें बालक के रूप में जाते हैं। बाबा में इन चार योगों का समन्वय आप साक्षात् देख सकते हैं।

श्रीहनुमानजी के विषय में कतिपय कुछ प्रचलित लोककथाएँ तथा कांव्य-श्रीरामदूत पवनात्मज श्रीहनुमानजी की गाथाओं में किंवा अनन्त कथायें हैं।

उनका कोई पार नहीं पा सकता है। उनके चरित्र के विभिन्न पहलुओं पर विद्वान सुजन विशद विचार करते हैं। यहाँ उनके एकाध प्राचीन एवं प्रसंगों की अंशभूता स्वर्ण कणिकायें दर्शाने का प्रयत्न किया गया। जिससे सुजनों की, श्रद्धालुओं की निष्ठा को दृढ़ता प्राप्त हो:-

साहिब से सेवक बड़ो, जो निज धर्म सुजान।
राम बांधि उतरे उदधि, लांघि गये हनुमान।।

इस दोहे में अपने अनुपम अलौकिक सेवा भाव के कारण श्रीहनुमानजी को जो सिद्धि प्राप्त हुई- उसका वर्णन है। सेवाभाव की यह सिद्धि कि सेव्य स्वामी श्रीराम को तो समुद्र पर पुल बनवाकर पार जाना पड़ा परन्तु श्रीराम के सेवक श्रीहनुमान स्वामी के प्रताप को हृदय में धारण कर एवं रामनाम को मुख में रखकर उसी विशाल सागर को सहज में ही लांघ गये। अहा ! ऐसे श्रीहनुमानजी का स्मरण, भजन कर क्या हम भी इस संसार-सागर को सरलतापूर्वक पार नहीं कर सकते?

श्रीहनुमंतलालजी का समग्र जीवन सेवाभक्ति का ही स्वरूप है। उनके द्वारा सेवा में पूर्ण समर्पण, दिव्य कौशल एवं सरलता, सरसता का दर्शन होता है। कहाँ क्या करना है, कैसे करना, क्यों करना, जिससे स्वामी की प्रसन्नता पूर्ण हो जाये- यह श्रीमारुतनन्दन खूब समझते हैं।

अवधपुरी के भव्य राजभवन में स्वर्ण श्रृंखलाओं से बंधा चंदन पाटी का सुन्दर झूला पड़ा हुआ है जिस पर रेशमी आच्छादन है। अनूपरूप भगवान श्रीरामचन्द्र जगज्जननी अलौकिक शोभामयी श्रीजानकीजी के साथ उस झूले पर विराजमान झूला-झूल रहे हैं। पवनकिशोर झूला झुला रहे हैं। श्रीसीता-रामजी ने परस्पर नेत्रों के संकेत के द्वारा कुछ वार्ता की। श्रीहनुमानजी तो मस्त थे सेवाभाव में और मुख से अनवरत मधुरस्वर में 'सीताराम' 'सीताराम' जप रहे थे, सो वे स्वामी स्वामिनी की संकेत वार्ता नहीं समझ पाये। संकेतों में यह बात हुई कि श्रीकिशोरीजी ने कहा "श्रीहनुमान मुझे बहुत चाहता है।" श्रीराघवेन्द्र बोले नहीं कि मुझे अधिक चाहता है। निश्चय हुआ कि आज इस बात की परीक्षा हो जाये कि किसे अधिक चाहते हैं पवनसुत। रामभद्र बोले- आंजनेय प्यास लगी है। श्रीकिशोरी जी बोलीं- गर्मी बहुत हो रही है पंखा करो। श्रीरामचन्द्र बोले- पहले पानी ले आओ।

सीताजी बोलीं- पहले पंखा करो। अब जब युगल स्वामी का आदेश सुना तो श्रीहनुमान ने विचार किया कि झूला झूलने के आनन्द में भी व्यवधान न हो। सो देखिये उनका चातुर्य कि यहाँ झूले को भी धक्का दे रहे हैं वहां एक पल में बाहु बढ़ाकर एक हाथ में जल भरा पात्र ले आये दूसरा हाथ बढ़ाकर पंखा ले आये। अब जहां थे वहीं के वहीं प्रभु के सामने खड़े किशोरीजी को पंखा झल रहे हैं एवं श्रीराघवेन्द्र को जल पिला रहे हैं। सो दोनों ही प्रसन्न, दोनों ही संतुष्ट। कमल नयनों की सुधाभरीचितवनि से वे अपने लाड़ले श्रीहनुमान पर कृपा वर्षा कर रहे हैं। श्रीअन्जनानन्दन के बहुत से अन्य कथा प्रसंग हैं जिससे उनका सेवा चातुर्य, भावभक्ति, कार्य कौशल आदि प्रकट होते हैं-प्रभु श्रीराम के अवतारकाल में।

श्रीमारुतात्मज श्रीसीताराम के आर्शीवाद स्वरूप श्रीराम के अवतारकाल के पश्चात् आज भी सिद्धसन्तों के रूप में, भक्तजनों को यथायोग्य दर्शन देते हैं तथा उनकी मनोकामना पूर्ण करते हैं। इन सन्तों तथा उनकी ऐसी कथा-वार्ता भी सुजनों की श्रद्धा का पोषण, भक्तों की भक्ति का वर्धन एवं संतजनों को भक्ति की शक्ति प्रदान करती हैं। लगभग १०० वर्ष पूर्व श्रीअयोध्याजी में एक परमभक्त एवं विद्वान पं. रामबल्लभाशरणजी महाराज हुये हैं जो जानकीघाट पर रहा करते थे। वे विहार प्रान्त के थे। उन्होंने युवावस्था पर्यन्त कोई शिक्षादि प्राप्त नहीं की थी। एक रामानुरागी विद्वान महात्मा का का आशीर्वाद उन्हें प्राप्त हुआ। उन्होंने इनसे पूछा कि तुम क्या चाहते हो? पं. रामबल्लभाशरणजी ने विद्या एवं श्रीराम भक्ति की प्राप्ति की अभिलाषा प्रकट की। उन दयालु संत ने उन्हें अंजनी किशोर के स्मरण का विधान बतलाया। पंडितजी ने परम श्रद्धा एवं विधिपूर्वक ऐसा ही किया। श्रीहनुमानजी ने उन्हें दर्शन दिया और कहा ३ दिन के अन्दर तुम जितने ग्रन्थ देख लोगे वे सब तुम्हारे स्मृतिगम्य हो जायेंगे, उनका अभिप्राय भी तुम्हारे हृदय में प्रकट हो जायेगा और साथ ही श्रीरामभक्ति का वरदान भी दिया। पंडितजी अविलम्ब काशी रवाना हो गये और वहाँ के बड़े-बड़े ग्रंथालयों के ग्रंथों का दर्शन करके आ गये। इस प्रकार बिना विधिवित् विद्याध्ययन किये ही वे कितने बड़े रामभक्त एवं विद्वान हो गये श्रीहनुमंतलाल की कृपा से, यह तो उनका सत्संग करने वाले को ही समझ में आता था। उस समय सारा संत समाज विद्वत्जन एवं बड़े-बड़े सम्माननीय सज्जन भी उनका अभिनंदन वंदन किया करते थे।

अभी कुछ वर्षों पूर्व रामलीन हुए सुप्रसिद्ध रामायणी पंडित रामकिंकर उपाध्यायजी महाराज लगभग ३ वर्ष पूज्यवाद उड़िया बाबाजी के आश्रम में वृन्दावन में ब्रह्मलीन सत्गुरु स्वामी अखंडानन्दजी सरस्वती महाराज के सान्निध्य में रहे। एक बार हरिद्वार के स्वर्गाश्रम में वे स्वामीजी के साथ निवास कर रहे थे। पूज्यपाद स्वामीजी के ही शब्दों में :- 'एक दिन कथा व्यास यह आग्रह करने लगे कि मुझे भगवान का दर्शन होना चाहिये। मैंने समझाया कि भगवान किसी के आधीन नहीं होते कि कोई जब चाहे तब उनका दर्शन करा दे। उसके लिये दीर्घकाल व्यापी साधनाभ्यास एवं प्रभु की अकारण करुणा के अवतरण की अपेक्षा होती है। वे निराश होकर रूठ गये और हमसे थोड़ी दूर पर जाकर कमरे में व्याकुल होकर रोने छटपटाने लगे। उनका कहना था कि जब भगवत्प्राप्ति की आशा ही टूट गयी तो अब जी कर क्या करूंगा? घंटे दो घंटे के बाद दण्डी स्वामी ने मुझसे कहा कि ब्राह्मण मर जायेगा, जाकर समझाओ। मैंने जाकर उनका सिर गोद में ले लिया, आंसू पोंछने लगा, समझाने लगा, आश्वासन देने लगा। थोड़ी ही देर में उस कमरे के अन्दर एक स्वर्ण वर्ण वानर अचानक प्रकट हो गया। हाथों में वर अभयमुद्रा थी। वह दो पांवों पर खड़ा था। मेरे मुंह से निकला 'जय जय हो !' कथा व्यास के नेत्र खुले। सहसा उठकर वानर के चरणों में दण्डवत किया और वे उसमें से एक बेल का फल उठाकर चलते बने। कहना न होगा कि तबसे कथा-व्यास पं. रामकिंकर उपाध्याय जी महाराज के जीवन में एक अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया।"

जबलपुर के एक श्रीहनुमान मन्दिर के पुजारीजी का एकमात्र पुत्र गम्भीररूप से बीमार हो गया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि अब इसके प्राण ही चले जायेंगे सो मन्दिर में स्थित श्रीहनुमानजी से प्रार्थना की कि 'प्रभु ! हमारे पुत्र को अच्छा कर दीजिये। हम ५०० ब्राह्मणों को भोजन करायेंगे। प्रार्थना पूर्ण होते ही श्रीहनुमानजी के विग्रह पर चढ़ा हुआ एक फूल टप्प से नीचे गिर पड़ा। पुजारीजी उसे उठा ले आये और पुत्र के सिरहाने रख दिया। श्रीहनुमान कृपा से पुत्र पूर्ण स्वस्थ हो गया किंतु वे ब्राह्मण भोजन का अपना वचन पूरा न कर सके। इसमें जो भी कारण हो सो श्रीहरि इच्छा। कालान्तर में वह मन्दिर उनके हाथ से निकल कर एक दूसरे पंडित के हाथ चला गया जो अभी भी वहां जमे हुए हैं। यह लगभग ३० वर्ष पूर्व की सत्य घटना है।

श्रीहनुमानजी के विषय में यह बात भी प्रसिद्ध है कि वे रामभक्तों की किंवा राम नाम का जप, सुमिरन, कीर्तन करने वालों की स्वयं ही रक्षा करते हैं यथा (श्रीहनुमान चालीसा) 'साधु संत के तुम रखवारे।' एक प्रतिष्ठित ब्रह्मलीन महात्मा ने यह कथा प्रसंग वर्णित किया है कि किसी ग्राम में एक श्रीराम के परमभक्त सिद्ध संत पधारे। ग्रामवासी उनकी भक्ति, ज्ञान, रहनी-सहनी से बहुत प्रभावित हुए। सभी ग्रामवासी उनके निकट जाकर लाभ उठाते। उनके सत्संग के प्रभाव से बहुत से दुर्जन सुजन बन गये। दुर्गुणी सद्गुणी हो गये। बहुत से ग्रामवासियों ने उनसे दीक्षा ले ली। एक साधारण अत्यधिक कर्मव्यस्त किसान उनके सत्संग में नहीं जाता था। अन्य लोगों के बारम्बार कहने से वह भी एक दिन सत्संग में गया तथा उनसे बहुत प्रभावित भी हुआ। संत उसके कल्याण की इच्छा से ओत प्रोत हो उससे बोले 'नित्य रामनाम का जप किया करो'। वह बोला महाराज ! समय ही नहीं मिलता कब रामनाम जपें? संत बोले अपनी दिनचर्या बताओ, अब उस कृषक ने अपनी सारी दिनचर्या बतलायी और बोला 'महाराज ! आप ही बतलाओ मेरे पास कहां समय है? राम नाम जपने के लिये। महात्मा बोले 'अच्छा तो तुम शौच क्रिया के लिये दिशा मैदान तो जाते ही होगे सो ज्यों ही पानी का लोटा उठाओ तब से लेकर स्नानादि पर्यन्त 'राम राम' का जप किया करो।' किसान ने पूछा- महाराज! क्या शौच क्रिया के समय भी राम राम कहें? महात्मा ने कहा- बेशक बेधड़क ! श्रीराम नाम जप में शुद्धि अशुद्धि का प्रश्न ही नहीं है। वह तो हर स्थिति में, हर स्थान पर, हर समय किया जा सकता है।" किसान यह उपदेश प्राप्त कर अपने घर लौट आया।

अब वह कृषक संतगुरु के कथनानुसार नित्य 'राम राम' का जप करने लगा। एक दिन ग्राम के बाहर जंगल में जब शौच क्रिया करते हुए ही 'राम-राम' कह रहा था वहां से संयोगवश श्रीहनुमानजी जा रहे थे तो उन्होंने यह देखा कि यह किसान हमारे स्वामी का नाम ले रहा है तो उन्हें क्रोध आ गया। उन्होंने उसे एक थप्पड़ लगाया और बिना यह देखे कि क्या हुआ- आगे चले गये। अब जब वे राघवेन्द्र सरकार की सेवा में उपस्थित हुए तो प्रभु के मुखारविन्द पर दृष्टि जाते ही सन्न रह गये। प्रभु के सुंदर सुकोमल कपोल पर पांच उंगलियों के उभरे हुए चिन्ह् स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे। श्रीहनुमानजी बोले 'प्रभु ये क्या हो गया,

ऐसा दुस्साहस किसने किया?" वे आवेशित हो उठे। प्रभु कहते हैं 'हनुमान! मत पूँछो।' जब श्रीहनुमानजी ने बारम्बार आग्रह किया तो प्रभु बोल उठे 'उसका नाम है हनुमान।' श्रीहनुमानजी को काटो तो खून नहीं। किसी तरह बोले 'दीनबन्धु यह कैसे?' भगवान बोले-'हनुमान ! आज प्रातः का स्मरण करो ! वह कृषक हमारा नाम ले रहा था। तुमने उसे एक थप्पड़ मारा। तुम्हारे थप्पड़ की मार से रावण जैसा महाबली मूर्छित हो गया था, तब वह कृषक क्या तुम्हारा तमाचा सह सकता था? वह तो बीच में मैं आ गया सो वह बच गया। हमारा तुम्हें यह आदेश है कि कोई कैसे भी शुद्धि अशुद्धि में, किसी भी स्थान पर, किसी भी समय में श्रीराम नाम जपे तो तुम उसकी रक्षा करो"। श्रीहनुमानजी ने करबद्ध हो चरणों में शीश रखा। तभी से वे राम नाम जापकों की रक्षा में और भी सजग हो गये।

काल पर श्रीहनुमानजी की कृपा- रामचरित मानस के सुन्दरकाण्ड में हनुमान जी द्वारा समुद्र लांघने के पश्चात् एक उल्लेख है- 'बा पर चाढ़ि गयो भय त्यागे।' इसकी कथा इस प्रकार है कि भगवती सीता की खोज में समुद्र को पार कर आंजनेय श्रीहनुमान त्रिकूट के सुवेल नामक एक शिखर पर पहुंचे। जैसे ही वे शिखर पर पहुंचे, एक भयानक आकृति उन पर झपट पड़ी। काल के भी महा-काल श्रीहनुमानजी ने झट पहिचान लिया कि ये मृत्यु-दंव काल हैं। काल भी रुद्रावतार श्रीहनुमानजी को पहिचान कर उनके सम्मुख आकर खड़ा हो गया और कहा-'महावीर! धर्मराज के अपने दण्ड और मुझसे तुम्हें अभय का वरदान मिला हुआ हैं। मेरी धृष्टता क्षमा करें।' मृत्युदेव ने अपनी कमर की ओर इशारा करते हुए कहा- 'मैं यहां लंका में रावण का बन्दी हूं। उसने 'महामृत्युञ्जय' मन्त्र से अभिमन्त्रित इस जंजीर से मुझे बाँध रखा है, जिससे छुटकारा पाने में मैं असमर्थ हूं।' रुद्रावतार श्रीहनुमानजी ने श्रृखंला खोलने के लिए ज्योंहि हाथ बढ़ाया तो वह अपने आप खुलकर नीचे गिर गई। स्वयं रुद्र श्रीहनुमानजी का स्पर्श करके वह कैसे बंधन का कारण रह सकती थी? बन्धनमुक्त होकर काल ने कहा-मैं आपके इस उपकार का बदला नहीं चुका सकता पर वचन देता हूं कि-'जो निष्ठापूर्वक आपका स्मरण करेंगे उनको 'मुझ से भय नहीं होगा। निशाचरों के साथ संग्राम में आप जिध र दृष्टि उठाएंगे आप के प्रतिपक्ष की आयु समाप्त करने में मैं उधर दौड़ता रहूंगा।' मृत्यु-देव काल मुक्त होकर वहां से चुपचाप संयमिनी चले गये। रावण को पता तक

न लगा कि काल, जिसे उसने बांध कर अपनी लंका में रखा हुआ है, मुक्त होकर वहां से चला गया है। इस प्रकार करुणानिधान, श्रीहनुमानजी ने विकराल मृत्यु-देव काल पर भी दया कर उसे रावण की कैद से मुक्त किया।

श्रीहनुमानजी के द्वारा शनि को बन्धन मुक्त करना-

श्रीहनुमानजी सुवेल-शिखर को भगवान राम के सैन्य-शिविर के लिए एक अच्छा स्थान समझकर उसका भलीप्रकार निरीक्षण करने के लिए ज्योंहि आगे बढ़े तब नीचे की एक गुफा से आर्त-स्वर में आवाज आई-'महावीर श्रीहनुमान आप मुझ पर अनुग्रह नहीं करेंगे?' श्री केसरीनन्दन ने उस गुफा में, जिसमें से उन्हें आवाज सुनाई दी थी, प्रवेश किया और अपने गुरु सूर्य-सुत भगवान शनिदेव को एक मजबूत शहतीर के एक सुदृढ़ कड़े से पांव में बेड़ी पहिना कर श्रृखंला द्वारा उनके दोनों चरण बांध कर उल्टा लटकाया हुआ देखा। कृपा-मूर्ति श्रीहनुमानजी ने शनि के पांव की बेड़ियां खोल उसके चरणों को बांधने वाली जंजीर तोड़ दी और उसे सहारा देकर सीधा खड़ा किया और पूछा- 'रावण ने आपको भी बन्दी बनाया?' शनिदेव ने उत्तर दिया-'प्रत्येक प्राणी पर तीस वर्ष में मेरी साढ़ेसाती आती है। एक साढ़ेसाती समाप्त होने के केवल ढाई वर्ष पश्चात् फिर ढाई वर्ष के लिए मैं प्रतिकूल हो जाता हूं। उस के साढ़े सात वर्ष के अनन्तर फिर मेरी प्रतिकूलता के ढाई वर्ष, और उसके बीतने पर पुनः साढ़ेसाती प्रारम्भ होने में केवल साढ़े सात वर्ष का अन्तर पड़ता है। मैं प्राणी के अनुकूल केवल दो बार ढाई-ढाई वर्ष रहता हूं- जब उसकी राशि से तृतीया, षष्टम या एकादश स्थान में होऊं। तीसरी बार मेरी साढ़े साती आने पर अधिकांश के लिए मारक होती हैं यदि मैं उसकी कुण्डली में अनुकूल न होऊं और मुझे दशा बल प्राप्त हो'। फिर कहा-'रावण ज्योतिष विद्या का प्रकाण्ड पण्डित है। वह जानता है कि शनि की दृष्टि विष-दृष्टि है जो सर्वनाश कर देती है और उसका कोई प्रतिकार नहीं। रावण को भय था कि मैं उसको , उसके परिवार को, उसके राज्य को और उसके नगर को कभी भी अपनी दृष्टि के द्वारा दग्ध कर सर्वनाश कर सकता हूं। मैं जब उसकी अनुकूल स्थिति में था, अवसर का लाभ उठा कर उसने मुझे यहां पांव में बेड़ी पहिना कर उल्टा लटका दिया जिससे मैं कभी भी उनकी ओर दृष्टिपात नहीं कर

सकता था। वह मेरी विष-दृष्टि से निश्चिन्त था।"

'आप अब अपने स्थान जाने को स्वतन्त्र है' हनुमानजी ने आशीर्वाद दिया। भानु-सुत शनि ने श्रीहनुमानजी से विनम्र प्रार्थना की-'मुझे यहां उस समय तक रुकने की अनुमति दें जब तक आप यहां लंका में हैं। आप इस लंका की जिस सीमा को बचाने का मन में ही संकल्प करेंगे केवल उसी को बचा कर शेष लंका पर दृष्टि डालूँगा। जिससे उसका नाश हो जायेगा'। मैं आप को यह भी वर देता हूं कि-"आपके प्रभु राम के नील-मणि के सदृश निर्दोष नील-कान्त-मणि (नीलम) धारण करने से अथवा तुम्हारे स्मरण मात्र से मैं अनुकूल होकर आरोग्य, लक्ष्मी, कान्ति, ऐश्वर्य तथा परमसुख दूँगा।"

शनि की दृष्टि से, आशोक वाटिका, विभीषण का गृह तथा कुंभकर्ण का भवन, जिनको बचाने का हनुमानजीने मन में संकल्प किया था, के अतिरिक्त, शेष सारी लंका भस्म हो गई।

शनि द्वार श्रीहनुमानजी की शरण में रहने का वचन- कलियुग के आरम्भ में सूर्यनन्दन शनि समुद्र तट पर टहल रहे थे। उनकी दृष्टि राम-सेतु के समीप ध्यानमग्न श्रीहनुमानजी पर पड़ी। कृष्णवर्ण भीषणाकार शनि ने हनुमानजी से कहा-'आप पर मेरी साढ़े सात वर्ष की साढ़े साती आज इसी समय से आरम्भ है। मैं आपके शरीर पर आ रहा हूँ। 'हनुमानजी ने उत्तर दिया- 'आप कहीं अन्यत्र जावें। मुझे अपने आराध्य का स्मरण करने दें। मेरे शरीर में श्रीराम के अतिरिक्त दूसरे किसी को स्थान नहीं मिल सकता' और शनि से पूछा-'मेरे शरीर में कहां बैठने आ रहे हैं?' सिर पर" शनि ने अत्यन्त कर्कश स्वर में कहा- "मैं प्राणी के पहिले ढाई वर्ष सिर पर रह कर उसकी बुद्धि विचलित बनाऐ रखता हूं। मध्य के ढाई वर्ष उसके उदर में स्थित रह कर उसके शरीर को अस्वस्थ बनाता हूं। अन्तिम ढाई वर्ष उस के पैरों में रहकर उसे भटकाता हूं"। 'आप नहीं मानेंगे' धीरे से कहते हुए पिशाचग्रह घातक श्रीहनुमानजी ने अपनी पूँछ बढ़ा कर शनिदेव को उसमें लपेट लिया और कई लपेटे देकर अच्छी तरह जकड़ दिया जिससे शनिदेव बन्धन की पीड़ा से छटपटाने लगे। पूँछ की लपेट से निकलने का बहुतेरा यत्न किया पर सफल नहीं हुए। 'अब राम-सेतु की परिक्रमा का समय

हो गया है' कहकर श्रीहनुमानजी दौड़ते हुए सेतु की प्रदक्षिणा करने लगे। दौड़ते हुए जान-बूझ कर अपनी पूँछ को शिलाखण्डों पर पटकने लगे जिससे शनि का शरीर लहुलुहान हो गया। शनि प्रार्थना करने लगे 'पवन कुमार! त्राहि! त्राहि माम्। कृपामूर्ति! कृपा कीजिए। शरणागतवत्सल! मैं आपकी शरण में हूं, दयानिधे! दया कर मुझे मुक्त करें'।" करुणानिधि श्रीहनुमान बोले-'यदि तुम मेरे भक्त की राशि पर कभी न आने का वचन दो तो मैं तुम्हें मुक्त कर सकता हूं।' भानुसुत शनि ने पीड़ा से छटपटाते वचन दे दिया-'जो आपका स्मरण करेगा मैं कभी उसके समीप नहीं जाऊंगा'। शरणागत भयहारी श्रीहनुमानजी ने शनिदेव को पूँछ की लपेट से निकाल मुक्त कर दिया। शनि ने शरीर पर लगे घावों की पीड़ा से व्याकुल होकर उन पर लगाने के लिए तेल मांगा। इसीलिए शनिवार के दिन सूर्य-छाया सुत शनिदेव की प्रसन्नता के लिए, उसके शरीर पर लगे घावों पर लगाने के लिए तेल दिया जाता है।

श्रीहनुमानजी द्वारा रावण का मृत्यु वाण हरण लीला-

महासंग्राम चल रहा था, राक्षसराज दशग्रीव का। उनके महान दुर्जय योद्धा संहारे जा चुके थे-मेघनाद, कुम्भकर्ण महोदर, अतिकाय, अहिरावण आदि। दशग्रीव को फिर भी माँ श्रीजानकी भूमिजा पाने की तीव्र लालसा थी। वह अपने को अजेय मान बैठा था क्योंकि उसके हस्तपाद, मस्तक आदि शस्त्रों से छिन्न-भिन्न कर दिये जाते पर वह पुनः जीवित हो उठता था। "काटत ही सिर भये नवीने"- मैं अमर हूँ यह अहंकार उचित ही था।

भगवान श्रीराम निर्मल ज्योत्सना में, बैठे अपने को कोस रहे थे, अब भूमिजा का उद्धार होना संभव नहीं। नीलोज्जवल, पीताम्बरधारी करुणा वरुणालय के मुखारविन्द नेत्र जल से भीग रहे थे। सुग्रीव, जामवंत नल-नील, आञ्जनेय हनुमान, भक्त विभीषण अपलक नेत्रों से भगवान के मुखारविन्द को देखकर अत्यन्त दुखित हो रहे थे।

सहसा उसी समय राक्षसानुज विभीषण को बहुत पुरानी बातें याद आ गयीं। भगवान श्रीराम से वे कहने लगे- प्रभो नाथ ! लाखों वर्ष पहले की बात है, जब हम तीनों भाई प्रजापिता-ब्रह्मा की आराधना में तल्लीन थे। हजार वर्षों तक अन्न-जल की बातें ही कहाँ, हवा तक लेना भी, हम तीनों ने छोड़ दिया था।

तपश्चर्या से सुप्रसन्न ब्रह्माजी हंस वाहनारूढ़ हो हमारे दृष्टिपथ में आये और कहा, तुम्हारी तपस्या पूरी हुई। 'वरं ब्रुही', वरदान माँगों। तुम तीनों ने कठिन साधना से मुझे सुप्रसन्न किया है। मुझे अमरत्व का ही वरदान प्रिय है, दशग्रीव ने कहा, इसके सिवा अन्न-धन-मणि- रत्न -राज्य -स्वर्ग-इन्द्रादिपद भी मुझे तुच्छ मालूम होते हैं क्योंकि अमरता के बिना सब कुछ व्यर्थ है।

इस मृत्युलोक में अमरता का भव्य वरदान, असम्भव! महा असम्भव। पौलत्स्य कुलोद्भव होने के कारण, रावण ब्रह्मा के प्रपौत्र ही तो थे। उन्हें दया आई। मैं तुम्हें दूसरे ढंग से अमरत्व का ही वरदान प्रदान करने जा रहा हूँ। सस्मित ब्रह्माजी ने कहा-शत्रु तुम्हारे हस्त, पाद, मस्तक क्यों न काट डाले, फिर भी तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी। तुम जीवित रहोगे। तुम्हारी मृत्यु इसी स्वर्णमयी, मणि स्वचित वाण के द्वारा ही होगी और किसी अस्त्र शस्त्र से नहीं। इतना कहकर प्रजापिता ब्रह्मा अन्तरध्यान हो गए, दृष्टि पथ से ओझल हो गए।

"राक्षसेश्वर ने उस मणिमंत्र स्वर्णमंत्र दिव्यकाल वाण को कहाँ किस तरह, किस जगह छिपा कर रखा है, इस गोपनीय रहस्य को मैं नहीं जानता"- विभीषण ने बताया।

दशरथनन्दन, कौशल्यानन्दवर्धन श्रीराम अत्यन्त चिन्तित हो गये, उनके पदमूपलाश लोचनों से अश्रु का प्रपात चलने लगा। राघवेन्द्र श्रीराम को चिन्तित देख वृद्ध जामवन्त ने पवनपुत्र हनुमानजी को बल की याद दिलाना आरंभ किया क्योंकि मतंग मुनि के शापवस, हनुमानजी को अपने अतुलित बल का ज्ञान नहीं रहता था। इसलिये श्रीहनुमंत लालजी के भक्तों को उनके बल को याद दिलाना पड़ता है। जामवंत कहते ही गये- पवननन्दन, तुम पवन के समान ही वेगवान हो, तुम्हें माता श्रीजानकी का मंगलमय आशीर्वाद प्राप्त है। स्वयं हव्यवाहन अग्नि में भी वह शक्ति नहीं जो तुम्हारा एक रोम भी जलाने में समर्थ हो सके। यम-वरुण-इन्द्रादिक देवगणों से भी तुम्हें भय नहीं होता। तुम अप्रमेय बलवान हो। ज्ञानियों में अग्रगण्य, बुद्धिमत्ताओं में सर्वश्रेष्ठ हो। तुम काल के भी काल महाकाल हो। रामकाज और भक्तों के संरक्षण के लिये ही तुम्हारा अवतार हुआ है।

इतना सुनते ही आञ्जनेय गर्जन करने लगे। उनके इस महागर्जन से पर्वत हिलने लगे। समुद्र में उत्ताल तरंगें आ गयीं। प्रभो मैं आपकी सत्य शपथ लेकर

कहता हूँ, अगर मैं आपका सच्चा दास हूँ तो आकाश, पाताल, सूर्यलोक, चन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, समस्त लोक, समस्त सागर, नदी, पर्वत की गहन कंदराओं में जहाँ कहीं भी रावण का ब्रह्मप्रदत्त मृत्युवाण होगा, मैं अवश्य ही लेकर आऊँगा अन्यथा मैं आपको अपना मुख नहीं दिखाऊगाँ।

जय श्रीराम, आञ्जनेय ने प्रस्थान किया। उन्नत भाल, गले में रुद्राक्ष की माला, मस्तक पर त्रिपुण्ड, कक्ष तल में मृगचर्म, अति दीर्घजीवी शरीर, लम्बकर्ण, मांस में झुरियाँ, पोथी पत्रा लिये एक महाविद्वान ज्योतिर्विद ब्राह्मण का वेश धारण किये, राक्षसराज रावण के अंतःपुर में हनुमानजी ने प्रवेश किया। राक्षसाधिप रावण की जय हो। रक्षमहिषी महारानी मन्दोदरी की जय हो। लंकापुर की जय हो- ये शब्द आञ्जनेय के मुख से बारम्बार उच्चारित हो रहे थे। मयतनया महारानी मन्दोदरी उस समय भगवती शिव सिमन्तनी, शाम्भवी, नगनन्दनी माँ-पार्वती की आराधना कर रही थी। राजरानी को घेरे दश सहस्त्र रावण की अन्य पत्नियाँ भी बैठी थीं। प्रणव का गंभीर गुंजार लिये घण्टा बज रहा था। सहस्त्र-सहस्त्र देवांगनाओं एवं गन्धर्व किन्नर की, अद्धत की गयी स्त्रियों का समुदाय, स्फटिक पात्रों में अक्षत-चन्दन-दधि-दुर्वा-मालती-कुसुम-कर्पूर सजाये दिव्यातिदिव्य परिधानों में हीरक मंदिर की ओर मनोवेग से चली जा रही थीं। नूपूरों के रुन-झुन तथा कंकड़-किंकणी की ध्वनि उदासीन मुनियों के मन को चल-चंचल करने वाले थे। मंदिर प्रांगण की परिखा में प्रवाहित दुग्ध प्रवाह से आञ्जनेय के पाद प्रक्षालित हो गये।

"नमो दैव्ये महादेव्यै शिवाये शततं नमः"- मन्दोदरी बारंबार कह रही थी। अति दीर्घजीवी वृद्ध ब्राह्मण के मुख से जय जयकार की ध्वनि सुनकर रानी का ह्रदय हर्षातिरेक से भर गया। रत्न सिंहासन पर बैठने का आग्रह विनयावनत हो रानी ने किया।

"मैं किसी के आसन पर बैठना पसन्द नहीं करता", आञ्जनेय अपना मृग चर्मासन डालकर बैठ गये और बोले, रानी मैं एक प्रकाण्ड ज्योतिर्विद ब्राह्मण हूँ। मुझे रावण के हित की चिंता लगी रहती है। नर-वानर ने आकर लंका के ऊपर भारी विपत्ति खड़ी कर दी है। मैं आशीर्वाद देता हूँ राक्षसेश्वर की जय हो। प्रतिदिन मैं ज्योतिष से गणना कर देखता हूँ नर-वानर-यक्ष-राक्षस-किन्नरादि

रावण का क्या बिगाड़ लेंगे। बेटी तुम्हारे कमरे में जो धन है, उसके प्रभाव से स्वयं राम भी क्या बिगाड़ सकेंगे? मन्दोदरी आश्चर्यचकित हो पूछने लगी- महाराज ऐसा कौन सा धन है? जिसे आपने गणना कर देख लिया। ब्राह्मण वेशध ारी हनुमानजी ने कहा- मैं एक प्रसिद्ध एवं प्राचीन गणक हूँ। ज्योतिषगणना के द्वारा भूत-भविष्य-वर्तमान के कितने ही समाचार ज्ञात हैं। दशग्रीव का जीवन मृत्यु रहस्य आपके घर में है। कौशल और बुद्धिमता से दशकण्ठ अमर है क्योंकि उसका मृत्युवाण तुम्हारे ही पास है। देख रानी मैं तुम्हें सावधान करने के लिये ही आया हूँ। किसी और को यह गुप्त रहस्य बताने की चेष्टा भी मत करना, नहीं तो तेरे ऊपर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ेगा।

विप्र प्रवर उठे और चल पड़े। रक्षरानी मन्दोदरी हाथ जोड़ कहने लगी- "महाराज वह कौन सा धन मेरे घर में है, जिसे आपने ज्योतिषविद्या के प्रभाव से जान लिया?" "रक्षमहिषी तुम छिपाना चाहती हो! मेरे साथ छल मत करो। लंकापुरी में जहाँ जो-गुप्त या प्रकट धन है उसे मैं गणना कर ठीक-ठीक बता सकता हूँ" आञ्जनेय ने कहा।

"मुझे इन बातों से अधिक प्रयोजन नहीं। मैंने कह दिया- स्वयं ब्रह्मा भी आकर पूछें तो भी उसे प्रकट नहीं करना, नहीं तो तेरा अखण्ड सौभाग्य मिट्टी में मिल जायेगा।" विप्र की बातों से रानी विस्मित हुई, ये कोई मामूली विद्वान नहीं। यह तो गुरु वृहस्पति एवं दैत्य गुरु शुक्राचार्य से भी उद्भट विद्वान, प्रकाण्ड पण्डित है। मन्दोदरी ने कहा "उस मृत्युवाण को बहुत यत्न से छिपा कर रखी हूँ।" ब्राह्मण बोले- तुम कुछ भी बोलो "आखिर मन्द बुद्धि नारी ही हो। यह सत्य है तुमने उस काल वाण को छिपा कर रखा है। परन्तु तुम्हारे वाक्यों पर मुझे विश्वास नहीं होता। घर का भेदी विभीषण बड़ा ही घनघोर शत्रु है। कुपरामर्श देकर वे किसी भी समय अथाह सागर में ढकेल सकता है। सदा के लिये समाप्त कर सकता है।"

"आप चिन्ता मत करें" रानी बोली। ये जो सामने मणीमय स्तम्भ है उसी के अन्दर सुवर्णमय कालवाण सुरक्षित है। इस स्फटिक स्तम्भ का मैं पूजन करती हूँ।" आञ्जनेय बुद्धिमत्ता वरिष्ठ कहीं देर करने वाले थे। उनका अटल सिद्धान्त था "रामकाज कीन्हे बिनु मोहि कहाँ विश्राम," एक ही पद प्रहार से मणिमय स्तम्भ तोड़ डाला। हनुमान के लिए ये छोटी सी बात थी। कालवाण लेकर बजरंगी आकाश की

ओर उछल पड़े। देखते-देखते महारानी के दृष्टिपथ से विलीन हो गए। रानी का प्रसन्न मुख शुष्क हो गया। भयंकर अपशगुन होने लगे। हनुमानजी ने भगवान श्रीराम भद्र के चरणों में प्रणाम किया। श्री राघवेन्द्र ने अति प्रसन्न हो हनुमान को गले लगाया। "तुम मम प्रिय भरत सम भाई" उसी ब्रह्म प्रदत्त काल वाण से राक्षसराज रावण का वध हुआ। देवताओं ने दुंदुभी बजाई। आकाश से प्रसून बरसाने लगे।

श्रीहनुमानजी की चुटकी-

रावण वध के पश्चात् भगवान राम जब अयोध्या प्रत्यावर्तित होते हैं, तब भरत-लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि सभी लोग भगवान की सेवाओं को आपस में बाँट लेते हैं। एक भी सेवा शेष नहीं बचती है। ऐसे अवसर पर हनुमान जी कहीं बाहर गये थे। लौटने पर भरतजी ने बतलाया कि हनुमानजी! अब आप के लिए कोई सेवा शेष नहीं है। हनुमानजी ने कहा कि अब मेरे लिए केवल सेवा शेष है, वह है, भगवान जब जम्हाई लेंगे तो मैं चुटकी बजाऊँगा। हनुमानजी ने विचार किया कि पता नहीं भगवान कब जम्हाई लेंगे, इसलिए वें अहर्निश चुटकी बजाते रहते थे। भगवान ने सोचा कि भक्त की सेवा का प्रतिदान मिलना चाहिए। इसलिए एक बार जम्हाई लेते समय भगवान ने अपना मुख खोला और बहुत देर तक खोले ही रह गए। भगवान की इस दशा को देखकर अयोध्या में खलबली मच गयी। वैद्यराज के सारे उपचार बेकार चले गये। अंत में वशिष्ठजी को बुलाया गया। उन्होंने वहाँ उपस्थित सभी लोगों की तरफ दृष्टि दौड़ाई। हनुमानजी को न देखकर, उन्होंने पूछा पवनपुत्र ! कहाँ हैं? हनुमानजी की खोज जारी हुई। देखा गया कि छत के मुड़ेरे पर बैठकर वे चुटकी बजा रहे हैं। भगवान की दशा को सुनकर वे चुटकी बजाते हुए वहाँ उपस्थित हो गये। वशिष्ठ मुनि के कहने पर हनुमानजी ने जब चुटकी बन्द की तभी भगवान का भी मुख बन्द हुआ। विवश होकर सेवकों ने हनुमानजी को भगवान के पाद पद्मों की सेवा समर्पित कर दी।

अंचार की गुठली-

भगवान राम जब चौदह वर्ष की अवधि व्यतीत कर लौटे तब जनक जीं ने सेना सहित जनकपुर आने का निमंत्रण भेजा। भगवान राम ने हनुमान जी से कहा 'ससुराल का मामला है, इसलिए सेना को पूरी तरह अनुशासित कर दीजिए।' हनुमान जी ने कहा- 'भगवान आप जरा भी चिन्ता न करें, वहाँ कोई

चूँ तक नहीं कर सकता।' इसके पश्चात् हनुमानजी ने सभी बन्दर, भालुओं से कहा- 'भगवान की ससुराल चलना है। उनकी प्रतिष्ठा का प्रश्न है। इसलिए आप लोग ऐसा कोई ऐसा काम वहाँ नहीं करेंगे जिससे भगवान की हँसाई हो। इसका निदान यही है कि मैं जैसे-जैसे, जो-जो कार्य करूँगा, आपलोग वैसे-वैसे वही काम करेंगे।' सभी बन्दर, भालुओं ने इसे एक स्वर से स्वीकार किया।

जनकपुर पहुँचने पर सन्ध्या के भोज़न में 'सूपोदन सुरभी सरपि' के साथ-साथ लिसोढ़ा का अंचार भी पात्र पर रखा गय। लिसोढ़ा की गुठली काफी चिकनी होती है। हनुमानजी ने सोचा कि क्यों न पहले अचार का ही स्वाद लिया जाय? इसलिए लिसोढ़ा का अंचार ज्यों ही मुँह में लगाया उसकी चिकनी गुठली ऊपर उछल गयी। सभी बन्दर, भालू भी इस कृत्य को देखकर गुठलियों को ऊपर उछालने लगे और उसे उछल-उछल कर पकड़ने लगे। जनकपुर वासी इस दृश्य को देखकर हँसी से लोट-पोट हो गये।

कबड्डी का खेल

बन्दरी सेना का एक बन्दर हनुमानजी को 'ब्रह्मचारी जी' कहकर चिढ़ाता था। बहुत दिनों तक हनुमानजी सुनते रहे। जब सेना समुद्र को पार कर गयी तब एक बन्दर ने कबड्डी खेलने का विचार रखा। हनुमानजी ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। चिढ़ाने वाले बन्दर को उन्होंने विपरीत पक्ष में रखा। विपरीत पक्ष के सभी बन्दरों को हनुमानजी ने छूकर खेल से अलग कर दिया। अन्त में केवल चिढ़ाने वाला बन्दर बच गया। अन्त में हनुमानजी ने गूंग कबड्डी बोलकर चिढ़ानेवाले बन्दर की पूरी मरम्मत कर दी। उसी दिन से उसने ब्रह्मचारी जी कहना छोड़ दिया।

अयोध्या में लंका-दहन

एक बार अयोध्या के एक कपड़ा व्यापारी ने हनुमानजी से निवेदन किया कि मैं लंका-दहन का दृश्य देखना चाहता हूँ। हनुमानजी ने कहा- 'मेरी पूँछ में कपड़ा लपेट कर उस पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा दो।' व्यापारी ने वैसा ही किया। फिर क्या था, हनुमानजी ने उछल-कूदकर उसकी पूरी दुकान जला दी। व्यापारी रोता-कलपता भगवान राम के दरबार में पहुँचा। उसने हनुमानजी पर दोषारोपण किया। हनुमानजी बुलाये गये। उन्होंने कहा- 'भगवन्! यह

लंका-दहन का दृश्य देखना चाहता था। इसीलिए मैंने इसे लंका-दहन का दृश्य दिखला दिया। भगवान राम ने व्यापारी से कहा- 'अब कभी लंका-दहन का दृश्य देखने की इच्छा मत प्रकट करना।' व्यापारी को दरबार से पर्याप्त द्रव्य मिला और वह खुशी-खुशी लौट गया।

श्री हनुमानजी सम्बन्धी कुछ काव्य रचनाएँ

गौधूरि की बेला सुहावनी में
सुत अंजनि बाग बगीचन जावत।
शौच क्रिया करि नित्त के नेम औ
बैठि इकांत प्रभू गुन गावत।।
हाट बजार दुकानन के सब
सेठ तिन्हें नित सीस नवावत।
भौत कहें तौ कबउ हनुमान
तिन्हें गढ़ लंक की बात बतावत।।१।।
बातन रीझिहें लोग सबै
सब चाहत बातन अंत न होई।
कोऊ कहै कहु सेतु की लीला
तौ काऊ कहै कस लंकिनि रोई।।?
कोऊ कहै दसकंधर पण्डित
बात कहा जेहि बुद्धिऊ खोई?
प्रस्न सुनें जिनते हनुमान
तौ उत्तर देत तिन्हें सोई सोइ।।२।।
अक्षय मारि औ बाग उजारि
दसानन ते संवाद बतायौ।
सोऊ कथा सिगरी कहि डारी
जे रावण त्यागि विभीसन आयौ।।
मूर्छित लक्खन लाल भए
तौ सुखेन कहें ते संजीवन लायौ।
कीरति कथा सिगरी कहि डारी पै

लंक जराई सो नाहिं जतायो।।३।।
थोक विवसाई एक वस्त्र कौ विक्रेता
कहै लंक कूं जरायौ कस बात समझाइए।
छोटी सी पूँछरी जराइ डारी लंक सारी
बात ना समावै हिए करि के दिखाइए।।
रोज-रोज पूछें तऊ टारि-टारि देउ बात
कौतुक दिखाऔ मत चुप्प सी लगाइए।
पवन कुमार मन सोचि-सोचि बार-बार
बोलि उठे थोरे वस्त्र तेल घी मँगाइए।।४।।
खुसी-खुसी लाइ तानें पूँछ पै लपेटे वस्त्र
ऊपर ते डारी तेल-घी की चिकनाई है।
दीपक जराइ लोग घर के बुलाइ ताने
करी न अवार पूँछ पल में जराई है।।
पूँछ कूँ बढ़ाइ कछू कौतुक दिखाई
वस्त्र-गाँठिन जराइ थोरी धूम सी मचाई है।
हाथ जोरै सेठ औरु घर के विलाप करें
सँकट समेटौ तुम्हें राम की दुहाई है।।५।।

- नील अकास लसै अरुणोदय, कै जमुना पै वारि-तरंग है।
  राजत राजस तामस पै, कि कसौटी पै कसायो सुरंग है।
  राग दवाये सिंगारहिं के, मधवाजित पै पसरो बजरंग है।
  "दीन" अनूप छटायुत कै, रघुलाल के लाल गुलाब को रंग है।।

—— ×—— × ——— × —— × ——— ×——

- पार के बिस्व के सागर को, सुरसा-मति गर्व को धूरि मिलै हौ,
  पंच-विकार की लंक को जारि कै, सन्त-विभीषनै राज दिवै हौ,
  इन्द्रिय-अक्षय मारि कै आतम, राघव औध के धाम लिवै हौ,
  आपनो रूप हमैं हनुमान दै, रामजू के कब दास बनै हौ?

—— ×—— × ——— × —— × ——— ×——

राम उच्च सेवकों में श्रेष्ठ गिने जाते हो,

माया बन्धनों से परे ऐसे हो विचित्र आप,
अपने लिए न कहीं आश्रम बनाते हो,
सदाचार संयम के पावन प्रतीक मंजु,
फलाहारी होकर के कंदमूल खाते हो,
इसमें रहस्य कौन? होकर महान नर,
अपने को आप तुच्छ वानर बताते हो।।१।।
-पवन तनय हो और उन्हीं के सदृश्य वेग,
तीव्र बुद्धि वाले श्रेष्ठ-ज्ञान के निधान हो,
राम-कार्य करने में पंडित प्रकांड दक्ष,
उनकी कृपा के पुण्य-भाजन महान हो,
माता भूमिजा के शुचि स्नेह के पवित्र पात्र,
अजर-अमर ब्रह्म-अमर समान हो,
भक्ति के प्रताप पुण्य पुंज के प्रभाव भव्य,
शौर्यवान, धैर्यवान, इन्द्रवीर्यवान हो।।२।।
-भेदाभेद वस्तुओं के गुणों के हो जानकार,
इहलोक परलोक भाग्य के विधाता हो,
प्रेम-मोक्ष-भक्ति-धर्मसाधना की दिव्य ज्योति,
ऋद्धि-सिद्धि पावन प्रमोद के प्रदाता हो,
स्वार्थहीन, कर्मयोग, योग के महान मित्र,
ब्रह्मचर्य-आश्रम के संयमों के ज्ञाता हो,
शांतिदूत, क्रांतिदूत, रामदूत रत्न आप,
नाशक दुखों के और भक्त के सुत्राता हो।।३।
-माता-एक पिता-तीन इसका रहस्य गुप्त,
मुनियों ने सपने में मुझको बताया है,
भक्ति-एक देव-तीन, उनके सुपुत्र आप,
उनके गुणों से बनी स्वर्णवाली काया है,
उनसे परे हैं राम, राम के हैं भक्त आप,
आप पर राम की स्नेह-भरी छाया है

इसीलिए आज तक विज्ञों में महान-विज्ञ,
आपकी सुकीर्त्ति यश मान से जान पाया है।।४।।
-पूत आप दूत आप चंचल सपूत आप,
निर्विकार नीतिपटु सचिव प्रधान हो,
साधकों में श्रेष्ठ आप; ज्ञानियों में ज्येष्ठ आप,
तेज में प्रकाशमान, दीप्त दिनमान हो,
वाहक-संदेश आप योगनिष्ठ ब्रह्मनिष्ठ,
साधु सन्त मुनियों के शुद्ध स्वाभिमान हो,
रिपुदल-नाशक विनाशक-त्रिताप पुंज,
भारत के गौरव की महिमा महान हो।।५।।

—— × —— × —— × —— × —— × ——

-राम के भक्त हो वीर हनुमान तुम, देह भी बन रही भूधराकार है,
एक पग दृष्टिगत है यहाँ यदि अभी,
दूसरा पग पुनः सिन्धु के पार है।
शक्ति के स्रोत हो तुम प्रभंजन-तनय,
धीर हो वीर हो और गम्भीर हो।
हाथ जग पर हमेशा बनाए रहो,
कर रहा विश्व तुमको नमस्कार है।।१।।
-शुभ समाचार सुन प्रान की कोकिला,
राग-अनुराग के है सुनाने लगी।
कह रहे हैं भरत-"हे पवनसुत! सुनो,
अब धरा भी अवध की सुहाने लगी।
भूल अब मैं गया दुःखमय सब दिवस,
आज मुझको नया एक जीवन मिला,
देह की वाटिका में सुमन मोद के खिल उठे;
हर दिशा चहचहाने लगी।।२।।
-रात को इस समय व्योम के पंथ से,
राम-रघुनाथ के पथ उड़ा जा रहा,

कौन है किसलिए जा रहा उधर मन है,
अनुमान कुछ भी नहीं पा रहा।
एक क्षण को हुए सोचवश हैं भरत,
दूसरे क्षण गगन-भेदि शर चल दिया,
नभ-पथिक भी अयोध्या-पुरी ग्राम में,
विद्ध-शर भूमि पर है गिरा आ रहा।।३।।
-राम! हा राम! हा! कह पवनसुत गिरे,
व्योम के पंथ से जिस समय भूमि तल,
शोक-विह्वल भरत हो गए एक क्षण,
कह उठे "हाय! उनको हुआ आज छल।"
शीघ्र उपचार कर पूछते हैं पुनः, "कौन तुम?
किधर को चले जा रहे?",
वीर-हनुमान से तब श्रवण-गत हुई,
सब कथा राम की पावनी अति विमल।।४।।

—— × —— × —— × —— × —— × ——

-शबरी स्नेह, मिलन बजरंगी, सुग्रीव, वध बाली।
सीता-सुधि में भेज दिया अञ्जनी-पुत्र बलशाली।।
सुरसा सरसी, हरषे नभचर, मिला विभीषण भारी।
सिया-सुखी, कर लंक-दहन श्री-चरण गहे त्रिपुरारी।
लखन-शक्ति, डोला गिरि-आगम, कालनेमि आखेता।।
-बालरवि लील्यो, बाल राम को रिझाय लियो,
बलबुद्धि विक्रम को ध्वज फहरायो है,
सँकट सुग्रीव हर्‌यो, भेंट रघुनाथ लियो,
सिया-सुधि लाये, सिया राम सों मिलायो है,
लंका के दहन बने, जीवन लखन बने,
भरत-भगत राम-सुयश सुनायो है,
"ब्रह्म" श्रीराम के अनन्य पद्म-पादपों में,
कल्पतरु रूप-अञ्जनी को बल पायो है।

—— × —— × ——— × —— × ——— × ——

अपलक देखता हूँ झलक दिखाओ प्रभु,
लेकर के युगल सवार दिव्य कंध के,
कन्दुक समान दैत्य कटक पटक मार,
मान मर्दि रावण सुरारि अज्ञ अंध के,
राकेट से गामी रामचन्द्र अनुगामी कहो,
कैसे गुण गाएँ तव कीरति सुगंध के,
होके मतिमन्द लिखूँ नाथ के निबन्ध,
मेरे छन्द औं प्रबंध हनुमान सेतुबंध के।।

—— × —— × ——— × —— × ——— × ——

गुणवान, ज्ञानवान, ध्यानवान, बलवान,
तुमसा न धैर्यवान, बुद्धिमान देखा है,
तेजवान, तपवान, प्रणवान, प्राणवान,
तुमसा न दीप्तिमान उनमान देखा है,
तुमसा न त्यागी न विरागी अनुरागी और,
तुमसा न योगी यती द्युतिमान देखा है,
पौरुष में, प्रतिभा में, प्रज्ञा में, प्रतिष्ठावान,
तुमसा न कोई कान्तिमान देखा है।।

—— × —— × ——— × —— × ——— × ——

–हाथ गहि दीनानाथ जीवन सनाथ करौ,
जानि के अनाथ जनि मोहि बिसराइयो,
आपन कपूत हूँ सपूत बतरायो जात,
या ही जानि मेरे उर धीरज धराइयो,
शंकर-सुवन तुम केशरी के नन्दन हो,
आप आइयो तो साथ रामजी को लाइयो,
मेरे करमों केरे काटि सब भव-फन्द,
जीवन में प्रेम के प्रसून बगराइयो।।
–अंग-लाल लाल लाल लाल है लंगोट लाल,

भाल पे तिलक लाल शिवजी के लाल को,
जाको जपि दुःखदंद पुंज हैं नसाय जात,
छार कर देत सारे जग के जंजाल को,
परम भयातुर को भय छूट जात नित,
नाम लेत तुरत ही काल हूँ के काल को,
हाल पर भक्तन के तर हैं खाते आप,
एक बार देख लीजें "मुझ" बेहाल को।।

—— × —— × —— × —— × —— × ——

-श्रीहनुमान सुजान सुनौ बल-बान महा पराक्रम तेरो,
दीन दसा मम देखि दयानिधि, नास करौ दुख-दोष घनेरो,
व्याकुल यह भक्त बिहाल है, आरत-बैन पुकारत चेरो,
बेगि निहाल करौ हे कृपालु!, दयालु हरो सब संकट मेरो।।
-बाग उजारि त्यौं जारि दियो पुर, मान मथे गढ़ लकं थली के,
बाधक-वृन्द विदारि तमीचर, सोक असोक कै भूमि-लली के,
लाय संजीवन पैठि पताल में, काल बने रिपु की अबली के,
सो नितवन्दि भक्त कहैं, हम, आसरे श्रीबजरंग-बली के।।

—— × —— × —— × —— × —— × ——

-गेरू के पहार सों महावली बजरंगी देखि,
कालानल ज्वाल लौं लंगूर लहरानी है,
धूम भरे घरन विहाय दुष्ट दैत्यन की,
घूमि-घूमि घूरि भूरि भीर महरानी है,
सुबरन नगर भयो है बिवरन वेगि,
विजुकत वाहन की पंगति परानी है,
दहलन लाग्यो दसमुख महलन बीच,
दासी चकरानी महारानी लौं हिरानी है।।३।।
-सिन्धु तट चटकि, पटकि सुरसा को वीर,
लंक में निशंक बंह है आतंक छायो है,
तिमिन अशोक मैं शोक मैथिली को देखि,

देकै मुद्रिका को, बन्दि राम यश गायो है,
वाटिका उजारिबे को, नगर पजारिबे को,
मारुती छुधा के ब्याज कौतुक दिखायो है,
बचन बिचारि सिय-शंकको निबारिबे को,
मानों अचलाते वो अचल कढ़ि आयो है।।४।।

—— × —— × —— × —— × —— × ——

-जात रूप निर्मित परिधि नभ चूमती सी,
चारों ओर रक्षक अपार एक ही है द्वार।
वृक्ष-वृक्ष-रक्षिणी--विपुल-वाहिनी है वहाँ,
सर्वथा अगम्य, भासता प्रविष्टि का विचार।
सीता-वह्णि-रेखा छिपी घूम यातुधानियों में,
तिष्ठिता अशोक-मूल राम को रही पुकार।
अतिलघु रूप में उतर ओस स्वप्न तुल्य,
पत्रौ में तिरोहित हुए हैं अंजनी कुमार।।१।।
-ले रवि-बाल की लालिमा गात से, पाटल-भास बिखेर रहा है,
शक्ति-संजीवनी देकर काम की, कालिमा से मन फेर रहा है,
बावन रूप हो मुद्रिका-भक्ति से दुःख सिरा के निबेर रहा है,
"बाहुक'-बाहु से जातक-वायु का सिद्धियों के लगा ढेर रहा है।।२।।
-हो रथ-सैंधव-सम्मुख भानु से, ज्ञान को सीखते मारुत नन्दन,
तीव्र कुशाग्र ऋतम्भरा देख, लगे करने सुर सादर वन्दन,
मोद-पगे पितु-अंजनीलाल से, हर्ष भरे हर काम-निकन्दन,
है, बल रूप कि धैर्य स्वरूप कि, बाहुक-वीर कि साहस स्यन्दन।।३।।
-भक्षक भानु के, त्रासक राहु के, अभ्रभुवल्लभ के मद-झारी,
पा वर व्यापक देवता वृन्द से, वेग खगेश ने कीर्ति-प्रसारी,
होकर पूर्ण प्रयोग में योग के, पुष्कल-ज्ञान के नित्य विहारी,
बोहित हो भंवसिन्धु अगाध के, बाहुक वीर त्रिशूल बिदारी।।४।।
-पुण्य प्रसून प्रभूत भरे हुए, जीवन वाटिका में वरदानी,
है मथती नवनीत सुगन्ध को, हो मलयानिल मन्द मथानी,

आतुर-भक्ति पराग के पान को, जीव-अली-अवली लहरानी,
दृष्टि उजागरी-बाहुक-वीर की, है मधु-माधव मास कहानी।।५।।
-रोग भयंकर कांपते देख, कुयोग का योग नहीं छलता है,
यन्त्र न तन्त्र, न मूठ न दीठ, न टोने का जोर कहीं चलता है,
अज्ञय दैत्य हैं शीश रहे धुन, हाथ अभाग्य खड़ा मलता है,
बाहुक-दीप-अनुग्रह में पड़, पाप-पतंग सदा जलता है।।६।।
-अग्नि संवर्तक से, महासिन्धु से, काल-से-बाहुक-बीर प्रणाम है,
क्रूर निशाचरों पै गिरे गाजसे, रौद्र-श्री रणधीर प्रणाम है,
चीर उर-स्थल राम दिखा रहे, त्याग-पयोनिधि-क्षीर प्रणाम है।
सेवक-धर्म के प्राणदा-मर्म हो, त्राणदा-प्राण-समीर प्रणाम है।।७।।

—— × —— × —— × —— × —— × ——

हनुमन्त की लपेट दै लंगूर की झपेट दल दुष्ट को दपेट चरपे-चा खलान।
बजै नख चटाचट्ट, दन्त होत खटाखट्ट, गिरै सेन घटाघट फूटि-फूट पार जान।
कपि व्यूह किलकार खलजूह झिलकार, परी पेट पिलकार कटैं राकस-निदान।
तहँ तेजको कुमार करि कोप बेशुमार, वीर लखन कँवर, झुकि मारी-किरवान।।

("लक्ष्मण-शतक" रचियता 'श्रीहनुमान नख शिख")-

—— × —— × —— × —— × —— × ——

दीपक सो ज्वलित प्रताप रामचन्द्र तेरो,
जासु छवि छाई अण्ड अमल उजास की।
"कवि हनुमान" कच्छ चरण फणिन्द-दण्ड,
भाजन महा है मही जगत-निवास की।
उदधि सनेहबाती सुभग हिरण्य-शैल,
तेज है अखण्ड मारतण्ड तम नाश की।
जारि डार्‍या आशु शत्रु समर हतासु काज,
जरत परत सोई कालिमा अकाश की।।

—— × —— × —— × —— × —— × ——

कोप कियो हनुमान महाप्रभु छाय रही नभ तात की लाली।
राम-अवज्ञा न भोगि सको, छिटकी बल-रश्मि प्रवाल की लाली।

लाल किये जग अंजनीलाल ने, है बिखरी उन गात की लाली।
शंकर-पारवती-गिरिराज औ चन्द्र पै, छाई प्रभात की लाली।।

—— ×—— × ——— ×—— × ——— ×——

-सब भाँति सुभद्र समीर लला, करें मंगल मोदित मंजु मही,
चिरचेता स्वतंत्रता चारु बड़े, हुए ईश्वर-पुत्र सुशील वही,
बल चारों उन्हीं में निवास करें, त्रययोग के सूत्र के ज्ञाता सही,
बनं विश्व-विभूति भी राम की दासता, दिव्य गही तो उन्होंने गही।
-शत संतत रूप सहस्र-गुणी, प्रभु प्रेरित लोक-विभूति संवारे,
महामानव वे जगदेव भले, बर वन्ध समीर-लला हैं हमारे,
गुण आठों से आवृत बुद्धि रही, उनकी कल-कीर्त्ति सजी प्रति द्वारे,
जिनसे अनुप्राणित मेदिनी है, वही मारुत-नन्दन पूज्य हमारे।।२।।

—— ×—— × ——— ×—— × ——— ×——

-बन्दउँ मारुत-सुत हनुमान।
ज्ञानी-पुरुषनि-श्रेष्ठ, जितेन्द्रिय, यश-सद्गुनन-निधान।
वायुवेग समान मनीषी, अतिप्रबुद्ध बलवान।
परम मनोज्ञ मनोजव मनहर, सुघड़ सुशील सुजान।
कंचन-कांतिर्मय-वपु सुन्दर, कपि-ईश्वर श्रीमान।
दानव-बन हित सदा हुतासन, कीरतिलही महान।
रामदूत अतुलित बल-आगर, जन-तारिनी-सुबान।।

—— ×—— × ——— ×—— × ——— ×——

-प्रणवऊँ आर्य-श्रेष्ठ हनुमान।
वक्र-चिबुक जलनिधि उल्लंघक, प्लवग परम बलवान।
फल पुष्पन-प्रेमी अप-पायी, निरत राम गुन-गान।
पारावार-तरण अघ-भीता, कपि ऋत-सत्त्व-निधान।
काननचारी-शाकाहारी, वानर सद्गुन खान।
शंकर-तनय केशरी-नन्दन, महामनुज जग-जान।
अंजनि पुत्र वायु-आत्मज, प्रभु अनुचर राम-महान।

महावीर विक्रम बजरंगी, करिय सुमति मोहिदान।।

—— ×—— × —— × —— × —— ×——

–पाहि मोहि हनुमत दीन–दयाल।
पृथिवी–वायु–वह्नि–दिव–आपः दिवा–रजनि दिग्–पाल।
जलधिनि–शाखिनि–शिखरनि–युद्धनि, राखिय अञ्जनि–बाल।
डाकिन–शाकिन–नाग–पिशाचिन, मरीचिकन बनि काल।
संकट–संतापन–असुरन–नित, रच्छिय हरि–विकराल।
वृहद्वाञ्छाफलदः वृहदीश्वर, गुणमय शक्ति–विशाल।
देवपाल गोपाल पवनसुत, प्रणतपाल यशपाल।।

—— ×—— × —— × —— × —— ×——

–परात्मक श्रीधर जन–आधार।
महाबलः ब्रह्मेश समर्थः सुराध्यक्ष यश–सार।
कर्माध्यक्ष भक्तवत्सल विभु संकर्षण–साकार।
नन्दी चण्डी दण्डी भृङ्गी, भृगुसुत बल–आगार।
असुराराति अर्थिवन्द्यः हरि, बुद्ध कल्कि शुभ–कार।
शरणपाल रामाश्रय मधुरिपु, कपिवर वायुकुमार।।

—— ×—— × —— × —— × —— ×——

–आञ्जनेय वायु–सुवन, लै लघुता सुख पाय।
अणिमामहँ गरिमा बसै, इह प्रत्यक्ष बताय।।१।।
हरि–सेवक–हरि से डरै, हरिहु करत उत्पात।
सदा हरित–मन रहत है हरि–भक्षक हरि–जात।।२।।
राम–भक्त–चूड़ामणि, हैं हनुमत कपिराय।
राम–भक्ति–साधक सरस, इन सम कोउ न लखाय।।३।।
राम–रसज्ञहि पाइ कै, व्यर्थ काढ़िबो दांत।
हँस मिले क्यों रोइए, कुटिल–बगुलन पांत ।।४।।

अध्याय–आठ

श्रीहनुमानजी के विविध रूप स्वरूप

रूद्रस्वरूप

श्रीहनुमानजी साक्षात् परमेश्वर रुद्र हैं। उनकी रुद्ररूप में स्तुति वेद, उपनिषद, रामायण, पुराणों आदि शास्त्रग्रन्थों में निरूपित है। श्रीहनुमान के परब्रह्मस्वरूप का चिन्तन पुराणों में अधिक उपलब्ध होता है। हनुमानजी कहीं शंकर के अंशरूप और कहीं साक्षात् शंकरजी के रूप में वर्णित किये गये हैं। शिवपुराण के शतरुद्र संहिता के बीसवें अध्याय में हनुमानजी की जन्मकथा का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि श्रीरामकार्य की सिद्धि के लिए शिवजी ने स्वयं हनुमान का रूप धारण किया था (४, ५, एवं ६वां श्लोक)। इसी अध्याय के ६वें श्लोक में– 'शिवावतारं च प्राप' हनुमान को शिव अवतार, १२वें में रुद्रांश, ३२वें में महादेवात्मज, ७वें में 'हनूमानिति नामभाक्, शम्भुर्जज्ञे' तथा ३६वें में 'सीतारामसुखप्रद' कहा गया है।

अमृत-बाँटते समय दैत्यों को मोह में डालने के लिए जब श्रीविष्णु ने मोहिनीरूप धारण किया, तब उस रूप के अद्भुत सौन्दर्य पर शिवजी मोहित होकर विक्षुब्ध-हो गये। उस अन्तःक्षोभ में स्खलित शिववीर्य को सप्तर्षियों ने कानों के मार्ग से गौतम की पुत्री अंजना के गर्भ में संक्रान्त कर दिया और इस गर्भ से हनुमानजी का जन्म हुआ। इस कथानक के अनुसार हनुमानजी शिवजी के वीर्योत्पन्न पुत्र हैं।

बृहद्धर्मपुराण के १८वें अध्याय में कहा गया है कि शिवपार्वती रावण की रक्षा के लिए लंका में निवास करते थे। उनके पास रावण के अत्याचारों को बताने देवगण गये। तब सीता के अपमान से विक्षुब्ध होकर पार्वतीजी ने शिवजी से लंका का त्याग करने को कहा। श्रीरामकार्य की सिद्धि के लिए शिवजी ने हनुमान बनना स्वीकार किया। इस पुराण के २०वें अध्याय में श्रीहनुमान के शिवरूप होने का प्रमाण प्रस्तुत किया गया है। इसके अनुसार–अशोकवाटिका में जब हनुमानजी ने

चण्डी का मन्दिर देखा, तब अपने को शिव का रूप बतलाकर देवी से लंका छोड़ने के लिए आग्रह किया। हनुमानजी (शिवजी) ने अपने विश्वरूप का दर्शन कराया, जिसमें देवी ने रावण की सेना को संकट में और श्रीराम की सेना को सफल रूप में देखा। इस पौराणिक साक्ष्य पर हनुमानजी शिव के साक्षात् अवतार सिद्ध होते हैं।

श्रीहनुमान को पवनसुत भी कहा जाता है। उसका कारण यह है कि महादेव की आठ मूर्तियाँ हैं- शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव। ये आठ मूर्तियाँ महादेव की प्रसिद्ध हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा और यजमान-ये आठ रूप भी शिव के ही प्रत्यक्ष रूप हैं। अतः मारुत (पवन) भी महादेव का दूसरा शरीर होने के कारण, उससे उत्पन्न मारुति तथा शिवसुत एक ही हैं। इसीलिए वेद में-'रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्राः (ऋ. ६/६६/३) आदि मन्त्रों में मरुतों को रुद्र (शिव) का पुत्र कहा गया है। यहाँ रुद्र के पुत्र मरुतों की शक्ति उग्र कही गयी है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार हनुमानजी में भी वही उग्र शक्ति विद्यमान है। इस आधार पर पवनसुत हनुमानजी रुद्र की विभूति सिद्ध होते हैं।

श्रीरामप्रोक्त कवच के प्रसंग में सनत्कुमार का हनुमानजी के प्रति कथन है-'वे सब रूपों में अभिव्यक्त हैं, सर्वज्ञ हैं, सृष्टि करते हैं तथा उसका पोषण करते हैं। वे स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और साक्षात् परमेश्वर हैं-

स सर्वरूपः सर्वज्ञ सृष्टिस्थितिकरोऽवतु।
स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः साक्षाद्देवो महेश्वरः।।
(नारदपुराण, पूर्व तृतीय पाद ६२/२४/-२५)

त्रिपुर-संहार के पूर्व देवताओं ने भगवान शंकर की विभूतियों का वर्णन करते हुए उनके हनुमान रूप का ही स्मरण किया- 'आदित्यानां वासुदेवो हनूमान वानरेषु च।' (शिवपुराण, रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड २/५१)। शिवजी के गणाध्यक्ष नन्दीश्वर ने सनत्कुमार से श्रीशंकर द्वारा हनुमान रूप में आविर्भुत होकर लीला करने का वर्णन किया है। नन्दीश्वर ने कहा-

अतः परं शृणु प्रीत्या हनुमच्चरितं मुने।

यथा चकाराशु हरो लीलास्तद्रूपतो वराः।। (वही २०/११)

जाम्बवान ने श्रीराम को रुद्रावतार हनुमानजी की इस प्रकार स्तुति करने की प्रेरणा दी- 'देव! रुद्रावतारोऽयं मारुतिः, रुद्रस्तुतिः क्रियताम्।' (हनुमन्नाटक, अंक-६)। हनुमत्सहस्रनाम में श्लोक १, ३, ५, १६, ३०, ६२, १०० में क्रमशः श्रीहनुमान के रुद्र, शिव, विश्वनाथ, सदाशिव, महेश्वर, गिरीश, गिरिजाकांत और रुद्ररूप आदि नामों का उल्लेख है। साक्षात् भगवान शिव ने श्रीहनुमान की स्तुति की है 'महेश कृत संस्तवः।' इस प्रकार श्रीहनुमानजी साक्षात् रुद्ररूप हैं- 'रुद्रावतार' संजज्ञे वायुपुत्रः प्रतापवान्।।' (आनन्दरामायण, सार. ११/२०)।

वायुपुराण के पूर्वार्द्ध में भगवान महादेव द्वारा माता अंजना के गर्भ से श्रीहनुमानरूप में अवतार लेने का उल्लेख है-

अंजनीगर्भसम्भूतो हनुमान् पवनात्मजः।

यदा जातो महादेवो हनुमान सत्यविक्रमः।।

(वायुपुराण ६०/७३)

स्कन्दपुराण में भी श्रीहनुमान को स्वयं शंकर बताया गया है-

यो वै चैकादशो रुद्रो हनुमान से महाकपिः।

अवतीर्णः सहायार्थ विष्णोरमिततेजसः।

(माहेश्वर, केदारखण्ड ८/९९-१००)

'ग्यारहवें रुद्र ही अमित तेजस्वी श्रीविष्णु (श्रीराम) की सहायता के लिए महाकपि हनुमान हुए।'

अगस्त्य-संहिता में भी हनुमानजी को रुद्रावतार कहा गया है-

यशोवितानधवलीकृत जगत्रितयाय च।

वज्रदेहीति चोक्ता हि रुद्रावतारपदं तथा।।

(अगस्त्य-संहिता-३२/१२)

'अर्थात् अपने यश-समूह से त्रिभुवन को उज्ज्वल कर देने वाले, वज्रदेह तथा रुद्रावतार कहलाने वाले श्रीहनुमान। 'हनुमदेकमुखीकवच' भी श्रीहनुमान को रुद्रावतार ही कहता है-'सदाशिवाय ब्रह्मरुद्रावतारिणे.....मृत्युंजय, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, कालभैरव,....ॐ नमो हनुमते.....एकादशरुद्राय।' 'हनुमत्पंचमुखी कवच' में भी इन्हें 'रुद्रमूर्ति' कहा गया है-

ॐ रुं रुद्रमूर्तये करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ रुं रुद्रमूर्तये अस्त्राय फट्।'

हनुमच्छत्रुंजय स्तोत्र में भी इन्हें रुद्रवतार ही कहा गया है-

रुद्रावतार संसारः दुःखभारापहारक।
लोल लांगूल पातेन ममारातीन्निपातय।।

तन्त्रशास्त्र में भी श्रीहनुमान के रुद्रमूर्तिधर रूप का वर्णन उपलब्ध होता है। परब्रह्म रुद्ररूप श्रीहनुमान का महत्त्व तन्त्रों में भी इस प्रकार निरूपित है-

करालशैलशस्त्राय द्रुमशस्त्राय ते नमः।
बालैकब्रह्मचर्याय रुद्रमूर्तिधराय च।।

(श्री विद्यार्णव तंत्र, हनुमत्स्तुति-२८/१३)

'मन्त्रमहार्णव' में वर्णन है कि श्रीशिव ने भगवती पार्वती से रुद्ररूप हनुमत्साध न की विधि बतलायी और कहा कि रुद्रात्मक हनुमन्मन्त्र के जप से साधक तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर लेता है। शिवजी ने ध्यान तथा नमस्कार व द्वादशाक्षर हनुमन्मन्त्र बताया- ध्यान व नमस्कार-'ॐ रुद्रमूर्तये शिरसे स्वाहा।' (मन्त्रमहार्णव, पूर्वखण्ड, पृष्ठ-१६८)

द्वादशाक्षर मन्त्र-'हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्।' (वही, पृष्ठ-१६९)

पीठ पूजोपयोगी रुद्ररूप हनुमान का दूसरा मन्त्र है-

'ॐ नमो भगवते रुद्राय सर्वभूतात्मने हनुमते
सर्वात्मसंयोगपद्मपीठात्मने नमः।'

(मन्त्र महार्णव, उत्तराखण्ड, तरंग-३, पृष्ठ-६४२)

श्रीकृष्ण से अनन्यता-उद्धव से भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि-'षडैश्वर्ययुक्त महापुरुषों में मैं वासुदेव हूँ, प्रेमी भक्तों में उद्धव, किम्पुरुषों (सेवकों) में हनुमान और विद्याधरों में सुदर्शन हूँ-

वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम्।
किम्पुरुषाणां हनुमान् विद्याधाणां सुदर्शनः।

(श्रीमद्भागवत-११/१६/२६)

श्रीहनुमानजी को शिव के प्रमुख गण नन्दी के रूप में भी वर्णित किया गया है। इस वर्णन में भी उनकी रुद्ररूपता-शिवात्मकता सुरक्षित है। 'हनुमत्सहस्रनाम' के ८६वें श्लोक में उनका एक नाम 'नन्दी' भी कहा गया है। इस सम्बन्ध में एक प्रसंग विष्णुधर्मोत्तर पुराण में आया है-'एक बार कैलाश पर्वत पर पुष्पक विमान की गति को अवरुद्ध देखकर राक्षसराज रावण ने दृष्टि दौड़ायी, तो उसे पर्वत शिखर पर वानररूप में स्थित नन्दी दिखलायी पड़े। उन्हें वानररूप में देखकर रावण खिलखिलाकर हँस पड़ा। तब नन्दी ने उसे शाप देते हुए कहा-'दशग्रीव! इस पर्वत पर भगवान शंकर क्रीड़ा कर रहे हैं, तुम विमान पर बैठकर उस स्थान पर जा रहे हो और साथ ही मेरा उपहास भी कर रहे हो, अतः मैं तुम्हें शाप दूँगा-'प्रजापति पुलस्त्य के वंश में तुम्हारा विनाश करने के लिए मेरे ही मुख के समान वाले भीम पराक्रमी भयंकर वानर उत्पन्न होगें।'- वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग-१६, श्लोक-१६ से २१ तक में भी ठीक इसी प्रकार नन्दी द्वारा रावण को शाप दिये जाने का वर्णन है। नन्दी के शाप में उनके रुद्रांश का हनुमत के रूप में प्रकट होने का संकेत मिलता है और इस संकेत का स्पष्टीकरण पुराणों से भी मिलता है। नन्दी की गणना ग्यारहवें रुद्र में की गयी है। भगवान विष्णु के अंशों सहित श्रीराम प्रकट हए और उनके कार्य की सम्पन्नता के लिए नन्दी हनुमान के रूप में अवतरित हुए-

शिलादतनयो नन्दी शिवस्यानुचरः प्रियः।
यो वै चैकादशो रुद्रो हनूमान् स महाऋषिः।

अवतीर्णः सहायार्थं विष्णोरमिततेजसः।

(स्कन्दपुराण, माहेश्वर, केदारखण्ड ८/९९-१००)

यहाँ उल्लेखनीय है कि शिलाद ऋषि की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने स्वयं अयोनिज रूप में नन्दी होकर प्रकट होने का वचन दिया था- तव पुत्रो भविष्यामि नन्दीनाम्ना त्वयोनिजः।' (शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता-६/३४)

इससे यह स्पष्ट होता है कि नन्दी के रूप में अवतरित होने वाले अयोनिज ग्यारहवें रुद्र ही हनुमान हैं। यहाँ यह भी विचारणीय है कि हनुमानजी शंकर के अंशावतार (एकादश रुद्रों में से ग्यारहवें) हैं या पूर्ण अंश के अवतार हैं। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि ग्यारह रुद्रों में से प्रत्येक में भगवान शिव का ग्यारहवाँ भाग रहता ही रहता हो, ऐसी बात नहीं हैं, क्योंकि रुद्र तो एक, अखण्ड एवं अविभाज्य हैं- 'एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः।' (श्वेताश्वतरोपनिषद ३/२) अर्थात् 'रुद्र एक ही है। अतः ब्रह्मविद्गण दूसरे की अपेक्षा नहीं करते।' तात्पर्य यह कि हनुमानजी भगवान शिव के ग्यारहवें भाग हों, ऐसी बात नहीं, अपितु वे साक्षात् शंकर ही हैं। इसी प्रकार नन्दी आदि भी हैं। भगवान शिव ने तो विश्व का कल्याण करने के लिए, भगवान की सेवा का उदाहरण, उच्च आदर्श स्थापित करने के लिए स्वयं हनुमान् या नन्दीरूप धारण किया- 'ॐ यो ह वै श्री रामचन्द्रः स भगवान् ये चैकादश रुद्रा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वे नमो नमः।' (रामोत्तर तापनीयोपनिषद-३३) अर्थात् 'जो सुप्रसिद्ध श्रीराम हैं, वे अवश्य ही भगवान हैं तथा जो ग्यारह रुद्र और भू आदि तीनों लोक हैं, वे भी उन्हीं के स्वरूप हैं। उन भगवान श्रीराम को मेरा बारम्बार नमस्कार है।'

ब्रह्माजी के उपर्युक्त नमस्कारात्मक कथन में ग्यारहवें रुद्र श्रीहनुमान का श्रीराम के स्वरूपभूत तत्त्व के रूप में अंकन किया गया है। श्रीहनुमान के स्वरूप-तत्त्व की मर्यादा यही है कि वे श्रीराम से सर्वथा अभिन्न हैं। श्रीराम और शिव की अभिन्नता का प्रतिपादन शास्त्रों में वर्णित है। 'ग्यारहवें रुद्र हनुमान के सम्पूर्णस्वरूप शिव का वाचक 'प्रणव' है। ॐकार श्रीराम है।' ऐसा उपनिषदों में कथन है। तात्पर्य यह कि श्रीशिव, श्रीराम और ग्यारहवें रुद श्रीहनुमान, स्वरूप की दृष्टि से तत्त्वतः अभिन्न हैं और ॐकार तीनों का वाचक है।

उपर्युक्त स्वरूपगत् अभिन्नता का स्पष्टीकरण श्रीहनुमान्नाटक में भी प्राप्त होता है। उसमें कहा गया है- 'सम्प्राप्तः पवनात्मजः पदुमहः श्रीकण्ठवैकुण्ठयोः।' (हनुमन्नाटक-१३/३३) अर्थात् 'श्रीमहादेव और श्रीराम के परम तेजःस्वरूप पवनकुमार हनुमानजी आ गये।'

तारकब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट करते हुए याज्ञवल्क्य ने तारकमन्त्र 'ॐ' के निराकरण में रुद्र के रूप पर हनुमत्परक विचार प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा है-'मकाराक्षरसम्भूतः शिवस्तु हनुमान् स्मृतः।'- (तारसारापनिषद-२/३)। अर्थात् 'मकार तृतीय अक्षर शिव हनुमान हैं।' आगे भी गहा है-'ॐ यो ह वै श्री परमात्मा नारायणः स भगवान् मकारावाच्यः शिवस्वरूपो हनुमान् भूर्भुवः सुवस्तमै वै नमो नमः।' (वही, ३/३) अर्थात् 'परब्रह्म नारायण ही शिवरूप हनुमान हैं।'

जिस दिन सूर्यवंश में राजा दशरथ के पुत्र रूप में ब्रह्म के अंशसहित श्रीराम का नरावतार हुआ, उसी प्रकार माता अंजनी के गर्भ से वानरावतार भी हुआ। आनन्द रामायण के सर्ग-एक, सारकाण्ड में श्लोक-९६-१०९ तथा सर्ग-१३ के श्लोक-१५५-१६३ तक में यह कथा वर्णित है कि महाराज दशरथ के यहाँ पुत्रेष्टि-यज्ञ की पूर्णाहुति पर स्वयं अग्निदेव स्वर्णथाल में चरु (खीर) लेकर प्रकट हुए। राजा दशरथ द्वारा अपनी रानियों कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा के मध्य चरु-वितरण के समय रानी कैकेयी के चरु में से कुछ चरु (खीर) एक गृद्धिनी झपट्टा मारकर ले भागी और उड़ते हुए अंजनगिरी पर्वत पर पहुँची। वहाँ ऋतुस्नाता अंजना भवन के बाहर अपने बाल सुखा रही थीं। उस गृद्धिनी, जो कि सुर्वचला नामक अप्सरा थी और ब्रह्मा के शापवश गृद्धिनी हो गयी थी, ने शापमुक्त होने के लिए उक्त चरु अंजना की गोद में गिरा दिया। उसी को अंजना ने खा लिया, जिससे उसके गर्भ से चैत्र शुक्ल पक्ष एकादशी को मघ नक्षत्र में हनुमानजी का जन्म हुआ। कुछ विद्वान हनुमानजी का जन्म चैत्र सुदी पूर्णिमा को मानते हैं।

इस दृष्टि से हनुमानजी परात्पर ब्रह्म के अवतार, राम लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के समान ही हैं। अर्थात् जो श्रीराम हैं, वही हनुमानजी भी हैं। एक अन्य स्थान पर कहा भी गया है कि एक बार श्रीराम के दरबार में हनुमानजी आये।

श्रीराम ने उनसे विनोदपूर्वक पूछा-'तू कौन है? इस पर श्रीहनुमान ने कहा-

देहदृष्ट्या तु दासोऽस्मि जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
वस्तुतस्तु त्वमेवाहमिति में निश्चिता मतिः।।

'प्रभो! देहदृष्टि से तो मैं आपका दास हूँ, जीवदृष्टि के विचार से आपका (ब्रह्मा का) अंश हूँ और तत्त्व दृष्टि (यथार्थतः) से देखने पर, वस्तुतः जो आप (ब्रह्म) हैं, वही (ब्रह्म) मैं हूँ (अर्थात् आपमें और मुझमें कोई भेद नहीं)-ऐसी मेरी निश्चित धारणा है।'

आनन्द रामायण में श्रीहनुमानजी की जन्मतिथि की उपयुक्तता श्रीराम जन्मतिथि व मास से मेल खाती है, क्योंकि चरु तो एक ही दिन प्रकट हुआ था। रानियों ने तथा अंजना ने समय के कुछ अन्तर से उसे खाया। नवमी और एकादशी में बहुत अन्तराल नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्रीहनुमान परात्परतत्त्व हैं। उनका शिव की भाँति राम से अभिन्न व्यक्तित्व है। वे केवल मनुष्यों के समक्ष दास्यभक्ति,-सेवाध र्म के आदर्श तथा चारित्रिक गुणों के विकास के लिए ही अलग से दिखायी देते हैं, क्योंकि भवसागर को पार करने के लिए सेवक-सेव्य-भाव आवश्यक है। श्रीहनुमान की पूजा उपासना करने से ही श्रीशिव और श्रीराम दोनों की उपासना स्वतः सिद्ध हो जाती है। १७०

श्रीहनुमानजी का 'ॐ'कार-रूप

देवताओं में परोक्ष-वृत्तिद्वारा ही मानव या कोई साधारण जीव दिव्य एवं सात्त्विक सम्पत्ति प्राप्त कर सकता है। सिद्धान्त है कि 'परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः।' (बृ. उ. ४। २। २) 'यत्परोक्षप्रियो देवो भगवान् विश्वभावनः।' (श्रीमद्भागवत ४ । २८ । ६५)

जिस प्रकार निराकार ब्रह्मका वाचक साकाररूप के व्याजसे 'ॐ'कार है, उसी प्रकार श्रीहनुमानजी निजनाम की परोक्षवृत्तिद्वारा ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक 'ॐ' कारके प्रतीक हैं। सम्भवतः श्रीतुलसीदासजीने इस गूढ़भावको ही हृदय में रखकर 'अंजनिपुत्र पवनसुत नामा' -यह स्तुति-विशेषण कहा हो। पुत्र पिताकी आत्मा

है-'आत्मा वै जायते पुत्रः' तो पवनसुत पवनसे भिन्न नहीं और पवन प्राण-संज्ञावान् वायु से अभिन्न है तो 'ॐ' प्राण से भिन्न नहीं, क्योंकि प्राणोपासना समफला है।

'आगाता स वै कामनां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम्।' (छा. उ. १ । २ । १०)

उद्गीथ ॐकार ही है। छा. उ. १। १० के शांकरभाष्य- में- 'न ओंकारास्य कर्मांगंत्वमात्रविज्ञानमेव'.... से उपक्रम कर 'प्रकृतस्य उद्गीथस्य उद्गीथाख्यस्याक्षरस्याथ व्याख्यानं भवति' -तक का पाठ ॐकार की उद्गीथ-संज्ञा में प्रमाण है।

तान्त्रिक 'वर्णबीजकोश' के सिद्धान्त के अनुसार भी हनुमानजी और ॐकार में धर्मसाम्यता सुस्पष्ट है। जैसा कि पहले कहा चुका है-'ह' आकाशबीज है, जो आजंनेय (हनुमानजी)- का नामाक्षर विष्णुतत्त्व का द्योतक है। कोशशास्त्र में आकाश द्रव्य को 'विष्णुपदम्' कहा गया है। यथा- 'वियद् विष्णुपदं वा तु पुंस्याकाशविहायसी' इत्यमरः। इस प्रकार नाम का प्रथम अक्षर 'ह'कार विष्णुतत्त्व सिद्ध हुआ, जो ओंकार (अ+उ+म्) के प्रथम भाग अकार से गृहीत है- 'अकारो वासुदेवः स्यात्।' 'नु' हनुमान के नाम का दूसरा अक्षर है, इसमें जो 'उ'कार है, वह शिवतत्त्वका द्योतक है। 'मेदिनीकोश' के 'उ सम्बोधनरोषोक्त्योः' -इस वचन के अनुसार रुद्ररूप शिव ही सिद्ध होते हैं। श्रीमद्भागवत पारमहंस्यसंहिता में तो स्पष्ट ही 'रुद्रः क्रोधसमुद्भवः कहकर कार्य-कारण की अभिन्नता के आधार पर रोषको रुद्र और रुद्र को रोष सिद्ध कर दिया गया है। इस प्रकार नाम का द्वितीय अक्षर 'नु' शिवतत्त्व सिद्ध हुआ। 'मान्' नाम के तृतीय भाग में जो 'म' एक भाग है, (कचिदेकदेशोऽपि गृह्यते) यह बिन्दुनाद-शून्य अनुस्वार का बोधक है। तन्त्र-ग्रन्थ 'वर्णबीज-प्रकाश-कोश' के अनुसार 'म'कार वर्ण उपस्थ का बोधक है। उपस्थ-अंग के देवता प्रजापति ब्रह्मा हैं। इसलिये 'म' कारको ब्रह्मा-तत्त्व भी कहा जा सकता है।

इस प्रकार समष्टिशक्तिरूप से ॐ ब्रह्मा, विष्णु, महेश-इन तीनों ही आदि कारण-तत्त्वोंका भी प्रतीक है। निष्कर्ष यह हुआ कि 'ह-अ, न्-उ, म-त्-हनुमान-'ओम्' एकतत्त्व सिद्ध हुए।

इस प्रकार हनुमानजी की उपासना साक्षात् ऊँतत्त्वोपासना होने से परब्रह्म की

ही उपासना हुई।

जन्म-मृत्यु तथा सांसारिक वासनाओं की मूलभूत माया का विनाश ब्रह्मोपासना के बिना सम्भव नहीं। उस अचिन्त्य अवाच्य ब्रह्म का ही तो स्वरूप ॐकार है। इसीको दर्शनशास्त्र में प्रणव नाम से कहा गया है-'तस्य वाचकः प्रणवः।' 'तज्जपस्तदर्थभावनम्।' (योगदर्शन अ. १, सूत्र २७-२८)

शिवपुराण के १७वें अध्याय में प्रणव का निर्वचन करते हुए बताया गया है कि उक्त शब्द में दो भाग हैं-एक 'प्र' और दूसरा 'नव'। 'प्र' का अर्थ है-कर्मक्षयपूर्वक, 'नव' का अर्थ है- नूतन ज्ञान देने वाला। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' आदि श्रुति-वाक्यों में ज्ञान को ही तो ब्रह्म कहा है। अथवा 'प्र' का भाव है-प्रकृति से पैदा होने वाला संसाररूपी महासागर और 'नव' का भाव है- भवसागर से पार लगाने वाली नाव।

तीसरा एक और भी भाव-निर्देश किया गया है-'प्र' प्रकर्षण, 'न' अर्थात् 'वः' युस्मान् मोक्षम्-इति प्रणवः अर्थात् प्रणव अपने उपासकोंको मोक्षतक पहुँचा देने वाला है, तो श्रीहनुमानजी ही कहाँ कम (न्यून) हैं?

उक्त प्रणव के दो भेद हैं- सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म ओंकार तो एकाक्षर के रूप में और स्थूल ओंकार 'नमः शिवाय'-इस पञ्चाक्षर मन्त्र के रूप में है। श्रीहनुमानजी को शिव-अंश सर्वसम्मत से माना गया है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने भी हनुमानजी के स्वरूप में यह झलक दिखायी है- सूक्ष्मरूप धरि सियहि दिखावा। तथा भीमरूप धरि असुर संहारे। (भीम-स्थूल) अस्तु।

इसीको दीर्घ और ह्रस्व प्रणव के रूप से भी निरुक्त किया गया है। दीर्घ प्रणव में अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, शब्द, काल और कला-ये आठ शाल हैं, जो योगीजनों द्वारा ही साध्य हैं।

इस प्रणव के अ-शिव, उ-शक्ति, म्-दोनों की एकता-ये तीन तत्त्व हैं। यह प्रवृत्तिमार्ग युक्त होने के लिये जीव-साधारण का जाप्य है।

इस प्रकार उक्त रहस्य का प्रतिबिम्ब श्रीहनुमानजी में स्पष्ट झलकता है,

अर्थात् माया (संसार) की निवृत्ति ब्रह्मज्ञान से होती है। यह भाव ईशावास्योपनिषद् (१२) में कितने स्पष्ट रूप में दर्शाया गया है- 'ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्या, रताः ।'

दूसरी ओर जैसे उक्त सिद्धान्त से ब्रह्म का वाचक ॐ माया का संहार करके संसार-बन्धन से मुक्त करता है, उसी प्रकार श्रीहनुमानजी महाराज (जो ॐकारकी साक्षात् मूर्ति हैं) लंकाराक्षसीरूपिणी माया पर विजय पाकर परमज्ञानस्वरूपिणी ब्रह्मरूपा चिद्रूपाशक्ति श्रीसीताजी को प्राप्त करते हैं और श्रीराम को महान् संकट से बचाते हैं। इस विवेचन से यह सिद्ध हो गया कि श्रीहनुमान और ओम् एक ही तत्व हैं।

श्रीहनुमानजी का परमयोगी स्वरूप

सीता माता की खोज में परम योगी श्रीहनुमान परम योगी की अन्तर्यात्रा के एक यात्री हैं और सीताजी उस यात्रा का अन्तिम लक्ष्य। यदि हनुमानजी 'साधक' हैं तो सीताजी 'साध्य'। यदि हनुमान 'योगी' हैं तो सीता योगी का लक्ष्य 'योग' हैं। अन्तःपथ के यात्री हनुमान का पाथेय लेकर वैराग्य द्वारा शान्ति-शोध में प्रवृत्त होना ही परम योगी हनुमानजी द्वारा सीता-शोध किया जाना है।

'वैराग्य' के बिना कर्म, ज्ञान एवं उपासना-तीनों अपूर्ण हैं। वैराग्य ही कर्म को भक्ति के पास, भक्ति को ज्ञान के पास एवं ज्ञान को शान्ति के पास पहुँचता है। हनुमान वैराग्य-साधना के प्रतीक हैं एवं वैराग्यस्वरूप हैं-
प्रबल वैराग्य दारुन प्रभंजन तनय, विषम-वन भवनमिव धूमकेतू। (विनयपत्रिका ५८/८) तथा जयति धर्मार्थ-कामापवर्गद विभो, ब्रह्मलोकादि-वैभव-विरागी। (विनयपत्रिका २६/२)

''वैराग्य' क्या है? महर्षि पतंजलि वैराग्य की मीमांसा करते हुए कहते हैं-"दृष्टान श्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्। (योग-दर्शन १/१५)-दृष्ट एवं आनुश्रविक भोगों से वितृष्ण चित्त का पूर्ण वशीकरण किया जाना ही 'वैराग्य' है। 'गुणों से अनासक्ति ही 'वैराग्य' है। "ज्ञान की चरम सीमा ही 'वैराग्य' है-ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्। (योगभाष्य १/१६)। इसके ठीक पश्चात् ही कैवल्य की सम्प्राप्ति होती है-एतस्यैव हि नान्तरीयकं कैवल्यमिति।' (योगभाष्य १/१६)। श्रीहनुमानजी को परम योगी-विरागी होने के कारण ही 'ज्ञानिनामग्रगण्यम्' कहा

गया है; क्योंकि ज्ञान की पराकाष्ठा 'वैराग्य' है। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि' तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्। (योग.१/१६)-प्रकृति पुरुषान्यताख्याति से गुण-वैतृष्ण्यका आविर्भाव होना ही 'पर वैराग्य' है।"

योगियों का परम प्राप्तव्य 'योग है। इस योग की प्राप्ति के दो साधन हैं- (१) अभ्यास और (२) वैराग्य। अभ्यास और वैराग्य से चित्तवृत्ति-निरोध की प्राप्ति होती है- 'अभ्यांसवैराग्यांभ्यां तन्निरोधः' (यो. सू. १/१२) तथा 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।' (यो. सू. १/२)।

योग का मूल वैराग्य है। वैराग्य ही योग का परम साधन है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में जिन्हें ब्रह्म से एकीभाव प्राप्त करने का अधिकारी बताया है, उनमें वैराग्य-संपन्न व्यक्ति की भी गणना की है- 'ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।। (१८/५२) वैराग्य का लक्ष्य शांति है। उसका मार्ग ज्ञान है। उसका कर्तव्य-कर्म शोध है। समस्त प्राणियों का एकमात्र लक्ष्य 'शांति' है। श्रीरामोपाख्यान में सीता ही शांति है। जहाँ शान्ति होगी, वहीं पूर्णता होगी और जहाँ पूर्णता होगी, वहीं एकरस, अखंड एवं शाश्वतिरेक आनन्द होगा। अतः शांति समस्त नैसर्गिक एवं प्रतिक्षण-प्रवृत्त व्यापार है, क्योंकि उसके बिना सुख कहाँ-

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।।
(गीता २/६६)

शान्तिरूपिणी सीता जब जनकपुरी में महाराज जनक के यहाँ अवतरित हुई, तब उनके प्राप्त्यर्थ श्रीराम को अनामन्त्रित होने पर भी पद-यात्रा करनी पड़ी। उन्हें अपनी शान्तिस्वरूपा सीता के लिये 'भव-चाप' तोड़ना पड़ा-'भंजेउ राम आपु भव चापू।।' भव-चाप को तोड़े बिना ब्रह्म को भी शान्ति नहीं मिली। भव-समुद्र को लाँघे बिना हनुमानजी को भी सीतारूपी शान्ति नहीं मिली।

प्रवृत्ति मार्ग स्वरूप लंका में मोह-रूपी राजा रावण राज्य किया करता है। वही शान्ति का अपहरण करने वाला है। समस्त संसार मोह-निशा में सोता है। किन्तु योगी इसमें भी जागता रहता है और अपनी अन्तर्यात्रा में प्रवृत्त रहता है-

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।।
एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

(मानस २/९२/२-३)

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्चतो मुने।।

(गीता २/६९)

श्रीहनुमान सीता-शोध के लिये इसी निशा में यात्रा करते हैं; क्योंकि योगी के लिये संसार की रात्रि ही दिन है एवं संसार का दिन ही रात्रि है।

परमयोगी की यात्रा गोपनीय होती है; क्योंकि वह वैराग्य स्वरूप होने के कारण आत्मविज्ञापन नहीं करना चाहता; कारण, यह योग-मार्ग के लिये प्रत्यूह है। इसीलिये हनुमानजी रात्रि में यात्रा करते हैं-'अति लघु रूप धरौं निशि नगर करौं पइसार।।' हनुमानजी का सीता-शोध-हेतु रात्रि में यात्रा करना, साधक के लिये अन्तर्साधना को पूर्णतया गोपनीय रखना एवं 'जग-जामिनी' में सदा जाग्रत् रहने का संकेत है। तुलसीदासजी भी यही संकेत करते हैं-

जागु, जागु, जीव जड़, जो है जग-जामिनी।
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी।।

(विनयपत्रिका ७३/१)

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा।।

(मानस २/९२/३-४)

प्राकृत पुरुषों की बात कौन कहे, स्वतः ब्रह्म श्रीराम को भी अपहृत शान्ति-सीता के लिये विरह-विदग्ध स्वर में विलाप करना पड़ा- 'हा गुन खानि जानकी सीता।' इत्यादि।

ज्ञानियों में अग्रणी एवं सर्वोच्च योगी महाराज जनक को शान्ति के शोध के लिये क्लिष्ट-कर्म (हल-चालन) करना पड़ा। शान्ति राज-शोध में नहीं मिली, अतः घर के बाहरी क्षेत्र (खेत) में उन्हें हल चलाना पड़ा। भूतत्व (मूलाधारचक्र) में स्थित सुषुप्ता कुण्डलिनी का जागरण करना ही भूखण्ड में हल चलाना है। जनक द्वारा हल चलाया जाना इसी मूलाधार-चक्र-वेधन का संकेत है। महाराज जनक ने हल-क्रिया से सीता की-शान्ति-रूपिणी सीता की- पुत्री रूप में प्राप्ति की। जीव बिना ब्रह्म के रह सकता है, किन्तु बिना शन्ति के नहीं। कौसल्याम्बाने

कहा है-

'जौं सिय भवन रहे कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा।।'

(मानस २/५९/७)

इसी प्रकार राजा दशरथ ने भी कहा है-

एहि विधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होई प्रान अवलंबा।।'

बिना शान्ति-सीता के महाराज दशरथ का मर्मान्तक मरण हुआ। जिस देश, समाज एवं राष्ट्र की शान्ति नष्ट हो जाय, भला, वह कब तक जीवित रह सकता है?

ब्रह्म का परम भक्त कौन है? जो शान्ति का शोधक है। शान्ति का शोधक कौन? शक्तिमान् श्रीहनुमान। श्रीहनुमान परम योगी हैं। योगी का कर्म मिलाना है।

सीता और श्रीराम को किसने मिलाया? सुग्रीव और श्रीराम को किसने मिलाया? विभीषण और श्रीराम को किसने मिलाया? लक्ष्मण को जीवन-दान देकर श्रीराम से किसने मिलाया? विरह-वारिधि में डूबते हुए भरत को श्रीराम से किसने मिलाया? -इन सभी को मिलाया परम योगिराज हनुमानजी ने। येही योगिराज-ब्रह्मर्षि योगिराज देवरहाबाबा हुए।

योगी संसारार्णव का अतिक्रमण करके ही कैवल्यस्वरूप लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है। इसी प्रकार श्रीहनुमान सीता-शोध-हेतु समुद्र का अतिक्रमण करते हैं। प्रत्येक साधक को शान्तिप्राप्त्यर्थ सर्वप्रथम भवसिन्धु का संतरण करना पड़ता है, अन्यथा वह अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। श्रीहनुमान का समुद्रोल्लंघन परमयोगी की इसी आध्यात्मिक अन्तर्यात्रा का प्रतीक है। संसार-सिन्धु का संतरण करने वाला ही श्रीराम का कार्य पूर्ण कर सकता है-

- जो नाघइ सत जोजन सागर।
  करइ सो राज काज मति आगर।।
- राम काज लगि तव अवतारा।.......।।
- राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम।।

विभीषण का भी श्रीराम से तभी मिलन हो पाता है जब वे भव-सिन्धु को पार कर लेते है-

एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा।

आयउ सपदि सिन्धु एहिपारा।।

अध्यात्म-जगत् की कोई भी अन्तर्यात्रा हो, किन्तु भगवान् को आगे किये बिना उसमें सफलता नहीं मिल पाती। इसीलिये सागर-संतरण के पूर्व श्रीहनुमान श्रीरघुनाथजी को याद करते हैं-

- यह कहि नाइ सबहिं कहुं माँथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा।।
- बार-बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवन तनय बल भारी।।

सीताजी भी हनुमान को इसीके अनुकूल आदेश देती हैं- रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु।।

केवल वैराग्य के द्वारा ही सीता-शोध सम्भव हो पाया। बिना नेत्र के किसी भी वस्तु के दर्शन नहीं हो पाते। ज्ञान एवं वैराग्य ही दो नेत्र हैं, अतः ज्ञान वैराग्य के द्वारा ही सीता का शोध हो पाया- परमशान्तिरूप पद के प्राप्त्यर्थ ही दो नेत्र हैं-(१) ज्ञान और (२) वैराग्य। शान्ति की गंवेषणा के तीन मार्ग हैं- (१) राग, (२) विराग और (३) अनुराग। (१) राग है-मोहजन्य आसक्ति, (२) विराग है-अनासक्ति और (३) अनुराग है- परमात्म-प्रेम। (१) शान्ति की प्राप्ति के लिये रावण की अनुसंधित्सा का मार्ग है-राजमार्ग। (२) शान्ति की प्राप्ति के लिये श्रीराम की अनुसंधित्सा का मार्ग है- अनुरागमार्ग और (३) शान्ति की प्राप्ति के लिये परमयोगी श्रीहनुमान की अनुसंधित्सा का मार्ग है-विरागमार्ग। जब सीताजी श्रीराम को एवं पार्वतीजी श्रीशिव को चाहती हैं तो वे अनुराग-मार्ग का आत्मीकरण करती हैं।

पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बरु भागा।
सती भरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा।

शान्ति-प्राप्ति के फल भी भिन्न-भिन्न होते हैं- (१) शान्ति-प्राप्ति से जनक को प्रकाश-प्राप्ति, (२) शान्ति प्राप्ति से श्रीराम को विकास-प्राप्ति और (३) शान्तिप्राप्ति से रावण को विनाश-प्राप्ति।

शान्ति के अनुसंधित्सु रावण का विनाश क्यों? वह इसलिये कि वह शान्ति का पुजारी नहीं, प्रत्युत उसका अपहर्ता है। वह जनकपुर में उसी शान्ति के प्राप्त्यर्थ शास्त्रविहीत विधि से प्रयास करने पर पराजित होता है, अतः उसका बलात् अपहरण करता है। शान्ति-प्राप्ति का उसका मार्ग छल-छद्मपूर्ण है। शोध का यह मार्ग शास्त्रागत नहीं है-

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

(गीता १६/२३)

इसीलिये भगवान् श्रीराम कहते हैं-

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

शान्ति की प्राप्ति-हेतु कपट एवं बलात् अपहरण-परायण होने का दुष्परिणाम ही है- रावण का सर्वनाश। रावण की दृष्टि में शान्ति पूज्या नहीं, भोग्या है। इसीलिये उसका विनाश होता है।

साधक भी आध्यात्मिक सिद्धि को भोग्या नहीं, पूज्या मानकर ग्रहण करे, अन्यथा सिद्धि-विलोप एवं साधक का विनाश निश्चित ही है।

शान्ति अपहरण का विषय नहीं, साधना का विषय है। परमात्मशून्य जड़-समाधि में भी शान्ति की प्राप्ति होती है, किन्तु वह शान्ति देखने में शान्ति होते हुए भी वस्तुतः अशान्तमय रहती है। सीता श्रीराम की शान्ति हैं-

भट जम नियम सैल रजधानी। सान्ति सुमति सुचि सुंदर रानी।।

वे अशोक के नीचे बैठी रहने पर भी अशोक इसीलिये हैं, क्योंकि उनके सामने उनके आत्मस्वरूप श्रीराम नहीं हैं। वे कहती हैं-

सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हर मम सोका।।

यह इसी रहस्य का उद्घाटन है कि परमात्मशून्य जड़-समाधि में शान्ति प्राप्ति होने पर भी साधक शोक से मुक्त नहीं हो सकता। प्रत्येक साधना में परमात्मा की पुरस्सरता अपरिहार्य है-

'शान्ति' ज्ञान-वैराग्य की जननी है। परा-भक्ति ही शान्ति है और यही सीता है। भक्ति कहती है-

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ।
ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ।।

(पाद्मीय श्रीमद्भागवत् मा.१/४५)

यदि भगवती भक्ति (शान्ति-सीता) के ज्ञान एवं वैराग्य पुत्र हैं, तब तो हनुमान ज्ञान-वैराग्य दोनों ही होने के कारण शान्तिस्वरूपा-भक्तिस्वरूपा सीताजी के साक्षात् पुत्र हैं, क्योंकि उनके विषय में स्पष्टतः कहा गया है- (१) प्रनवउँ पवन

कुमार खल बन पावक ग्यानघन। और (२) प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजनतनय। इसीलिये तो श्रीसीताजी हनुमानजी को 'पुत्र' कहकर सम्बोधित करती हैं-'अजर अमर गुन निधि सुत होहू।' और हनुमानजी भी सीताजी को 'माता' कहकर सम्बोधित करते हैं-'राम दूत मैं मातु जानकी।'

साधक को शान्ति की प्राप्ति के लिये वैराग्य का मार्ग ग्रहण करते हुए मातृभावना से अग्रसर-होना चाहिये। तभी वियुक्ताकुला को वियुक्त आकुल के साथ सामरस्य कराने में-वियुक्त शान्तिस्वरूप सीता को वियुक्त परब्रह्म श्रीराम से मिलाने में साधक को साफल्य मिल सकता है, अन्यथा नहीं। यही है उपर्युक्त कथांश का रहस्य।

विरागी साधक की परीक्षा की कसौटी उसका गुणातीत होना है। परब्रह्म स्वयं गुणातीत है-'गुनातीत सचराचर स्वामी', इसीलिये उसके साधक को भी गुणातीत होना चाहिये-'निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।' (गीता २/४५)

श्रीहनुमानजी गुणातीत हैं। अतः गुणासंकुल पदार्थों से विरक्त हैं। यही कारण है कि जब सीताजी यह वरदान देती हैं- "आसिस दीन्ह राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना।। अजर अमर गुन निधि सुत होहूँ।'-तब हनुमानजी को कोई प्रसन्नता नहीं होती। किन्तु जब वे यह बरदान देती हैं-

'करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।।'
करहुँ कृपाप्रभु अस सुनि काना।
निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।।

-तब वे हर्षमग्न हो उठते हैं।

ठीक भी है, यथार्थ साधक की कसौटी उसकी ऐहिक सिद्धियां नहीं हैं, उसकी अनुसंधित्सा है- भगवत्कृपा। उसकी सिद्धि की कसौटी है- भगवत्प्रेम की प्रगाढ़ता।

परमशान्ति का शोध एवं उसकी प्रत्यभिज्ञा केवल वैराग्य ही कर पाता है। शक्ति एवं शक्तिमान के वियोग को संयोग में परिवर्तित करने वाला एकमात्र साध ान है- भगवत्प्रेम पुरस्सर वैराग्य। शक्तिमान् परब्रह्म (श्रीराम) अपनी वियुक्ता शक्ति (सीता) के शोध के लिये केवल परमयोगी के वैराग्य (हनुमान) को दूत बनाकर भेजते हैं। ब्रह्म अपनी वियुक्ता शक्ति के (सम्मिलन के) आश्वासनार्थ एवं वैराग्य पर विश्वास करने के लिये अपनी मुद्रिका केवल वैराग्य को ही देते हैं।

स्पष्ट है कि वैराग्य को भी बिना भगवत्कृपा के शान्ति प्राप्ति हो पाना सम्भव नहीं। यदि शान्ति प्राप्त हो भी जाये तो शान्ति को वैराग्य पर विश्वास नहीं होगा।

वैराग्य तभी तक अपने उद्यमों में सक्षम है, जब तक ब्रह्म साधक को अपनी कृपारूपिणी प्रत्यभिज्ञा (मुद्रिका) प्रदान नहीं कर देता। अन्यथा शान्ति का साक्षात्कार हो जाने पर भी साधक को शान्ति अशान्त दिखायी पड़ती है और शान्ति साधक के विरुद्ध कुशंकाएँ करने के कारण उस पर विश्वास नहीं करती। मुद्रिका-प्राप्ति ही साधक और साध्य के यथार्थ साक्षात्कार का वास्तविक माध्यम है।

साधन-मार्ग में मान का त्याग होना प्रथम संविदा है। हनुमान का अर्थ है-'जिसका मान नष्ट हो चुका हो।' आत्माभिमान साधना-जगत् का दारुण प्रत्यूह है। यही कारण है कि हनुमान बार-बार लघु रूप धारण करते हैं-

- सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा।
  अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।।
- अति लघु रूप धरौ निसि नगर करौ पइसार।।
- अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना।।
- मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।।

शान्ति की गवेषणा के प्रकारान्तर से तीन मार्ग और हैं-(१) कर्म-मार्ग, (२) भक्ति-मार्ग और (३) ज्ञान-मार्ग। वैराग्य ज्ञान-मार्ग से गवेषणा करता है; अतः परमयोगी हनुमानजी आकाशमार्ग से यात्रा करते हैं। ज्ञान, निरालम्ब है और आकाश भी निरालम्ब है। अतः आकाशमार्ग 'ज्ञानमार्ग' का प्रतीक है। समुद्र-संतरण के बिना लक्ष्य-प्राप्ति असम्भव हैं-

जो नाघइ सत जोजन सागर। करइ सो राम काम मति आगर।।

साधक के लिये राम-काज क्या है? शान्ति सीता का शोध।

आध्यात्मिक अन्तर्यात्रा के मार्ग में अनेक बाधाएँ आती हैं। परमयोगी श्रीहनुमान की यात्रा में आने वाले प्रत्यूह ही उन बाधाओं के प्रतीक हैं। ये बाधाएँ हैं-(१) सत्वगुण माया की बाधा-सुरसा, (२) रजोगुणी माया की बाधा-लंकिनी और (३) तमोगुणी माया की बाधा-सिंहिका। ये तीनों नारियाँ ही त्रिगुणात्मिका माया के तीन रूप हैं। परमयोगी हनुमानजी को सीता शोध में तीनों बाधाएं नारी के द्वारा हुईं। अतः साधक को मायारूपी नारी से सदैव सावधान रहना चाहिये।

श्रीहनुमानजी ने सुरसा को प्रणाम करके अपनी रक्षा की, रजोगुणी लंकिनी को अध्मृता करके छोड़ दिया तथा तमोगुणी सिंहिका का प्रणान्त कर दिया। इसी प्रकार साधक को तीनों गुणों का यथोचित उपयोग करना चाहिये, तभी वह प्रत्यूहों के पार जाकर अपनी रक्षा कर पाता है।

परमयोगी श्रीहनुमानजी ने लंका में पहुंचने पर सीता की खोज करने के निमित्त कनक-भवन का शोध किया। कनक-भवन का त्याग करने के बाद भी कनक-मृग पर मुग्ध सीताजी कनक-नगरी लंका में बंदिनी बन गयीं। इसीलिये हनुमानजी ने उन्हें कनक-भवन में खोजा। उन्होंने विचार किया कि सीताजी को कनक में शान्ति थी, अतः वे शान्ति को कनक में खोजने लगे। कनकनगरी में सीताजी (शान्ति) नहीं मिलीं। वस्तुतः स्वर्ण में शान्ति नहीं, वहाँ शान्ति की भ्रान्ति मात्र है। यदि स्वर्ण में शान्ति होती तो स्वर्णपुर के स्वर्णशोध के स्वामी राक्षसराज रावण को लंका में ही शान्ति मिल गयी होती; किन्तु उसे शान्ति नहीं मिली। श्रीहनुमानजी ने कनकनगरी स्थित कनक भवन के प्रत्येक खण्ड में सीताजी का शोध किया-'मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा।' किन्तु 'मंदिर मंहु न दीख बैदेही।।' हनुमानजी ने सोचा कि यहाँ तो सब 'सोने' वाले हैं; अतः किसी जागने वाले से सीताजी का पता पूछना चाहिये-

मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा।।
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा।।

शान्ति की प्राप्ति की युक्ति किसी भगवद्भक्त के पास ही होती है, अतः शान्ति-शोधक वैराग्य (हनुमान) को उसे पाने की युक्ति मिल गयी-

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई।
चलेउ पवनसुत बिदा कराई।।'......।
बन अशोक सीता रह जहवाँ।।

उस अशोक-वन में आकर हनुमानजी ने देखा कि 'सीता बैठि सोच रत अहई।'- उस अशोक-वन में भी सीता अशोक नहीं, स-शोक हैं।

- सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।।
- कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
  मनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ।।

अशोक ने वस्तुतः ऐसा अंगार गिरा दिया, जिसमें जानकीजी का समस्त शोक जलकर भस्म हो गया। जानकीजी ने कहा था- 'हे अशोक, मेरे शोक को हरकर अपने नाम को सत्य करो।' अशोक ने अपना नाम सत्य कर दिया-

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर।।
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी।

रामनाम-अंकित मुद्रिका पाकर परम अशान्त सीता को परम शान्ति मिली-

रामचन्द्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा।।

क्षणस्थायी राग-शून्यता वैराग्य नहीं है। वैराग्य तो वह है, जो कभी भी जरा-जर्जर न हो, शिथिल न हो, अपितु अमर रहे, सर्वत्र-सर्वदा तरुण रहे। सीतारूपा शान्ति ने हनुमान रूप वैराग्य से कहा-

- अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।।
- करहूँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।।

यह निर्भर प्रेम ही तो परम शान्ति है-

निर्सरीनन्द-संदोह कपि-केसरी, केसी-सुवर भुवनैक भर्ता।

सुन्दरकाण्ड के आरम्भ के मंगलाचरण में ही श्रीगोस्वामी जी ने लिखा है- 'शान्तम्', 'शाश्वतम' और 'शान्तिप्रदम्', पर शान्त वही होगा जिसे शान्ति मिली होगी। इस काण्ड में (१) शान्ति-सीता का समाचार पाकर अशान्त श्रीराम को शान्ति मिली, (२) समुद्र-तट पर बैठी हुई मरणासन्न वानरी-सेना को शान्ति मिली, (३) हनुमानजी को तो साक्षात् शान्ति देवी से वरदान पाकर परम शान्ति मिली और (४) वैराग्यपुत्र के द्वारा श्रीराम-नाम तथा श्रीराम-कथा और 'राम-नाम-अंकित अति सुन्दर' मुद्रिका पाकर शान्ति देवी को महाशान्ति मिली। अतः इस काण्ड का प्रथम मंगलाचरण 'शान्तम्' एवं 'शान्तिप्रदम्'- के शोध से आरम्भ होता है- 'शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदम्।'

वैज्ञानिक स्वरूप

भारतीय अध्यात्म के ऐश्वर्य काल में निराकार चैतन्य के निर्विकल्प और निर्विकार किन्तु नित्य और निरन्तर अदृश्यभाव की सत्ता को ही एक मात्र सत्य

●●●

स्वीकार किया गया है। दृष्टिपथ पर दिखाई पड़ने वाले स्थूल जड़ को मिथ्या, माया और मृतधर्मी माना गया। इस प्रकार का सत्य ज्ञान और ध्यान का कारण तत्व बना। ज्ञान और ध्यान को मनःशक्ति से जोड़कर तत्वेत्ताओं ने जो आत्मसाक्षात्कार किया, उसी के अनुभव वैदिक ऋचाओं में आए। ऋचाएं एक प्रकार से नाद ब्रह्म बाहिकाएं हैं जो मनोयोग से ऋषि को वहां पहुंचाती थीं जहां से उसका साक्षात्कार हुआ था, इसके लिये मन की निश्छलता ही नहीं सम्पूर्ण पर्यावरण की धवलता अपेक्षित थी जो विकारग्रस्त जड़ माया के कारण सम्भव नहीं था। ऋचाएं मंत्र कही गईं। मन से, मनन से उद्धारकारक। प्राकृतिक विकार बढ़ने से मन की मनन शक्ति के प्रभाव में न्यूनता आई जिसे दूर करने के लिए जो उपाय किए गये उन्हें तंत्र कहा गया। संकुचित हो रही मानसिक गति को तानकर, विस्तार देकर अभिक्षित गति में लाना तंत्र का उद्देश्य था जो अपनी व्यवस्थागत विकार के कारण भी सफल नहीं हो सका। तब मानव का विवेक मन को अदृश्य सत्ता से हटकर स्थूल जड़ पर प्रयोग करने लगा। इस प्रकार ज्ञान के क्षेत्र में विज्ञान का उदय हुआ। अदृश्य ब्रह्म से जड़ जगत का महत्व बढ़ा। प्रयोगों के परिणाम से यंत्र विकसित हुये जो आज का सत्य हैं। विज्ञान प्रयोगधर्मी है। वह किसी वस्तु को पकड़कर दूसरे की खोज करता है। विज्ञान की पहुंच जहां तक है उसे वैदिक साहित्य में व्यक्त शव्द से अभिहित किया गया है जो नाशवान है। अव्यक्त सत्ता पर विज्ञान की पहुंच नहीं है क्योंकि प्रयोग करने के लिये उसके समान दूसरे विकल्प की उपलब्धता नहीं है। वह अनुभवजनित ज्ञानकोष की निजी उपलब्धि है। यह भारतीय दर्शन के अध्यात्म का विषय है जिसमें सत्य का साक्षात्कार होता है जबकि पश्चिम की सांस्कृतिक ऊर्जा सत्य की खोज में व्यतीत होती है। विज्ञान अध्यात्म का विरोधी भी नहीं है। अध्यात्म के रहस्यों को पारदर्शी बनाने में विज्ञान की भूमिका का सराहनीय योगदान है। यहां पर हनुमानजी विषयक जिन अवध ारणाओं को उद्घाटित करने का प्रयास है उनको समझा पाने के उद्देश्य से अपनी मति अनुसार मंत्र से यंत्र तक की यात्रा का उल्लेख भूमिकागत सुविधा के लिये किया है।

हनुमानजी विषयक दो प्रकरण प्रमुख हैं- मसक समान रूप कपिधरी, (सुन्दरकाण्ड ३/१)। दूसरा प्रकरण है- **बारिधि पार गयऊमति धीरा** (वही २/३)।

शत योजन वारिधि का एक छलांग में पार कर जाना और उसी पर जाने की प्रक्रिया में शरीर में माप को अनिश्चित सीमा तक बढ़ा या घटा लेना भावजगत में हो रही किसी कल्पना की उड़ान नहीं है। राम-रावण युद्ध का यह कथानक साहित्य ही नहीं, इतिहास भी है। सहज प्रश्न पैदा होता है कि क्या यह सम्भव है और यदि सम्भव है तो क्या हनुमानजी ने भौतिक विज्ञान का प्रयोग किया अथवा यह अध्यात्मिक शक्ति का अतीन्द्रीय प्रयोग था। भौतिकवादी आज के युग में एक साथ सैकड़ों व्यक्ति वायुयान में बैठकर शतयोजन जलनिधि रात-दिन पार कर रहे हैं। इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं है। तब विमान का आधुनिक रूप नहीं था। पुष्पक विमान अवश्य था किन्तु वह मनयोग से संचालित था, किसी पेट्रोल या डीजल से नहीं- जैसीकि साहित्य से जानकारी मिलती है। मोटे तौर पर शरीर का छोटा या बड़ा करना सम्भव नहीं है- एन्द्रजालिक क्रियाओं-जैसे जादूगरी आदि हाथ की सफाई को छोड़कर। फिर यह कैसे सम्भव हुआ? इसके लिये भारतीय दर्शन के गूढ़ रहस्यों का मन्थन करना पड़ेगा और साथ ही साथ अद्यतन वैज्ञानिक उपलब्धियों से अनुमान लेना पड़ेगा।

हनुमानजी को 'अष्टसिधि नवनिधि के दाता' कहा गया है जिसके पास जितना होता है उससे अधिक वह नहीं दे सकता। स्पष्ट है हनुमानजी के पास आठों सिद्धियां और नवों निधियां हैं। आठों सिद्धि, नवनिधि क्या हैं? इन पर आने के पूर्व उपलब्ध साहित्य से यह देखने की आवश्यकता है कि इनके पीछे मानवीय सोच क्या है?

भारतीय चिन्तन परम्परा में यह मान्यता है कि सृष्टि के अनेक प्रकार के अनेक अविनाशी तथा विनाशवान पदार्थों में एक ही अविनाशी परमेश्वर समा रहा है। इस समझ का नाम ज्ञान है और एक ही नित्य परमेश्वर से विविध नाशवान पदार्थों की उत्पत्ति को समझ लेना विज्ञान कहलाता है। विज्ञान का धर्म प्रयोग है तथा ज्ञान का धर्म अनुभव। गीता के श्लोक १२ अध्याय ७ में गुणों के कार्यरूप, सात्विक, राजस-तामस, इन तीनों प्रकार के भावों से संसार व्याप्त है, ऐसी मान्यता है। विज्ञान पदार्थ, ताप, ऊर्जा को महत्व देता है। विज्ञान ने पदार्थ का ऊर्जा में परिवर्तन सम्भव कर दिया है। आज विद्युत का प्रयोग हम सभी करते हैं। यह विद्युत जड़ पदार्थ की आन्तरिक शक्ति है जो विशेष प्रक्रिया से निःसृत

होकर प्रकाशवान होती है। वेद की मान्यता हैं कि अग्नि की उत्पत्ति जल से हुई। यह अद्‌भुत रहस्य है। जल अग्नि को शामित करता है किन्तु अपने ही गर्भ में उसको रक्षित भी करता है। हाइड्रोलिक विद्युत इसका उदाहरण है। जल का वैज्ञानिक सूत्र H_2O (एच टू ओ) दो भाग हाइड्रोजन एक भाग आक्सीजन। अर्थात् दो भाग हाइड्रोजन गैस और एक भाग आक्सीजन गैस के समिश्रण से जल की उत्पत्ति और इसी अनुपात में जल का विघटन हो सकता है। जल को जीवन भी कहते हैं। जीवन में अस्सी प्रतिशत से अधिक जल होता है। शेष पंचमहाभूत के अन्य तत्व। यदि जीवन इतना ही सरल होता तो संगठन और विघटन की प्रक्रिया करते हुए सभी दृश्य अदृश्य होते रहते। जब इच्छा होती विराट में लीन हो जाते जब इच्छा होती सांसारिक सुख सुविधा में लौट आते। जीवन एक जटिल प्रक्रिया है जो अदृश्य से निरन्तर जुड़कर ही जागृत रहती है। जीवन का जितना बाह्‌य स्वरूप दिखाई पड़ता है उसको सम्हाले रखने के लिये उससे कई गुणा अधिक अदृश्य व्यवस्था है, जिसका हमें पता तक नहीं होता। और तो और अपने शरीर के अन्दर ही दो प्रकार की क्रियाएं सदैव गतिशील रहती हैं जिन्हें वैज्ञानिकों ने एच्छिक और अनैच्छिक क्रिया का नाम दिया है। एच्छिक क्रिया वह है जो हमारी इच्छा के अधीन है जैसे उठना, बैठना, लिखना, पढ़ना आदि। अनैच्छिक क्रिया वह है जो हमारे भीतर बिना हमारी इच्छा के अनवरत होती रहती है जैसे भोजन का पचना, मस्तिष्क का संचालन, ह्रदयगति, स्वांशक्रिया आदि। हममें से कितने लोगों को पता है कि जब हम रात्रि में सोने जाते हैं और प्रातःकाल सोकर उठते हैं उसी निद्रा की अवधि में हम पचीस लाख किलोमीटर की यात्रा कर चुके होते हैं। हम जहां सोये थे वहीं रहते हैं- क्योंकि यह जगतकाल और शून्य सापेक्ष्य है। काल और शून्य दोनों की गति विपरीत होने के कारण हमारे घर आदि की स्थिति अपरिवर्तनीय रहती है। हममें से कितनों को पता है कि हमारे सिर के ऊपर लगभग अठाइस टन भार हर समय लदा रहता है जिससे हम अनजान बने होते रहते है। अंतरिक्ष में दो सौ किलोमीटर तक हवा का दबाव है। हममें से कितनों को ज्ञात है कि हमारे कान जिस ध्वनि को सुन रहे हैं वह उस महाध्वनि का नगण्य भाग है जो पृथ्वी की गति के घर्षण से सदैव विद्यमान रहता है- जिसे तत्वज्ञों ने अनहद नाद कहा है।

यह भौतिक विज्ञान की वह जानकारी है जिसे हम न जानना चाहते तो कभी भी नहीं जान सकते। जानने के लिये हमें अपने संचित ज्ञान का ही नहीं, विज्ञान का भी आश्रय लेना पड़ेगा। जीव जगत के इसी गूढ़ रहस्य की भांति विभिन्न ऐसी असख्यों गति-विधियां हैं जिसे ज्ञान-विज्ञान अभी तक स्पर्श नहीं कर सका हैं। असंख्यों ऐसी क्रियायें हैं जो अब लुप्त प्राय: हैं जिन पर कभी मानव का अधिकार था। अध्यात्म का यह विषय भी आज अप्रयोजनीय होने के कारण अप्रांसगिक हो रहा है। आज का विज्ञान जड़ से चेतन की ओर की यात्रा पर है। पदार्थ ऊर्जा की खोज में जितनी सफलता विज्ञान को अब तक मिली है, उसमें सबसे सन्निकट जीनोम का उद्घाटन और मानवीय भाग्य लिपि पढ़ने में विज्ञान की सक्षमता उल्लेखनीय घटना है। निकट भविष्य में विज्ञान यह बताने में समर्थ हो जायेगा कि गर्भस्थ शिशु जीवन के किस मोड़ पर किस आधि-व्याधि से ग्रस्त हो सकता है और यह भी कि उसके निदान में अभीष्ट क्या है। चिरयौवन की परिकल्पना भी इससे साकार हो सकती है। यह वैज्ञानिक खोज के चमत्कारिक पहुंच के अन्दर है। यह अनुमान के लिये आधार प्रदान करता है कि जो कुछ पाया जा चुका है, उससे बहुत अधिक पाया जाना शेष है। उसी शेष का विशेष उपरोक्त प्रकरण भी है।

सृष्टि की उत्पत्ति के विज्ञान और तद्विषयक भारतीय विज्ञान में आधारभूत साम्यता है। विज्ञान विस्फोट वाद का प्रतिपादन करता है। किसी बड़े विस्फोट के कारण अब से करोड़ों वर्ष पूर्व पृथ्वी, सूर्य, चांद, तारे आदि बने और उसी महाविस्फोट के कारकतत्व विज्ञान के अनुसार तीन थे- ताप, पदार्थ और ऊर्जा। गीता और दूसरे अध्यात्मिक ग्रन्थों में भी तीन ही तत्व सत्व, तम, रज कारक तत्व बताये गये हैं। तीनों की साम्यावस्था में प्रकृति निश्चेष्ट रहती है। रज के कारण साम्यावस्था में चंचलता आती है और पुरुष के समक्ष प्रकृति अपनी माया फैलाती है। महाविस्फोट के कारक तत्व ताप, ऊर्जा और पदार्थ को ही प्रकारान्तर से ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी कहा गया है। साम्यावस्था आखिरकार टूटी क्यों, इसका उत्तर विज्ञान नहीं देता। प्रकृति विभिन्न रूपों में कैसे अस्तित्व में आ गई, इसके लिये डारविन का विकासवाद और योग्यतम के जीवित बचे रहने की क्षमता का उल्लेख किया जाता है। अध्यात्म प्रकृति-पुरुष-जीव- तीनों को अनादि, अनन्त, नित्य और

निरन्तर मानता है। पदार्थ, ताप, ऊर्जा; सत्व, तम, रज; ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रकृति के गुण हैं। पुरुष निर्गुण है। सगुण प्रकृति ही प्रत्यक्ष जगत का आधार है। चेतन-पुरुष इससे भिन्न और परे है। यही चेतन आदितत्व है। सत्य और जड़-प्रकृति का नियामक है। इसी की प्रतिच्छाया प्रत्येक जीवात्मा में विद्यमान रहती है। आत्मा प्रकृति-जीव के विकारों से मलिन होने के कारण आदितत्व से असंम्पृवत बनी रहती है। आत्मा विकारों की मलीनता के कारण जब जड़ प्रकृति में आसक्ति प्रकट करती है तब उसे प्रवृतमार्ग में होना कहा गया है। निवृतमार्ग आत्म चिन्तक की गति परम पुरुष की हो जाती है जिसके अधीन जड़ प्रकृति स्वतः आ जाती है। हनुमानजी का जो चित्रण सद्ग्रन्थों में है वह आत्मतत्व में लीन परमयोगी का है जिसके लिए काल और शून्य बाधक नहीं, साधक बन जाते हैं। यही गति नारद की भी है जो किसी समय कहीं भी पहुंचने में समर्थ है। यह योग की चरम अवस्था है। आत्मा का परमात्मा से योग! प्रकृति से पुरुष का योग! समय का शून्य से योग! दृश्य का अदृश्य से योग! विज्ञान ने योग की इस धारणा का व्यवहृत धरातल पर प्रयोग भी प्रत्यक्ष कर दिया है। टेलीविजन के समक्ष किसी नर्तकी का नर्तन उसी समय विश्व के किसी कोने में उसी रूप में देखा जा सकता है। विज्ञान की यह उपलब्धि अध्यात्म के उस दुर्गम पथ का संकेत है जिस पर योगी चलने में समर्थ होते हैं। वासना व्यसन के वसन में व्यस्त जीव के लिये यह असम्भव हो सकता है किन्तु योगी की यह परम सिद्धि है। इस सिद्धि को समझने के लिए जीव की स्थिति को समझना आवश्यक है।

सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर जीव है। स्थूल शरीर दृश्यमान है। सूक्ष्म शरीर अदृश्य किन्तु अनुभव जन्य है। कारण शरीर अनुमान पर आधारित है। स्थूल शरीर पंच महाभूतों से बना होता है। क्षिति-जल-पावक-गगन-समीर, इन पांचों महाभूतों की सहयोगी पांच कर्मेन्द्रियां हैं। इन पांचों कर्मेन्द्रियों की पहचान के लिये पांच ही ज्ञानेन्द्रियां हैं। इन ज्ञानेद्रियों को सक्रिय, सचेष्ट और सार्थक बनाए रखने के लिए इन्हीं की सूक्ष्म तरंगों से चलयित पांच ही तन्मात्राएं हैं। यह तत्व मिल कर, सांख्ययोग के अनुसार वह उपकरण है जिसे शरीर कहा जाता है। तैयार मन, अहंकार-बुद्धि में आबद्ध आत्मा की प्रतीक्षा करते हैं। अपने कर्म और संस्कार के अनुसार आत्मा प्रतीक्षारत शरीर में प्रवेश कर २४ तत्वों के साथ

परमात्मा २५वें तत्व के प्रकाश में भूमिष्ठ होकर जीव बनता है। इस प्रकार जीव, जितने तत्वों से बना है जिनकी संख्या २५ है, २३ तत्व जड़प्रकृति से आए हैं और जड़ प्रकृति में तदनुरूप समा जाते हैं। केवल सूक्ष्मशरीर मन, अहंकार, बुद्धि, कर्म-कामना-अभ्यास-संस्कार से वशीभूत शून्य में समय की प्रतीक्षा जन्म के लिये करते हैं अथवा निर्वाण को प्राप्त होकर परमात्मा में विलीन हो आत्मा एकाकार हो जाती है। मन-बुद्धि-अहंकार का शून्य में लोप हो जाता है। पांच महाभूत को छोड़कर शेष १८ तत्व सूक्ष्मशरीर में रूप के दृश्य का अदृश्य से सम्बंध सूत्र साधे रहते हैं। अध्यात्मवेत्ताओं ने २५वें तत्व परमात्मा को आत्मा का कारण शरीर कहा है। आत्मा का कारण शरीर अथवा परमात्मा से सम्पर्कित होने पर दृश्य-अदृश्य में तप-शून्य-समय, शरीर-अशरीर का भेद मिट जाता है। ऐसे योगी के लिये कुछ भी अदेय नहीं है। कुछ भी अलभ्य नहीं है। पातञ्जल योग दर्शन (४४) के अनुसार स्थूल स्वरूप सूक्ष्मा-वयार्थ जिसमें शब्द, स्पर्श, रूप वत्तंसयमात-भूतजय, अर्थात् भूतों-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश की पांच अवस्थायें- (१) स्थूलावस्था रस गन्ध सम्मिलित हैं। (२) स्वरूपावस्था अर्थात इनके लक्षण जैसे अग्नि की उष्णता, प्रकाश, वायु की गति और कम्पन, जल का गीलापन आकाश का अवकाश, (३) सूक्ष्मावस्था कारण अवस्था जिसे तन्मात्रा कहा गया है जैसे पृथ्वी का गन्ध तन्मात्रा, आकाश की शब्द तन्मात्रा, (४) अन्वय अवस्था अर्थात् गुणों का स्वभाव प्रकाश क्रिया और प्रकाश (५) प्रयोजनियता, इन पांचों अवस्था के क्रम से सम्पूर्ण अवस्थाओं में भलीभांति संयम करके जब योगी इनको प्रत्यक्ष कर लेता है तब योगी का इन पर पूरा अधिकार हो जाता है। इस प्रकार योगी क्षिति-जल-पावक-गगन-समीर पर विजय प्राप्त कर लेता है। आठ सिद्धियां उस योगी के अधीन हो जाती है। आठ सिद्धियां इस प्रकार हैं :-

(१) अणिमा- अणु के समान सूक्ष्म रूप धारण कर लेना। "मसक समान रूप कपि धरी"-हनुमानजी। (२) लघिमा-शरीर हल्का कर लेना- इसमें गगनविहारी होने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। जैसे- "जिमि अमोघ रघुपति के बाना। एही भांति चलेऊ हनुमाना।।" (३) महिमा-शरीर को बड़ा कर लेना। जैसे- "जस-जस सुरसा बदन बढ़ावा, तासु दून कपि रूप देखावा"। (४) गरिमा-शरीर को भारी कर लेना। जैसे-" नाथ एक आवा कपि भारी। तिहि अशोक वाटिका उजारी",

(५) प्राप्ति-भौतिक पदार्थ को संकल्प मात्र से प्राप्त कर लेना, (६) प्राकाम्य-बिना रुकावट भौतिक पदार्थ सम्बंधी इच्छा की पूर्ति हो जाना, (७) वशित्व-पांचों भूतों और तत्जन्य पदार्थों का वश में हो जाना, तथा (८) ईशित्व-उन भूत और भौतिक पदार्थ को नाना रूपों में उत्पन्न करने की और उन पर शासन करने की सामर्थ्य।

वासनाग्रस्त व्यक्ति योग की गति और उसके परिणाम को नहीं जान पाता। इससे ही यह अनुमान लगा लेना व्यर्थ है कि योग के साथ आठ सिद्धियों का प्राप्य मिथ्याचार है। इस पर शोध की आवश्यकता है। बहुत सी विधाओं का लोप हुआ हैं उसमें से एक योग भी है। आज का योग शारीरिक व्यायाम हो गया है। इसमें आत्म तत्व के आलोदन-अवगाहन का कोई अवसर नहीं है। आत्मतत्व से तादात्म्य बनाए बिना योग का कोई अर्थ नहीं है। आत्मा से परमात्मा का एकीकरण योग की सार्थकता है। इसे वासना से नहीं वासना उन्मूलन से ही प्राप्त किया जा सकता है। पातन्जल योगदर्शन के कैवल्यवाद में कहा गया है- कि वासनाओं का हेतु अविधादिक्लेश और इनके रहते हुए होने वाले कर्म हैं। इनका फल पुनर्जन्म, आयु भोग हैं। इसका आश्रय चित्त है और शब्दादि विषय आलम्बन है। वासनाएं इनके सम्बंध से ही संग्रहीत होती हैं। जब योग साधना द्वारा अविद्या का नाश हो जाता है, विवेक ज्ञान का उदय हो जाता है, तब कर्मों में फल देने की सामर्थ्य नहीं रहती, चित्त अपने ही कारण में विलीन हो जाता है। चित्त का न रहने से विषयों का सम्बंध पुरुष से कट जाता है। इस प्रकार हेतु, फल, आश्रय, आलम्बन इन चारों का अभाव होने से वासनाओं का अभाव अपने आप हो जाता हैं।

हनुमानजी महान कर्मयोगी है इसीलिये अष्ठ सिद्धि-नव निधि के दाता भी हैं। पवनपूत हनुमानजी व आदिकवि महर्षि वाल्मीकि रामायणकालीन पात्रों में विज्ञान के धर्म कहे गये हैं। आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियां अभी उस स्तर तक नहीं पहुंची, जिसे पौराणिक आख्यानों में हस्तगत हुआ दर्शाया गया है। इसे मानें या न मानें, व्यक्ति के संस्कारजनित ज्ञान का विषय है-जाकी रही भावना जैसी। हरि मूरत देखी तिन तैसी।

सेवानुरागी रूप

श्रीहनुमानजी महाराज की भूमिका पर यदि विचार करें तो हमें ऐसा लगेगा कि सारी सृष्टि, इतिहास, सारे पुराण तथा शास्त्रों में इनसे बढ़कर भगवान राम

का कोई दूसरा सेवक नहीं हुआ। बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि चाहें तो आप विश्व के सारे महापुरुषों का इतिहास उठाकर पढ़ लीजिए। जिन व्यक्तियों के द्वारा कोई एक बड़ा काम हो जाता है उन्हें सारा विश्व नमन करता है, उनकी पूजा करता है तथा महापुरुष की श्रेणी में उनका स्मरण करता है। हरिश्चन्द्र ने सत्य के लिए कई बार बड़ा त्याग किया जिससे वे विश्वबन्धु बन गये, सदा के लिए इतिहास-पुरुष बन गये। शिवि ने शरणागत की रक्षा करने के लिए अपने शरीर का मांस देने की चेष्टा की तो उनकी प्रशंसा हुई। दिलीप ने गाय की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी तो उन्हें हमने महापुरुष मान लिया। इस प्रकार ये जो महापुरुष हैं, ये किसी एक घटना के कारण ही विश्ववन्द्य बन गये हैं। परन्तु श्रीहनुमानजी के चरित्र में तो जितनी घटनाएँ हैं, यहां तक कि विज्ञान सम्बन्धी भी! उनमें प्रत्येक घटना बड़ी अदभुत है। इतने महानतम कार्य तो किसी के द्वारा सम्पन्न ही नहीं हुए। सारे इतिहास को उठाकर आप देखें तो श्रीहनुमानजी से महानतम सेवा-कार्य करने वाला आपको कोई दूसरा नहीं मिलेगा और इस प्रसंग में श्रीहनुमानजी की भूमिका पर हम और आप जरा आध्यात्मिक, भावनात्मक तथा व्यवहारिक अर्थों में विचार करें।

श्रीहनुमानजी के विषय में बड़ी प्रसिद्ध पंक्ति है जो हममें से अधिकांश लोगों को याद होगी। 'हनुमानचालीसा' के अन्त में जब लोग हनुमदाष्टक का पाठ करते हैं तो उसमें यह पंक्ति बार-बार दुहराई जाती हैं-

को नहिं जानत है जग में कपि संकट मोचन नाम तिहारो।

हे आञ्जनेय श्रीहनुमानजी महाराज, वस्तुतः कौन यह नहीं जानता कि आपका नाम ही संकटमोचन है और अब आप विचार करके देख लीजिये कि श्रीहनुमानजी के जीवन में सचमुच संकटमोचन नाम की कितनी सार्थकता है। श्रीहनुमानजी ने जितने लोगों का संकट मिटाया उनकी गणना यदि आप करें तो आप आश्चर्यचकित हो जायेंगे। प्रारम्भ से लेकर अब तक श्रीहनुमानजी भक्तों के संकट को जिस प्रकार से दूर करते हैं इस पर अगर दृष्टि डालें तो आपको ऐसा लगेगा कि इससे बढ़कर सार्थक पंक्ति कोई नहीं है। एक ओर यदि सुग्रीव संकटग्रस्त हैं तो श्रीहनुमानजी ने उनका संकट दूर किया। दूसरी ओर संकटग्रस्त बन्दरों का संकट भी श्रीहनुमानजी ने दूर किया? पर केवल बन्दर और सुग्रीव

ही नहीं बल्कि जब ईश्वर ही संकट में पड़ गया तो ईश्वर को भी संकट से उबारने का काम श्रीहनुमानजी का है। इस सन्दर्भ के आध्यात्मिक पक्ष को समझना उचित होगा।

भगवान राम अखण्ड 'ज्ञान' है और श्रीसीताजी साक्षात् भक्ति हैं, तथा लक्ष्मणीजी मूर्तिमान "वैराग्य" हैं, सानुज सिय समेत प्रभु.....। इनमें-से प्रत्येक के ऊपर संकट आया। ज्ञान संकट में पड़ा, भक्ति संकट में पड़ी तथा वैराग्य संकट में पड़ा और आगे चलकर भरतजी भी संकट में पड़ गये थे। किन्तु श्रीसीताजी, श्रीलक्ष्मण, भगवान श्रीराम तथा श्रीभरत को भी संकट से उबारने वाले श्रीहनुमानजी ही हैं। श्रीहनुमानजी की यह भूमिका अप्रतिम है, अद्वितीय है और आध्यात्मिक अर्थों में इसका गहरा तात्पर्य है।

गोस्वामीजी कहते हैं कि ये बन्दर 'साधन' के प्रतीक हैं और सुग्रीव 'साधन ज्ञान' हैं तथा समस्त बन्दर सुग्रीव की इच्छानुसार ही संचालित होते हैं। विनय पत्रिका में आपको वह पद मिलेगा जिसमें गोस्वामीजी यह कहते हैं : कैवल्य साध
ान अखिल भलु कर्मट कटक, ज्ञान सुग्रीव कृत जलधि सेतु। इसका अभिप्राय है कि साधन की रक्षा करने वाले श्रीहनुमानजी हैं। 'साधन ज्ञान' की रक्षा करने वाले श्रीहनुमानजी हैं। 'भक्ति' तथा 'ज्ञान' का संकट में उद्धार करने वाले भी श्रीहनुमानजी हैं और जो सबसे बाद में संकटमुक्त वैराग्य था उसको भी बचाने वाले श्रीहनुमानजी ही हैं और अन्त में उन श्रीभरतजी की भी रक्षा करते हैं जिनकी मूर्तिमान राम-प्रेम के रूप में वन्दना की गयी है :

'भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम रति तनु आही।।'

इसका अभिप्राय है कि अगर हम यह चाहते हों कि हमारे जीवन में साध
ान-तत्व सुरक्षित रहें तो हमें श्रीहनुमानजी का आश्रय लेना ही पड़ेगा। यदि हम साधना के ज्ञान को अपने जीवन में सुरक्षित रखना चाहते हैं, अगर हम अखण्ड ज्ञान को बचाये रखना चाहते हैं तो यह भी श्रीहनुमानजी की कृपा से ही सम्भव होगा। भक्ति तथा वैराग्य और प्रेम भी यदि सुरक्षित रहेंगे तो केवल श्रीहनुमानजी की कृपा से।

संसार में अनेक महान व्यक्ति होते हैं, पर प्रत्येक व्यक्ति के सामने एक समस्या अवश्य होती है। कोई व्यक्ति सभी कार्यों में कुशल नहीं होता है। आप

रामचरितमानस के अन्य पात्रों के सन्दर्भ में यदि विचार करेंगे तो आपको यही मिलेगा। समाज में भी यदि देखेंगे तो आपको यह लगेगा कि एक ही व्यक्ति में सारे गुण विद्यमान नहीं पाये जाते। पर अगर श्रीहनुमानजी के सन्दर्भ में विचार करके देखें तो आपको यह मान अवश्य होगा कि श्रीजाम्बवानूजी ने श्रीहनुमानजी के लिए जो शव्द कहा कि संसार का ऐसा कोई कार्य है ही नहीं जिसे आप न कर सकें-

"कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं।।"

सचमुच यह वाक्य श्रीहनुमानजी को छोड़कर अन्य किसी के लिए नहीं कहा जा सकता। आदि से लेकर अन्त तक श्रीहनुमानजी की भूमिका पर यदि आप विचार करके देखें तो श्रीहनुमानजी के अनेक रूप आपको दिखायी देंगे। रामचरितमानस में भरतजी और लक्ष्मणजी के रूप बदलने के प्रसंग नहीं आते पर श्रीहनुमानजी महाराज तो रूप बदलने की कला में अत्यन्त निपुण हैं। वे कभी बन्दर के रूप में दिखायी देते हैं तथा कभी ब्राह्मण के रूप में। इतना ही नहीं अगर आप एक महानतम आदर्श ब्राह्मण का रूप देखना चाहें तो श्रीहनुमानजी को देख लीजिये। एक क्षत्रिय का र्म अगर किसी में देखना चाहें तो श्रीहनुमानजी में देख लीजिये। वैश्य की व्यापार-कुशलता और शूद्र की सजग सेवावृत्ति अगर देखना चाहें तो वह भी आप श्रीहनुमानजी में ही देख लीजिये और वैज्ञानिक की विज्ञान कुशलता अगर देखना चाहें तो श्रीहनुमानजी का स्मरण कर लीजिये।

कथानुरागी रूप-

भागवत कथा (रामकथा, श्रीमद्भागवत पुराण कथा आदि) का मनोयोग से श्रवण करने वाले को भगवान राम का दर्शन होता है। यही कारण है कि श्रीहनुमानजी रामकथा अनुरागी हैं। जहाँ-जहाँ राम कथा होती हैं वहाँ वे अवश्य पधारते हैं। कोढ़ी रूप में मनोयोग से कथासुन रहे श्रीहनुमानजी की कृपा से गोस्वामीजी को राम-दर्शन का मार्ग प्रशस्त हुआ था।

शुकदेवजी महाराज ने राजा परीक्षित को कथा का समापन करते हुए कहा- 'राजन ! मैं ही परमात्मा का रूप ब्रह्म हूँ और परमपद रूप ब्रह्म भी मैं ही हूँ। ऐसा सोचकर अपनी आत्मा को ब्रह्म से जोड़ लो। जब तक मैं यहाँ हूँ तक्षक नहीं आ पायेगा। यदि कुछ और सुनने की इच्छा हो तो बताओ।"

राजा परीक्षित उनके चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा कि महाराज आपने मुझे व्यापक ब्रह्म के दर्शन कराये हैं। सो मैं निर्भय हो गया हूँ। आगे राजन ने कहा कि महाराज आपने न केवल कथा श्रवण कराया है बल्कि मुझे प्रभु के दर्शन भी करा दिये। आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया। मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ।

राजा परीक्षित ने कहा कि कथा के पाँच फल क्रमशः (१) निर्भीकता, (२) निःसन्देहता, (३) हृदय में प्रभु का साक्षात् प्रवेश, (४) सभी में भगवत् दर्शन और (५) परम प्रेम होते हैं। इन पाँचों फलों की प्राप्ति मुझे हो गयी।

राजन् ने शुकदेवजी महाराज की अनुमति से उनके चरणों की पूजा की। शुकदेवजी ने राजा के मस्तक पर अपना वरद हस्त पधराया। उसी क्षण, उन्हें परमात्मा का दर्शन हुआ। जीव और ब्रह्म एक हो गये। शुकदेव जी अन्तर्धान हो गये। राजा परीक्षितजी के शरीर से एक ज्योति प्रकट हुई और महाज्योति में मिल गयी। तक्षक ने आकर राजा परीक्षित् का दर्शन किया लेकिन वे तो भगवान के धाम पहले ही पधार चुके थे। तात्पर्य है कि कथा में अनुराग होना भक्ति का एक लक्षण है। श्रीराम-भक्ति की मिठास से आकर्षित होकर 'हरसे हनुमान' बनने वाले महाभागवत श्रीआञ्जनेय में भक्ति का यह लक्षण आश्चर्यजनक रूप से विद्यमान है। उनका श्रीरामकथानुराग पराकाष्ठा को प्राप्त है। सच तो यह है कि श्रीहनुमानजी ने श्रीरामकथा को अपना जीवनाधार ही बना लिया है।

श्रीवाल्मीकीकृत रामायण से विदित होता है कि श्रीमारुतनन्दन ने श्रीराम से यही वरदान माँग लिया था कि 'जबतक जगन्मंगलमयी श्रीरामकथा पृथ्वी पर प्रचलित रहे, तभी तक उनके शरीर में प्राण रहें।" महाभारत के वनपर्व में भी भीमसेन को रामचरित सुनाते समय उनके द्वारा भगवान् श्रीराम से उपर्युक्त आशय का वरदान माँगने का उल्लेख है। स्पष्ट है कि श्रीहनुमानजी को रामकथा को सुनने-सुनाने के लिये ही जीना स्वीकार है। उन्हें दीर्घ-जीवन प्राप्त है, पर बिना रामकथा के वह उन्हें पसंद नहीं।

अनेक व्यक्तियों को श्रीहनुमानजी के श्रीरामकथानुराग का प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिला है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उनका शौच जल नित्य पाने पर एक प्रेत प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें बतलाया कि श्रीहनुमानजी

कोढ़ी के वेश में प्रहूलादघाट पर रामायण की कथा में नित्य ही सबसे पहले आते हैं और सबसे पीछे जाते हैं। इसी संकेत के आधार पर गोस्वामीजी ने श्रीहनुमानजी को कथास्थल पर जाकर पहचाना। भक्तमाल के टीकाकार श्रीप्रियादासजी ने भी यह कथा लिखी है-

सौच जल सेव पाय भूतहु बिसेष कोऊ,
बोल्यो सुख मानी हनुमानजू बताये हैं।
रामायण कथा, सो रसायन है काननि को,
आवत प्रथम, पाछे जात, घूना छाये हैं।।
जाय पहिचानि, संग चले उर आनि, आये,
बनमधि, जानि धाई, पायौं लपटाये हैं
करे तिसकार, कहीं "सकोगे व टारि, मैं तो
जान्यो रससार" रूपधरयो जैसे गाये हैं।।

उपर्युक्त घटना से गोस्वामी के हृदय पर श्रीहनुमानजी के श्रीरामकथानुराग की अमिट छाप पड़ी और सम्भवतः इसलिये श्रीमन्मानस में उन्होंने उनका प्रथम स्मरण राम-कथा के अनुरागी के रूप में ही किया है। बालकाण्ड में मंगलाचरण में नौ महान चरित्रों की नमस्कारात्मक स्तुतियाँ हैं। यहाँ सभी वन्दनीयों के किसी न किसी गुण की ओर संकेत किया गया है। उसमें श्रीहनुमानजी के दो गुण संकेतित हैं, जिसमें से प्रथम है- उनका 'सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारी' होना। 'बिहारी' अर्थात् विहार करने वाला। बिहारी अपने विहारस्थल को छोड़ना नहीं चाहता। श्रीशिवजी ने भगवान श्रीराम के बालरूप की वन्दना 'दसरथ अजिर बिहारी' कहकर की है, क्योंकि वे छोटे बालक हैं, आँगन छोड़कर कहीं नहीं जाते। भगवान् श्रीकृष्ण 'वृन्दावनविहारी' कहलाते हैं, क्योंकि वे वृन्दावन छोड़कर कभी कहीं नहीं जाते- 'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।' अतः श्रीहनुमानजी को 'सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारी' कहने का तात्पर्य है कि वे श्रीसीतारामकथा को कभी नहीं छोड़ते।

'विहारी' शब्द में स्वभाव की भी अभिव्यक्ति है। विहरणशील अर्थात् विहार करने के स्वभाववाला 'विहारी' कहलाता है। स्वभाव प्रायः जन्मजात हुआ करता है, जो जन्म-जन्मान्तरों का संस्कार होता है। कभी-कभी ही प्रबल कारण के

उपस्थित होने पर स्वभाव में परिवर्तन देखा जाता है। जैसे देवर्षि एवं सप्तर्षियों के संयुक्त प्रयासरूप प्रवल कारण ने श्रीवाल्मीकिजी के स्वभाव को बदल दिया और वह 'सीतारामगुणाग्रामपुण्यारण्यविहारी' बन गये। उनके स्वभाव में श्रीरामकथानुराग प्रविष्ट हो गया। कपीश्वर श्रीहनुमानजी में श्रीरामकथानुराग जन्म से ही है। भगवान् श्रीराम से भेंट होने के पूर्व से ही वे श्रीराम-कथा के प्रेमी हैं।

'कवीश्वर' और 'कपीश्वर' दोनों ही श्रीरामकथानुरागियों के लिये आदर्श हैं, अतः दोनों समानरूप से स्तुत्य है। जिनके स्वभाव उपदेशादि से श्रीरामकथानुराग प्रविष्ट होता है, उनसे वे श्रेष्ठ हैं जिनके स्वभाव में वह जन्म से ही विद्यमान रहता है। श्रीगोस्वामीजी इस विधि से श्रीरामचरितमानस के प्रारम्भ में ही श्रीहनुमत्वस्वभाव का उद्घाटन करते हुए उद्घोष करते हैं कि वे रामकथा के जन्मजात एवं स्वभावसिद्ध अनुरागी है।

जो व्यक्ति जिस वस्तु-विषय से स्वभाविक अनुराग रखता है, उस वस्तु-विषय के बिना वह रह नहीं सकता। वह उसकी प्राप्ति के लिये सतत् प्रयत्नशील रहता है, क्योंकि वह उसके रस का रसिक होता है। श्रीहनुमानजी 'प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया' रूप में प्रसिद्ध हैं। जैसा कि पहले उल्लेख कर चुका हूँ, उस दिन श्रीदेवरहाहंस बाबा ने अपनी लहर में मुझसे कहा था- "बच्चा! मैं प्रेम-चरित्र सुनिबे को रसिया हूँ"- अतः बाबा श्रीहनुमानजी ही हैं। हनुमानजी रामकथा-रस के आस्वादन का अवसर कभी नहीं चूकते। जहाँ भी भगवान् श्रीराम की कीर्ति-कथा का गायन होता है, वहां वे अवश्य पहुंचते हैं, और हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये, नेत्रों में प्रेमाश्रु भरे आद्यन्त विराजमान रहते हैं।

कालनेमि जानता था कि श्रीवायुनन्दन वायु के समान ही दुर्निग्रह हैं। उनको उलझाने का कोई अन्य अचूक उपाय न देखकर उसने श्रीराम-कथा का सहारा लिया। वह जानता था कि श्रीहनुमानजी श्रीराम-कार्य और श्रीराम-कथा में प्राथमिकता श्रीराम-कथा को ही देते हैं। उसे यह भी मालूम था कि वे कथा-समाप्ति से पूर्व कथास्थल से जा नहीं सकते। अतः अपनी कुयोजना को सफल करने की आशा से अन्य उपचार किये बिना वह श्रीराम-कथा कहने लगा। इसका फल हुआ भी उसकी आशा के अनुकूल ही। श्रीहनुमानजी कथा सुनने लगे। उसकी शिष्टाचार सम्बन्धी भूलपर उनका ध्यान नहीं गया और वे अपनी प्यास

भी भूल गये। कथाप्रेमी वक्ता की भूल-चूकपर ध्यान ही नहीं देता और कथा-श्रवण के समय उसे भूख-प्यास रहती ही नहीं। श्रीमद्भागवत कथा श्रवण करते समय महाराज परीक्षित को भूख-प्यास नहीं रही। उनका अपना कथन है-

नैषातिदुस्हाक्षुन्यां न्यक्तोदमपि बाधते।
पिबन्ते त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्।।

श्रीहनुमानजी कथा-श्रवण में ऐसे तल्लीन हो गये कि वे प्यास ही नहीं, जड़ी लाने जाना भी भूल गये। देर होने लगी। सुषेण ने संजीवनी और समय दोनों का समान महत्व बतलाया था- 'जियै कुँवर, निसि मिलै मूलिका कीन्हीं बिनय सुषेन।' श्रीलक्ष्मणजी के लिये सूर्योदय प्राणघातक है, उसके पूर्व ही जड़ी का पहुँचना आवश्यक है। बाद में वह प्रभावहीन हो जायेगी- ये सारी बातें श्रीहनुमानजी की स्मृति से उतर गयीं, क्योंकि श्रीराम-कथा कानों में पड़ी, इससे उनके मन, चित्त-सब उसी में लग गये। अन्य बातों को कौन याद रखे? इधर विलम्ब होने लगा, उधर भगवान् श्रीराम की व्याकुलता बढ़ने लगी-

उहां राम लक्षिमनहि निहारी। बोले बचन अनुज अनुसारी।
अर्ध रात्रि गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ।।

-पर श्रीहनुमानजी तो कथा सुनने में तन्मय थे। कालनेमि ने जो युद्ध-लीला देखी थी, उसे कहना प्रारम्भ किया-

होत महारत रावन रामहिं। जितिहहिं राम न संसय या महिं।।

जब देखी हुई लीला का वर्णन हो चुका, कुछ कहने को शेष न रहा, तब वह अपनी प्रशंसा की कथा सुनाने लगा-

इहाँ भएँ मैं देखउँ भाई। ग्यानदृष्टि बल मोहि अधिकाई।।

उस समय कानों में से केवल श्रीराम-कथा ही सुनने वाले श्रीहनुमानजी के चित्त में विक्षेप हुआ, उन्हें प्यास मालूम हुई और आगे चलकर मकरी-भूत अप्सरा से सारा भेद खुला। वे कालनेमि को मारकर आगे बढ़े और द्रोणाचल को ही उठाकर लंका ले गये। वैद्य ने जड़ी पाकर तुरन्त उपचार किया और लक्ष्मणजी स्वस्थ होकर उठ बैठे।

कालनेमि को श्रीराम-कथा पूरी ज्ञात नहीं थी। यदि वह भगवान् के जन्म, विवाह आदि की भी कथा जानता होता तो- 'राम काज कीन्हें बिनु मोहि कहाँ

विश्राम।।' (मानस ५/१) का विचार रखनेवाले श्रीहनुमानजी को रातभर वह अवश्य उलझा लेता। उस दशा में उनके श्रीराम-कथा विषयक अद्भुत अनुराग का परिणाम शुभ होता या अशुभ, यह प्रश्न श्रीराम-कथा के महत्व पर अपूर्ण आस्था होने के कारण पैदा होता है। आश्वस्त रहना चाहिए कि श्रीराम-कथानुरागी का कोई कार्य उसके कथानुराग के कारण नहीं बिगड़ता। श्रीहनुमानजी से कभी कोई कार्य बिगड़ा हो, ऐसा उदाहरण नहीं है। भगवान् श्रीराम के सब कार्य कुशल निष्ठा और सुन्दर ढंग से श्रीहनुमानजी ने ही पूरे किये- सब पर राम तपस्वी राजा। जिनके काज सकल तुम्ह साजा।।

श्रीराम-कथा के अन्यतम रसिक श्रीहनुमानजी की श्रीराम-कथा-निष्ठा का वर्णन समस्त भारतीय वाङ्मय में विस्तार से किया गया है। श्रीमदवाल्मीकीय रामायण में श्रीहनुमानजी ने भगवान श्रीराम से उनके परधामगमन के समय कथा-श्रवण के लिये चिरंजीवी होने का वरदान माँगा था। यह उनकी कथा निष्ठा का परिचायक है- श्रीहनुमानजी ने वरदान मांगा था- 'वीरवर श्रीरघुनन्दन ! जबतक इस पृथ्वी पर श्रीरामकथा का प्रचार रहे, तब तक निस्संदेह मेरे शरीर में प्राण बसे रहें। नरश्रेष्ठ श्रीराम ! आपका जो यह दिव्य चरित और कथा है, इसे अप्सराएँ गाकर मुझे सुनाया करें।'

श्रीराघवेन्द्र ने श्रीहनुमानजी का आलिंगन करते हुए कहा- 'कपिश्रेष्ठ ! जबतक मेरी कथा इस लोक में प्रचलित रहेगी, तब तक तुम्हारी कीर्ति अमिट रहेगी तथा तुम्हारे शरीर में प्राण भी रहेंगे ही। जबतक ये लोक बने रहेंगे, तब तक मेरी कथाएँ भी स्थिर रहेंगी।' पाठकगण इस वाक्य का विशेष ध्यान रखें "तब तक तुम्हारी कीर्ति अमर रहेगी तथा तुम्हारे शरीर में प्राण भी रहेंगे।"

दक्षिणात्य आचार्यों ने श्रीहनुमानजी की इस कथानिष्ठा की प्रशंसा करते हुए कहा है कि श्रीराघव में ऐसे अद्भुत गुण थे, जिनसे आकृष्ट होकर श्रीहनुमानजी साकेतधाम का परित्याग कर आज भी उस कथा-रस का सेवन कर रहे हैं।

बाबा श्रीहनुमानजी जहाँ एक ओर असाधारण कथा-रसिक हैं, वहीं असाधारण परावाणी (कथा)-गायक भी हैं। वास्तव में बाबाश्रीहनुमानजी में नवधा भक्ति, प्रेमाभक्ति आदि सभी भक्ति-रसों का पूर्णरूप से समावेश है। श्रोता के रूप में तो श्रीहनुमानजी को भक्तगण अधिक जानते ही हैं, किन्तु सुन्दरकाण्ड में जब उन्होंने

जगज्जननी श्रीजानकीजी को श्रीराम-कथा सुनायी है, उस समय उनको श्रीरामचरित के गायकरूपों में भी देखते हैं। इसी अवसर पर श्रीहनुमानजी अवधी भाषा में श्रीजनकनन्दिनी को कथा सुनाते हैं। उस समय श्रीहनुमानजी ने विचार किया कि यदि मैं श्रीसीताजी के समक्ष संस्कृत भाषा में वार्तालाप करता हूँ तो रावण जानकर वे मुझसे भयभीत हो जायेंगी, अतः मुझे उनके साथ मनुष्य की भाषा में ही वार्तालाप करना चाहिए।

श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं कि 'मानुषं वाक्यम्'- मनुष्यवाक्य का अर्थ है- कोसलदेशवासी मनुष्य की भाषा; क्योंकि श्रीजानकी इसी भाषा से परिचित है- 'अत्र वाक्यस्य मनुष्त्व कोसलदेशवर्तिमनुष्यसम्बन्धित्वं विवक्षितम् तादृग्वाक्यस्य देव्याः परिचितत्वात्।'

इस वार्तालाप को 'रामकीर्तिन' कहा गया है- रामकीर्तनहर्षित।' इस प्रकार लोक-भाषा (अवधी-भाषा) में श्रीहनुमानजी ने त्रेतायुग में ही श्रीरामकथा का शुभारम्भ कर दिया था। उसी परम्परा का निर्वाह गोस्वामी ने भी किया तथा अवध ी भाषा में मानस की रचना की। वैसे तो श्रीहनुमानजी के समान वेद-शास्त्रों का ज्ञाता अन्यत्र दुर्लभ है। भगवान् श्रीराम ने किष्किन्धाकाण्ड में इनके पाण्डित्य का विस्तार से वर्णन किया है। उत्तरकाण्ड में भी सूर्य के समीप इनके व्याकरण अध यथन का वर्णन इनके असाधारण ज्ञान का द्योतक है।

इस प्रकार वेद एवं व्याकरण आदि के ज्ञाता होने पर भी अवधी-भाषा में श्रीहनुमानजी ने श्रीजनकनन्दिनी को कथा सुनायी- यह वस्तुतः अद्भुत एवं अलौकिक घटना है।

भगवान् शंकर पार्वतीजी को श्रीरामकथा सुनाकर उसका उपसंहार करते हुए सबके अन्त में श्रीहनुमानजी की महत्ता का बखान और विशिष्ट गुणगान करके श्रीरामकथा को विश्राम देना चाहते थे। आप कहते हैं कि 'हे गिरिराज-पुत्रि? श्रीहनुमानजी के समान न कोई श्रीराम के चरणों का प्रीतिमान् है न वैसा महान् भाग्यवान्। उनकी प्रीति और सेवा की स्वयं प्रभु ने अपने श्रीमुख से बार-बार बड़ाई की है।'

चरणानुरागी रूप

हनुमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ रामचरन अनुरागी।।

गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार-बार प्रभु निज मुख गाई।।

श्रीरामचरितमानस के अनुसार बड़भागी वही है, जो श्रीरामचरणानुरागी है। श्रीहनुमानजी के समान श्रीरामचरणानुरागी कोई भी नहीं है, इसलिए आपके समान बड़भागी भी कोई नहीं है। भक्त शिरोमणि भरतजी का ध्यान श्रीराम के चरणों की कोमलता की ओर अत्यधिक है। रामजी के वनवास के बाद वे रोते हुए कहते हैं कि वन में विश्राम के लिए प्रभु को वृक्षों की छाया मिल जा सकती है, कन्द-मूल का भोजन मिल सकता है; किन्तु शिरीष-सुमन से भी अधिक सुकुमार चरण कानन के कठोर, कँटीले, कँकड़ीले और पथरीले पथ पर कैसे चल सकेंगे? सुकुमारी सीताजी की सुकुमार हथेली भी जिन चरणों को कठोर प्रतीत होती है, वे चरण कंटकों के, कुशाग्रों के और छोटे-छोटे नुकीले पाषाण-खण्डों के ऊपर कैसे चलते होंगे? भरतजी कहते हैं कि इसी दुःख की जलन से दिन-रात मेरी छाती जलती रहती है- न दिन में भूख लगती है, न रात में नींद आती है-

एहि दुख दहद दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती।।

चरणों की अतिशय कोमलता का इतना ध्यान होने पर भी भक्त शिरोमणि ने उन चरणों के कष्ट-निवारण के लिए कोई भी उपाय या प्रयास नहीं किया। इसलिए उनका श्रीरामचरन-प्रेम अपूर्ण ही रहा है, पूर्ण नहीं हो सका। प्रेम जब सेवा में परिणित हो जाता है, तब पूर्ण कहा जाता है। इससे द्योतित हुआ कि श्रीरामचरण चंचरीक भरतजी का चरण-प्रेम भी खंडित है, अतएव अपूर्ण है।

भरतजी इतने संकोची हैं कि श्रीराम की ओर आँखें उठाकर देख भी नहीं सकते और मुँह खोलकर बोल भी नहीं सकते। चित्रकूट की भरी सभा में आप इसे स्वयं स्वीकार करते हैं।

जो सेवक इतना संकोची है कि अपने स्वामी की और आँखें उठाकर देख भी नहीं सकता और बोल भी नहीं सकता- वह सेवा क्या करेगा? कैसे करेगा? स्वामी श्रीराम भी संकोच-वश सेवा लेंगे नहीं और भरत संकोच-वश सेवा करेंगे नहीं। दोनों संकोचियों के बीच में बेचारी सेवा पड़ी पड़ी रह जायेगी, अपने अभाग्य पर रोती-की-रोती। इसलिए सेवा के क्षेत्र में भरत जी अधूरे हैं, अपूर्ण हैं। जो प्रेम के क्षेत्र में अपूर्ण होता है वह सेवा के क्षेत्र में भी अपूर्ण होता ही है। सेवा प्रेम का ही साकार और सक्रिय स्वरूप है।

भगवान श्रीराम के अनुज लक्ष्मणजी तो शेषरूप होने के कारण सहस्र-मस्तक है और इनके एक ही मस्तक पर चराचरमय सम्पूर्ण ब्रह्मांड धूल के एक कण के समान विराजमान है-

ब्रह्मांड भवन विराज जांके एक सिरे जिमि रज कनी।

सम्पूर्ण ब्रह्मांड के भार-वहन में सहज समर्थ होकर भी लक्ष्मणजी ने श्रीराम से कभी अनुरोध भी नहीं किया कि आप मेरे कन्धे पर ही विराजमान होकर वन यात्रा कीजिए। फिर कैसे कहा जाय कि श्रीराम के चरणों में लक्ष्मणजी का अखंड अनुराग है।

सेवा के क्षेत्र में भी लक्ष्मणजी की सेवा खंडित है, अपूर्ण है। लक्ष्मणजी रामजी के साथ रहकर ही सेवाकर सकते हैं, अलग रहकर नहीं। आपकी ही घोषणा है-

न वच सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव।
मुहूर्त्तमपि जीवावो जलान्मत्स्यानिवोदधृता।

'हे राघव ! जैसे पानी से पृथक कर देने पर मछली नहीं जी सकती, उसी प्रकार आपसे अलग होकर मैं एक मूहूर्त भी नहीं जी सकता और सीताजी भी नहीं जी सकतीं।'

सेवक को तो स्वामी की सेवा के लिए आवश्यकतानुसार दूर जाना भी पड़ ही जाता है- केवल समीप रहने से पूरी सेवा कैसे हो सकती है? इसलिए लक्ष्मणजी का प्रेम ही नहीं, सेवा भी खंडित है, अपूर्ण है।

जब भक्त-प्रवर भरतजी तथा सेवा-महाव्रती लक्ष्मणजी भी प्रेम और सेवाकी कसौटी पर खरे नहीं उतरे, तो फिर अन्यान्य भक्तों की क्या बिसात?

अब श्रीहनुमानजी के चरणानुराग का उदाहरण लीजिए। श्रीरामजी के प्रथम दर्शन में भी विप्ररूपधारी श्रीहनुमानजी का ध्यान श्रीरामजी के अतिशय कोमलचरणों की ओर समाधिक आकृष्ट होता है और आप पूछ ही बैठते हैं- कठिन भूमि कोमल पदगामी। कवन हेतु बिचरहू वन स्वामी।।

प्रश्नोत्तर के माध्यम से जब श्रीहनुमानजी और श्रीराम का पारस्परिक परिचय हो गया और दोनों भक्त और भगवान् के रूप में एक-दूसरे के अत्यन्त समीप आ गए, तब श्रीहनुमानजी ने दोनों भाइयों को सुग्रीवजी के पास पहुँचाना चाहा। प्रभुचरणों की अतिशय सुकुमारता को देखते हुए कानन की कठोर भूमि पर उन्हें

चलने देना श्रीहनुमानजी को सहन नहीं हो सका। इसलिए प्रतिरूप को छोड़कर और बानर रूप में होकर कपिकुंजर ने रामजी तथा लक्ष्मणजी को अपनी कन्ध ों पर चढ़ा लिया और सुग्रीव के समीप चले गए।

श्रीहनुमानजी प्रथम दर्शन में ही इधर प्रभु चरणों की कोमलता को देखकर तथा उधर भूमि की कठोरता को समझकर इतने द्रवित हो गए कि उन कोमल चरणों को पद-यात्रा के संकट से मुक्त ही कर दिया। दोनों भाइयों को पीठ पर चढ़ाकर सुग्रीवजी के समीप ही नहीं पहुँचाया, वहां से लंका तक दोनों भाई श्रीहनुमानजी के भाग्यवान् कन्धों पर ही विराजमान होकर गए। श्रीहनुमानजी का चरण-प्रेम चरण-सेवा में बदल गया। इसलिए आपका प्रेम साकार, सक्रिय और पूर्ण हो गया। प्रेम की पूर्णता के कारण सेवा भी पूर्ण हो गई। इसलिए शंकरजी का पार्वतीजी को यह समझाना पूर्णतः सत्य सिद्ध हो जाता है कि- हनुमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ रामचरण अनुरागी।।

भरतजी दूरसे ही प्रभु की आज्ञा का पालन कर सेवा कर सकते हैं, निकट से नहीं। लक्ष्मणजी साथ में रहकर ही प्रभु की सेवा कर सकते हैं, दूर जाकर नहीं। इसलिएं इन दोनों सेवकों की सेवा अधूरी रह जाती है।

श्रीहनुमानजी तो पास में रहकर भी पाद-संवाहन और व्यंजन-संचालन आदिसेवा करते हैं, तथा दूर जाकर भी सीतान्वेषण और मूर्च्छित लक्ष्मण के लिए औषधानयनादि सेवा करते हैं। सेवानुरूप मशक समान लघुकाय और कनक भूध राकार विशालकाय भी बनते हैं। सेवा की सफलता के लिए कपि-रूप में भी रहते हैं और विप्र-रूप भी धरते हैं। श्रीहनुमानजी के समान न कोई रामचरणानुरागी ही है, न बड़भागी ही। आज ब्रह्मवेत्ता श्रीदेवरहाहंस बाबा के स्वरूप में श्रीहनुमानजी की यह विशेषता हमें सदैव देखने को मिलती है। श्रीहनुमानजी के प्रेम और सेवां की प्रशंसा स्वयं प्रभु ने अपने सुख से बार-बार की है-

- सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना।
  ते मम प्रिय लछिमन से दूना।।
- सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
  नहि कोउ सुरनर मुनि तनुधारी।।
  प्रति उपकार करौ का तोरा।

सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।
सुनुसुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि विचार मन माहीं।।

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहीनकारणां भवामऋणिनो वयम्।।
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रस्युपकारायामापत्स्वायाति पात्रताम्।।

'हे वानर ! तुम्हारे एक-एक उपकार के लिए मैं अपने प्राण दे सकता हूँ। शेष उपकारों के लिए हम सब तुम्हारे ऋणी रहेंगे। तुमने जो उपकार किए हैं, वे मेरे शरीर में ही पच जाँय; क्योंकि प्रत्युपकार का समय है उपकारी का संकट-ग्रस्त होना।'

भगवान् राम ने अपने ऋणी होने की घोषणा करते हुए अपने महाजन श्रीहनुमानजी को ऋण-पत्र (दस्तावेज) लिखने का स्पष्ट आह्वान किया है-

कपि सेवा सब गए कनौड़े कह्यौ पवन सुत आउ।
देवे को न कछू रिनियाँ हौं अधिक तू पत्र लिखाउ।।

श्री राम के समान न परम कृतज्ञ स्वामी मिल सकता है कहीं त्रिभुवन में, न श्रीहनुमानजी के समान परम कृतज्ञ सेवक ही।

प्रभु के द्वारा की गई प्रशंसा को सुनकर श्रीहनुमानजी ने आँखें उठाकर प्रभु के मुखारविन्द का अवलोकन किया, अंग-प्रत्यंग का निरीक्षण किया और प्रसन्न हो गए। प्रभु के मुख पर मुसकान होती तो आप प्रसन्न नहीं होते, उदास होते, क्योंकि प्रभु की मुसकान माया की अभिव्यक्ति है। मुसकान देखने पर दर्शक के ऊपर माया हावी हो जाती है। मुख पर मुसकान का अभाव देखकर आप समझ गए हैं कि प्रभु प्रशंसा के माध्यम से माया का प्रयोग नहीं कर रहे हैं। इसी कारण वे प्रसन्न हुए। प्रभु की प्रशंसा के शब्द भी भक्त को उन्मत्त और पथ-भ्रष्टकर देते हैं। इसलिए उस प्रशंसा से श्रीहनुमानजी घबरा गए। आपको ऐसा लगा कि यह प्रशंसा भक्ति-भक्षिणी राक्षसी है और भक्त को खा जाने के लिए मुँह बाए सामने खड़ी हो गई है। यह भी देखा कि प्रभु प्रसन्न होकर ही बोल रहे हैं। इसलिए आपका हार्दिक प्रेम उमड़ आया और आप यह पुकारते हुए प्रभु के उद्धारक चरणों

पर प्रेमाकुल होकर गिर पड़े- हे प्रभो ! प्रशंसा की यह राक्षसी मुझे निगल जाना चाहती है। इस राक्षसी से मुझे बचाइए, बचाइए-

सुनिप्रभु बचन बिलोकी मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि-त्राहि भगवंत।।

भगवान नहीं चाहते कि कोई भक्त गिरा रह जाए। अतएव आप चरणों में गिरे हुए श्रीहनुमानजी को अपने चरणों पर से बार-वार उठाना चाहते हैं किन्तु प्रेम में डूबे हुए श्रीहनुमानजी को उठना पसन्द नहीं। प्रभु के बार-बार उठाने पर भी आप पड़े-के-पड़े ही रह गए। परम कृपालु भक्त-वत्सल भगवन् से अब नहीं रह गया और आपने अपने पादारबिन्द पर पड़े हुए श्रीहनुमानजी के मस्तक पर अपना अभय कर-कमल रख दिया। अब नीचे हैं प्रभु के चरण-कमल, ऊपर हो गये प्रभु के कर-कमल। बीच में हो गया अन्यतम भाग्यवान् श्रीहनुमानजी का मस्तक। श्रीहनुमानजी को छोड़कर अन्य किसी भी भक्त या प्रेमी को यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सका कि चरण-कमल और कर-कमल दोनों की साथ-साथ सम्प्राप्ति हुई हो।

चरणों की शरण और करों की अभयपद-इन दोनों की छत्र-छाया तो दुर्लभ है। इसे पाने के लिए भगवान् की अर्द्धांगिंनी साक्षात् लक्ष्मीजी को भी चिरकाल तक दृढ़वत होकर तपस्या करनी पड़ी थी। भगवान् श्रीकृष्णजी की स्मृति करती हुई नागपत्नियाँ कह रही हैं- 'हे देव ! हम नहीं समझ पातीं कि यह इस कालियानाग की किस साधना का फल है जो यह आपके चरणाविन्दों की धूल का स्पर्श पाने का अधिकारी हो गया है। आपके चरणों की धूल इतनी दुर्लभ है कि इसे पाने के लिए आपकी अर्द्धांगिंनी लक्ष्मीजी को भी सम्पूर्ण भोगों का त्याग करके बहुत दिनों तक नियमों का परिपालन करते हुए तपस्या करनी पड़ी थी।'

और लीजिए। भगवान की चरण-रज की शरण हुए प्रेमी भक्त तो स्वर्गादि की तो बात ही क्या, मोक्ष को भी ठुकराकर पद-रज के सेवन में संलग्न रहना चाहते हैं। नागपत्नियां ही कह रही हैं- "आपकी पद-रज की शरण लेने वाले भक्त न स्वर्ग चाहते हैं, न चक्रवर्तित्व, न विधाता का स्थान, न ही सारी धरित्री की प्रभुता, और न योग-सिद्धियाँ ही; अधिक तो क्या, वे मोक्ष की भी कामना नहीं करते।"

कुछ गण्य-मान्य अनन्य भक्त तो प्रभु-चरणों के दर्शनमात्र के लिए ही विह्वल हैं। जैसे श्रीसम्प्रदाय के परमाचार्य स्वामी यामुनाचार्यजी भगवस्तुति के क्रम में प्रभु से ही प्रश्न कर रहे हैं- धनं मदीयं तव पाद पंकजं कदान साक्षात करवारिया चक्षुषा। भक्त गोस्वामी तुलसीदास की भी सादर प्रार्थना है-

बंहु देखाइहौं हरि चरन।

समन सकल कलेस कलि-मल, सकल मंगल-करन।

दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन।

कुछ भक्त भगवान के अभयप्रद कर-कमल को ही अपने मस्तक पर रख देने के प्रार्थी हैं। ब्रज की कृष्णप्रेम परायण गोपियाँ प्रार्थना कर रही हैं- **करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्।** 'हे प्रियतम ! सभी के मनोरथों को पूर्ण करने वाला वही कर-कमल, जिससे आपने लक्ष्मीजी का पाणिग्रहण किया है, हमारे सिर पर रख दीजिए।'

कुछ भाग्यवान भक्तों ने भगवान् के दुर्लभ चरण-कमल प्राप्त कर लिए और उन्हें छोड़ना भी नहीं चाहते थे, किन्तु प्रभु के प्रयास से वे छूट ही गए। जैसे भरतजी ने वर्षों की प्रतीक्षा के बाद भगवत्पादारविन्द को पाया था। प्रभु के प्रबल प्रयत्न से उन्हें छोड़ना भी पड़ा, किन्तु इसके बाद मिल गया प्रभु के वक्षस्थल का प्रेमालिंगन।

जैसे कि पहले उल्लेख किया गया है कि प्रभु चरण जब श्रीहनुमानजी को प्राप्त हुए, तो प्रभु के वार-बार उठाने पर भी पद-प्राप्ति के प्रेम में निमग्नता के कारण आप उन्हें छोड़ नहीं सके और उठ भी नहीं सके। जब आप पड़े के पड़े ही रह गये तक प्रभु विशेष कृपार्द्र हो गये और आपके मस्तक पर अपना अभय कर-कमल रख दिया। किसी को चरणों के दर्शन ही दुर्लभ रहे, किसी को चरणों की शरण ही। किसी को चरण-कमलों के अवकलोकन का ही सौभाग्य ही प्राप्त हुआ, किसी को उन्हें अपने मस्तक पर धारण करने का ही। श्रीहनुमानजी ने केवल चरण-दर्शन ही नहीं पाए, चरणों की शरण भी पाई और वरदकरों की अभयप्रद छत्र-छाया भी। ऐसा परम भाग्यवान् भक्त प्रादुर्भूत ही नहीं हुआ वसुन्धरा के ऊपर, जिसे पद-पंकज और कर-कंज दोनों की साथ-ही-साथ सम्प्राप्ति हुई हो।

लंका प्रवेश के बाद अशोकवाटिका में जाकर और सीताजी को प्रभु का संदेश

सुनाकर श्रीहनुमानजी ने सीताजी को प्रेम निमग्न तथा बेसुध कर दिया। इसके बाद उन्होंने इतना धैर्य बँधाया, इतनी हिम्मत दी कि जगज्जनी श्रीहनुमानजी पर अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं और उनका सच्चा मातृत्व उमड़ आया। तब वात्सल्य भाव में डूब जाने के कारण सीतामाता ने श्रीहनुमानजी को सहजही अपना पुत्र स्वीकार कर लिया और मातृरूप में बोली- **हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना। जातुधान अति भट बलवाना।।**

लीजिए, जिसे स्वयं जग्गजननी ने ही अपना सुत स्वीकार कर लिया, कौन थाह पा सकता है उसके सौभाग्य सागर की? कौन तौल सकता है उसके सौभाग्य सुमेरु को? अब श्रीहनुमान के समान महान् भाग्यवान् कौन रह गया?

और लीजिए। श्रीहनुमानजी के द्वारा सीताजी के समाचार और उनका संदेश सुनकर परमकृपालु और परमकृतज्ञ श्रीरामजी जब कृतज्ञता के भाव में विभोर हो गए, तब श्रीहनुमानजी पर ऐसी पुत्र-वत्सलता उमड़ पड़ी कि आपने भी श्रीहनुमानजी को अपना लाड़ला भाव-पुत्र स्वीकार करते हुए कहा- **सुन सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेऊँ करि विचार मनमाहीं।।** अब भगवान राम ने भी अनायास श्रीहनुमानजी को अपना पुत्र स्वीकार कर लिया। जग्गजननि और जगतपिता दोनों ही जिसको अपना प्यारा भाव-पुत्र मान रहे हों, उससे भी अधिक भाग्यवान श्रीहनुमान ही हैं। इससे सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहनुमानजी में प्रेम और सेवा की अन्यतम गहराई, ऊँचाई और समग्रता है। आप प्रेमाकाश के अप्रतिम प्रकाशकार हैं तथा सौभाग्य संसार के लोकोत्तर चमत्कार। आपके प्रेम और सेवा का गुणोत्कर्ष मनसा चिन्तनीय, वचसा वर्णनीय, शिरसा वन्दनीय तथा कर्मणा अनुकरणीय है।

श्रीहनुमानजी के समान श्रीरामचरणानुरागी कोई भी नहीं है, इसलिए आपके समान बड़भागी भी कोई नहीं है। भक्त शिरोमणि भरतजी का ध्यान श्रीराम के चरणों की कोमलता की ओर अत्यधिक है। रामजी के वनवास के बाद वे रोते हुए कहते हैं कि वन में विश्राम के लिए प्रभु को वृक्षों की छाया मिल जा सकती है, कंद-मूल का भोजन मिल सकता है, किन्तु शिरीष-सुमन से भी समधिक सुकुमार चरण कानन के कठोर, कँटीले, कँकड़ीले और पथरीले पथ पर कैसे चल सकेंगे? सुकुमारी सीताजी की सुकुमार हथेली भी जिन चरणों को कठोर प्रतीत

होती है, वे चरण कंटकों के, कुशाग्रों के और छोटे-छोटे नुकीले पाषाण-खण्डों के ऊपर कैसे चलते होंगे? भरतजी कहते हैं कि इसी दुःख की जलन से दिन-रात मेरी छाती जलती रहती है- न दिन में भूख लगती है, न रात में नींद आती है। चरणों की अतिशय कोमलता का इतना ध्यान होने पर भी भक्त शिरोमणि ने उन चरणों के कष्ट-निवारण के लिए कोई भी उपाय या प्रयास नहीं किया। इसलिए उनका श्रीरामचरण-प्रेम अपूर्ण ही रहा, पूर्ण नहीं हो सका। प्रेम जब सेवा में परिणित हो जाता है, तब पूर्ण कहा जाता है। इससे द्योतित हुआ कि श्रीराम चरण-चंचरीक भरतजी का चरण-प्रेम भी खंडित है, अतएव अपूर्ण है।

उपदेशक रूप-

संत-हृदय श्रीहनुमान रावण के कल्याण की कामना से व्यग्र हो उठे। उन्होंने हर प्रकार से रावण को समझाने का प्रयास किया। उनकी वाणी को भक्ति, विवेक, वैराग्य और राजनीति से सनी हुई बताया गया है-

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपासिन्धु भगवान।।
तदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी।।

"मोह ही जिसका मूल है ऐसे (अज्ञानजनित), बहुत पीड़ा देने वाले तमरूप अभिमान का त्याग कर दो और रघुकुल के स्वामी, कृपा के समुद्र भगवान् श्रीराम का भजन करो। इस प्रकार हनुमानजी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति से सनी हुई बहुत ही हित की वाणी कही।"

अपराध करने वाला व्यक्ति क्रमशः बुराई की दिशा में अग्रसर होता जाता है। एक बार अनजाने में बुराई कर बैठने के बाद जब वह यह पाता है कि समाज ने पीछे लौटने के उसके सारे मार्ग अवरुद्ध कर दिये हैं, तब वह हर ओर से निराश होकर अपराध की प्रवृत्तियों में धँसने के लिए बाध्य हो जाता है। एकमात्र भक्ति ही व्यक्ति को पीछे लौटने की प्रेरणा देती है। रावण के द्वारा सीताहरण-जैसा जघन्य अपराध हो चुका था। ऐसी स्थिति में वह सोच सकता था कि अब तो संघर्ष और युद्ध को छोड़कर उसके लिए अन्य मार्ग है ही नहीं। किन्तु आञ्जनेय ने प्रभु के स्वभाव का संकेत देते हुए उसे यह बताया कि ऐसा कोई पाप अथवा अपराध नहीं है, जिसे प्रभु न भुला सकते हों। उनका स्वभाव कितना

विस्मृतिशील है, यह बतलाने के लिए ही उन्होंने क्षमा के स्थान पर 'बिसारि' शब्द का प्रयोग किया :

प्रनतपाल रघुनायक करुनासिन्धु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तब अपराध बिसारि।।

क्षमा देने वाले व्यक्ति को अपराधी के अपराध का स्मरण रहता है, किन्तु वह अपने औदार्य से दण्ड के स्थान पर दया का परिचय देता है। किन्तु जिसे अपराध का स्मरण ही नहीं है, उसे क्षमा देने की आवश्यकता ही क्यों? आञ्जनेय का तात्पर्य यह था कि यदि तुम प्रभु की शरण में जाओगे तो यह कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है कि तुम्हें दण्ड अथवा क्षमा का पात्र माना जाएगा। वे तो तुम्हारे अपराधों को भुला चुके होंगे। रावण को वे यों भी आश्वस्त कर देना चाहते हैं कि यदि तुम्हें यह भय हो कि जैसे जयन्त को शरण में लेने पर भी एक नेत्र फोड़कर कुछ-न-कुछ दण्ड दिया ही गया तो इस विषय में उसके साथ जो व्यवहार किया गया था, वह केवल ब्रह्मास्त्र की मर्यादा के लिए था। तुम लंका पर पूर्ववत् राज्य कर सकते हो। प्रभु के चरणों का आश्रय ले लेने पर लंका का राज्य शाश्वत रूप में तुम्हारा हो जायेगा :

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू।।

श्रीहनुमानजी ने रावण के अन्तःकरण में सुषुप्त विवेक को भी जगाने की चेष्टा की। वे उसे बताना चाहते हैं कि तुम्हारा जन्म एक महान् कुल में हुआ है। पुलस्त्य कुलोद्भव व्यक्ति में यदि विवेक नहीं होगा तो और किससे उसकी आशा की जा सकती है। वस्तुतः सारी समस्या प्रभु को न पहचान पाने के कारण हुई है- "तुम श्रीराम को एक साधारण राजकुमार समझ बैठे हो। सारे अनर्थों के मूल में तुम्हारा यही भ्रम कार्य कर रहा है। राम साक्षात् ब्रह्म हैं। तुमने जिनसे वरदान प्राप्त किया है, वे भी उनकी तुलना में अल्प हैं। सहस्रों शंकर, विष्णु और ब्रह्म भी तुम्हारी रक्षा करने में समर्थ नहीं होंगे।" हनुमानजी ने "लंका अचल राजु तुम्ह करहू" कहकर सत्ता की अनित्यता की ओर संकेत किया। रावण लंका पर राज्य कर रहा है, किन्तु 'अचल' शब्द के द्वारा वे यह बताना चाहते हैं कि "जिस सत्ता को तुम शाश्वत समझ रहे हो, वह परिवर्तनशील है। वर्षा के जल से जिस नदी की सृष्टि होती है वह ग्रीष्मकाल में सूखकर समाप्त हो जाती है।

किन्तु जिस नदी का मूल स्रोत पर्वत के अन्तराल में है, वह अनवरत बहती रहती है। तुम जिसे अशोक वाटिका समझते थे, वह उजड़कर शोकवाटिका के रूप में परिणत हो गई। अपने जिस पुत्र को तुमने अक्षयकुमार की उपाधि प्रदान की, वह 'क्षय' को प्राप्त हो गया। इसी प्रकार यदि तुम लंका के राज्य को अचल समझते रहे तो वह भी अन्त में 'चल' ही प्रमाणित होगा। ईश्वर के पद को छोड़कर विश्व में और कोई पद अचल नहीं है। इसलिए जो अनित्य और नाशवान् है, उसके प्रति तुम आसक्ति का परित्याग करके प्रभु के चरणों में ही प्रेम करो।"

हनुमानजी की वाक्यावली में चार संकेत प्राप्त होते हैं। भक्ति, विवेक, वैराग्य और राजनीति। सभी दृष्टियों से रावण को समझाने का उद्देश्य रावण के प्रति 'अतिहित' की भावना ही थी। शंकरावतार होने के नाते हनुमानजी अन्तःकरण में रावण के कल्याण की भावना हो, यह स्वाभाविक ही था। पर विश्व के इतिहास में शायद ही कभी किसी गुरु ने शिष्य के कल्याण के लिए इतना कष्ट उठाया हो। शिष्य गुरु के चरणों में नत होकर शिक्षा ग्रहण करे, यह आदेश तो सभी शास्त्रों ने दिया है। पर यहां तो हनुमत् रूप में गुरुदेव ही हाथ जोड़कर शिष्य के सामने खड़े हैं और उसे समझाने का प्रयास करते हैं।

मंदोदरी ने रावण को उपदेश देते हुए उससे राज्य छोड़कर वन में जाने का अनुरोध किया। वह रावण को स्मरण दिलाती है कि एक राजा को जों महान्-से-महान् सफलता प्राप्त हो सकती है, उसे आप पा चुके हैं। आपने सारे विश्व को पराजित कर दिया है।

इसकी तुलना में आञ्जनेय का प्रस्ताव अत्यन्त उदार था। वे राज्यत्याग के स्थान पर अचल राज्य का प्रस्ताव रखते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि रावण-जैसा-व्यक्ति सर्वस्वत्याग की मनः स्थिति में नहीं हो सकता है। जहाँ मंदोदरी ने रावण से ममता और मद के त्याग का अनुरोध किया, वहीं मारुति ने ममता के त्याग का आग्रह रावण से नहीं किया। वे यह भली प्रकार जानते हैं कि रावण के लिए ममत्व का त्याग सर्वथा असम्भव है। इसके स्थान पर वे मद और मोह छोड़ने की प्रार्थना करते हैं :

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा।।

अन्त में तो वे अपने प्रस्ताव को इतना अधिक उदार बना देते हैं कि समग्र

अभिमान के त्याग के स्थान पर केवल तमोगुणी अभिमान के त्याग का उपदेश देते हैं:-

मोह मूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिन्धु भगवान।।

इसका तात्पर्य यह है कि यदि तुम सात्विक और राजसी अहंकारों का परित्याग न कर सको तो कम-से-कम तमोमय अहंकार का ही परित्याग कर दो। अपने उपदेश के समापन में आञ्जनेय ने प्रभु के चार नामों का स्मरण किया-राम, रघुनायक, कृपासिन्धु और भगवान्। मानों इन चार नामों के माध्यम से चार मार्गों में से किसी भी मार्ग से प्रभु तक पहुँचने का निर्देश देते हैं" यदि तुम ज्ञानी हो तो वे तुम्हारे लिए 'राम' हैं। राम का अर्थ है- योगी जिनमें रमण करते हैं, या जो योगियों में रमण करता है। इस तरह यह नाम निर्गुण-निराकार का प्रतीक है। ईश्वर को सगुण-साकार न मानने वाले साधक भी राम-नाम को निर्गुण का प्रतीक मानकर उसे स्वीकार करते हैं। यदि तुम भक्ति-मार्ग से उन्हें पाना चाहते हो तो वे तुम्हारे लिए 'रघुनायक' हैं। भक्तों की यह मान्यता है कि निर्गुण-निराकार ब्रह्म उनकी आकांक्षा पूर्ण करने के लिए रघुवंश में अवतरित होकर विविध प्रकार की लीलाएं सम्पन्न करते हैं और भक्तों को प्रभु की इस लीला में इतना आनन्द आता है कि वे सगुण और निर्गुण के विवाद में न पड़कर कोशलपति रघुनायक को ही अपने हृदय में बसा लेते हैं। कर्मयोगियों के लिए वे साक्षत् 'भगवान्' हैं। छह प्रकार के ऐश्वर्यों का जिसमें एक साथ निवास हो, उसे भगवान् कहते हैं। यदि ऐश्वर्य की उपलब्धि ही तुम्हारे जीवन का लक्ष्य हो तो तुम्हें षडेश्वर्य सम्पन्न भगवान् का ही आश्रय लेना चाहिए। और यदि अन्तःकरण में ऐसी प्रतीति तुम्हे हो रही हो कि ज्ञान, भक्ति अथवा कर्म, किसी भी मार्ग में चलने की योग्यता तुममे नहीं है तो भी तुम्हें भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि प्रभु साक्षात् 'कृपासिंधु' हैं। अपने अभाव को समझकर जो व्यक्ति उनके समक्ष अपने को अर्पित कर देता है, वे उसे उसी रूप में तत्काल स्वीकार कर लेते हैं।" ज्ञानी, भक्त और कर्मयोगियों की अपेक्षा भी दीन उन्हें अधिक प्रिय हैं। उनके स्वभाव का वर्णन इसी रूप में किया गया है। यहाँ तक कि सृष्टि-रचयिता ब्रह्मा भी स्वयं को इसी रूप में प्रभु के समक्ष प्रस्तुत करते हुए उनकी दीनप्रियता की दुहाई देते

हैं। भगवान् भूतभावन शिव भी प्रभु के राज्याभिषेक में जाकर प्रभु से अपना परिचय दीन के रूप में देते हुए दृष्टि डालने की प्रार्थना करते हैं। तुम्हारे आराध्य ब्रह्मा और शिव भी जब दीन के रूप में कृपासिन्धु की आराधना करते हैं, तब तुम्हें संकोच करने की कोई आवश्यकता नहीं है। कोई भी ऐसी पद्धति नहीं थी, जिसके द्वारा आञ्जनेय ने रावण को प्रभु की ओर उन्मुख करने का प्रयास न किया हो, किन्तु रावण का अभिमान उसे इन पावन उपदेशों की अवहेलना करने के लिए बाध्य करता है।

अतिबलवीरा रूप

श्रीहनुमानजी बल पौरुष युक्त दिव्य कार्य- 'बाल समय रवि भक्षि लियो. ...' 'देवन आनि करी बिनती तब छांड़ि दियो रवि कष्ट निवारो।' यह अलौकिक आश्चर्यजनिक पुरुषार्थ युक्त कार्य देखकर पुरस्कार स्वरूप वरदान देते हुये यमराज ने कहा मृत्यु से भी आप अभय होंगे। देवताओं ने इन्हे आयुधों से अवध्य कहा, वरुण ने अमरत्व प्रदान किया। भगवान शिव ने शूल और पाशुपतास्त्र से भी इन्हें अभयता प्रदान की। विश्वकर्मा ने भी वर दिया कि आयुध आप पर प्रभाव नहीं डाल सकेंगे ! रामायण मंजरी में उल्लेख है- पवनसुत हनुमान पर मृत्यु भी प्रभाव नहीं डाल सकेगी तात्पर्य हुआ कि ये-कालजयी इच्छा मृत्यु होंगे जब चाहेंगे तभी अन्तर्ध्यान (विलुप्त) होंगे। जगन्माता सीता ने भी इन्हें अमर होने का आशीर्वाद दिया (अजर अमर गुण निधि सुत होऊ)।

इनका पराक्रम देखें और विनम्रता भी देखें- हनुमत् सहस्त्र नाम में लिखा है- महावीर हनुमान ने एक थप्पड़ से वीर अक्षय के आठ घोड़ों को मार दिया। अक्षय जो अक्षय था उसका भी वध कर दिया। अकेले हनुमानजी ने रावण की सेना में घुसते हुये रावण जैसे विश्वविजयी को ललकारते हुए निर्भीक स्वर में कहा- लंकेश रावण सुनो। तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र धरे के धरे रह जायेंगे जब हम शैलखण्डों की वर्षा कर युद्ध करेंगे और श्रीराम के अमोघवाण से तुम्हारी भी मृत्यु होगी। अतः समझ लो, सोच लो! यदि अपना कल्याण भलाई चाहते हो तो श्रीराम की शरण जाओ, तो तुम्हारी रक्षा हो सकती है अन्यथा जो धन-वैभव तुमने चन्द्रमौलि पार्वतीश्वर की कृपा से प्राप्त किया है, वह धन संपत्ति जाने वाली है।

यह सुनकर दंभी रावण के मुंह से कपि के प्रति गुरु सम्बोधन शब्द निकल

ही गया। यह चाहें व्यंग में ही कहा गया हो किन्तु युद्ध में अंजनी माई के लाल महावीर के मुष्टि प्रहार से जब दशानन का पाला पड़ा तो मुक्का लगते ही रावण गिर पड़ा। क्षणभर को मूर्च्छित हो गया। होश आने पर बजरंगबली हनुमानजी के प्रति उसके प्रशंसा भरे उद्‌गार प्रगट हो गए, हनुमानजी की सराहना करने लगा।

यश की श्रेष्ठता तभी है जब विरोधी शत्रु भी कीर्ति का बखान करने लगे। इस दृष्टि से भी शूरवीर हनुमानजी खरे उतरते हैं। अंगद से भी रावण ने श्रीहनुमान के प्रति प्रशंसात्मक उद्‌ग्ार व्यक्त किया। उसने कहा एक महावली कपि है जिसने लंका जला दी। अंजनीनन्दन के एक मुक्के के प्रहार से सिंहिनी पृथ्वी पर लुढ़क गई। उसके मुंह से खून की धारा बहने लगी और राक्षसी तत्क्षण मर गई। ऐसे पराक्रमी हनुमानजी हैं।

इनका अनुंपम एवं अलौकिक पुरुषार्थ देखें। महावीर रातों रात संजीवनी विशल्यकरणीं औषधि जड़ी बूटी लेने गये। जहाँ तेइस करोड़ गन्धर्व इस कार्य में बाधक हो रहे थे। उन सबको महावीर हनुमानजी ने पूँछ में लपेट-लपेट कर समुद्र में फेंक दिया और द्रोण पहाड़ उखाड़ कर, लेकर चल पड़े जो अस्सी मील ऊँचा और इतना ही लम्बा था।

द्रोणाचल की मृत संजीवनी से लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर हो गई! वे स्वस्थ हो उठ बैठे और द्रोणगिरि की शिल्यकरणी-सुवर्णकरणी मृतसंजीवनी आदि वनस्पतियों की सुगन्ध से ६७ करोड़ सैनिक योद्धा जो घायल पड़े थे उनके घाव भर गए। जिन योद्धाओं के शरीर शरबिद्ध थे उनके शरीर से तीर निकल गये। उसके बाद रात ही में उन वनस्पतियों सहित द्रोणपर्वत को यथा स्थान रख आये, जहाँ से लाये थे। इस प्रकार रात ही में सब १८ करोड़ २० लाख मील की यात्रा की।

श्रीहनुमान के पदाघात का चमत्कार देखें। आञ्जनेय ने पृथ्वी पर पैर फटकारा तो भूमि में गड्ढा बन गया। इतना गहरा गड्ढा जिसमें समुद्र का जल आ जाय। हनुमानबाहुक देखें-

"कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाड़ै मानो,
नाप के भाजन भरि जलनिधि भो।"

एक बार हनुमानजी ने महेन्द्र पर्वत पर चरण आघात कर दिया। महेन्द्र पर्वत

चीत्कार कर उठा। हनुमानजी के चरण प्रहार से महेन्द्राचल काँपने लगा। सीतान्वेषण के समय उनके चरण के बल शक्ति को देखें कि जिस पर्वत पर पैर रखकर कूदना चाहें वह पर्वत ही धंस गया- "ज़ेहिं गिर चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पताल तुरन्ता।।" यही हनुमच्चरण भक्तों के लिये वंदनीय हैं, संकटमोचक हैं। पूँछ और चरण भक्तों के ताप संकट भी दूर करते हैं। तुलसीदास की बाहु पीड़ा हनुमत कृपा से दूर हो गई थी-

"तेरे थपे उथ्पै न महेस, थपै थिर को कपिजे घर घाले।
तेरे निवाजे गरीब निवाज विराजत बैरिन के उर साले।।
संकट सोच सबै तुलसी जिलेय नाम फटै मकरी के-से जाले।
बूढ़ भये बलि, मेरिहि बार, कि हारि परै बहुतै नत-पाले।।"

आगे कहा- "बाँह पीर महावीर वेगि ही निवारियो, ढ़ील तेरी वीर मोहि पीरते पिराति है।"

बस प्रार्थना सुनते ही भक्तवत्सल हनुमानजी ने तुलसी की व्यथा-बाहु पीड़ा दूर कर दी। संकट टल गया जो तुलसी ने पावली में कहा- 'बालक विकल जानि पाहि प्रेम पहिचानि तुलसी की बाँह पर लामी लूम फेरिये।' बस संकटमोचन-कृपानिध ाान ने बाँह पर पूँछ फेर दी तुरन्त तुलसी स्वस्थ हो गए, कष्ट जाता रहा।

लक्ष्मण मूर्च्छा होने पर मर्यादापुरुषोत्तम राम से हनुमानजी ने कहा कि यदि आज्ञा हो तो लंका उखाड़ लाऊँ या समुद्र में डुबो दूँ- 'जो प्रभु आयसु पाऊँ. .. अबही जाउं उपारि लंकगए उदधि पार लै आऊँ।'.... हनुमान ने कहा- अमृतकुंड ला सकता हूँ। मर्यादा पुरुषोत्तम ने मर्यादा युक्त वचन कहा- 'यमराज से इन्हें जीवित करा दो।' हनुमानजी का युद्ध कौशल, अद्भुत आश्चर्य-जनक युद्ध शैली देखकर श्रीरामजी लक्ष्मण से हनुमानजी की सराहना करते हैं-

हाथिन सों हाथी मारे, घोरे सो सँघारे घोरे,
रथिन सों रथ विदरनि बलवान की।
चंचल चपेट, चोट चरन, चकोट चाहें,
हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की।
बार-बार सेवक-सराहरना करत रामु,
'तुलसी'- सरा है रीति सहेब सुजान की।

लाँबी लूम लसत, लपेटि पटकत भट,
देखौ देखौ, लखन ! लरनि हनुमान की।।

महाकवि तुलसीदास ने हनुमानजी के पराक्रम की बड़ाई करते हुए कहते हैं-

"पंचमुख छः मुख भृगु मुख्य भट असुर सुर।
बाँकुरो वीर विरुदैत विरुदावली वेद, वदत।।"

मुनिवर त्रिकालदर्शी वाल्मीकि ने आदि रामायण महाकाव्य में हनुमानजी को सर्वोत्कृष्ट वीर पुंगव लिखा। श्रीराम हनुमानजी के अनुपम बली होने के प्रशंसात्मक उद्‌घोष करते कहते हैं कि हनुमान जैसा वीर न इन्द्र है, न काल है, न विष्णु है, न कुवेर है-

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनुमतः।।

महर्षि अगस्त्यजी भी हनुमान के पराक्रम बुद्धि, शील की प्रशंसा करते हैं। महाकवि वाल्मीकि के शब्दों में प्रस्तुत है-

पराक्रमोत्साह मति प्रताप शौशील माधुर्य न यानयैश्य।
गाम्भीर्य चातुर्य सुवीर्य धैर्य हनुमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके।।

वेदव्यासजी ने महाभारत में हनुमानजी की प्रशंसा का वर्णन किया है। हनुमानजी की पूँछ की शक्ति-पुच्छ बल-के सम्बन्ध में लिखा है-दक्ष सहस्त्र गजबल की शक्ति रखने वाले भीमसेन ने हनुमान की पूँछ उठाने में पूरी शक्ति लगा दी। उठाना तो दूर रहा पूंछ को टस से मस नहीं कर सके और वे नतमस्तक हो गये। यह उनके अग्रज प्रणम्य वायुनन्दन हैं। भीम ने इनसे सहायता ली। द्वापर के युगपुरुष महान वीर भीष्म पितामह ने अभिनन्दनीय स्वर में हनुमानजी के पराक्रम की प्रशंसा की है। भीष्म ने कहा है- हनुमानजी के समान अति बली तीनों काल में त्रिलोक में नहीं हुआ। तुलसी के शब्दों में इन भावों को देखें-

भीषम कहत मेरे मन अनुमान, हनुमान-सारिखो त्रिलोक में न बलु भो।।

लंकाधिपति रावण की पत्नी मंदोदरी स्वयं हनुमानजी की प्रशंसा अपने पति रावण से करती है। उसने कहा- पतिदेव सुनो-आप लक्ष्मण रेखा को पार नहीं करसके। रामदूत महावीर हनुमान ने आठ सौ मील समुद्र कूद कर यहाँ लंका में आकर.लाखों सैनिक मार डाले, लंका फूँक कर चला गया आप उसे बन्दी नहीं

बना सके। लंका जला दी और पूँछ रंचमत्र नहीं जली। प्रकृति पर, अग्नि पर भी उसका नियन्त्रण देखा। अतः उन राम से सन्धि कर लो।

लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ पुत्र भीमनादिनी नगरी के महाराक्षस से युद्ध कर रहे थे जब पराजित होने लगे तो, गर्गसंहिता में वर्णन है, उन्होंने महावीर हनुमानजी को स्मरण किया। कातर स्वर में पुकारते हुए कहा-

हनुमन अंजनी सूनु महावत पराक्रमः।
लोल लांगूलपातेन ममारातान्निपातयः।।

ज्योंही कृष्ण पुत्र ने कपीन्द्रास्त्र संधान किया तुरन्त भक्तवत्सल संकटमोचन कृपानिधान हनुमानजी प्रकट हो गए और उस दानव को अपनी बृहद् पूँछ में लपेट कर आठ सौ मील की ऊँचाई की दूरी पर उसे आकाश में फेंक दिया। जब वह आकाश से भूमि पर गिरा तो महावीर हनुमानजी ने उसे एक मुक्का मारा। मुष्टि प्रहार से वह वहीं ढेर हो गया और केशवनन्दन की रक्षा हो गई।

अञ्जनानन्दन पवनकुमार श्रीहनुमानजी का स्मरण आते ही उनके दोनों रूप- 'अतुलितबलधामा' एवं 'ज्ञानिनामग्रगण्यम' हमारे सामने प्रकट हो जाते हैं। श्रीमारुति में बल और ज्ञान की पराकाष्ठा में उनके बहिरंग और अन्तरंग दोनों पक्षों का समन्वय है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्रीहनुमानजी को 'अतुलितबलधामम्' कहकर योगदर्शन के 'विभूतिपाद' में निर्दिष्ट संयम की ओर संकेत किया है। 'विभूतिपाद' में वर्णित सारी सिद्धियाँ तथा अन्य प्रकार के अद्भुत एवं रहस्यमय चमत्कार संयम द्वारा ही किये जा सकते हैं। संयम को आप आधुनिक 'परमाणु बम' ही समझें, जिसमें सभी प्रकार की अद्भुत शक्तियाँ संनिविष्ट हैं। दर्शन की दृष्टि में स्थूल भूतों की अपेक्षा सूक्ष्म भूत सूक्ष्मतर हैं, उनकी अपेक्षा तन्मात्राएँ और इन्द्रियाँ सूक्ष्मतर हैं और उनकी अपेक्षा भी अहंकार तथा अहंकार की अपेक्षा चित्त। सांसारिक सभी पदार्थों की प्रकृति होने के कारण यह सभी के साथ तदाकार हो सकता है; सबसे सूक्ष्म होने के कारण सबमें प्रविष्ट होकर उनमें यथोचित परिणाम उत्पन्न कर सकता है। संयम में चित्त का ही सारा खेल होता रहता है।

'योगदर्शन' के अनुसार धारणा, ध्यान एवं समाधि- तीनों एक ही संयम रूप क्रिया के भाग हैं। नासिकाग्र, भ्रूमध्य, कण्ठ आदि के किसी एक विषय में चित्त

को ठहरा देना 'धारणा' है। कुछ देर तक लगातार चित्त का किसी एक स्थान पर स्थिति रहना 'ध्यान' कहलाता है। वही ध्यान जब सूक्ष्म के साथ अविच्छिन्न गतिका रूप ले लेता है, अर्थात् ध्यान करने वाले को 'ध्येय' के अतिरिक्त और किसी की भी सुध-बुध नहीं रह जाती, तब ध्यान की वह अवस्था 'समाधि' कहलाती है। अब पाठक 'विभूतिपाद' के २४वें सूत्र पर ध्यान दें- 'बलेषु हस्तिबलादीनि- बलों में संयम करने से हाथी आदि के समान बल प्राप्त होते हैं।' भाव यह है कि जब योगी हाथी, सिंह, व्याघ्र आदि के बल तथा वायु आदि के वेग में तदाकार होकर साक्षात्-पर्यन्त संयम करता है, तब उनके-जैसे बलों को प्राप्त होता है। अर्थात् इनमें से जिस-किसी के बल में संयम किया जाता है, उसी का-सा बल प्राप्त होता है। श्रीपवनकुमार तो साक्षात् वायुनन्दन ही हैं। उनमें अप्रमेय बल है। कारण से कार्योत्पत्ति होती है। बीज कारण और वृक्ष कार्य है। बरगद का एक छोटा-सा बीज तो आप नाक के एक छिद्र में भी रख सकते हैं, पर उसी बीज से प्रसूत-वर्धित वृक्ष कितना स्थान लेगा, विचार कर लें। मिट्टी के ढेले पर न तो पानी लाया जा सकता है और न दूध-घी ही रखा जा सकेगा; पर उसी मिट्टी से बने घड़े में पानी ले आयें, चाहे घी-दूध रख लें। अभिप्राय इतना ही है कि पवन में जो बल है, जो शक्तियाँ हैं, पवनात्मज में वे सभी पवन की अपेक्षा विशेष हैं, अधिक विस्तृत हैं।

पवनपुत्र हनुमान ने रामायण में चार चुने वीरों पर मुष्टिका-प्रहार किया है। लंकानगरी की अधिष्ठात्री देवी लंकिनी पर हनुमानजी का प्रथम मुष्टि-प्रहार हुआ है-

मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी।।

लंकिनी के प्राण-पखेरू न उड़ पायें, इसलिये उसे हलके-से ही मारा, नहीं तो स्त्री-हत्या हो जाती है। लंकिनी ने पहले तो हनुमानजी को 'चोर' कहा था, परंतु पीछे जब वह सँभलकर उठी, तब उसने उनके लिये दोनों हाथ जोड़ लिये।

दूसरा मुष्टिका- प्रहार मेघनाद पर अशोक-वाटिका में हुआ है। हनुमानजी का यह दूसरा मुक्का मेघनाद कभी नहीं भूला। देखिये-

मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई।।
उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया।।

मुक्का लगते ही मेघनाद मूर्च्छित हो गया; परंतु उसके प्राण बच गये; क्योंकि हनुमानजी का मुक्का तो लोगों को पाठ पढ़ाता है- उनके प्राण नहीं लेता। उसी मेघनाद का श्रीरामानुज लक्ष्मणजी से युद्ध छिड़ा है। दोनों के बीच हनुमानजी कूद पड़े हैं। वे बार-बार मेघनाद को ललकार रहे हैं, पर वह तो भुक्तभोगी है। हनुमानजी का मुक्का क्या भूल जाने का विषय है? मेघनाद हनुमानजी के सामने आता ही नहीं।

तीसरा मुक्का रावणानुज कुम्भकर्ण को लगा है- ऐसा भूधराकार शरीरधारी कुम्भकर्ण भी हनुमानजी के मुष्टिका-प्रहार से तिलमिला उठा है; कलाबाजी खाता हुआ पृथ्वी पर गिर गया है। पुनः उठा तो सही, पर उधर हनुमानजी का मुक्का तैयार था। मुक्का लगा और कुम्भकर्ण भूतलपर चक्कर काटकर पुनः गिर पड़ा।

चौथा मुक्का रावण को लगा है। पूर्वपिक्षया यह भीषण वज्र-मुष्टि-प्रहार है। लंकिनी, मेघनाद तथा कुम्भकर्ण को तो मुष्टिका-प्रहार मात्र लगा है, पर लंकेश को वज्र-मुष्टिका लगी है-

मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा।।
मुरुछा गै बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा।।

हनुमानजी की इस वज्र-मुष्टिका ने तो लंकापति रावण को भी मूर्च्छित कर दिया है। इस पर अब दार्शनिक दृष्टि से विचार करें। यह मानी हुई बात है कि एक-एक अँगुली का अलग-अलग अपना महत्त्व, प्रभाव और कर्तव्य है। पाँचों की समवेत शक्ति मुष्टिका बन जाती है। मार-पीट में क्या बच्चे, क्या जवान और क्या बूढ़े- सभी मुक्का-मुक्की कर लेते हैं। तात्त्विक दृष्टि से ये पाँचों अँगुलियाँ ज्ञानेन्द्रियों की प्रतीक हैं। मोड़ देने से 'मुष्टिका' बन जाती है। अंगुष्ठ में अग्नि-तत्त्व, मध्यमा में आकाश-तत्त्व, तर्जनी में वायु-तत्त्व, अनामिका में जल-तत्त्व और कनिष्ठका में पृथ्वी-तत्त्व स्थित हैं। इन पाँचों की समष्टि अर्थात् मुड़कर एकताबद्ध होना ही 'मुष्टिका' है। इसमें बड़ी शक्ति आ जाती है। हाँ, इसमें ब्रह्मचर्य बल तथा योगज संयम भी अपेक्षित है। रावण को वज्र-मुष्टिका लगी थी। यों तो हनुमानजी के मुक्के से मूर्च्छा चारों को आयी थी।

रावण ने अपने पराक्रमी अस्सी 'हजार' किंकर नामक राक्षसों को, प्रहस्त-पुत्र जम्बुमाली को, सात मन्त्रिपुत्रों को तथा पाँच सेनापतियों को क्रमशः

भेजा। उन्हें देखते ही युद्ध के उत्साह में हनुमानजी ने बड़ी भयंकर गर्जना की। उन्होंने कुछ चुने-चुनाये भटों को तो काल के गाल में पहुँचाया और कुछ चोट खाये हुए अधमरों को रावण के पास समाचार पहुँचाने के लिये छोड़ दिया। वे घायल राक्षस गुहार लगाते हुए रावण के पास पहुँचे। इस बार रावण ने अपने प्रिय पुत्र कुमार अक्ष को युद्धार्थ भेजा। वह महाभट सुभटों की सेना लेकर चला। उसे आता देखकर हनुमानजी ने एक वृक्ष को हाथ में लेकर उसे डाँटा और देखते-ही-देखते उसका वध कर पुनः ऊँची ध्वनि में गर्जन किया।

अशोक-वाटिका में हनुमानजी को चार बार युद्ध करना पड़ा। चारों युद्धों के तारतम्य को हम इनके गर्जन से समझ सकते हैं। पहली लड़ाई प्रहरी भटों के साथ हुई। वह इनकी दृष्टि में इतनी हल्की रही कि इन्हें युद्ध का आनन्द ही नहीं आया; इसलिये इन्होंने साधारण गर्जन भी नहीं किया। दूसरी लड़ाई रावण के द्वारा प्रेषित जाने-माने भटों के साथ हुई। उसमें इन्हें थोड़ा युद्धोत्साह आया, इसलिये इन्होंने साधारण गर्जन किया। तीसरी लड़ाई महाभट अक्षकुमार के साथ हुई। रावण-पुत्र अक्ष का वध करके ये युद्धोत्साह में जोर से गरजे। चौथी लड़ाई दारुण भट और अतुलित योद्धा मेघनाद के साथ हुई। मेघनाद को देखकर इन्होंने तीन क्रियाएँ एक साथ कीं- कटकटाये, गरजे और दौड़े- कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा।।

हनुमानजी के बल की थाह न भटों ने पायी, न सुभटों या महाभटों ने। रावण से मिलने के ही उद्देश्य से दारुण भट मेघनाद के द्वारा किये गये ब्रह्मास्त्र के प्रयोग का हनुमानजी ने सम्मान किया। अतः मूर्च्छा की लीला की। तब मेघनाद नागपाश में बाँधकर इन्हें रावण की राजसभा में ले गया। रावण से मिलने के बाद अपनी पूंछ में आग लगाने की तैयारी पूरी होते ही इन्होंने अपने विशाल शरीर को योगबल से इतना संकुचित कर दिया कि उन्हें बन्धन से सहज ही मुक्ति मिल गयी। इसके बाद रावण तथा स्वर्गविजेता मेघनाद के देखते-ही-देखते आपने सम्पूर्ण लंका का पूर्णरूप अग्नि संस्कार करके अपने अतुलित बल का झंडा रावण और समस्त लंकावासियों पर गाड़ दिया।

हनुमानजी लात, पूंछ और मुक्का-तीनों से प्रहार करते हैं। इनके तीनों अंगों का बल अद्वितीय तथा अमोघ है, फिर भी इनके मुक्के का प्रहार विशेष सबल

और अचूक है। लंका के तीनों विशिष्ट वीर-रावण, कुम्भकर्ण तथा मेघनाद इनके एक-एक मुष्टि-प्रहार को भी सहन नहीं कर सके। परिणामतः तीनों मूर्च्छित हुए। इनके क्रमशः उदाहरण लीजिये।

प्रचण्ड शक्ति-प्रयोग के द्वारा मूर्च्छित लक्ष्मण को जब रावण उठाने लगा, तब वे उससे उठ न सके; इतने में ही हनुमानजी ने लक्ष्मण को देख लिया और- देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर। आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर।। फिर भी- जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भारा"।। इसके बाद- मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा।।" रावण का मुष्टि-प्रहार प्रघोर था, फिर भी वह हनुमानजी को गिरा नहीं सका; इधर हनुमानजी के मुष्टि-प्रहार से चारों खाने चित्त हो गया वह वीर रावण। रावण मूर्च्छित पड़ा रहा और हनुमानजी उसकी मूर्च्छा-निवृत्ति की प्रतीक्षा करते रहे; किन्तु होश में आते ही रावण से रहा नहीं गया और वह मुक्त-कण्ठ से हनुमानजी के विपुल बल की सराहना करने लगा।

अब पवन-नन्दन के मुक्के से कुम्भकर्ण की मूर्च्छा का प्रसंग देखिये। कुम्भकर्ण के ऊपर- "कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा।।" फिर भी- "मार्‌यो न मनु तनु टर्‌यो न टार्‌यो। जिमि गज अर्क फलनि को मार्‌यो।।"

अशोक वाटिका उजाड़ते समय राक्षसों के संहार के लिये उन्होंने वृक्ष को आयुध बनाया था। हनुमानजी ने एक विशाल साल वृक्ष उखाड़ कर उसे घुमाना आरम्भ किया।

अक्षयकुमार को आते देखकर हनुमानजी ने हाथ में वृक्ष ले लिया और उसको मारकर घोर नाद किया। उन्होंने लंका में युद्ध छिड़ने पर महान् वेग से एक वृक्ष को उखाड़कर अकम्पनके सिर पर प्रहार किया।

ततोऽन्यं वृक्षमुत्पाट्य कृत्वा वेगमनुत्तमम्।
शिरस्यभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम्।।

श्रीहनुमानजी रदसे भी शस्त्र का काम लेते हैं। नारदपुराण में 'दन्तायुधधराय' कहकर उन्हें नमस्कार किया गया है। महाकवि चंद बरदाई ने 'पृथ्वीराजरासो' में उनके रद का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है- "हनुमानजी ने लंका में भ्रमण करते

हुए सीताजी को खोज लिया और मन में श्रीराम का चिन्तन कर बड़े क्रोध से सघन उपवन को नष्ट कर दिया। उन्होंने दीवार पर चढ़कर रदयुद्ध द्वारा अक्षकुमार आदि दनुजवीरों का संहार कर दिया। जब शेष वीरों ने मेघनाद को सूचना दी, तब उसने जाकर उनको पाश में बाँध दिया और उनकी पूँछ में वस्त्र लपेटकर कहा कि 'तुम्हारा अन्त निकट है- ऐसा कहकर उसने वस्त्र से लिपटी हुई उनकी पूँछ में आग प्रज्वलित कर दी, इस तरह उसने सुवर्णमयी लंका को ही जलाकर नष्ट कर दिया।

मुष्टिका को भी वे शस्त्र के रूप में उपयोग करते दिखलाये गये हैं। लंका के युद्धस्थल में उन्होंने कुम्भकर्ण पर मुष्टिका-प्रहार किया था-

तब मारुतसुत मुठिका हन्यो। पर्‌यो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो।।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार हनुमानजी ने कालनेम पर गुरुदक्षिणा के रूप में मुष्टि-प्रहार किया था। उन्होंने उससे दृढ़ मुष्टिका के रूप में गुरुदक्षिणा लेने को कहा और और उसे मार डाला-

गृहाण मत्तो मन्त्रांस्त्वं देहि मे गुरुदक्षिणाम्।
इत्युक्तो हनुमान् मुष्टिं दृढं वद्ध्वाह राक्षसम्।।
गृहाण दक्षिणामेतामित्युक्त्वा निजघान तम्। (वाल्मीकि)

श्री हनुमानजी ने अक्षकुमार के (रथ के) आठ घोड़ों को थप्पड़ से मार डाला। थप्पड़ भी उनके शस्त्ररूप में परिगणित हैं।

वज्रदेह हनुमानजी का अत्यन्त प्रभावशाली शस्त्र लांगूल-पूँछ है। गन्धमादनपर्वत पर कदली-वन में विश्राम करते समय भीम ने उन्हें देखा था। उन्होंने भीम का मार्ग रोक लिया और अपना शरीर बड़ा कर लिया। 'जब श्रीहनुमानजी इन्द्र की ध्वजा के समान ऊँची तथा विशाल अपनी लांगूल को फटकारते, उस समय वज्र की गड़गड़ाहट के समान आवाज होती थी। वह पर्वत उनकी पूँछ की फटकार के उस महान् शब्द को चारों ओर प्रतिध्वनि के रूप में दुहराता था, मानो कोई साँड़ जोर-जोर से डकार रहा हो।'

आपने देखा होगा कि वर्षा में सूर्य के ऊपर जब कभी बादलों का आवरण आ जाता है तब सूर्य का प्रकाश नहीं दिखायी देता और जब बादलों का आवरण छिन्न-भिन्न हो जाता है तो सूर्य का प्रकाश दिखायी देने लगता है।

कबहुं दिवस महँ निबिड़ तम कबहुंक प्रकट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग।।

भगवान राम कहते हैं कि जैसे कभी सूर्य ढक जाता है और कभी प्रकट हो जाता है इसी प्रकार से व्यक्ति का ज्ञान भी कभी व्यक्त होता है और कभी बादलों के आवरण से आच्छन्न हो जाता है। सूर्य को बादल ढक लेता है। इसी प्रकार से वासनारूपी बादल ने जब सुग्रीव रूपी ज्ञान को ढक लिया तब श्रीहनुमानजी की विशेषता सामने आयी। जब श्रीहनुमानजी सुग्रीव को कथा सुनाने के लिए जाने लगे तो गोस्वामीजी उन्हें श्रीहनुमानजी नाम से सम्बोधित नहीं करते हैं। अपितु तुलसीदास जी का शब्द है: 'इहां पवनसुत हृदय विचारा' यहां ' पवन के बेटे' ने विचार किया और पवन का बेटा कहने का तात्पर्य बड़ा अनोखा है। गोस्वामीजी का तात्पर्य है कि जब बादल सूर्य के ऊपर छा जायें तो उन्हें छिन्न-भिन्न करके सूर्य को पुनः प्रकट करना तो पवन का ही कार्य है और आज तो यह सुग्रीव के जीवन में जो वासना के बादल आ गये हैं उन्हें छिन्न-भिन्न करने जा रहे हैं, इस लिये पवनसुत ठीक है।

यह श्रीहनुमानजी कीं विशेषता है कि चाहे जिस प्रकार का भी संकट क्यों न हो श्रीहनुमानजी उसे अवश्य दूर कर देते हैं। क्योंकि श्रीहनुमानजी अगर केवल ज्ञानी होते तो वे ज्ञानियों की सहायता करते, भक्त होते तो भक्तों की सहायता करते, कर्मयोगी होते तो कर्मयोगियों की सहायता करते। लेकिन श्रीहनुमानजी क्या हैं? इसका उत्तर तुलसीदास श्रीहनुमानजी की वन्दना करते समय देते हैं। गोस्वामीजी उनके एक-एक गुण गिनाने लगे। सबसे पहले शरीर का वर्णन करते हुए कहते हैं- 'अतुलित बलधामम्' कि जिनके बल को कोई तौल नहीं पाया। संस्कृत साहित्य में ऐसा वर्णन आया है कि एक बार पूछा गया कि श्रीहनुमानजी में कितना बल है? इसका उत्तर देते हुए कहा गया कि श्रीहनुमानजी में कितना बल है उसका वर्णन तो नहीं किया जा सकता पर थोड़ा-सा माप अवश्य बताया गया। वहाँ पर कहा गया कि दस हजार हाथियों के समान बल तो एक ऐरावत हाथी में है (इन्द्र का हाथी), दस हजार ऐरावत हाथियों के समान बल इन्द्र में है और दस हजार इन्द्रों में जितना बल होना चाहिए वह श्रीहनुमानजी की कनिष्ठा उँगली में है। तो अब सोच लीजिये कि जहाँ कनिष्ठा उँगली के बल की यह बात

है तो वहाँ पर सम्पूर्ण शरीर के बल की माप तो हो ही नहीं सकती है।

सीताजी ने मारीच को देखकर भगवान राम से कहा था कि महाराज! आप इस मृग को यदि पकड़ लाइये तो मैं पाल लूँ और यदि मार दीजिये तो इसका मृगचर्म आपके बैठने के काम आयेगा। परन्तु भगवान राम ने उस मारीच को पकड़ने की चेष्टा नहीं की अपितु उसको सीधे मार ही डाला। तव विदेहनन्दिनी कह सकती हैं कि महाराज! आपसे तो मैंने यह कहा था कि अगर पकड़ में आ जाये तो मैं पाल लूँ, किन्तु आपने उसे पकड़ा क्यों नहीं? भगवान राम का अभिप्राय था कि जिस मृग को मारना चाहिए उसे तो मैंने मार दिया परन्तु जो पालने योग्य मृग (हनुमान-शाखामृग) था उसे तो बाद में मैंने आपके पास भेज ही दिया था क्योंकि पालने योग्य मृग तो यह हनुमान ही है, यही आपका प्रिय पात्र बनने के योग्य है। प्रभु ने कहा- सीते! मारीच तो छोटा-सा मृग है पर इसका तो सारा पर्वताकार शरीर ही सोने का बना है। उस मारीच में तो थोड़ा सोना था और जब मैंने बाण चलाकर देखा तो वह भी नकली निकला। भगवान ने मारीच की छाती में छेद इसलिए किया कि प्रभु ने सोचा कि ऊपर सोना दिखायी दे रहा है परन्तु इसके भीतर क्या है यह भी तो देखें और ज्यों ही बाण लगा तो भीतर से उसका असली राक्षसत्व प्रकट हो गया। इसलिए श्रीहुनमान को भेजकर मानो प्रभु ने चुनौती दे दी कि वह सोना तो नकली था परन्तु इस सोने की परीक्षा करके देख लो कि यह असली है कि नकली! सचमुच इस सोने में अगर कोई देखे तो उसे क्या दिखायी देगा। तुलसीदासजी ने कहाः

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

इस प्रकार श्रीहनुमानजी तो वस्तुतः दिव्य स्वर्ण हैं और इसी स्वर्ण का प्रलोभन भक्तों के अन्तःकरण में भी विद्यमान है। एक ओर भक्ति और भगवान में मारीच रूपी स्वर्ण अगर दूरी उत्पन्न करता है तो श्रीहनुमानजी के रूप में जो स्वर्ण है उन दोनों को निकट ले आता है।

श्रीहनुमानजी इतने बड़े कर्मयोगी हैं कि राक्षसों का विनाश करने में उनसे बढ़कर कोई कुशल नहीं है। हनुमन्नाटक में तो वर्णन आता है कि जब श्रीहनुमानजी ने लंका की पहली यात्रा की उस समय लंका में जितनी सेना थी

उसकी एक चौथाई सेना को तो हनुमानजी ने अशोक वाटिका में ही मार दिया था, बाकी बची हुई सेना को प्रभु, श्रीलक्ष्मण तथा सारी सेना ने मिलकर इकतीस दिन में मारा। यह श्रीहनुमानजी का विलक्षण पराक्रम है जो दुष्टों को जलाकर नष्ट कर देते हैं। इतने बड़े पुरुषार्थी हैं कि इसलिए श्रीहनुमानजी की वन्दना 'दनुजवन कृशानु'' कहकर की गयी है। इतना होने के साथ-साथ उनकी विलक्षणता यह है कि जो दूसरों पर प्रहार करते हैं बहुधा उनके हृदय में द्वेष होता है, घृणा होती है। पर श्रीहनुमानजी के साथ ऐसी बात नहीं है। श्रीहनुमानजी तो 'ज्ञानिनामग्रगण्यम्'- ज्ञानियों में अग्रगण्य हैं। इतना बड़ा संहार करने के बाद भी जिनका अन्तःकरण द्वेष रहित है उससे बढ़कर ज्ञानी कौन होगा?

मनुष्यों की तो कौन कहे, देवताओं में भी प्रत्यभिज्ञा-शक्ति (पहचानने की सूक्ष्म शक्ति) का प्रायः अभाव देखा जाता है। वृत्रासुर में भगवद्भक्ति है, यह बात देवताओं के भी राजा इन्द्र को तब ज्ञात हुई, जब देवासुर-संग्राम में वृत्रासुर ने भगवत्स्मृति से सर्वतः संकुल होकर अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये और वह भक्ति-भाव में करुणार्द्र स्वर से भगवद्दर्शन के लिये व्याकुल होकर प्रार्थना करने लगा-

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिक्षते त्वाम्।।

रजस्तमः स्वभाववाले वृत्रासुर में सहसा सात्त्विक गुण का गौरवगर्भित उदय देखकर इन्द्र को विवश होकर कहना पड़ा- अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी। अर्थात्, हे दानव ! मैं नहीं जानता था कि रजस्तमोवृत्ति वाले तुममें इतनी अचल-अटल सात्त्विक भावना का प्राबल्य हो सकता है। तुम तो मुझसे भी आगे निकल गये। इसी प्रकार भगवद्भक्त अम्बरीष को महर्षि दुर्वासा कहाँ पहचान सके? यदि पहचान पाते तो उसे जलाने के निमित्त कृत्या उत्पन्न नहीं करते। इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा-शक्तिहीनता के बहुत-से उदाहरण देवताओं, दानवों और ऋषियों में मिलते हैं। किंतु जब हम श्रीरामभक्त हनुमानजी महाराज की प्रत्यभिज्ञा-शक्ति का विचार करते हैं तो स्पष्टतया विदित होता है कि उनमें व्यक्ति को, उसकी आकृति देखते ही, पहचान जाने की विलक्षण शक्ति थी। इसलिये उन्हें 'बुद्धिमतां वरिष्ठम्'- विरुद दिया गया।

सुन्दरकाण्ड में उनकी प्रत्यभिज्ञा-शक्ति का पूर्ण परिचय मिलता है। पूर्वपरिचित

अथवा पूर्व-दृष्ट-श्रुत स्थान और व्यक्तियों को एवं उनकी विशेषताओं और दुर्बलताओं को पहचान लेना सहज साध्य है, कष्ट-साध्य नहीं; किन्तु जिस स्थान अथवा देश-विशेष को कभी देखा-सुना नहीं, सर्वथा नवीन उस उस देश-विशेष के लोगों की आभ्यन्तर प्रकृति को जानकर स्वामी के कार्य को बना लेना प्रकृष्ट प्रत्यभिज्ञा-शक्ति का प्रबल परिचायक है। रामायण में भगवान् श्रीराम के अति निकट रहने वाले कितने हीं पात्र हैं, जो उनके स्वभाव को नहीं पहचानते। सहोदर भ्राता श्रीलक्ष्मण के विचारों और भावों के श्रीराम से टकराने के बहुत-से उदाहरण हैं, किंतु श्रीहनुमानजी तो किष्किन्धा में पम्पासरोवर पर जब श्रीराम से प्रथम बार मिले हैं, तभी श्रीराम उनकी प्रत्यभिज्ञा-शक्ति से इतने अधिक प्रभावित हो जाते हैं कि उनके श्रीमुख से यह शव्द निकलता है- 'बहु व्याहरतानेन न किंचितपशब्दितम्।' श्रीराम लक्ष्मणजी से कहते हैं कि श्रीहनुमानजी ने कितनी सुन्दर अर्थभाववती किंतु शब्दतः अल्पीयसी वाणी में अपना अभिप्राय कह दिया और सबसे बड़ा गुण यह है कि उनके भाषण में एक भी अक्षर व्यर्थ अथवा निष्प्रयोजन नहीं प्रयुक्त हुआ।

लंका में प्रवेश करते समय जितने विघ्न उनके सम्मुख आते हैं, अपनी प्रत्यभिज्ञा-शक्ति के प्रभाव से वे उन सबका मर्म समझते हुए आगे बढ़ते रहे हैं। जब वे अशोक-वाटिका में पहुँचते हैं तो श्रीसीताजी को देखते ही पहचान जाते हैं। श्रीवाल्मीकि ने कहा है-

तां विलोक्य विशालाक्षीमधिकं मलिनां कृशाम्।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः।

इसके अतिरिक्त श्रीहनुमानजी की प्रत्यभिज्ञा-शक्ति का परमोत्कृष्ट प्रमाण तब मिलता है, जब विभीषण के शरण आने पर श्रीराम के संन्निकट रहने वाले सुग्रीव, लक्ष्मण आदि सभी यह आशंका करते हैं कि राक्षसराज रावण का भाई विभीषण कपट से भेद लेने के लिये शरण में आया है, समाश्रित भाव से नहीं। सभी पार्श्ववासियों के विचार जानने के बाद जब भगवान् श्रीराम श्रीहनुमानजी के मुख की ओर उनका अभिमत जानने के भाव से देखते हैं, तब वे स्वाभाविकरूप से सहजभाव के साथ अपना अभिप्राय- जिसका आधार प्रबल प्रत्यभिज्ञा-शक्ति है, वताते हुए कहते हैं कि विभीषण को जैसा बताया जा रहा है, वह वैसा नहीं है, उसका जन्म यद्यपि राक्षस-कुल में हुआ हे, पर वह स्वभाव से राक्षस नहीं, महात्मा

है, धर्मात्मा है।' हनुमानजी की प्रत्यभिज्ञा-शक्ति की विजय होती है और सब लोग अपने-अपने विचार बदलकर उन्हीं के साथ हो जाते हैं। भगवान् श्रीरामजी उनकी प्रत्यभिज्ञा-शक्ति की प्रशंसा करने लगते हैं।

श्री हनुमानजी हिन्दू संस्कृति के अभिन्न अंग एवं देवता हैं। उत्तर हो या दक्षिण, पूरब हो या पश्चिम, चारों दिशाओं में महावीरजी या मारुति का मन्दिर अवश्य मिलेगा। हिन्दू समाज में हनुमानजी सुखसाध्य, सर्वसुलभ और सव की मनोकामना पूरी करने वाले देवता हैं। ये अभयदाता, अभिमतदाता, बुद्धिविधाता और त्राता हैं। वस्तुतः मुकदमे की सुनवायी हो, कोई अनुशसनात्मक कार्यवाही हो, भूत-प्रेत बाधा से पीड़ित हो, कहीं भी किसी भी प्रकार की विपत्ति हो, लोग श्रीहनुमानजी की आराधना में लगे हैं। वे श्रीहनुमान मन्दिर में पूजा अर्चना करते हैं। नास्तिक कहलाने वाले वाले लोगों को भी विपत्ति में पड़ने पर हनुमान मन्दिर का चक्कर काटते देखा गया है। ऐसे हैं श्री हनुमानजी। यह बात सच भी है कि देवता, औषधि और गुरु के विषय में विश्वास ही फलदायी होता है। इसी विश्वास के आधार पर सभी धर्म एवं उपासना पद्धतियां फलफूल रही हैं।

वेदव्यासजी ने भी महाभारत में हनुमानजी की प्रशंसा की है। दक्ष संहस्त्र गजबल की शक्ति रखने वाले भीमसेन ने हनुमानजी की पूँछ उठाने में पूरी शक्ति लगा दी। उठाना तो दूर रहा पूंछ को टस से मस नहीं कर सके और वे नतमस्तक हो गये। भीष्म पितामह ने अभिनन्दनीय स्वर में हनुमान के पराक्रम की प्रशंसा की है- हनुमान के समान अति बली तीनों काल में त्रिलोक में नहीं हुआ।

लंकाधिपति रावण की पत्नी मंदोदरी स्वयं हनुमान की प्रशंसा अपने पति रावण से करती है। कान्तासम्मत उपदेश देते हुए उसने कहा- पतिदेव सुनो-आप लक्ष्मण रेखा को पार नहीं कर सके। रामदूत महावीर हनुमान ने आठ सौ मील समुद्र कूद कर यहाँ लंका में आकर लाखों सैनिक मार डाले, लंका फूँक कर चला गया आप उसे बन्दी नहीं बना सके। लंका जला दी और पूँछ रंचमात्र नहीं जली। प्रकृति पर, अग्नि पर भी उसका नियन्त्रण है। अतः उन राम से सन्धि कर लो।

अनन्तब्रह्माण्डनायक लीलापुरुषोत्तमश्रीकृष्ण के ज्येष्ठ पुत्र भीमनादिनी नगरी के महाराक्षसं से युद्ध कर रहे थे। गर्ग संहिता में वर्णन है कि उन्होंने महावीर हनुमानजी का स्मरण किया। तुरन्त भक्तवत्सल संकटमोचन कृपानिधान हनुमानजी

प्रकट हो गए और उस दानव को अपनी बृहद् पँछ में लपेट कर आठ सौ मील की ऊँचाई की दूरी पर उसे फेंक दिया। जब वह आकाश से भूमि पर गिरा तो महावीर हनुमान ने उसे एक मुक्का मारा। मुष्टि प्रहार से वह दानव वहीं ढ़ेर हो गया और केशवनन्दन की रक्षा हो गई।

श्रीहनुमान के नेत्रों की महती विशेषता यह है कि वे अपने स्वामी श्रीराम के पद-दर्शन के लिये सदैव उत्कण्ठित रहते हैं। श्रीसीतासे चूड़ामणि लेकर लंका से किष्किन्धा को प्रस्थान करते समय उन्होंने कहा- 'देवि, अनुजानीहि। त्वरयति मां रामचन्द्रचरा-दर्शनोत्कण्ठा।'

श्रीहनुमान के नेत्र अत्यन्त करुणापूर्ण और संकट तथा चिन्ताओं को दूर कर भगवद्भक्तों के हृदय को प्रमुदित और आनन्दित करते हैं।

महर्षि वाल्मीकिने हनुमानजी की लाल नासिका का वर्णन करते हुए कहा है कि उसके कारण उनका मुख लाली से युक्त था, मानो संध्याकाल से युक्त सूर्यमण्डल हो-

मुखं नासिकया तस्य ताम्रया ताम्रमाबभौ।
संध्यया समभिस्पृष्टं यथा स्यात् सूर्यमण्डलम्।।

'श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्र' के ५वें श्लोक में उनको बड़ी नासा से युक्त- 'बृहन्नासः' कहा गया है।

श्रीहनुमानजी की रसना-जिह्वा श्रीराम के नामामृत-सागर में डूबी रहती है। वह लाल रंग की है। उनके मुख को लाल जिह्वा से युक्त वर्णित किया गया है। महाभारत, वनपर्व के १४६वें अध्याय के ७६वें श्लोक में 'ताम्रजिह्वास्यम्' का उल्लेख है। उनकी जिह्वा श्रीराम के चरितामृत का वर्णन और उसका रसास्वादन करती है। किष्किन्धामें श्रीहनुमानने तरुण तपस्वी श्रीराम-लक्ष्मण के सौन्दर्यको कुशके गुच्छसे उत्पन्न पवित्र सौरभ की उपमा देते हुए कहा है कि 'आपकी वार्ता-सुधा के आस्वाद को मेरी कुशल जिह्वा स्वयं ग्रहण करना चाहती है; आपका वृत्तान्त श्रवणों को सुख देनेवाला है'।

भगवान् श्रीराम के यशके वर्णनमें अपनी जिह्वा की असमर्थता प्रकट करते हुए श्रीहनुमान ने अपनी वाणी के सम्बन्ध में निवेदन किया है कि 'हे राम! सूर्य आपकी कीर्तिका बखान करने में नितान्त अक्षम है, वह तो जुगनू-सा बन जाता

है, चन्द्रमा का प्रकाश मकड़ी के जाले के समान (संकुचित) हो जाता है, तारागण मच्छर के आकारवाले हो जाते हैं, और मेरी वाणी साधारण दशावली कुण्ठित हो जाती है।'

श्रीहनुमान की जिह्वा परम सौभाग्यवती है; क्योंकि उस पर विहार करनेवाली उनकी मधुर वाणी की प्रशंसा में भगवती सीता ने कहा है कि 'तुम्हारी वाणी उत्तम लक्षणों से सम्पन्न, माधुर्य-गुण से भूषित तथा बुद्धि के आठ अंगों से समृद्ध है। ऐसी वाणी केवल तुम्हीं बोल सकते हो'।

माधुर्यगुणभूषित वाणी ही श्रीहनुमानकी जिह्वाका दिव्य अलंकार है। भगवती सीता ने अशोक-वन में श्रीहनुमान की वाणी सुनकर उनको 'अमृतमुख' कहा है।

श्रीहनुमान की वाणी सुधा-सी मधुर तथा सुखद है। उन्होंने उपर्युक्त प्रसंग में सुधामीय रघुनाथ-कथा से सम्पन्न वाणी का सृजन किया।

महाकवि सूरदास ने श्रीराम के मुखारविन्द से श्रीहनुमानजी की मधुर प्रिय वाणी की प्रशंसा करायी है। श्रीराम ने उनसे प्रश्न किया और उन्होंने उत्तर दिया-

मिले हनु, पूछी प्रभु यह बात।
महा मधुर प्रिय बानी बोलत, साखामृग, तुम किहि के तात?
अंजनि कौ सुत, केसरि कैं कुल, पवन गवन उपजायौ गात।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने उनके वचन को मधुर, प्रिय और मृदु कहा है। उनका मधुर वचन श्रीराम के गुण से परिपूर्ण रहता है। वह सीता जी के कानों के लिये अमृतस्वरूप कहा गया है-

- सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना।।
- रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा।।
- लागी सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई।।

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई।।

परिस्थिति के अनुकूल व्यवहार

भगवान राम जानते हैं कि मन्त्री तभी कोई व्यक्ति वनेगा जव उसे यह विश्वास हो जाये कि हमारी मन्त्रणा को आदर दिया जायेगा। किन्तु रावण के यहाँ ठीक इससे उल्टी बात है। इसीलिए लिखा हुआ है कि रावण जब किसी से पूछता

था कि इसमें आपकी क्या सलाह है तो लोग हँसकर कहते थे कि भला आपको सलाह की आवश्यकता है! अरे! आप क्या चिन्ता करते हैं? किन्तु क्या सचमुच ये लोग हृदय की बात कर रहे थे? वस्तुतः सत्य तो यह है कि वे लोग डर के मारे सोचते थे कि विभाषणजी ने सलाह दी तो लात मारकर निकाले गये। माल्यवान् ने सलाह दी तो उन्हें भी सभा से निकाल दिया गया तो फिर हम अपनी दुर्दशा क्यों करायें? बेचारे वैद्य की भी स्थिति यही थी। वैद्य के सामने भी बहुत बड़ा संकट था, क्योंकि आप कल्पना कीजिये कि यदि मेघनाद मूर्छित हो गया होता और सुषेण वैद्य अगर कहीं यह कह देते कि यहाँ से दो लाख चालीस हजार योजन दूर द्रोणाचल पर्वत पर दवा है और वह दवा भी यदि सूर्य निकलने से पहले आयेगी तभी मेघनाद बचेंगे तो रावण पहले वैद्यजी की ही पिटाई करते हुए कहता है कि मैंने तुम्हें वैद्य बनाया पहले से दवा रखने के लिए न कि ठीक समय पर दवा मँगाने के लिए। इसलिए सुषेण वैद्य ने यही सोचा कि अगर अपने ज्ञान को दुर्दशा से बचाकर रखना है तो यहाँ पर सही बात नहीं कहनी चाहिए क्योंकि यहाँ पर सही बात सुनने का अभ्यास किसी को नहीं है और वैद्य में अगर यह साहस नहीं है कि सही वात कह सके तो वह वैद्य नहीं। सही बात सुनने के बाद अगर उसकी उल्टी प्रतिक्रिया हो तो सही वात कहने का कोई लाभ नहीं। इसलिए लंका में सुषेण वैद्य ने मौन रहने में ही अपनी भलाई समझी। परन्तु आज जाम्बवान् के द्वारा सुषेण वैद्य को बुलाया जाना वस्तुतः भगवान राम के चरित्र के दर्शन को प्रकट करने का ही एक अंग है।

लक्ष्मणजी को शक्ति लग जाने के उपरान्त श्रीहनुमानजी द्वारा सुषेण वैद्य को लंका से लाने और उसके परामर्शानुसार औषधि (संजीवनी) लाने के साथ-साथ सबसे बड़ी विलक्षणता यह है कि समय की सीमा में रहते हुए श्रीहनुमानजी ने यह समस्त कार्य किया। समय की सीमा का महत्व बहुत बड़ा है। इसका तात्पर्य यह है कि स्वस्थता के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है एक योग्य वैद्य की; क्योंकि वैद्य यदि योग्य न हो तो रोग का सही निदान नहीं होगा और सही निदान के अभाव में सही चिकित्सा नहीं हो सकती। इसलिए योग्य वैद्य की आवश्यकता है। किन्तु कई बार यह समस्या आती है कि वैद्य या डाक्टर दवा तो लिखकर दे देता है, पर दवा नकली मिल जाती है। अगर औषधि नकली है

तो योग्य से योग्य वैद्य भी रोगी को लाभ नहीं पहुँचा सकता है। इसलिए योग्य वैद्य के साथ-साथ उस औषधि की भी आवश्यकता है जो बिल्कुल ठीक हो। लेकिन औषधि के साथ-साथ वैद्य कितना भी अच्छा क्यों न हो, दवा यदि समय पर रोगी को न मिले, तो वह औषधि रोगी को स्वस्थ नहीं बना सकती। इसका अभिप्राय है कि वैद्य, औषधि तथा काल-इन तीनों के समन्वय से ही रोगी को स्वस्थता प्राप्त होती है और आप देखेंगे कि 'योग्य वैद्य, सही औषधि' को और उचित समय में ले आकर श्रीलक्ष्मणजी को स्वस्थ बनाने की जो भूमिका है, उसे सम्पन्न करने वाले अकेले श्रीहनुमानजी ही हैं। श्रीहनुमानजी के इसी कार्य से आप उनके चरित्र की विलक्षणता का अनुभव कर सकते हैं। परन्तु श्रीहनुमानजी जिस क्रम से इन कार्यों को पूरा करते हैं, आइये उस पर भी थोड़ा विचार करें।

जाम्बवान्‌जी ने ज्योंही सुषेण वैद्य को लाने को कहा, त्योंही श्रीहनुमानजी वैद्य को लाने के लिए लंका की ओर चले। लेकिन यहाँ पर श्रीहनुमानजी के कार्य का बड़ा अनोखा वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं:-

धरि लघु रूप गयउ हनुमन्ता। आनेउ भवन समेत तुरन्ता।।

श्रीहनुमानजी अत्यन्त नन्हा-सा रूप बनाकर लंका में पैठ गये और वहाँ जाकर वैद्यजी को ले आये, पर अनोखे ढंग से ले आये-'आनेउ भवन समेत तुरन्ता।' वैद्यराज उस समय गहरी नींद में सो रहे थे। उन्हें श्रीहनुमानजी जगाकर भी चलने के लिए कह सकते थे, परन्तु उन्होंने जगाकर चलने के लिए नहीं कहा। अपितु जिस भवन में वे सो रहे थे उस भवन को ही लेकर वे भगवान राम के पहुँच गये। अब आप श्रीहनुमानजी की कार्य-प्रणाली पर थोड़ा गम्भीरता से विचार कीजिये।

मूर्तिमान वैराग्य श्रीलक्ष्मणजी मूर्च्छित हैं और उन्हें मूर्च्छित करने वाला मेघनाद साक्षात् काम है। काम के आक्रमण से वैराग्य मूर्च्छित दिखायी दे रहा है। वैराग्य की मूर्च्छा दूर करने का कार्य सम्पन्न करने की भूमिका श्रीहनुमानजी की ही है क्योंकि श्रीहनुमानजी को भी वैराग्य के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। श्रीहनुमानजी के लिए विनय-पत्रिका में गोस्वामीजी वैराग्य के साथ-साथ एक शब्द और जोड़ देते है 'प्रबल वैराग्य'। यदि हम श्रीहनुमानजी तथा लक्ष्मणजी के वैराग्य की तुलना करें तो हमें यह स्पष्ट दिखायी देगा कि जहाँ तक वैराग्य की

पूर्णता का प्रश्न है वहाँ पर तो लक्ष्मणजी और श्रीहनुमानजी में रंचमात्र कोई अन्तर नहीं है। ऐसी बात नहीं है कि श्रीहनुमानजी की अपेक्षा लक्ष्मणजी के वैराग्य में किसी प्रकार की न्यूनता है। लेकिन दोनों के वैराग्य में मुख्य अन्तर यह है कि श्रीहनुमानजी के सामने व्यावहारिक मर्यादा का वह प्रश्न नहीं है, जो लक्ष्मणजी के सामने है। वैसे विरागी का अर्थ है कि जिसका किसी वस्तु अथवा व्यक्ति में राग न हो।

दो प्रकार के विरागी होते हैं – कुछ विरागी तो ऐसे हैं जो सन्यासी हैं, गृहत्यागी हैं तथा पूरी तरह से बाह्य बन्धनों से मुक्त हो चुके हैं एवं जिनके अन्तःकरण में किसी वस्तु के प्रति राग नहीं हैं। दूसरे प्रकार के विरागी वे हैं जो रहते घर में हैं, परन्तु घर में रहते हुए भी जिनके अन्तःकरण में किसी प्रकार का राग नहीं है। इनमें से एक वैराग्य को 'निवृत्ति वैराग्य' कहते हैं तथा दूसरे वैराग्य को 'प्रवृत्ति वैराग्य' कहते हैं। श्रीहनुमानजी के जीवन में बाह्य त्याग भी है क्योंकि वे बाल-ब्रह्मचारी हैं, उन्होंने विवाह नहीं किया। अतः वे 'निवृत्ति वैराग्य' के घनीभूत रूप हैं और दूसरी ओर श्रीलक्ष्मणजी का विवाह हुआ है, उर्मिलाजी का पाणिग्रहण उन्होंने किया है। यद्यपि लक्ष्मणजी के अन्तर्मन में रंचमात्र भी किसी के प्रति राग नहीं है पर इतना होते हुए भी इसे यों कह लीजिये कि जिस व्यक्ति ने निवृत्ति का जीवन स्वीकार किया है, उसके जीवन में कोई कर्त्तव्य बाधक नहीं है क्योंकि वह कर्त्तव्य से सर्वथा मुक्त है। परन्तु जब कोई प्रवृत्ति के जीवन (गार्हस्थ्य जीवन) को स्वीकार करेगा तो सम्बन्ध का निर्वाह करने के लिए उसे व्यवहार में तो कुछ ऐसे कार्य करने ही पड़ेंगे जिनसे यह दिखायी दे कि उसमें राग है, भले ही उसके अन्तर्मन में किसी प्रकार का राग न हो। क्योंकि अगर कोई घर में अपने को हर समय विरागी दिखाने की चेष्टा करेगा तब तो वह लोगों के लिए समस्या बन जायेगा तथा गृहस्थ जीवन में लोगों को एक क्षण के लिए भी सन्तुष्ट नहीं कर पायेगा। हमारी संस्कृति में दोनों प्रकार के वैराग्यवालों का वर्णन आता है। एक ओर तो महात्मा लोग हैं, मुनि लोग हैं, संन्यासी हैं तथा दूसरी ओर गार्हस्थ्य जीवन में रहते हुए भी पूर्ण वैराग्ययुक्त महापुरुषों की भी कमी नहीं है।

मेघनाद के द्वारा श्रीलक्ष्मणजी को मूर्च्छा स्वीकार करनी पड़ी। इसका कारण यह है कि उन्होंने प्रवृत्ति का स्वरूप स्वीकार किया है। क्योंकि जो प्रवृत्ति में रह

रहा है चाहे वह काम को जीवन में पूरी तरह स्वीकार न करे, पर एक क्षण के लिए तो उसे काम को स्थान देना ही होगा। लेकिन दूसरी ओर श्रीहनुमानजी के समक्ष इस प्रकार की कोई समस्या नहीं है क्योंकि श्रीहनुमानजी न तो विवाहित हैं और न उनका कोई आन्तरिक राग है। श्रीहनुमानजी और लक्ष्मणजी में केवल यही अन्तर है और इस सन्दर्भ में यदि विचार करें तो लक्ष्मणजी का मूर्च्छित हो जाना स्वभाविक है तथा श्रीहनुमानजी का न मूर्च्छित होना भी व्यवहार की मर्यादा की दृष्टि से ठीक है। यद्यपि रामचरितमानस में आगे चलकर इस क्रम को थोड़ा उलट कर रखा गया है क्योंकि मेघनाद को जब कभी श्रीहनुमानजी लड़ने के लिए बुलाते थे तो वह उनसे लड़ना पसन्द नहीं करता था। यद्यपि उसे न तो भगवान राम से लड़ने में कोई हिचकिचाहट है, न ही लक्ष्मणजी से लड़ने में और न ही बन्दरों से लड़ने में उसे कोई घबराहट होती है। लेकिन इतना होते हुए भी जब कभी श्रीहनुमानजी मेघनाद से कहते हैं कि आओ अब जरा हमारा-तुम्हारा युद्ध हो जाये, तब लड़ना तो दूर रहा, वह श्रीहनुमानजी के पास भी नहीं आता है।

इसका एक तात्पर्य यह है कि मेघनाद है काम और काम सोचता है कि श्रीराम से लड़ने में कोई हानि ही नहीं है। लक्ष्मणजी से लड़ने में भी कोई भय नहीं है और न बन्दरों से लड़ने में कोई डर है क्योंकि ये सब-के-सब गृहस्थ ही तो हैं और अगर गृहस्थ हैं तो मैं इनसे क्यों डरूँ! पर इन सारे बन्दरों में एकमात्र श्रीहनुमानजी ही ऐसे हैं जो बाल-ब्रह्मचारी हैं और उसे लगता है कि ब्रह्मचारी से लड़ना बिल्कुल व्यर्थ है। मेघनाद ने श्रीहनुमानजी का मर्म अच्छी तरह से जान लिया। मर्म कैसे जान लिया है? मेघनाद सोचने लगा कि यह बन्दर इतना शक्तिशाली है कि इसने अकेले मेरे बाग को उजाड़ दिया, लाखों राक्षसों का वध । कर दिया और वृक्ष के प्रहार से मेरे रथ को नष्ट कर दिया। उसके पश्चात् मुझे भी मूर्च्छित कर दिया। इस प्रकार मैं इसके सामने हार गया। परन्तु जब मैंने ब्रह्मबाण चलाकर इसे मूर्च्छित कर दिया, तब इसने 'परतिहुँ बार कटकु सँघारा'-मूर्च्छित होकर गिरते समय भी यह मेरी सेना के ऊपर ही गिरा, जिससे कि मेरी सारी सेना इसके शरीर के नीचे दब कर मर गयी। मेघनाद सोचने लगा कि जो जीतने में भी मारे और हारने में भी मारे, उससे लड़ने से क्या लाभ?

इसलिए इससे युद्ध करना ठीक नहीं। साथ-ही-साथ उसने एक विचित्र-सा अनुभव और भी कर लिया था। वर्णन आता है कि जब मेघनाद श्रीहनुमानजी से लड़ने के लिए चलने लगा तो रावण ने कहा कि पुत्र! मैं जानता हूँ कि तुम उस बन्दर को मार सकते हो। लेकिन इतना होते हुए भी मैं तुमसे यही कहूँगा कि –'मारसि जनि सुत बाँधेसि ताही।' उस बन्दर को केवल तुम बाँधकर ले आओ, उसे मारना मत। किन्तु जब उसने श्रीहनुमानजी को बाँध लिया तो कितना घाटे का सौदा रहा। मेघनाद ने सोचा कि जब यह खुला हुआ था तब तो इसने केवल बाग ही उजाड़ा, परन्तु जब मैं इसे बाँधकर ले आया तो इसने पूरे नगर को ही जलाकर खाक कर दिया। तो जो स्वच्छन्द रहकर भी विनाश करे और बंधकर भी विनाश करे, जो जीतकर भी जीते और हारकर भी जीते, उससे लड़कर मैं क्या करूँगा? इसलिए वह श्रीहनुमानजी की चुनौती को स्वीकार नहीं करता। लेकिन आगे चलकर भगवान राम ने थोड़ा क्रम उलट दिया। क्योंकि प्रभु यदि चाहते तो श्रीहनुमानजी से कह देते कि तुम जाकर मेघनाद को मार दो और मेघनाद को मारना श्रीहनुमानजी के लिए सरल है। परन्तु भगवान श्रीराघवेन्द्र ने यह कार्य श्रीहनुमानजीको न सौंप कर श्रीलक्ष्मणजी को सौंपा। प्रभु ने उन्हें आदेश देते हुए कह दिया कि 'तुम लछिमन मारिहु रन ओही'- लक्ष्मण ! तुम उसे आज अवश्य मारना। इसमें भगवान राम के दो उद्देश्य थे। एक तो प्रभु यह सोचते हैं कि लक्ष्मणजी एक बार इसके द्वारा मूर्च्छित हो गये हैं तो किसी के मन में यह भ्रम न हो जाये कि भगवान राम ने यह जो दावा किया था कि :- जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते।। इस संसार में जितने राक्षस हैं, लक्ष्मण उन सबका एक निमेष मात्र में संहार कर सकता है परन्तु वे ही लक्ष्मणजी लंका के रणांगण में जब मेघनाद से मूर्च्छित हो गये तब कुछ लोगों के मन में यह सन्देह आ सकता था कि दावा तो इतना बड़ा किया गया था किन्तु ये तो एक राक्षस के समक्ष मूर्च्छित हो गये। इसलिए भगवान राम ने संशयालु व्यक्तियों के मन के संशय का समाधान देते हुए मानो बताया कि नहीं-नहीं, मेघनाद के समक्ष लक्ष्मणजी की यह क्षणिक पराजय है। वस्तुतः अन्तिम विजय तो लक्ष्मणजी की ही होगी। साथ-साथ भगवान राम ने एक दूसरा तत्व भी प्रकट किया। प्रभु ने मानों यह दिखाया कि मेघनाद को अगर श्रीहनुमानजी जीत लें तो कोई

चमत्कार नहीं है। वस्तुतः चमत्कार तो तब हैं जब लक्ष्मणजी उसे परास्त करें। इसका सीधा-सा अभिप्राय है कि ब्रह्मचारी यदि काम पर विजय प्राप्त कर ले तो कोई चमत्कार नहीं है। सच्ची महानता तो तब है जब गृहस्थ काम पर विजय प्राप्त कर ले। उसी मर्यादा की रक्षा क़रने के लिए भगवान राम ने अन्त में मेघनाद का वध लक्ष्मणजी से कराया। यद्यपि इस युद्ध में अन्तिम विजय तो लक्ष्मणजी की ही हुई, लेकिन कुछ समय के लिए ऐसा लगता है कि जैसे प्रवृत्ति-वैराग्य काम के द्वारा मूर्च्छित हो गया है और जब प्रवृत्ति-वैराग्य मूर्च्छित हुआ तो उसकी मूर्च्छा दूर करने की भूमिका निवृत्ति-वैराग्य के रूप जो श्रीहनुमानजी महाराज हैं, उन्हें सौंपी गयी।

रामायण में एक ऐसे पात्र थे जिनमें गुण तो बहुत-से थे, पर विराग नहीं था और वे पात्र थे महाराज मनु। मनुजी बड़े धर्मात्मा हैं, स्मृति के निर्माता हैं, शास्त्रों के निर्माता हैं तथा संसार की मर्यादा का निर्माण करने वाले हैं और मनु का गौरव हमारे इतिहास में अद्वितीय है। उन मनु ने अपने राज्य को सर्वदा ध र्म के अनुकूल चलाया तथा धर्मशास्त्र की जितनी विधि व्यवस्था है उन सबका मनु ने अपने जीवन में पालन किया-

तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब विधि प्रतिपाला।।

इस प्रकार मनु के जीवन में सब कुछ तो था, पर एक वस्तु नहीं थी। मनु ने स्वयं स्वीकार किया कि मेरे जीवन में वैराग्य नहीं है-

होइ न विषय विराग भवन बसत भा चौथपन।
हृदय बहुत दुःख लाग जनम गयउ हरि भगति बिनु।।

किन्तु मनु के जीवन में वैराग्य नहीं आया, इसका रहस्य क्या है? यही मनु जब दशरथ बने, तब भी प्रारम्भ में वैराग्य नहीं है, पर अन्त में उनमें वैराग्य आ गया-इसका रहस्य क्या है?

जब हमें किसी वस्तु में दोष अथवा दुःख दिखायी देता है तो हमारा मन उससे हटता है, उससे हमारा राग हटता है और मनु की समस्या यह है कि उनकी प्रजा बड़ी धर्मात्मा है, पत्नी भी पतिव्रता है तथा वह भी बड़े आज्ञाकारी हैं। इसका परिणाम यह है कि मनु जिधर देखते हैं उधर प्रत्येक व्यक्ति में गुण-ही-गुण ही दिखायी देते हैं तथा गुण दिखायी देने का परिणाम यह होता है कि उनके मन

में प्रत्येक व्यक्ति के प्रति राग बढ़ता जाता है। यह बात आप अवश्य ध्यान में रखियेगा कि दूसरों से सुख पाने के लिए तो यह आवश्यक है कि उनसे हम राग करें तथा उनमें हमें गुण दिखायी दें। लेकिन हमें अगर अन्ततोगत्वा उससे भी बड़ी वस्तु (ईश्वर) को पाना है तो अन्य वस्तुओं से जब विराग होगा तभी ईश्वर के प्रति हमारा राग होगा। क्योंकि हमारा राग अगर चारों ओर बँटा रहेगा तब तो ईश्वर में राग हो ही नहीं सकता है। किन्तु मनु के सामने सबसे बड़ी समस्या यह थी कि उनका राग आज्ञाकारी पुत्र, पतिव्रता पत्नी एवं धर्मात्मा प्रजा में बँटा हुआ था और वैराग्य के अभाव में ही वे वन में गये। इसीलिए संकेत मिलता है कि जब वे वन में जाने लगे तो उनकी पत्नी शतरूपाजी ने कहा कि मैं भी आपके साथ चलूँगी तो मनु ने बड़ी सरलता से स्वीकार कर लिया। उन्होंने सोचा कि जब मेरे अन्तःकरण में वैराग्य पूरी तरह नहीं है तो फिर मैं पत्नी को लेकर ही जाऊँगा।

शरीर में वात, पित तथा कफ ये त्रिदोष हैं तथा वैद्य का काम है वात, पित तथा कफजन्य बुराई को देखना, न कि उनका गुण देखना। भगवान राम के सामने प्रश्न यह था कि जब वैराग्य मूर्च्छित हो गया है तब उनकी मूर्च्छा दूर करने के लिए वैद्य कहाँ से बुलवाया जाये, किन्तु भगवान का संकेत जाम्बवान्‌जी ने समझ लिया और तब विचार के देवता जाम्बवान्‌जी ने कहा कि वैराग्य को जीवित करने के लिए अनुकूल नगर (अयोध्या) से नहीं, स्वर्ग से नहीं, अपितु प्रतिकूल नगर से वैद्य बुलवाया जाये क्योंकि यदि दोष ही देखना है तो प्रतिकूल नगर (शत्रु नगर) का रहने वाला वैद्य जैसा दोष देखेगा, वह अनुकूल व्यक्ति कभी नहीं देख सकता और सचमुच अपने दोषों को यदि जानना चाहें, अपनी कमी को दूर करना चाहें तो अपने विरो ी को बुलाकर उससे पूछें कि मेरे विषय में क्या सम्मति है? भगवान् श्रीराघवेन्द्र ने कहा कि भाई ! यदि वैराग्य मूर्च्छित हो गया है तो मित्र वैद्य नहीं चाहिए जो यहाँ आकर लक्ष्मणजी और मेरी स्तुति करने लगे, अपितु ऐसा वैद्य बुलाओ जो दोष देख सके। प्रभु का तात्पर्य था कि लंका वाले जितना बढ़िया दोष देखना जानते हैं उतना बाहर वाले नहीं जानते। इसलिए लंकावाले वैद्य को ही बुलाओ और फिर संसार में भी यही देखा जाता है कि वैराग्य दोष दर्शन से बढ़ता है क्योंकि जीवन में जितना दोष और दुःख दिखायी देगा उतना

ही वैराग्य बढ़ेगा। इसलिए वैराग्य को चैतन्य करने के लिए लंका नगर से वैद्य बुलाया जा रहा है।

नीति की दृष्टि से श्रीहनुमानजी का यह कार्य बड़े महत्व का है, क्योंकि उन्हें वैद्य से केवल दवा ही नहीं लेनी थी अपितु वैद्य की रक्षा की भी चिन्ता है। इसलिए उन्होंने विचार किया कि अगर मैं सुषेण वैद्य को जगा कर ले गया तो रावण उनकी यह कहकर बड़ी दुर्दशा करेगा कि तुम शत्रु को अच्छा करने के लिए गये थे और यदि मैं उन्हें सोते-सोते ले जाऊँगा तो इनको यह कहने के लिए रहेगा कि महाराज ! मैं स्वेच्छा से नहीं गया था, अपितु मैं तो नींद में था। अब अगर नींद में कोई उठा ले गया तो मैं क्या करूँ? इस प्रकार श्रीहनुमानजी ने उसके उत्तर के लिए एक मार्ग खोल दिया जिससे बेचारे सुषेण बचे रहें। श्रीहनुमानजी का दूसरा तात्पर्य यह था कि अगर वैद्यजी को ले चलें, परन्तु औषधालय यदि यहीं छोड़ चलें, तो वैद्यजी यह भी कह सकते हैं कि औषधि तो मेरे औषधालय में है और तब तो मुझे फिर आना पड़ेगा। इसलिए वैद्य के साथ-साथ औषधालय को भी ले चलना ठीक रहेगा।

वैद्यजी बहुत योग्य थे और श्रीहनुमानजी भी उन्हें औषधालय के साथ ले गये थे लेकिन उनके पूरे औषधालय में लक्ष्मणजी की मूर्च्छा को दूर करने वाली दवा नहीं थी। वर्णन आता है कि जब सुषेण वैद्य आये और उन्होंने लक्ष्मणजी को देखा, तब सुषेणजी ने न तो भगवान राम से बात की, न जाम्बवानूजी से और न ही सुग्रीवजी से, बल्कि उन्होंने तो सीधे श्रीहनुमानजी से ही कहा कि उक्त पर्वत पर यह दवा है, आप उसे जाकर ले आइये :-

राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधि जाहु पवनसुत लेन।।

सुषेण वैद्य का अभिप्राय था कि जब सबको उठाने का भार तुम्हीं पर है तो दवा लाने का भार भी मैं तुम्हें ही दे रहा हूं। इसलिए तुम जाकर दवा ले आओ। परन्तु इसका आध्यात्मिक अभिप्राय अत्यन्त गम्भीर है। अभी आपके सामने चर्चा चल रही थी कि लंका के औषधालय में अन्य दवाइयाँ हैं पर वैराग्य को जीवित करने की कोई दवा नहीं है। क्योंकि लंका में वैराग्य का कोई ग्राहक ही नहीं है। वहाँ तो दवा भी ऐसी चाहिए, जिससे काम जीवित रहे, मोह जीवित रहे और अहंकार

भी जीवित रहे। वैराग्य जीवित रहे, इसकी कामना करने वाला लंका में कोई नहीं है। इसलिए वैद्य योग्य होते हुए भी यह जानता है। परन्तु यहाँ पर तो वैराग्य के चैतन्य होने की आवश्यकता है और इस संदर्भ में श्रीहनुमानजी महाराज की भूमिका बड़ी अनोखी है। वे वैद्य को लाते समय अत्यन्त छोटे बन गये। वैराग्य के साथ-साथ श्रीहनुमानजी प्रबल वैराग्य हैं और छोटे बन गये, इसका अर्थ यह हुआ कि बहुध ।। जब कभी वैराग्य जीवन में आता है तों वैराग्य के साथ-साथ यह अहंकार आ जाता है कि मैं बहुत बड़ा वैराग्यवान हूँ, मुझसे बढ़कर वैराग्यवान कोंई नहीं होगा। पर श्रीहनुमानजी की विशेषता यह है कि वे छोटे बनने की कला भी जानते हैं। इसका अभिप्राय है कि उनमें वैराग्य के साथ विनम्रता की पराकाष्ठा है। अगर आप श्रीहनुमानजी में वैराग्य के साथ विनम्रता देखना चाहें तो इसे पग-पग पर देख सकते हैं। श्रीहनुमानजी छोटे तथा बड़े बनने की कला में निपुण हैं। जो कार्य बड़ा बनकर किया जाना चाहिए, वह कार्य श्रीहनुमानजी बड़े बनकर करते हैं। पर इतना होते हुए भी श्रीहनुमानजी कितने विनम्र है, यह वे छोटा बनकर दिखाते हैं। छोटा और बड़ा बनने का अर्थ केवल बाह्य सन्दर्भ में मत लीजिये, अपितु इसके अन्तरंग में पैठकर विचार करने की चेष्टा कीजिये। जब भगवान राम का राज्याभिषेक हुआ तो उसके छह महीने बाद भगवान श्रीराम एकान्त में योजना बनाने लगे कि अब बन्दरों को विदा करना चाहिए। किन्तु जब बन्दर जायेंगे तो प्रत्येक बन्दर की विदाई भी तो करनी पड़ेगी। परन्तु कौन किसकी विदाई करेगा, यह पहले से निश्चित कर लिया जाये। भगवान राम ने कहा, विभीषण को मैं वस्त्र पहना दूँगा। प्रभु ने भरतजी की ओर देखा और कहा, भरत ! तुम सुग्रीव को वस्त्र पहनाना। किन्तु अचानक किसी ने ध्यान दिलाया कि श्रीहनुमानजी को विदाई का वस्त्र कौन पहनायेगा, क्योंकि श्रीहनुमानजी तो सबसे बड़े सेवक हैं। उस समय भगवान राम ने कहा कि भाई ! हनुमानजी को विदा नहीं कर पाऊँगा, क्योंकि कोई कर्जदार अपने कर्जदाता से यदि घर के बाहर निकलने के लिए कहे तो यह धृष्टता की पराकाष्ठा ही होगी। मैं तो हनुमानजी को यह लिख कर दे चुका हूँ-'देबै को न कछु रिनि आहौं धनिक तू पत्र लिखाउ'-इसलिए मैं उनसे नहीं कहूँगा कि तुम चले जाओ। प्रभु ने भरत की ओर देखा और बोले, भरत ! तुम्हीं कह दो। श्रीभरत ने कहा-महाराज ! मैं भी उनका कर्जदार हो चुका हूँ

क्योंकि जब श्रीहनुमानजी आपका समाचार लेकर आये, तब मैंने भी उनसे कहा- नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही।। हे भाई ! मैं आपके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता। इस प्रकार भरतजी भी ऋणी हैं। भगवान राम ने श्रीलक्ष्मण की ओर देखा तब उन्होंने कहा, प्रभु ! जिसका प्राण बचाया जाये, वह भला प्राण बचाने-वाले को कभी विदा कर सकता है? प्रभु ने कहा कि नहीं-नहीं लक्ष्मण ! तुम्हें तो विदा करना भी नहीं चाहिए और तब शत्रुघ्नजी से कहा गया, तो उन्होंने कहा महाराज ! अगर श्रीहनुमानजी चले जायेंगे तो हम लोगों को इतनी बढ़िया कथा नित्य कौन सुनायेगा? अब श्रीसीताजी को ध्यान दिलाया गया कि अच्छा अब आप ही श्रीहनुमानजी को विदा करें तो श्रीसीताजी ने तुरन्त कह दिया कि प्रभु ! आज तक किसी माँ ने अपने बेटे को घर से निकाला है क्या? इसलिए हनुमानजी को मैं तो विदा नहीं करूँगी। अन्त में निर्णय हुआ कि अच्छा भाई ! श्रीहनुमानजी की विदाई का कोई प्रस्ताव नहीं किया जाये। उसका परिणाम यह हुआ कि सबको वस्त्र पहनाया गया, लेकिन श्रीहनुमानजी को यह सोचकर नहीं पहनाया गया कि श्रीहनुमानजी तो शायद जायेंगे ही नहीं। पर जब सारे बन्दर विदा किये गये तो श्रीहनुमानजी बिना विदाई के ही चल पड़े। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि जिसके विषय में यह कल्पना थी कि वह नहीं जायेगा, वह तो चला जा रहा है और जिसके विषय में कोई कल्पना नहीं थी, उन अंगद ने तो भगवान के चरणों को पकड़ कर कहा कि-प्रभु ! कृपा करके, घर जाने के लिए मुझसे मत कहिये। लेकिन भगवान राम ने अपने गले की माला निकाल कर अंगद को पहना दिया और उन्हें वस्त्र पहना कर विदा कर दिया।

अंगद चाह कर भी भगवान राम की सेवा में नहीं रह पाये और दूसरी ओर बन्दरों के साथ श्रीहनुमानजी चल पड़े और जब भगवान राम इन बन्दरों को विदा करके लौट आये। तब भी श्रीहनुमानजी नहीं लौटे। वे उस समय सुग्रीव के चरणों में गिर पड़े। परन्तु आप यह कल्पना कीजिये कि कहाँ सुग्रीव और कहाँ श्रीहनुमान, कोई तुलना नहीं है दोनों के चरित्र में, दोनों की महानता में और फिर सुग्रीव को जीवन में जो कुछ प्राप्त हुआ है, वह श्रीहनुमानजी के प्रयास से ही हुआ है। लेकिन श्रीहनुमानजी प्रभु के समीप रहने की प्रार्थना उनसे न करके सुग्रीव के चरणों में गिरकर उनसे कहने लगे-महाराज ! मैं दस दिन के लिए भगवान

राम के चरणों की सेवा करना चाहता हूँ। अगर आप आज्ञा दीजिये तो दस दिन के लिए चला जाऊँ। यह वाक्य सुनकर सुग्रीव की आँखों में आंसू आगये। उन्होंने श्रीहनुमानजी को हृदय से लगा लिया और कह दिया-पुन्य पुंज तुम्ह पवन कुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा।।

इस प्रकार श्रीहनुमानजी के लघु बन जाने की पराकाष्ठा तब है जब सुग्रीव जैसे विषय-परायण व्यक्ति के चरणों में भी श्रीहनुमान्जी गिर जाते हैं। वैराग्य गिर रहा है विषयी सुग्रीव के चरणों में। इसका अभिप्राय है कि श्रीहनुमानजी को अपने वैराग्य का रंचमात्र भी अभिमान होता तो क्या वे सोच सकते थे कि इस विषयी के चरणों में मैं झुकूँ? बहुधा विरागी-त्यागी लोग तो सोचते हैं कि हमारे सामने दूसरे झुकें।

श्रीहनुमानजी ने जब सुग्रीव से आज्ञा माँगी तो सुग्रीव ने तुरन्त कहा कि हनुमानजी ! हम लोगों का पुण्य तो वस्तुतः क्षीण हो गया है, किन्तु हम लोगों में एकमात्र आप ही प्रभु की सेवा के योग्य हैं, अतः आप जाइये और जब श्रीहनुमानजी लौटने लगे, तब अंगद को अपनी भूल समझ में आगयी। अंगदजी ने तुरन्त श्रीहनुमानजी से कहा कि-आप प्रभु से जाकर मेरी दण्डवत कहियेगा। हनुमानजी ने कहा, महाराज ! क्या आप चलते समय दण्डवत करना भूल गये? अंगद ने कहा कि नहीं-नहीं मैं दण्डवत करना तो नहीं भूला, पर सच्चा दण्डवत करना तो आप ही जानते हैं, मैं नहीं जानता। इसलिए मेरे दण्डवत करने से भी प्रभु नहीं रीझे, नहीं पसीजे। पर मुझे विश्वास है कि जब आप मेरी ओर से दण्डवत करेंगे तो प्रभु अवश्य रीझेंगे। उन्होंने श्रीहनुमानजी से हाथ जोड़ कर यही कहा- 'आप बार-बार प्रभु को मेरी याद दिलाइयेगा' और सचमुच हुआ भी यही। लौटकर श्रीहनुमानजी ने पहला काम वही किया, जो उनका स्वभाव है। वे अपने विषय में तो कुछ नहीं बोले, लेकिन भगवान राम के सामने श्रीहनुमानजी जब अंगद का वर्णन करने लगे तो : 'तासु प्रीति प्रभु सन कही, मगन भए भगवन्त'- अंगद के प्रेम का वर्णन सुनकर प्रभु रोने लगे। यद्यपि अंगद की प्रार्थना प्रभु ने थोड़ी ही देर पहले सुनी थी और तब आँसू नहीं आये। पर उन्हीं की बात जब श्रीहनुमानजी ने सुनाई तो प्रभु द्रवित हो गये।

अंगद बड़े गुणवान थे। उन्हें अपनी भूल का भान हो गया। यदि वे भगवान

की सेवा करना चाहते थे तो उनका पहला कर्त्तव्य था कि वे सुग्रीव से कहते कि मैं प्रभु के चरणों में रहना चाहता हूँ, क्योंकि अंगद युवराज थे और सुग्रीव राजा थे। पर अंगद ने सोचा कि मैं सुग्रीव से आज्ञा लूँ, यह बिल्कुल सम्भव नहीं है। क्योंकि सुग्रीव न तो मेरे समान चरित्रवान हैं, न बलवान हैं और न ही गुणवान हैं। इसका अभिप्राय है कि अंगद अभिमान का परित्याग नहीं कर पाये और जो अभिमान (चाहे वह गुणों का ही अभिमान क्यों न हो) का परित्याग नहीं कर पाया, वह प्रभु की सेवा में रहने का अधिकारी नहीं है और जो श्रीहनुमानजी के समान समस्त सद्‌गुणों से सम्पन्न होते हुए भी अपने को कुछ समझता ही नहीं, लघु बनना चाहता है, वही सेवा का सच्चा अधिकारी है। एक बार श्रीहनुमानजी से किसी ने पूछ दिया कि आप सुग्रीव को प्रणाम क्यों करते हैं? श्रीहनुमानजी ने कहा कि सुग्रीव तो हमारे गुरु हैं। उनसे पूछा गया कि महाराज ! आप उनके गुरु हैं कि वे आपके गुरु हैं? श्रीहनुमानजी ने उत्तर दिया कि प्रभु को तो पहले सुग्रीवजी ने ही देखा था और उन्होंने ही मुझसे कहा था कि जाकर प्रभु से मिल आइये। यदि उन्होंने मुझे न भेजा होता तो मैं प्रभु तक पहुँच ही नहीं पाता। इसलिए उन्हीं की कृपा से मुझे प्रभु की प्राप्ति हुई है। इस प्रकार जो इतना विनम्र और इतना लघु हो सकता है उसी में वैराग्य के साथ सच्ची निरहंकारिता की पराकाष्ठा होती है।

सुषेण वैद्य ने बाद में श्रीहनुमानजी से कहा कि महाराज! आप मुझे घर से जगा कर ले आते तो साधना का क्रम ठीक रहता; क्योंकि साधना का क्रम यह है कि ईश्वर को पाना चाहे तो व्यक्ति धाम-काम का परित्याग करे। रामायण में अनेक पात्र आते है जो प्रभु को पाने के लिए घर का काम-काज छोड़ देते है :-

धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंग जिमि लूटन लागी।।

जब तक कोई धाम-काम न छोड़े तो न तो कथा सुन सकता है और न ही भगवान का साक्षात्कार कर सकता है, क्योंकि धाम यदि केवल सुरक्षा का साधन हो तब तो कोई बुराई नहीं। पर व्यक्ति जो है वह एक तो धाम के प्रति मोह पाल लेता है तथा मैं और तू का विभाजन करके घर को ऐसा केन्द्र बना लेता है जहाँ पर ममता, आसक्ति और भेद ही पलता है। किन्तु भगवान को पाना हो तो क्या करें? इसीलिए कबीर ने तो अपनी अक्खड़ी भाषा में बड़ा तीखा व्यंग्य किया। कबीर हाथ में मशाल लिये खड़े थे। लोगों ने उनसे कहा कि आपके साथ

हम भी चलेंगे, तो उन्होंने कहा कि पहले इस मशाल को लेकर जाओ और इसके द्वारा अपने-अपने घरों को फूँक दो। उसके पश्चात् :-

कबिरा खड़ा बाजार में लिये लुकाठी हाथ।
जो घर जारे आपनो चले हमारे साथ।।

जो व्यक्ति अपना घर फूँके, वह हमारे साथ चले। उनका अभिप्राय है कि जो आसक्ति को नहीं जला सकता, जो भेद बुद्धि को जला नहीं सकता, जो ममता को नहीं जला सकता, वह भगवान की ओर चलने योग्य नहीं है और रामायण में भी कहा गया है :-

जरउ सो सम्पति सदन सुखु, सुहृद मातु पितु भाई।
सनमुख होत जो राम पद, करे न सहस सहाई।।

रामायण में अनेक ऐसे पात्र मिलेंगे, जिन्होंने जाने अथवा अनजाने में घर छोड़ा तब भगवान को पाया। सुग्रीव बेचारे का घर छिना हुआ था, तब भगवान मिले, विभीषण घर से निकाले गये तो भगवान उनको मिले। परन्तु अगर कोई उलटे दृष्टान्त हैं तो वे एकमात्र वैद्यराज सुषेण थे। वे भगवान के पास गये तो घर के साथ गये। श्रीहनुमानजी से पूछा गया, महाराज ! आपने यह नियम कैसे पलट दिया? आपको तो उन्हें जगाना चाहिए था और जगाने के बाद जब वे घर छोड़कर जाते तब उन्हें ईश्वर की प्राप्ति होनी चाहिए थी। श्रीहनुमानजी ने कहा कि भाई ! जो ईश्वर को पाना चाहता है वह घर को छोड़कर जाता है पर ईश्वर ही जिसे पाना चाहे उसे घर छोड़ने की क्या आवश्यकता है? सुषेण ने तो एक बार भी नहीं कहा कि मुझे प्रभु को पाना है। बल्कि प्रभु ने ही कहा कि मुझे सुषेण को पाना है ! इस प्रकार एक उपाय घर को जला देना है और दूसरा उपाय घर को भगवान के चरणों में अर्पित कर देना है और घर को भगवान के चरणों में अर्पित कर दिया तो घर भी धन्य हो गया। इस प्रकार वैद्यराज को ले आकर परमयोगी श्रीहनुमानजी वैराग्य को चैतन्य करने की भूमिका सम्पन्न करते हैं।

शत्रु नगर का वैद्य बुलाने का अभिप्राय है कि वैद्य दोषदर्शी होना चाहिए और लंका के लोग दोषदर्शी हैं, क्योंकि वह शत्रु नगर है और दूसरी ओर इसके द्वारा हमें यह दिखायी देता है कि भगवान श्रीराम का हृदय इतना विशाल है कि उन्हें शत्रु पर पूरा भरोसा है। उनके मन में शत्रुता की कोई भावना नहीं है। उन्हें

तो वैद्य पर पूरा विश्वास है। गीतावली रामायण में वर्णन आता है कि विकल्प के रूप में कई प्रस्ताव श्रीहनुमानजी ने प्रभु के सामने रखे। जब भगवान राम की आँखों में श्रीहनुमानजी ने आँसू देखे तो उन्होंने कहा, प्रभु ! आप आज्ञा दीजिये न ? प्रभु ने कहा, हनुमान तुम क्या करोगे ? बताओ तो ! श्रीहनुमान जी ने कहा-

जो हौं प्रभु अनुसासन पावौं।

तो चन्द्रमहि निचोर चैल ज्यों, आनि सुधासिर लावौं।।

प्रभु ! मैंने सुना है कि चन्द्रमा में अमृत है और यदि आपकी आज्ञा हो जाये तो मैं अभी छलाँग लगा कर जाऊँगा तथा चन्द्रमा को निचोड़ कर उसका अमृत लक्ष्मणजी के मुख में डाल दूँगा, जिससे वे चैतन्य हो जायेंगे। भगवान राम ने उस दुःख के समय में भी यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया तथा याद दिलाते हुए कहा, हनुमान ! एक दिन जब मैंने तुमसे पूछा था कि चन्द्रमा में कालापन क्यों है ? तो तुमने कहा दिया था कि : 'ससि तुम्हार प्रिय दास' -यह चन्द्रमा आपका प्रिय सेवक है, तो हनुमान! एक सेवक को बचाने के लिए दूसरे सेवक को निचोड़ डालना क्या ठीक होगा? इसलिए यह प्रस्ताव तो तुम्हारा उपयुक्त प्रतीत नहीं हो रहा है। श्रीहनुमानजी ने कहा कि महाराज ! सूर्योदय होने पर ही न लक्ष्मणजी की मृत्यु होगी ? प्रभु ! संसार में तो सूर्य पर राहु का ग्रहण कभी-कभी लगता है, परन्तु मैं राहु को लाकर सूर्य को सदा के लिए बन्द कर दूँगा, जिससे कि लक्ष्मणजी की मृत्यु ही नहीं होगी। भगवान ने कहा कि हनुमान ! हम लोग तो प्रकाश फैलाने आये हैं, अन्धेरा फैलाने थोड़े ही आये हैं, इसलिए यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि सूर्य के प्रकाश को रोकना हमारे वंश की परम्परा के भी प्रतिकूल है। श्रीहनुमान जी ने कहा कि महाराज ! तो फिर आज्ञा हो तो यह जो मृत्यु है, मैं उसी को मार डालूँ जिससे लक्ष्मणजी तो क्या संसार में कोई भी नहीं मरेगा-

पटकौं नीच मीचू मूसक ज्यों सबनि कौ पाप बहाऊँ।

परन्तु प्रभु ने कहा कि मृत्यु का निर्माण तो इसीलिए किया गया है जिससे लोग यह सोचकर थोड़ा सावधान रहें कि हमें मरना भी है। किन्तु यह जानते हुये भी लोग जब इतना पाप कर रहे हैं, तब तुमने यदि कहीं मृत्यु को ही मार दिया तब तो लोग निश्चिन्त होकर पाप करेंगे ! इसलिए यह ठीक नहीं है और तब अन्त में भगवान ने कहा कि मित्र नगर का वैद्य नहीं, अपितु हमें तो लंका

(शत्रु नगर) का वैद्य चाहिए और शत्रु नगर के वैद्य को लाने का महानतम भार सौंपा गया श्री हनुमानजी को। किन्तु श्रीहनुमानजी जब लंका में जाने लगे तो उन्होंने अपना रूप अत्यन्त छोटा-सा बना लिया- **धरि लघु रूप गयउ हनुमन्ता। आनेउ भवन समेत तुरन्ता।।**

यह बड़े पते की बात है। इसका अर्थ यह हुआ कि वैद्य के पास जाये तो छोटा बनकर जाये, क्योंकि रोगी अगर यह समझ ले कि वैद्य से योग्य तो मैं हूँ तब तो अनर्थ हो जायेगा। कभी-कभी डाक्टर और वैद्य तब बड़े संकट में पड़ते हैं जब रोगी बहुत बुद्धिमान मिल जाये। अपने को बुद्धिमान मानने वाले कई रोगी तर्क-वितर्क द्वारा वैद्य अथवा डाक्टर को इतना सन्त्रस्त कर देते हैं कि वह भी परेशान होकर सोचता है कि इनको हम दवा बतायें कि इनसे दवा हम लें। किन्तु श्रीहनुमानजी तो वैद्य के पास अत्यन्त लघु (निरभिमानी) बन कर जाते हैं।

अनेक प्रसगों में श्रीहनुमानजी कभी अत्यन्त छोटे हो जाते हैं, कभी अत्यन्त बड़े हो जाते हैं। कभी भारी तो कभी अत्यन्त हल्के हो जाते हैं। श्रीहनुमानजी के ये जो बदलते हुये रूप आपको दिखाई देते हैं, यदि आप विचार करके देखिये तो वे केवल जादूगरी का तमाशा नहीं हैं। ऐसा नहीं कि श्रीहनुमानजी कोई जादुगर थे और वे लोगों के सामने जादूगरी दिखाया करते थे। इन कार्यों के द्वारा तो वे वस्तुतः यह बताना चाहते हैं कि जीवन में किस समय व्यक्ति को छोटा बनना चाहिए और किस समय बड़ा बनना चाहिए। किस समय भारी तथा कौन-सी परिस्थिति में हल्का बन जाना चाहिए। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि हम उचित अवसर पर उचित भूमिका स्वीकार करें।

किसी से यदि प्रश्न किया जाये कि व्यक्ति को चुप रहना चाहिए कि बोलना चाहिए तो कई लोग मौन की महिमा गाते हुए कहते हैं कि मौन सबसे महान् है इसलिए व्यक्ति को मौन ही रहना ठीक है, तो कुछ लोग भाषण कला की प्रशंसा करते हैं कि बोलना व्यक्ति के जीवन की बहुत बड़ी सफलता है। वक्ता और मौन में एक अच्छा है और दूसरा बुरा, यह समझना भूल है क्योंकि यदि केवल मौन ही श्रेष्ठ होता तो भगवान जीभ ही न देते, जिससे सब लोग पूरी तरह से मौन रहते, कोई झंझट ही नहीं था। किन्तु ईश्वर ने वाणी इसलिए तो नहीं दी है कि व्यक्ति उसका उपयोग ही न करे। परन्तु यह बात अवश्य है कि वाणी का उपयोग

उचित अवसर पर किया जाये। क्योंकि उचित अवसर पर ही मौन रहना और बोलना-दोनों की शोभा है। श्रीहनुमानजी के चरित्र का अनोखापन यह है कि न तो उनके समान कोई वक्ता है और न ही मौन रहने वाला। परन्तु श्रीहनुमानजी चुप कब रहते हैं, बोलते कब हैं, आप यह देखिये।

जैसे कोई व्यक्ति नदी अथवा तालाब में डूबता हुआ घबराहट के मारे बचाने के लिए पुकार रहा हो और पुकार को सुनकर उसे बचाने के लिए जाते समय कोई व्यक्ति अगर यह समझ ले कि हम तो बिल्कुल मौन होकर, इसे बचाने जायेंगे, तो वह व्यक्ति बुद्धिमान नहीं है। बल्कि सबसे पहले उसका कर्तव्य है कि वह शब्द के द्वारा उसे आश्वासन दे कि 'घबराओ नहीं, मैं आ रहा हूँ'। उस समय ऐसा कहना अभिमान नहीं बल्कि सामने वाले व्यक्ति को प्रोत्साहन देना है, उसे भय से उबारना है। किन्तु उस समय जो यह समझ कर चुप्पी साध लेगा कि अगर हम बोलेंगे तो दिखावा करते हुए समझे जायेंगे, उसकी यह समझ सही नहीं है। वस्तुतः यह दिखावा नहीं है क्योंकि इस दिखावे का परिणाम होगा कि उस व्यक्ति की घबराहट थोड़ी कम हो जायेगी। इसलिए श्रीहनुमानजी जिस समय लक्ष्मणजी के लिए दवा लेकर आये तब किसी ने उनसे पूछा कि महाराज ! अभी तो रुलाई चल रही थी, अब इस रुलाई के बीच में आपका आना कैसा लगा? हनुमानजी ने कहा, अरे भाई ! उस समय तो ऐसा लगा कि जैसे करुण रस के बीच में वीर रस आगया हो। इसका अभिप्राय है कि करुण रस में जिस समय सब लोग आँसू बहा रहे हों, उसी समय यदि कहीं करुणा वाला व्यक्ति आ जाये तो वह करुणा बढ़ायेगा ही। करुणा का दुःख नहीं मिटायेगा। परन्तु उस समय यदि कहीं वीर-रस आ जाये तो वह हमारे करुणा के दुःख को दूर करेगा। श्रीहनुमानजी के चरित्र में बोलने के पीछे यही भावना विद्यमान है। वर्णन आता है कि समुद्र के किनारे जिस समय प्रत्येक बन्दर अपने-अपने बल का बखान कर रहा है, उस समय श्रीहनुमानजी चुप हैं:-

निज-निज बल सब काहू भाखा। पार जाइ कर संसय राखा।।

यहाँ पर चुप रहने का अर्थ है कि जहाँ चारों ओर आत्मविज्ञापन हो रहा हो, अपने विषय में कुछ कहा जा रहा हो, उस समय सच्चा सन्तत्व यही है कि व्यक्ति अपने विषय में मौन रहे। लेकिन इस प्रसंग में भी जब श्री हनुमानजी बोले,

तब ऐसा बोले, जिसकी तुलना नहीं हो सकती। वर्णन आता है कि श्रीहनुमानजी को चुप देखकर जाम्बवानजी को आश्चर्य हुआ तथा उन्होंने तुरन्त श्रीहनुमानजी से कहा : 'कहइ रीछपति सुनु हनुमाना'–अरे ! 'का चुप'–आप चुप कैसे हैं ? क्योंकि आप तो बहुत बड़े वक्ता हैं और साथ-साथ शब्द कितना सुन्दर कहाः 'का चुप साधि रहेहू बलवाना' –अरे भाई ! बलवान लोग तो बहुत गरजते हैं, परन्तु तुम कैसे चुप्पी मारे बैठे हो ? किन्तु फिर भी जब श्रीहनुमानजी के मुँह से शब्द नहीं निकला, तब उन्होंने कहा:-

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि विवेक विज्ञान निधाना।।

अरे ! तुम तो पवन के बेटे हो तथा पवन के समान ही तुममें बल और बुद्धि है। फिर भी श्रीहनुमानजी ने अपना मौन नहीं तोड़ा और मौन न तोड़ने के पीछे श्रीहनुमानजी का एक उद्देश्य भी था। क्योंकि रावण ने पवन देवता को भी बन्दी बना लिया था–

बरन कुबेर सुरेस समीरा। रन सन्मुख धरि काहूं न धीरा।।

अगर श्रीहनुमानजी पवन का बल लेकर जायें, तब तो जैसे बाप बन्दी है, वैसे बेटे को भी बन्दी बना लिया जायेगा। इसलिए श्रीहनुमानजी उस नाते को स्वीकार नहीं करते। लेकिन अचानक जाम्बवानजी ने ऐसा वाक्य कहा, जिससे श्रीहनुमानजी का मौन खुल गया और वे उस समय जितने छोटे थे उतने ही अधिक विशाल हो गये। जाम्बवान्जी ने कहा 'राम काज लगि तब अवतारा'–हनुमानजी महाराज ! तुम्हारा जन्म तो श्रीराम का कार्य पूरा करने के लिए ही हुआ है– और ज्योंहि यह शब्द श्रीहनुमानजी के कानों में गया त्योंही श्रीहनुमानजी, 'सुनितहिं भयउ पर्वताकारा'– श्रीहनुमानजी पर्वताकार बन गये। यहाँ पर श्रीहनुमानजी पहले तो छोटे थे किन्तु बाद में बड़े बन गये। इसका अर्थ है कि जब हमें संसार के भोगों को भोगना हो तो छोटा होना ही ठीक है, लेकिन अगर भगवान की सेवा करनी हो तो बड़ा बनना ठीक है जिससे कि अधिक से अधिक सेवा हो सके। शरीर दुःखदायी तब है जब वह भोगों की ओर ले जाये। जो शरीर हमें भगवान की सेवा की ओर ले जाये, उससे बढ़कर सार्थकता शरीर की और क्या होगी ! श्रीहनुमानजी ने सोचा कि मेरा जन्म यदि भगवान के कार्य के लिए ही हुआ है तो मैं फिर इतना नन्हा क्यों रहूँ? इसलिए वे पर्वताकार हो गये। इतना ही

नहीं अभी तो श्री श्रीहनुमानजी इतने चुप थे, परन्तु अव तो उन्होंने 'सिंहनाद करि बारहिं बारा'-श्रीहनुमानजी ने गरजना प्रारम्भ कर दिया, बल्कि उस समय उनकी गर्जना सुनकर ऐसा भ्रम होता है कि जैसे श्रीहनुमानजी आत्मविज्ञापन का रहे हैं, क्योंकि श्रीहनुमानजी का एक चित्र वह है जिसमें वे आँखों में आँसू भरे हुए विनम्र भाव से प्रभु के चरणों में बैठे हुए हैं जिसको देखकर बड़ा धोखा हो जाता है।

वर्णन आता है कि रावण के गुप्तचर शुक और सारन जब लक्ष्मणजी का पत्र लेकर लंका में आये तब रावण ने उनसे पूछ दिया कि यह बताओ उस तपस्वी की सेना में सबसे बलवान कौन है? तो गुप्तचर ने कहा कि सबसे बलवान कौन है यह तो पता नहीं चला, पर सबसे कमजोर कौन है यह पता चला है और तब उन्होंने सबसे कमजोर का परिचय देते हुए कहा कि-

जेहि पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह मँह तेहि बलु थोरा।।

जिसने तुम्हारे बेटे को मार डाला और नगर को जला दिया, वह तो सबसे कमजोर बन्दर है और यह वाक्य सुनकर सारे राक्षस आतंक के मारे अधमरे हो गये कि जब सबसे कमजोर ने आकर यह कार्य किया, तो जब बलवान आयेंगे तो तब क्या होगा ? यद्यपि शुक-सारन का यह समाचार सही नहीं था क्योंकि श्रीहनुमानजी तो सबसे बड़े बलवान हैं, पर बेचारे शुक-सारन का क्या दोष ? उन्होंने तो जैसा देखा वैसा कहा। क्योंकि जब दोनों राक्षस प्रभु की सेना का भेद लेने लगे तब उन्होंने देखा कि सारे बन्दर गरज रहे हैं परन्तु एकमात्र श्रीहनुमानजी ही ऐसे थे जो आँखों में आँसू भरे प्रभु चरणों में बैठे हुए थे। इसलिए उनके मन में यह सहज तर्क आ गया कि भाई ! वीर लोग गरज रहे हैं और कमजोर आँसू बहा रहा है। आँखों में अश्रुप्रवाह करते रहना यह श्रीहनुमानजी का सहज स्वभाव है। इसलिए श्रीहनुमानजी जब प्रभु के चरणों में बैठते हैं, जब भी प्रभु की कथा में जाते हैं तब उनकी आँखों में आँसू रहते हैं। श्रोता रूप में उनकी बन्दना करते हुए कहा गया है :-

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनम् तत्र-तत्र कृतमस्तकांजलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्।।

श्रीहनुमानजी का एक रूप वह भी है जो आत्मविश्वास से बिल्कुल दूर है

लेकिन सामने वाले व्यक्ति के मन में यदि निराशा आ गयी है तो उस निराशा को दूर करने के लिए श्रीहनुमानजी अपने विषय में कुछ भी कहने में संकोच नहीं करते, यद्यपि श्रीहनुमानजी का वह बोलना आत्मविज्ञापन के लिए नहीं होता। समुद्र के किनारे श्रीहनुमानजी की गर्जना से ऐसा लगता है कि जैसे वे अपनी प्रशंसा कर रहे हैं:-

सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा।।

अगर कोई श्रीहनुमानजी से पूछ दे कि पहले आप चुप कैसे थे और आप अब गरज कैसे रहे हैं, तो श्रीहनुमानजी यही उत्तर देंगे कि पहले तो मुझे यह पता था कि मैं संसार के लिए आया हूँ इसलिए मैं चुप था, परन्तु अब तो मुझे पता चल गया है कि मेरा जन्म राम-कार्य करने के लिए ही हुआ है। इसलिए अब तो श्रीराम के बल से गरज रहा हूँ क्योंकि अगर अपने बल से गरजता होता तो पहले भी गरज लेता। परन्तु बल तो केवल प्रभु का है इसलिए उन्हींके बल से गरज रहा हूँ और गर्जना करते हुए श्रीहनुमानजी कहते हैं कि इस समुद्र को मैं अभी एक छलाँग में पार करके चला जाऊँगा, रावण का वध कर दूँगा और उसके पश्चात् त्रिकूटाचल पर्वत को भी उखाड़ कर ले आऊँगा।

वास्तविकता तो यह थी कि यह शब्द श्रीहनुमानजी ने केवल बन्दरों की निराशा दूर करने के लिए कहा था और जब बन्दरों की निराशा यह सोच कर दूर हो गयी कि चलो हम लोगों में कोई ऐसा भी है जो इतने काम कर सकता है। तब श्रीहनुमानजी तुरन्त यह कहने के बाद जाम्बवान्‌जी से कहने लगे कि महाराज ! यद्यपि मैं यह सब कुछ कर सकता हूँ परन्तु आप से मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे यह बताइये कि मुझे क्या करना है ?- **जामवन्त मैं पूछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही।।**

उसके पश्चात् जब श्रीहनुमानजी समुद्र लाँघते हैं तो इतने भारी हो गये कि उसका परिणाम यह हुआ कि जिस पर्वत से श्रीहनुमानजी ने छलाँग लगायी वह पाताल में धँस गया-**जेहिं गिरि चरन देइ हनुमन्ता। चलेउ सो गा पाताल तुरन्ता।।** और जब लंका जलाने लगे तो उस समय भी तो श्रीहनुमानजी बहुत बड़े हो गये। वर्णन आता है कि श्रीहनुमानजी पहले तो बँधे हुए थे पर जब उनकी पूँछ में आग लगी तो श्रीहनुमानजी ने तुरन्त छलांग लगायी और लंका के घरों की दीवारों पर

चले गयें-

पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघु रूप तुरंता।।
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अँटारी। भईं सभीत निसाचर नारी।।

जब श्रीहनुमानजी दीवारों पर छलाँग लगा कर चढ़ गये और जब श्रीहनुमानजी ने छलाँग लगायी तो पर्वत नीचे धँस गया किन्तु ये दीवारें कितनी मजबूत थीं जो उनके पैर रखने से भी नहीं धँसी? तो भाई ! आज तो श्रीहनुमानजी बिल्कुल बदले हुए है क्योंकि 'देह विसाल' –देह तो उनकी उतनी ही विशाल थी जितनी कि समुद्र के किनारे थी। पर इतना होते हुए भी 'देह विसाल परम हरू आई' – अत्यधिक हल्के हैं। अशोक-वाटिका में श्रीहनुमानजी के छोटे-बड़े दोनों रूपों का वर्णन आता है। प्रारम्भ में श्री किशोरीजी के सामने श्रीहनुमानजी अत्यन्त छोटे-से थे, किन्तु जब श्रीहनुमानजी ने कहा, माँ ! चिन्ता मत करिये, क्योंकि हम बन्दरों के साथ प्रभु आवेंगे तथा आपको छुड़ा कर ले चलेंगे। माँ ने नन्हें-से श्रीहनुमानजी को देखा और बरबस उनके मुँह से निकला 'हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना'-पुत्र ! सारे बन्दर तुम्हारे ही समान हैं कि कुछ बड़े भी हैं और यदि केवल तुम्हारे ही समान छोटे हैं तो तुम लोगों का उत्साह तो बड़ा प्रशंसनीय है, पर तुम लोग कष्ट मत करना। क्योंकि 'जातुधान अति भट बलवाना' –राक्षस लोग तो बहुत अधिक बलवान हैं। इसलिए 'मोरे हृदय परम संन्देहा'-मेरे अन्तःकरण में अत्यन्त सन्देह है और तब श्रीहनुमानजी ने अपना विशाल रूप प्रकट किया।

सुनि कपि प्रगट कीन्ही निज देहा। कनक भूधराकार सरीरा।।
समर भयंकर अति बल बीरा। सीता मन भरोस तब भयऊ।।

श्री किशोरीजी ने कहा, हनुमान ! पहले तो तुम अत्यन्त छोटे थे और अब इतने विशाल हो गये। लेकिन यह तो बताओ तुम्हारा असली रूप कौन-सा है? श्रीहनुमानजी ने कहा, माँ ! मैं तो छोटा ही हूँ पर प्रभु का प्रताप कितना बड़ा है क्योंकि आपको जो विशालता दिखायी दे रही है यह मेरी नहीं बल्कि यह तो प्रभु के प्रताप की विशालता है :- सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि विसाल। प्रभु प्रताप ते गरुड़हि खाइ परम लघु व्याल।।

इस तरह श्रीहनुमानजी उचित अवसर पर उचित रूप धारण कर लेते हैं

और जब श्रीहनुमानजी वैद्य को लेने के लिए जाते समय अपने को छोटा बना लेते हैं तब इसका बहिरंग दृष्टि से तात्पर्य यह है कि यदि श्रीहनुमानजी खुलकर जायें तो राक्षस उन्हें अवश्य ही रोकने की चेष्टा करेंगे, परन्तु अन्तरंग दृष्टि से इसका अभिप्राय यह है कि जबतक व्यक्ति अपने को लघु नहीं बना लेगा तब तक वैद्य के प्रति उसके मन में आदर उत्पन्न नहीं होगा तथा वैद्य के विवेक को अपने से श्रेष्ठ नहीं मानेगा। इसलिए श्रीहनुमानजी लघु बन कर गये तथा वैद्यराज को सारे भवन सहित उठा कर ले आये।

रामचरितमानस में संकेत आता है कि हनुमानजी सीताजी की खोज में जब लंका जाते हैं तो वहाँ के बहुत से राक्षसों को तो मारते ही हैं; साथ ही जब लंका को जलाकर वे लौटने लगते हैं, तो जोरों से गर्जना करते हैं। यह थोड़ा विचित्र-सा लगता है। मन में विचार आता है कि कहीं हनुमानजी में अभिमान की वृत्ति तो नहीं आ गयी। विजय के पश्चात् कोई गरजने लगे तो इसका अर्थ यही है कि वह बड़ा अभिमानी है। तो क्या हनुमानजी को भी अभिमान आ गया था?

श्रीहनुमानजी अपनी पूँछ में लगी आग बुझाकर और थकावट दूर करके छोटा-सा रूप धारण कर श्रीजानकीजी के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हो जाते हैं। जब वे लंका को जलाने लगे थे, तो उनका रूप इतना विशाल था कि वह आकाश को छू रहा था, पर जब लंका जलाने के पश्चात् माँ के सामने जा रहे हैं तो वे तुरन्त नन्हें-से बन गये; तो हनुमानजी प्रयोजन के अनुसार कभी अपने को विशाल बना लेते हैं, तो कभी अत्यन्त लघु। कभी वे एकदम हल्के हो जाते हैं तो कभी बहुत भारी। पढ़कर ऐसा लगता है कि हनुमानजी बड़े भारी जादूगर थे या दूसरी दृष्टि से कहें तो उन्हें योगसिद्धि थी कि वह अपना रूप चाहे जैसा बना सकते थे। योग का तात्पर्य है- ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और दैन्ययोग। हनुमानजी के चरित्र की विशेषता यह है कि उनके चरित्र में चारों योग विद्यमान हैं, वे अलग-अलग प्रसंग में प्रयोजन के अनुसार अलग-अलग योग का प्रयोग करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि योग्य वैद्य अलग-अलग रोगों में भिन्न-भिन्न औषधि देकर रोग को शान्त करता है। उसी प्रकार मनुष्य के मन में या समाज में नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं, उनको दूर करने के लिए अलग-अलग योग की प्रधानता है। कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिनके हल में ज्ञानयोग की प्रधानता है,

कुछ के हल में भक्तियोग की, तो कुछ के सन्दर्भ में कर्मयोग की प्रधानता होती है, तो कुछ ऐसे हैं जिनके हल में दैन्ययोग प्रधान होता है। किसी समस्या के आने पर जिस योग के द्वारा उसका समाधान होना चाहिए, हनुमानजी अपने चरित्र के द्वारा उसी पद्धति से उसका समाधान प्रस्तुत करते हैं। यह हनुमानजी की विलक्षणता है। जब वे रावण की सभा में लाये गये, तो खुले रूप में नहीं अपितु बँधे रूप में। वे मेघनाद के नागपाश में बँधे हुए थे। मेघनाद बड़ा प्रसन्न था कि इस बन्दर में भले ही बहुत शक्ति हो पर अन्त में मैंने इसको बाँध लिया। पर सत्य क्या है? वस्तुतः हनुमानजी बँधे नहीं हैं, उन्हें बाँधा नहीं गया है,, अपितु उन्होंने जान-बूझकर बँधना स्वीकार कर लिया है। यह हनुमानजी के चरित्र में ज्ञानयोग की प्रधानता है। वे विचार करते हैं। उनके चरित्र में आप पग-पग पर देखेंगे कि जब वे कोई कार्य करेंगे, तो पहले विचार अवश्य करेंगें जिस समय सुग्रीव भगवान का कार्य भूल जाते हैं, तब-हनुमानजी विचार करते हैं। जब बन्दरों को प्यास लगती है, तो तुरन्त हनुमानजी- मन में विचार करते हैं कि अब बन्दर बिना जल के मर ही जायेंगे। फिर जब मेघनाद उनपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता है, उस समय वे मन में विचार करते हैं कि अगर मैं इसको नहीं मानता हूँ, तो उसकी अपार महिमा घट जायेगी और ऐसा सोचकर वे मेघनाद के नागपाश में बँध जाते हैं- फिर आगे चलकर हनुमानजी ने लंका में बहुत-से रखवारे देखकर मन में विचार किया कि अत्यन्त छोटा रूप धरूँ और रात के समय नगर में प्रवेश करूँ। लंका में पैठ कर अशोकवाटिका में पहुँच कर वे विचार करते हैं कि अब मैं क्या करूँ? और जब वे श्रीसीताजी की अँगूठी देने लगे, तो मन में विचार करते हैं।

तो इस प्रकार आप देखेंगे कि प्रत्येक कार्य के पीछे हनुमानजी का विचार है। पर आगे चल कर विचित्रता यह है कि उन्होंने विचार करना बन्द कर दिया। भगवान श्रीराघवेन्द्र ने हनुमानजी से पूछा- 'तुमने विचार किया, लेकिन लंका जलाने के पहले तुमने विचार क्यों नहीं किया?' प्रभु का संकेत यह था कि जब तुम एक नगर को जलाने का इतना बड़ा कार्य कर रहे थे, तब तुम्हें विचार तो करना चाहिए था? हनुमानजी उत्तर में बोले- 'महाराज ! जबतक मैं स्वतन्त्र था, तबतक तो विचार कर रहा था पर जब मैं परतन्त्र हो गया तब विचार करने

का कोई प्रयोजन ही नहीं रहा। अच्छा, प्रभु, अब आप मेरे एक प्रश्न का उत्तर दीजिये- 'मैंने लंका जलायी या मेरे द्वारा लंका जलवायी गयी? यदि मैंने लंका जलायी होती तो विचार किया होता पर यदि वह जलवायी गयी तो जलवाने वाला ही विचार करेगा।' हनुमानजी का संकेत यह था कि जो काम मैं स्वतन्त्र रूप से कर सकता था, उसमें तो मैंने विचार किया पर लंका जलाने में मैं स्वतन्त्र नहीं था। लंका जलाने में हनुमानजी ने भगवान राम का ही आदेश देखा। जब वे अशोक वृक्ष पर अपने को पत्तों के बीच छिपा कर बैठे हुए थे तब हनुमानजी विचार करने लगे कि अब मैं क्या करूँ? उसी समय रावण आता है और उसके चले जाने के बाद त्रिजटा स्वप्न सुनाती है। कहती है मैंने सपने में देखा है कि लंका में एक बन्दर आया हुआ है। हनुमानजी उसकी बात को बड़े ध्यान से सुनते हैं उसके बाद त्रिजटा कहती है कि वह बन्दर लंका को जलायेगा। यह भी मैंने स्वप्न में देखा है- सपनें बानर लंका जारी।

ज्यों ही हनुमानजी के कान में यह वाक्य पड़ा, तो वे चकित हो गये, वे सोचने लगे कि प्रभु ने मुझे लंका जलाने का आदेश नहीं दिया था परन्तु अब वे एक साध्वी राक्षसी के माध्यम से मुझे यह आदेश दे रहे हैं। यह कैसी बात है! प्रभु का खेल भी बड़ा अजीब होता है। रामायण में एक प्रश्न पूछा गया है- सन्त किस देश में होता है, वह किस काल में होता है, किस व्यक्ति को सन्त नहीं मिलता और किसे सन्त का सान्निध्य प्राप्त होता है? इसके उत्तर में वहाँ एक अनोखी पंक्ति लिखी गयी है- सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सन्त प्रत्येक देश में होता है, प्रत्येक काल में होता है और प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुलभ होता है। भगवान श्रीराघवेन्द्र ने अपना कार्य करने के लिए हनुमानजी को लंका भेजा था। हनुमानजी तो भारत के सन्त थे, जब लंका पहुँचे तो उनको सन्देह हो गया कि लंका में सन्त तो होगा नहीं पर कौतुकी भगवान ने कहा- 'नहीं भाई ! भारत में ही सन्त नहीं होते, लंका में भी होते हैं ! यह त्रिजटा कौन है? यह लंका की सन्त है। प्रभु बड़े कौतुकी हैं। वे भारत के सन्त को बताते हैं कि तुम्हें सीताजी को सन्देश देने हैं और लंका के सन्त को बताते हैं कि बन्दर को लंका जलानी है। इस तरह दो विलक्षण सन्तों का मिलन होता है। हनुमानजी बड़े चकित होते हैं, सोचते हैं कि इसकी बात मानूँ या न मानूँ? प्रभु ने तो केवल इतना ही कहा था कि सीताजी

को सन्देश देकर तुम चले आना और यह तो लंका जलाने की बात कर रही है। तब हनुमानजी ने निर्णय कर लिया कि अब स्वयं निर्णय नहीं लेंगे। प्रभु को जो करना हो, करावें। और जब हनुमानजी ने मेघनाद को ब्रह्मास्त्र का सन्धान करते देखा तो वे जानबूझ कर उसके नागपाश में बँध गये। उनका संकेत यह था कि महाराज ! अब मैं बँधा हुआ हूँ। अब मैं स्वयं होकर कुछ नहीं कर सकता, अब तो जो आप कराइयेगा वही करूँगा। जो करोना हो आप कराइये, आप जानिये। इस प्रकार हनुमानजी रावण की सभा में पराधीनता का योग धारण करते हैं। **"परबस जीव स्वबस भगवन्ता। जीव अनेक एक श्रीकन्ता।"** जीव परतन्त्र है, भगवान स्वतन्त्र हैं, जीव अनेक हैं, श्रीकान्त भगवान एक हैं। हनुमानजी अब इस सूत्र को स्वीकार करते हैं, इसलिए जब रावण इनको मार डालने की आज्ञा देता है तो वे अपने को बचाने की चेष्टा नहीं करते। उनका तात्पर्य यह था कि जब तक मैं स्वतन्त्र था तब तक जिन लोगों ने मुझ पर आक्रमण किया, उन पर मैंने भी आक्रमण किया। रावण को उत्तर भी उन्होंने यही दिया- **जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे।** प्रभु ने मानो पूछा- 'अब अपने को क्यों नहीं बचाते हो?' हनुमानजी ने कहा-आपको बचाना हो तो बचाइये। न बचाना हो तो मरने दीजिये; पर मैं अपनी रक्षा नहीं करूँगा और अनोखी बात यह हुई कि उसी समय विभीषण आ गये। वे बोल उठे- बन्दर को मारना नीति के विरुद्ध है। इस पर रावण ने आदेश दिया- 'मृत्युदण्ड रोक दो।'

हनुमानजी बड़े प्रसन्न हुए, बोले- 'देखो महाराज ! आपको बचाना था इसलिए आपने उसके लिए सारा प्रबन्ध कर दिया। मैं तो देख रहा हूँ कि स्वतंत्रता की अपेक्षा परतंत्रता की जो अनुभूति है, उसमें कहीं अधिक दिव्य सुख है।' उसके पश्चात् रावण ने कहा कि बन्दर को मृत्युदण्ड तो नहीं दिया जायेगा पर अंग-भंग किया जायेगा। इसलिए तुम लोग बन्दर की पूँछ में कपड़ा लपेटो, घी-तेल डालो और आग लगा दो, तो हनुमानजी को हँसी आ गयी। कारण यह था कि रावण को यदि हनुमानजी की पूँछ ही नष्ट करनी थी तो वह किसी को आज्ञा दे देता कि बन्दर की पूँछ काट दो तो उनकी पूँछ कट जाती, पर वह कहता है कि पूँछ में पहले कपड़ा लपेटो, उसमें घी-तेल डालो और फिर आग लगा दो। कौतुकी प्रभु का स्मरण कर वे हँस पड़े और गद्गद होकर बोले-

'प्रभु ! त्रिजटा का सपना ही ठीक था। मैं यदि लंका जलाना चाहता तो कहाँ से घी, तेल, कपड़े आदि का प्रबन्ध करता? आपको लंका जलवानी थी, सो उसका सारा प्रबन्ध आपने रावण से ही करवा दिया। इसीसे सिद्ध होता है कि जीव कितना परतन्त्र है।'

और इस तरह जीव की परतन्त्रता का आनन्द लेते हुए हनुमानजी अपने आप को प्रभु के हाथों यन्त्र के समान समझते हैं। यन्त्र स्वयं विचार नहीं करता। उससे जो जैसा कार्य लेना चाहता है उसके द्वारा वही कार्य होता है। ज्यों ही हनुमानजी को पता चला कि प्रभु उनसे लंका जलवाने का काम लेना चाहते हैं बस तुरन्त उन्होंने उतनी देर के लिए बन्धन स्वीकार कर लिया और भक्तियोग का आश्रय लिया। जिस नागपाश में वे बँधे हुए थे उसमें से उन्होंने अपने आपको समेट दिया। परिणाम यह हुआ कि नागपाश ढीला होकर गिर पड़ा। यह 'निबुकना' भक्तियोग है। 'निबुकने' का यह अर्थ है अपने आप को समेट लेना, अपने को छोटा बना लेना। मेघनाद मूर्तिमान काम है उसके लिए हनुमानजी भक्तियोग का आश्रय लेते हैं क्योंकि उसके नागपाश से छूटने का अर्थ है काम के पाश से छूट जाना। फिर उसके पश्चात् वे कर्मयोग और ज्ञानयोग का आश्रय लेते हैं। जैसे-

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास।।

उस समय भगवान की प्रेरणा से उनचासों पवन चलने लगते हैं। हनुमानजी अट्टहास करके गरजते हैं और अचानक बढ़कर आकाश को छूने लगते हैं। यहां पर श्रीहनुमानजी द्वारा 'गरजना' उनमें अहंकार अथवा अभिमान आ जाना नहीं है- क्योंकि इस समय वे ईश्वरेच्छा के अधीन हैं, परतन्त्र हैं स्वतंत्र नहीं हैं। अत्यन्त छोटा हो जाना- यह भक्तियोग है और आकाश को छूने लगना- यह ज्ञानयोग है। ज्ञानयोग की मान्यता है कि जीव ही ब्रह्म है और भक्तियोग कहता है कि जीव दास है। दास मानना यानी अपने को छोटा मानना। बन्धन से मुक्त होने में हनुमानजी ने भक्तियोग की महिमा दिखायी। अब लंका को जलाने में वे ज्ञानयोग की महिमा प्रदर्शित करते हैं; क्योंकि जलाने की कला में ज्ञान सर्वोच्च है। गीता में कहा भी है- ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा। ज्ञानरूपी

अग्नि समस्त कर्मों को भस्ममय कर देती है।

अब हनुमानजी का कर्मयोग क्या है? जब हनुमानजी बढ़कर आकाश को छूने लगे और लंका के घरों पर चढ़ गये तो किसी ने शंका प्रकट की कि क्या लंका के घर इतने मजबूत थे कि वे इतने विशाल हनुमानजी का बोझ सम्भाल सकें? हनुमानजी के साथ यही तो विचित्रता थी कि वे विशाल तो हुए, पर उन्होंने एक कला और दिखा दी, उन्होंने अपने शरीर को अत्यन्त हल्का कर लिया- देह विशाल परम हरु आई।

यही कर्मयोग है। कर्म तो कीजिये, पर अहंकार का भार न आने दीजिये। यह कर्त्तव्यरहित कर्म है। 'मैं करने वाला हूँ।' यही भावना ही सबसे बड़ा बोझ है। जहाँ यह भावना आयी तो व्यक्ति आधार से गिरा। तो हनुमानजी भक्तियोग के द्वारा नागपाश से मुक्त होते हैं; ज्ञानयोग के द्वारा विशाल होते हैं और कर्मयोग के द्वारा कर्त्तव्य के अहंकार से मुक्त होकर लंका को जला देते हैं। इस प्रकार वे तीनों योगों का समन्वय करते हैं और तीनों योगों की परिपूर्णता साधकर वे समुद्र में कूद पड़ते हैं उसके बाद ज़ब वे सीताजी के सामने जाते हैं तो- धरि लघु रूप बहोरि। उन्होंने अत्यन्त छोटा-सा रूप धारण कर लिया। इसका अभिप्राय यह कि हनुमानजी ज्ञानयोग-भक्तियोग और कर्मयोग के आचार्य होते हुए भी अपने आप को अत्यन्त दीन-हीन मानते हैं। यह उनका दैन्ययोग है। भक्तिस्वरूपा श्रीसीताजी के सामने वे उस दैन्ययोग का आश्रय लेकर एक नन्हें बालक के रूप में जाते हैं। बाबा में इन चार योगों का समन्वय आप साक्षात् देख सकते हैं।

अब हनुमानजी की जो गर्जना थी उसकी भला क्या आवश्यकता थी? उनकी गर्जना अहंकार के प्रदर्शन के लिए नहीं थी बल्कि यह उसके फल से मालूम पड़ गयी। हनुमानजी का गर्जन सुनकर लंका की राक्षसियों का गर्भपात हो गया। हनुमानजी ने सोचा कि बाहर तो राक्षसों को मैंने लड़कर मार दिया और जो बचे हुए राक्षस हैं, वे भी अन्त में प्रभु के द्वारा मार दिये जायेंगे पर जो राक्षसियों के गर्भ में पल रहे हैं, वे जब जन्म लेंगे तो फिर से नये राक्षसों की सृष्टि होगी। इसका आन्तरिक कारण क्या है? यह कि दुर्गुण के दो रूप हैं एक तो वह जो जीवन में प्रत्यक्ष दिखायी देता है और दूसरा वह जो नन्हें से भ्रूण के रूप में व्यक्ति के अन्तःकरण में छुपा हुआ है। बाहर से दिखाई देने वाले दुर्गुण से लड़ना सरल

है, उन्हें परास्त करना सरल है। पर उनके अन्दर जो छिपे हुये दुर्गुण हैं उन्हें मिटाना बड़ा कठिन है। इसलिए हनुमानजी गर्जना के द्वारा भीतर पल रहे दुर्गुणों को उनके बाहर प्रकाशित होने के पहले नष्ट कर देते हैं।

सीताराम पदाम्बुजे मधुपव दूयन्मानसं लीयते,
सीताराम गुणावली निशि दिवा यज्जिह्वया पीयते।
सीताराम विचित्र रूपमनिशं यच्चक्षुर्षोभूषणं,
सीताराम सुनाम थाम निरतं मारुतिं राम सम्भजे।।

रावण ने अपने पराक्रमी अस्सी 'हजार' किंकर नामक राक्षसों को, प्रहस्त-पुत्र जम्बुमाली को, सात मन्त्रिपुत्रों को तथा पाँच सेनापतियों को क्रमशः भेजा। उन्हें देखते ही युद्ध के उत्साह में हनुमानजी ने बड़ी भयंकर गर्जना की। उन्होंने कुछ चुने-चुनाये भटों को तो काल के गाल में पहुँचाया और कुछ चोट खाये हुए अधमरों को रावण के पास समाचार पहुँचाने के लिये छोड़ दिया। वे घायल राक्षस गुहार लगाते हुए रावण के पास पहुँचे। इस बार रावण ने अपने प्रिय पुत्र कुमार अक्ष को युद्धार्थ भेजा। वह महाभट सुभटों की सेना लेकर चला। उसे आता देखकर हनुमानजी ने एक वृक्ष को हाथ में लेकर उसे डाँटा और देखते-ही-देखते उसका वध कर पुनः ऊँची ध्वनि में गर्जन किया।

अशोक-वाटिका में हनुमानजी को चार बार युद्ध करना पड़ा। चारों युद्धों के तारतम्य को हम इनके गर्जन से समझ सकते हैं। पहली लड़ाई प्रहरी भटों के साथ हुई। वह इनकी दृष्टि में इतनी हल्की रही कि इन्हें युद्ध का आनन्द ही नहीं आया; इसलिये इन्होंने साधारण गर्जन भी नहीं किया। दूसरी लड़ाई रावण के द्वारा प्रेषित जाने-माने भटों के साथ हुई। उसमें इन्हें थोड़ा युद्धोत्साह आया, इसलिंये इन्होंने साधारण गर्जन किया। तीसरी लड़ाई महाभट अक्षकुमार के साथ हुई। रावण-पुत्र अक्ष का वध करके ये युद्धोत्साह में जोर से गरजे। चौथी लड़ाई दारुण भट और अतुलित योद्धा मेघनाद के साथ हुई। मेघनाद को देखकर इन्होंने तीन क्रियाएँ एक साथ कीं- कटकटाये, गरजे और दौड़े- कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा।।

●●●

हनुमानजी की चिरंजीवितता तथा धाम

बाबा श्रीहनुमानजी सनातन, चिरंजीवी और परात्पर हैं। वे श्रीराम की कल्याणमयी कथा सुनने के बड़े ही तल्लीन रसिक और गायक हैं। जहाँ-तहाँ वे अदृश्य, सूक्ष्मरूप में, अथवा रूप बदलकर, विद्यमान रहकर श्रीराम कथा का आनन्द लेते और देते हैं। उनके हृदय में घटघट व्यापी श्रीराम नित्य रमण करते हैं। श्रीहनुमानजी न तो किसी विशेष धाम अथवा लोक के सर्वतन्त्र स्वतंत्र अधिपति हैं, न उनके भगवद्भक्तिमय आप्तकाम जीवन के लिये श्रीराम की कथा को छोड़कर किसी विशिष्ट धाम में निवास की अपेक्षा अथवा आवश्यकता है। श्रीराम ने परमधाम जाने के समय श्रीहनुमानजी से कहा था, "हनुमान, तुम चिरंजीवी होओ। जब तक लोग मेरी कथा कहें, तब तक प्राणों को धारण करो।" अतः वे सर्वत्र साक्ष्य हैं। उनका धाम सर्वत्र हैं।

'धाम' से क्या तात्पर्य है? इसके बारे में कहा जाता है कि श्रीभगवान् धामरूप में प्रकट होकर, वहां पर अपनी कृपा को उन भक्तों को देते हैं जिनसे किसी प्रकार का भजन-साधन नहीं बनता और यदि वे केवल उनके धाम में आकर पड़ जायँ तो धाम में श्रीभगवान अपने अचिन्त्य प्रभाव से उनके जन्म-जन्मान्तर के पापों का मार्जन कर उन्हें अपनी दैवी सम्पत्ति का अधिकारी बना देते हैं। जो लोग उनकी इस कृपा से आकृष्ट होकर श्रद्धापूर्वक धाम की शरण लेते हैं भगवान उनका आभार मानते हैं; क्योंकि वे भगवान की ही जीवोद्धार रूप की एक साध पूरी करते हैं। भगवान की अपनी उक्ति है कि वे अपने भक्तों के पीछे फिरते रहते हैं, जिससे उनके चरण की रज उड़कर उनके ऊपर पड़े और वे धन्य हो जायँ- *'अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।'*

श्रीहनुमानजी का भी वचन है कि 'देखो, मैं वानर हूँ। कोई संयम-नियम, सदाचार, शौचाचार मुझे में हैं ही नहीं -मेरी जाति में तो सर्वथा नहीं है। अतः ये सब सद्गुण किसी में हैं या नहीं, यह देखने का न मुझे स्वत्व है, न मेरा यह

स्वभाव है। श्रीराम का नाम, उनका भुवन-पावन चरित का जाप तथा उनके भक्त मुझे स्वभाव से प्राणप्रिय हैं।'

अनेकानेक अनुभूतियों, कथाओं तथा परम्परा के रूप में सुनी गई किम्बदन्तियों के आधार पर यह कहा और माना जाता है कि भगवान सर्वत्र साकार उपस्थित होते हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के पंचम स्कन्ध में जहाँ खण्डों या वर्षों का वर्णन आया है, वहाँ किस खण्ड में भगवान किस रूप से विराजमान हैं और उनका मुख्य भक्त किस प्रकार उनकी स्तुति करता है-- इसका भी कथन है। उन्नीसवें अध्याय के प्रारम्भ में ही आचार्य श्रीशुकमुनि परमभागवत राजर्षि परीक्षितजी से कहते हैं-

"राजन्! किम्पुरुषवर्ष में लक्ष्मणजी के बड़े भ्राता आदिपुरुष सीताहृदयाभिराम भगवान राम के चरणकमलों की सन्निधि के परमरसिक महाभागवत श्रीहनुमानजी अन्य किन्नरगणों के सहित अविचल भक्तिभाव से उनकी उपासना करते हैं। वहाँ अन्य गन्धर्वों के साथ आर्ष्टिषेण उनके स्वामी भगवान् श्रीराम की परमकल्याणमयी गुणगाथा का गायन करते रहते हैं और हनुमानजी उसे सुनते हैं तथा स्वयं भी इस मन्त्र का जाप करते हुए इस प्रकार उनकी स्तुति करते है-'हम ॐकारस्वरूप पवित्रकीर्ति भगवान श्रीराम को नमस्कार करते हैं। आप में सत्पुरुषों के लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं, आप बड़े ही संयमशील, लोकाराधनतत्पर, साधुता की परीक्षा के लिए निकष के समान और अत्यन्त ब्राह्मणभक्त हैं, ऐसे महापुरुष भगवान् राम को हमारा बारम्बार नमस्कार है।'

कहा गया है कि हेमकूट ऐसा पवित्र स्थल है जहाँ सिद्ध रहते हैं। किम्पुरुषवर्ष हेमकूट से दक्षिण में स्थित कहा गया है। हेमकूट किन्नरों का निवासस्थल बताया जाता है। श्रीहनुमानजी किम्पूरुषवर्ष और अयोध्या में नित्य निवास करते हैं।

महाराजा रघुराजसिंह ने अपने 'रामरसिकावली' (भक्तमाला) ग्रन्थ के त्रेतायुगखण्ड, प्रथम अध्याय में श्रीहनुमानजी के किम्पुरुषवर्ष में निवास का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। उनके अनुसार 'वे बड़े ही तेजस्वी हैं। उनके समान श्रेष्ठ श्रीरामभक्त दूसरा कोई नहीं है। किम्पुरुषवर्ष में जहाँ के ठाकुर कोसलेन्द्र भगवान श्रीराम हैं, श्रीहनुमानजी गन्धर्वों के साथ उनका अनुरागपूर्वक चरण-वन्दन और पूजन करते हुए नित्य निवास करते हैं। वहाँ तुम्बरु आदि गन्धर्व समाजसहित आकर मधुर-मधुर वाद्य बजाते और रामायण का गायन करते हैं। पवननन्दन उन्हें सुनते

हैं। उनके नेत्रों से अश्रु झरते रहते हैं। वे श्रीराम के चरणों के ध्यान में तल्लीन हो जाते हैं; इसी प्रकार जहाँ-कहीं भी रघुपति की कथा होती है, वहाँ वे करबद्ध होकर विनम्रता से उसे सुनते हैं।"

कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में बताया है कि हेमकूट सुपावन तप-स्थल है, जहाँ सत्वर सिद्धि की प्राप्ति होती है।

गर्गसंहिता में उल्लेख है कि पूर्वकाल में देवताओं और असुरों ने मिलकर क्षीर-सागर का मन्थन किया। उससे चौदह रत्न निकले, जिनमें अमृत से भरा कलश भी था। उस कलश को श्रीहरि ने दोनों नेत्रों से देखा। उनके नेत्रों से हर्ष के आँसू की एक बूँद उस कलश में गिर पड़ी। उससे एक वृक्ष उत्पन्न हुआ, जिसे 'तुलसी' कहते हैं। भगवान विष्णु ने उस वृक्ष का नाम 'रंगवल्ली' रखा। उन्होंने किम्पुरुषवर्ष के हेमकूट पर्वत की भूमि में उस रंगवल्ली की स्थापना की। वह वृक्ष वहाँ सतत विराजमान है। उस वृक्ष के नाम पर रंगवल्लीपुर नगर स्थित है, जहाँ प्रतिदिन श्रीरामपूजक महात्मा श्रीहनुमानजी संगीत-कुशल आर्ष्टिषेण के साथ दर्शन के लिए आया करते हैं। इस वर्णन से आप सोचेंगे कि श्रीहनुमानजी संगीत-कुशल आर्ष्टिषेण के साथ क्यों आते है? श्रीहनुमानजी एक महानगायक और संगीत प्रेमी हैं। इसके प्रमाण साधारण नहीं, अनेक ग्रन्थ भी हैं। श्रीमद्भागवत में भी उनके संगीतज्ञ होने की चर्चा है। भागवत कहती है-'किम्पुरुषवर्ष में हनुमान किन्नरों और गन्धर्वों के साथ लक्ष्मण के अग्रज, आदि-पुरुष राम के गुणों का गायन करते रहते हैं।" जी हां, स्पष्ट लिखा है, 'और स्वयं भी इसे गाते है-स्वयंचेदं गायति।" हां बाबा हनुमान गाते हैं और वह भी किन्नरों और गन्धर्वों के स्वर में स्वर मिलाकर। वे श्रीराम के गुणों का गान करते हैं-संकीर्तन करते हैं। यह उनकी आदत है, उनका धर्म है।

कैलास का नाम प्रसिद्ध है। हिमाद्रि का यह हिममंडित शिखर अपने धवल सौन्दर्य के लिए सदा से विख्यात है। कालिदास ने शिव-वाहन नन्दी के रंग की उपमा कैलास से दी है। इसी कैलास पर गौतम ऋषि का आश्रम था। ऋषि अपने अनन्य सेवकों साधकों के साथ इस देव-शिखर पर सानन्द निवास कर रहे थे। उनके प्रिय शिष्यों में एक का नाम था शंकरात्मा। शंकरात्मा जितना कैलासपति आशुतोष शिव का भक्त था उतना ही अपने गुरु गौतम के प्रति भी श्रद्धानत था।

अवधूत रुप में विचरण करता शंकरात्मा देखने में बड़ा अपावन और व्यवहार में उद्दंड था।

कथा प्रचलित है कि एक दिन गौतम के आश्रम में अतिथियों की भीड़ जुटी। पाताललोक से बाणासुर अपने गुरु शुक्राचार्य के साथ पहुंचा और उनके साथ था दैत्यपति वृषपर्वा। कुछ दिन आश्रम में शान्तिपूर्वक बीते। किन्तु एक दिन अनर्थ घट गया।

वृषपर्वा शिवभक्त था। एक दिन शिवाभिषेक के पश्चात् वह बर्फ निर्मित शिवलिंग के समक्ष स्तोत्र पाठ में लीन था। तभी नंग-धड़ंग शंकारात्मा कहीं से आ खड़ा हो गया। स्तोत्र-पाठ के बाद शिवभक्त वृषपर्वा ने आंखे खोलीं तो सामने के दृश्य को देख वह दंग रह गया। उसने तलवार से शंकारात्मा की गर्दन उतार ली। ऋषि कुटी में रक्त की नदी बह गई। गौतम दौड़े-दौड़े पूजा-गृह में पहुंचे तो शिष्य शंकारात्मा का निष्प्राण शरीर छटपटा रहा था। सिर एक ओर बिल्व-फल की तरह पड़ा हुआ था। अपने प्रिय शिष्य को इस तरह कालकवलित हुए देख ऋषि अपने को रोक नहीं सके और उन्होंने भी अपने प्राणों को खींच उन्हें ब्रह्मांड में विलीन कर दिया। दैत्य कुलगुरु शुक्राचार्य के पास यह संवाद पहुंचा तो उन्होंने इस अनर्थ के मूल में अपने को ही समझा और इस पाप के प्रायश्चित हेतु अपने प्राण उत्सर्ग कर दिए। ऋषि के साथ आये दैत्यों ने जब अपने गुरु के प्राण-विसर्जन की बात सुनी तो उन्होंने भी एक-एक कर अपने प्राण छोड़ दिए। थोड़ी देर पहले जो आश्रम शिवभक्तों से सेवित और जीवन से स्पन्दित था वही अब श्मशान की तरह शान्त और भयावना हो आया।

ऋषि-पत्नी अहल्या ने जब यह हाल देखा तो घोर पीड़ा से व्याकुल हो क्रन्दन कर उठी। अहल्या को जितना अपने पति के प्राणों के जाने का कष्ट था उससे कम अनेक शिव-भक्तों के प्राणोत्सर्ग का नहीं था। शिव-भक्तों के आराध्य, पशुपति भी तो कैलाशवासी ही हैं। अहल्यारुदन को उन तक पहुंचने में विशेष समय नहीं लगा और वे नन्दी पर आरूढ़ होकर गौतम-आश्रम आ धमके। संयोगवश उस समय उनके यहां ब्रह्मा और विष्णु भी अतिथि बने हुए थे। शिव के साथ वे भी अहल्या के समक्ष उपस्थित हुए। त्रिमूर्ति को अपने समक्ष खड़ी देख अहल्या ने अपने जीवन को धन्य माना, पर पतिवियोग के दुःख को वह तब भी भूल

नहीं पाई। "औघड़दानी आशुतोष के दर्शन व्यर्थ नहीं होते। वर मांगो।"-शिव ने अपनी सहज मुस्कान के साथ कहा तो अहल्या चुप ही रही।

विष्णु ने भोलेनाथ के कानों से मुंह लगाया और बोले, "आप अपने इन सभी भक्तों को जीवन-दान दीजिए। इससे बड़ा वरदान अभी क्या हो सकता है?"

विष्णु की बात सुनते ही शिव ने शवों पर अपनी अमृत-वर्षिणी दृष्टि फेरी और वे शव प्राणक्त हो आये।

प्रसन्नता से भरे त्रिदेव चले मानसरोवर की तरफ और वहां जल-क्रीड़ा में रत हो गए। बूढ़े ब्रह्मा तो तट पर ही खड़े अपने नेत्रों को तृप्त करते रहे पर शिव एवं विष्णु सरोवर के मध्य खड़े हो एक-दूसरे पर जलाजंलि फेंकने और हास-परिहास में लीन हो गए। सभी ऋषि और देवता भी यह दृश्य देखने मानसरोवर के तटपर आ जुटे और थोड़ी देर पहले के दारुण दुःख भूलकर भोले शंकर और वैकुण्ठपति की इस जल क्रीड़ा को निहार तालियां बजा-वजा आनन्दित होने लगे। ठीक इसी समय नारदजी भी आकाश मार्ग से पहुंचे।" नारायण! नारायण!' का स्वर व्याप्त हो गया। पशुपति और विष्णु भी सरोवर से बाहर आ तट पर विराजमान हो गए और लगे इस आनन्द का उपभोग करने। नारद की वीणा की तान पर सभी देव-मुनि नृत्यमग्न हो गए, एक बात की कमी सभी को खल रही थी। बिना संगीत के वाद्य क्या?

"इस समय हनुमान की कमी खल रही है।" किसी ने कहा। देवताओं की बात देवताओं तक पहुंचने में कितना समय लगता है? और फिर जहां आराध्य साक्षात् विष्णु श्रीहनुमान की पुकार करें तो वे देर क्यों करेंगे? श्रीहनुमानजी मानसरोवर के तट जा पहुंचे। त्रिदेवों को नमस्कार निवेदित किया और तट पर पालथी लगा बैठ गये। नारद ने वीणा का नए सिरे से झंकार किया और वे गायन-मग्न हो गये। उस दिन ब्रह्मा, विष्णु और शिव की स्तुति में वे इतने तन्मय हुए कि उनका गायन सबकी वाह-वाह का कारण बन आया। भोले बाबा तो इतने प्रसन्न हुए कि सारी सुध-बुध खो तट पर ही लेट गए और अपना दाहिना पैर उठा श्रीहनुमानजी की गोद में डाल दिया। "धन्य हो हनुमान, तुमने तो आज रामरस की धारा ही बहा दी।"

किम्पुरुषवर्ष में भगवान् श्रीराम विराजमान हैं और भगवती सीता उनके साथ

सुशोभित रहती हैं। श्रीहनुमानजी उनकी स्तुति में तत्पर रहते हैं। वे उनका गुण गाते हैं तथा भक्तिपूर्वक भलीभाँति उनकी पूजा करते हैं। सनातन गोस्वामी ने प्रह्लाद की प्रेरणा से श्रीराम की उपासना में तत्पर श्रीहनुमानजी के दर्शन के लिए देवर्षि नारद के किम्पुरुषवर्ष में जाने का उल्लेख किया है। प्रह्लादजी ने नारद से कहा कि 'यदि आप भगवान के कृपापात्र श्रीहनुमानजी के दर्शन करना चाहते हैं तो किम्पुरुषवर्ष में उनके दर्शन कीजिए। मैंने श्रीहनुमानजी की महिमा वर्णित की है, उससे भी अधिक आप स्वयं जानते हैं।' श्रीनारद ने आकाश मार्ग से किम्पुरुषवृर्ष में पदार्पण किया। उन्होंने हनुमानजी के साक्षात् दर्शन किए। वे स्वयं भगवान श्रीराम के मूर्तिस्वरूप का पूजन उस क्षेत्र में उपलब्ध सामग्री से कर रहे थे। वे मग्न होकर गन्धर्वों के मुखारविन्द से रामायण सुन रहे थे और प्रेम में पुलकित होकर प्रेमाश्रु बहा रहे थे। वे अपने द्वारा निर्मित विचित्र दिव्य गद्य-पद्यमय स्तोत्रों द्वारा भी स्तुति कर रहे थे तथा दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे।

नारदजी के आगमन पर श्रीहनुमानजी ने उन्हें प्रणाम किया और श्रीराम के चरणों में प्रणाम कराने के लिए मन्दिर में ले गए। श्रीहनुमानजी ने देवर्षि नारद से कहा कि 'अयोध्यापुरी के पुरन्दर श्रीराम सब राजाओं के चक्रवर्ती हैं। श्रीसीता-लक्ष्मण उनकी सदा सेवा करते हैं। वे भरत के ज्येष्ठ भ्राता हैं एवं सुग्रीव के प्रिय हैं। विभीषण उनके चरणों में शरणागत हैं। वे दशरथनन्दन हैं, कौसल्या के सुपुत्र हैं। उनके कर-कमल में सदा धनुष शोभित है। मैं यहाँ (किम्पुरुषवर्ष) उन्हीं श्रीराम के अर्चा-विग्रह का साक्षात् दर्शन करता हुआ तथा उनकी चरितामृत कथा को सुनता हुआ निवास करता हूँ।'

अध्यात्मरामायण में हिमालय पर तपस्या के लिए श्रीहनुमानजी के गमन का उल्लेख मिलता है, जिससे किम्पुरुषवर्ष में जाकर उनके निवास करने का प्रसंग स्पष्ट हो जाता है। श्रीहनुमानजी ने श्रीराम से कहा था कि "आपका नाम-स्मरण करते-करते मेरा चित्त तृप्त नहीं होता। मैं आपका नाम-स्मरण करता हुआ निरन्तर पृथ्वी पर रहूँ। मुझे वर दीजिए कि जब तक संसार में आपका नाम रहे, तब तक मेरा शरीर भी रहे।' श्रीराम ने कहा कि 'ऐसा ही हो; तुम जीवन्मुक्त होकर संसार में सुखपूर्वक रहो; कल्प का अन्त होने पर तुम निस्संदेह मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे।' यह आदेश पाकर श्रीहनुमानजी नेत्रों में आनन्दाश्रु भरकर

श्रीसीताराम को पुनः-पुनः प्रणाम कर तपस्या के लिए हिमालय पर चले गए।

महाकवि कालिदास का कथन है कि 'विष्णुभगवान (श्रीराम) ने रावण का वध करके देवताओं का कार्य पूरा किया। उत्तरगिरि हिमालय पर श्रीहनुमानजी को तथा दक्षिणगिरि त्रिकूट पर विभीषण को अपने दो कीर्तिस्तम्भों के रूप में स्थापित कर भगवान अपने विराट् शरीर में लीन हो गए। यथा श्रीहंनुमानजी किम्पुरुषवर्ष में निवास कर हिमगिरि पर श्रीराम के कीर्तिस्तम्भ के रूप में विराजमान होकर उनके भजन-पूजन में रत रहते हैं।

'सबै भूमि गोपाल की'- अतः श्रीहनुमानजी के लिये कोई भूमि परायी नहीं है। सभी अपने हैं। तुलसीदासजी ने श्रीराम के मुख से एक बड़ी सटीक बात कहलवाई-'यद्यपि सब लोग बैकुण्ठ की सराहना करते नहीं थकते, वेद-पुराण भी यही कहते हैं पर इस भेद को कोई-कोई जानता है कि अवधपुरी के समक्ष वह भी मुझे प्रिय नहीं है, जिसके उत्तर की ओर पवित्र सरयू बहती है वह मेरी जन्मभूमि बड़ी सुन्दर है।" श्रीराम के इस आशीर्वाद से सम्पन्न दिव्य साकेतलोक-अयोध्यापुरी में हनुमानजी निवास करते हैं। वे उनके दिव्यातिदिव्य अभिन्न स्वरूप हैं। भगवान राम का निवास साकेतधाम तथा उनके समस्त परिवार और परिकर नित्य हैं।

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं- 'समस्त इक्ष्वाकुवंशी नित्य हैं, रघुकुल में जन्म लेने वाले नित्य हैं, मैं नित्य हूँ, मुनिगण नित्य हैं और सभी मन्त्री नित्य हैं तथा ब्राह्मण आदि सम्पूर्ण अयोध्यावासी प्रजा नित्य हैं। श्रीराजकुल की सेवा करने वाले भृत्य तथा दासियाँ भी नित्य हैं। श्रीमती कौसल्या नित्य हैं, नरेश्वर दशरथ नित्य हैं और कैकेयी तथा सुमित्रा आदि सभी राजरानियाँ नित्य हैं। श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न नित्य हैं और रघुकुल में उत्पन्न होने वाले सभी कुमार नित्य हैं। दशरथ की गोद में विराजमान परमात्मा का अंश (श्रीराम) नित्य हैं। ब्रह्मा, महेश, इन्द्र आदि से संयुक्त ये कोटिशः ब्रह्माण्ड तभी तक हैं, जब तक श्रीराम के कटाक्ष से प्रलय नहीं हो जाता, अर्थात् महाप्रलय के समय उन सबका भी विनाश हो जाता है। श्रीराम का नाम, रूप, लीला, धाम-ये चारों नित्य, परात्पर तथा सच्चिदानन्द के विग्रहस्वरूप हैं।'

शिवसंहिता में कहा गया है 'भगवान श्रीराम का रूप परात्पर-सर्वश्रेष्ठ है,

उसकी विविध प्रकार से सेवा की जाती है, वह वसिष्ठ, वामदेव आदि मुनिगणों द्वारा परिवेष्टित हैं, उनके पीछे की ओर लक्ष्मण सुन्दर चँवर और छत्र धारण किए हुए खड़े हैं तथा भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई अपने-अपने कर-कमलों में ताल-पत्र-निर्मित व्यंजन लिए हुए दाएँ-बाएँ भाग में अवस्थित हैं एवं सम्मुख श्रीहनुमानजी तल्लीन भाव से सुन्दर पुस्तक का पाठ कर रहे हैं। इसी ग्रन्थ में यह भी उल्लेख है कि 'साकेतधाम के दक्षिण द्वार पर, जहाँ भगवान श्रीराम का परमप्रिय 'सान्तानिक' नाम दिव्य वन है, श्रीरामवत्सल श्रीहनुमानजी सदा स्थित रहते हैं। भगवान श्रीराम के प्रिय पात्र धर्मात्मा राक्षसराज विभीषण पश्चिम द्वार को तथा सूर्य-पुत्र विश्वात्मा सुग्रीव पूर्व द्वार को घेरकर उसकी रक्षा करते हैं। मेरा परमप्रिय वीर बालिपुत्र अंगद उत्तर द्वार की रक्षा करता है तथा जो समस्त सत्त्वगुणों से युक्त और सम्पूर्ण बल का आश्रयस्थल है एवं स्वयं महाशम्भु ही जिस दुर्धर्ष बन्दर के रूप में विराजमान हैं, वे रामवत्सल श्रीहनुमान सदा दक्षिण द्वार पर परिरक्षण करते हैं।'

श्रीहनुमानजी को अयोध्या में नित्य निवास करने वाला बताते हुए बृहद्रामायण में उल्लेख है-'साकेतधाम में सुग्रीव, हनुमान, नील, नल, पनस, जाम्बवान, अंगद, मैन्द, दधिमुख, केसरी, द्विविद और गन्धमादन-ये सभी वानरेन्द्र सप्तम कक्ष में स्थित रहते हैं। ये सभी दिव्य देहधारी, धैर्यशाली, श्रेष्ठ वीर, वीरों के भी मन को आकृष्ट करने वाले हैं। इनके शरीर दिव्य गन्ध से अनुलिप्त तथा दिव्य माला और वज्र से सुशोभित हैं। दिव्य रत्नों की चमक से इनके अंग चित्र-विचित्र से लगते हैं और ये सभी दिव्य आभूषणों से विभूषित हैं। इनके मस्तक बहुमूल्य रत्नों से खचित किरीट-मुकुटों द्वारा सुशोभित हैं। इनके गले में दिव्य हार, भुजाओं में बाजूबन्द और कानों में स्वर्णनिर्मित कुण्डल अपनी कान्ति बिखेर रहे हैं। ये सभी यशस्वी, महान, पराक्रमी, सर्वज्ञ, दीर्घदर्शी अथवा विशाल नेत्रोंवाले, दर्शनीय, सुन्दर नेत्रधारी, श्रीराम की सेवा में तत्पर, स्वच्छन्दगामी, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले और श्रीराम के आनन्द रस के इच्छुक हैं। इनमें से किन्हीं के रंग गौर, किन्हीं के कृष्ण, किन्हीं के कर्पूर सरीखे उज्ज्वल और किन्हीं के चितकबरे हैं। ये सभी मुख्य-मुख्य कपिराज अपने-अपने मण्डल में स्थित रहते हैं और इनके साथ करोड़ों गणों तथा गणराजों के दल भी रहते हैं।'

'श्रीरामानन्द-ग्रन्थमाला' में नारदपंचरात्रान्तर्गत 'बृहद्ब्रह्मसंहिता' में उल्लेख है कि श्रीराम के अनन्य सेवक महावीर श्रीहनुमानजी ही श्रीराम-तन्त्र के तत्त्व को पूर्णरूप से जानते हैं। वे महाविभूति में स्थित होकर साकेतधाम की ईशान दिशा में रक्षक-रूप में सदा निवास करते हैं।

देवर्षि नारद की प्रेरणा से दिव्य अयोध्यापुरी में गोपकुमार ने प्रवेश किया था। इनका कहना है कि "मैंने वहां बहुत से बन्दरों को देखा, जो श्रीरामनाम-कीर्तन करते हुए चंचलता से कूद रहे थे। मैं करबद्ध खड़ा हो गया। श्रीहनुमानजी मुझे अन्तःपुर में ले गए। मैंने मनुष्याकृति भगवान श्रीराम के दर्शन किये। श्रीहनुमानजी प्रभु के समीप गए, जिनके वाम भाग में सीताजी शोभित थीं तथा दक्षिण भाग में लक्ष्मणजी विराजमान थे। मैंने देखा कि श्रीहनुमानजी कभी-कभी उनके गुण गाते हुए चँवर डुलाते हैं तो कभी सामने उपस्थित होकर हाथ जोड़कर स्वनिर्मित श्लोकों से स्तुति करते हैं, कभी श्वेत छत्र धारण करते हैं, कभी श्रीराम के चरण कमल की सेवा करते हैं और कभी एकाग्र होकर अनेक सेवाएँ एक ही साथ करते हैं।'

हमारे नेत्रों को दिखने वाली अयोध्या में आज वह अयोध्या नहीं हैं जो त्रेता के दिनों में थी। वह देव-नगरी तो तब एक दिव्य-धाम थी जो परब्रह्म के लीला समेटने के साथ ही मानव नेत्रों से तिरोहित हो गई। तब से वह कई बार बसी और कई बार उजड़ी। कभी यह धन-धांन्य पूर्ण रही, तो कभी वहां झाड़-झंखाड़ उग आये। अट्टालिकाएं धूल-धूसरित हो गईं, बाजार उजड़ गए।

हमारे नेत्रों के लिये जो अयोध्या अदृश्य है उसमें श्रीहनुमानजी हर समय अपनी इस प्रिय नगरी के आस-पास ही डोलते रहते हैं। प्रकृति के नियमों से परे कुछ भी नहीं है। जन्म-मरण और निर्माण-विध्वंस, परब्रह्म की अपरा शक्ति, इस प्रकृति के मूल में है। अतः श्रीहनुमानजी सब कुछ बड़े तटस्थ भाव से देखते रहते हैं। वे अयोध्या के सौभाग्य और दुर्भाग्य, उसके उत्कर्ष और विकर्ष के मौन साक्षी हैं।

द्वापर के कृष्णावतार के कुछ ही वर्षों के पश्चात अयोध्या पूरी तरह उजड़ गई थी। कृष्ण-प्रेम की ऐसी लहर जगी थी जन-जन में कि लोग रामरूप को प्रायः भूल ही गए थे। लोगों के मन में सीता-राम के रूप को राधा-कृष्ण के आकर्षण

ने अपदस्थ कर दिया था। यद्यपि अभिन्न ही थे दोनों युगल। एक ही ब्रह्म और उसकी पराशक्ति के भिन्न-भिन्न व्यक्त रूपों में अन्तर कहां है?

द्वापर में अयोध्या लुप्त प्रायः हो गई। क्रूर काल ने इसके नामोनिशान को ही समाप्त कर दिया। पहले जब यह नगरी कई बार उजड़ी-बसी तो कोई-न कोई पहचान बची ही रहती थी इसकी। लोग उसी पहचान को पकड़ पुनःनिर्मित कर लेते थे इस नगर को। भक्ति-भाव की लहर तो उठती-गिरती रहती ही है। कभी ज्वार का काल आता है तो कभी भाटा का। भाटा के दिनों यह नगर उजड़ा तो ज्वार के दिनों बस आया। पर अब कलि ने पूरी तरह मिटा ही दिया था इसके अस्तित्व को। नगर की ईंट-ईंट विलुप्त हो धूल मिट्टी की ऐसी मोटी पर्त पड़ गई कि कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि उस स्थान पर कभी कोई धन-धान्य से पूर्ण एक उत्कृष्ट अध्यात्म नगर बसता था।

हमारे सद्गुरु बाबा आश्वस्त हैं,- अयोध्या के दिन फिरेंगे। बाबा को कोई शीघ्रता नहीं है। काल के अनन्त प्रवाह के साक्षी वे जानते हैं कि कालदेवता के यहां वर्षों-युगों का कोई महत्व नहीं होता। निश्चय ही कोई आयेगा इसका उद्धारक। हो सकता है- *"आ ही गया है।"*

आप जाते होंगे अयोध्या तो देखते ही होंगे इसकी परिस्थिति को। मन्दिर भग्न और धराशायी हो रहे हैं। इनके खंडहरों में अराजक तत्वों-चोर-लुटेरों, द्यूत-प्रेमियों और बटमारों-के डेरे पड़ गए हैं। जो कुछ मन्दिर खड़े हैं, उनमें अधिकांश के अन्दर दीप-आरती की व्यवस्था भी नहीं है। कुछ की छतें टूटी हैं तो कुछ की दीवारें धाराशायी हो गई हैं। अन्दर झाड़-झंखाड़ उग आये हैं। सड़कें और गलियां तंग और गंदगी भरी हैं। मन्दिर टूटते हैं तो उनके स्थान पर गृह बन जाते हैं। देव-मूर्तियों को निष्कासित कर मानव- वहां अपने को स्थापित कर लेते हैं।

आवश्यकता है अयोध्या के पुनरुद्धार की। प्रतीक्षा है बाबा की, कि वे अयोध्या की नष्ट-प्रायः गरिमा को पुनर्जीवन दें। यहां के खंडहर हो रहे मन्दिरों का पुननिर्माण करायें। यह वह अयोध्या है जो हमें दृश्य है और अदृश्य अयोध्या में हैं मेरे बाबा श्रीहनुमान। अब उन्हें उनके असीमित बल और क्षमता का भास कराना होगा जैसा कि जाम्बवन्त ने किया था।

ऋक्षराज जाम्बवान को विदित था कि श्रीहनुमानजी शाप के कारण शान्त हैं।

इन्हें अपनी अपरिमेय शक्ति की स्मृति नहीं है, अन्यथा अपने स्वामी सुग्रीव को संकटग्रस्त देखकर भी ये स्थिर कैसे रहे; ये निश्चय ही वाली को दण्डित करते। अतः जाम्बवान ने श्रीहनुमानजी को उनकी अजेय शक्ति का स्मरण कराते हुए कहा-'भगवान श्रीराम के अनन्य भक्त वज्रांग हनुमान! श्रीराम के कार्य की सिद्धि के लिए ही तो तुमने अवतार धारण किया है। तुम केसरी के क्षेत्रज पुत्र हो। तुम्हारा पराक्रम शत्रुओं के लिए असह्य है। महावीर! तुम वायुदेव के औरस पुत्र हो, इसलिए तेज की दृष्टि से भी उन्हीं के समान हो। महाबाहो! बाल्यावस्था में ही तुम सूर्यदेव को अरुण फल समझकर उनका भक्षण करने के लिए एक ही छलाँग में उनके समीप पहुँच गए थे। तुम्हारी गति अव्याहृत है। हे कपिशार्दूल केसरीकिशोर! उठो और इस महासागर को लाँघ कर लंका जाओ। वहाँ माता-सीता के दर्शन कर शीघ्र लौट आओ। समस्त वानर चिन्ताग्रस्त हैं। तुम क्यों इनकी उपेक्षा करते हो? हे जगत्प्राणनन्दन! जैसे भगवान विष्णु ने त्रिलोक को नापने के लिए तीन पग बढ़ाए थे, उसी प्रकार तुम भी अपने पैर बढ़ाओ और उत्तम लोकों की गति प्राप्त करो।"

इस प्रकार वानरों और भालुओं में श्रेष्ठ जाम्बवान की प्रेरणा-सामर्थ्य से बाबा श्रीहनुमानजी को अपने विराट् वेग पर विश्वास हो आया और तत्क्षण उनका शरीर पर्वताकार हो गया। आज हमें भी सच्चे मन और लगन से बाबा को प्रेरित करना है उनके प्रति पूर्ण सर्मपण करके। सच्चे मन से की गई सच्ची पुकार को वे फौरन सुनते हैं। ऐसे हैं मेरे बाबा।

●●●

अध्याय–दस

श्रीहनुमन्नाम की महिमा तथा भक्ति

देखिअहिं रूप नाम अधीना। रूप ग्यान नहिं नाम विहीना।।

इस दृष्टि से नाम और नामी का सम्बन्ध अविच्छिन्न और अभेद्य है। नाम में नामी के व्यक्तित्व, उसके चरित्र एवं गुण तथा प्रभाव अन्तर्निहित होते हैं। 'हनुमान' शब्द में भी हनुमान का सम्पूर्ण व्यक्तित्व, गुण, चरित्र एवं पौरुष बीज रूप से अन्तर्निहित है। हनुमानजी का यह नाम स्व-स्वरूप निर्देशक नाम है। वाल्मीकि रामायण (अहं सुग्रीव सचिवो हनुमान नाम वानरः), अध्यात्मरामायण (हनुमान नाम विख्यातो अञ्जनी गर्भ संभवः–), तथा रामचरितमानस (मारुतसुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपा निधाना।।) में उन्होंने अपना परिचय 'हनुमान' नाम से ही दिया है। अतएव, हनुमान के व्युत्पत्ति मूलक अर्थ पर विचार करना अनिवार्य हो जाता है।

'हनुमान' शब्द हिंसा तथा गति अर्थ वाली 'हन्' धातु में 'उ' प्रत्यय तद्वितीय 'मतुप' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है हनु (दाढ़) वाला। 'मेदिनी-कोश' के अनुसार 'हनु' शब्द के कई अर्थ होते हैं– वैश्या, मृत्यु, अस्त्र, रोग एवम् दोनों कपोलांग। इसमें 'मृत्यु' और 'अस्त्र' ये दोनों अर्थ हन् धातु के हिंसार्थ से सम्बन्धित हैं। अस्त्र में गत्यर्थ भी सम्मिलित है तथा इस शब्द का ग ात्यर्थ है– क्षेपण एवं दूरीकरण। अतः हनु के इन दोंनों अर्थों को मतुप प्रत्यय के अर्थ से संयुक्त करने पर हनुमान शब्द का अर्थ होता है– अस्त्रवान एवं मृत्युमान। ये दोनों अर्थ हनुमानजी के प्रक्षेपण प्रहार एवं संहार की प्रचण्ड शक्ति को निर्दिष्ट करते हैं। इन्हीं नामों के अनुरूप हनुमानजी सर्वसंकटहर्ता, सर्वविधि भूत, प्रेत, पिशाच ग्रहादि बाधा के निवारक, शत्रु स्तम्भक एवं असुर संहारक माने जाते हैं।

हन् धातु का दूसरा अर्थ है– गति। वैयाकरणों के अनुसार गति शब्द के तीन अर्थ हैं– ज्ञान, गमन और प्राप्ति। मतुवर्थ (तदस्य अस्ति– वह इसका है) से संयुक्त करने पर हनुमान का अर्थ होगा– ज्ञानवाला, गतिवाला और प्राप्तिवाला।

श्रीहनुमान सर्वविद्यावारिधि हैं, गति एवं बल के भण्डार हैं। उन्हें सभी ऐश्वर्य

भोगों की तथा ब्रह्म की प्राप्ति हो चुकी है। हनुमान अपने नामार्थ के अनुरूप गति, मति एवं शक्ति में अतुल हैं।

हन् धातु के गत्यर्थ मूलक प्राप्ति अर्थ की दृष्टि से विचार करें तो राम के अनन्य सेवक हनुमानजी को कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं है। श्रीराम ने तो उन्हें अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है- **एष सर्वस्व भूतस्तु परिपवंगों हनुमतः। मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः।।**

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हनुमान नाम में हन् धातु के आश्रित, संहार पराक्रम, विविध कर्म दक्षता, ज्ञान, गति एवं प्राप्ति से युक्त होना, ये सभी अर्थ सन्निविष्ट हैं।

हन् धातु का अर्थ कपोलावयव (ठुड्डी) भी है। इन्द्र के वज्र प्रहार से वाम हनु के भंग हो जाने के कारण इनका नाम हनुमान (भग्न ठुड्डी वाला) पड़ा।

कई विद्वान हनुमान और 'ॐ' कार को एक ही तत्व मानते हुए कहते हैं कि 'तान्त्रिक वर्णबीज कोश' सिद्धान्त के अनुसार 'ह' आकाशबीज है, जो आञ्जनेय (हनुमानजी) का नामाक्षर विष्णु तत्व का द्योतक है। कोश शास्त्र में आकाश द्रव्य को 'विष्णु पदम्' कहा गया है। यथा 'वियद् विष्णु पद वा तु पुंस्याकाश विहायसी इत्पमरः।' इस प्रकार नाम का प्रथम अक्षर 'ह' कार विष्णु तत्व सिद्ध हुआ, जो ओंकार (अ+उ+म्) के प्रथम भाग अकार से गृहीत है- 'अकारो वासुदेवः स्यात्।'

'नु' यह हनुमान के नाम का दूसरा अक्षर है, इसमें जो उ कार है, वह शिवतत्व का द्योतक है। मेदिनीकोश के 'उ सम्बोधन रोषोक्त्याः'- इस वचन के अनुसार रुद्ररूप शिव ही सिद्ध होते हैं। श्रीमद्भागवत परमहंस्य संहिता में तो स्पष्ट ही :रुद्रः क्रोध समुद्भवः' कहकर कार्य-कारण की अभिन्नता के आधार पर रोष को रुद्र और रुद्र को रोष सिद्ध कर दिया गया है। इस प्रकार नाम का द्वितीय अक्षर 'नु' शिवतत्व सिद्ध हुआ।

मान् नाम के तृतीय भाग में जो म एक भाग है, (क्वचिदेकदेशोऽपि गृह्यते) यह बिन्दु नाद शून्य अनुस्वार का बोधक है। तंत्रग्रन्थ 'वर्ण-बीज-प्रकाश-कोश' के अनुसार 'म' कार को ब्रह्मतत्व भी कहा जा सकता है।

इस प्रकार समष्टि शक्ति रूप से 'ॐ' ब्रह्मा, विष्णु, महेश- इन तीनों ही आदि कारण तत्वों का भी प्रतीक है। निष्कर्ष यह हुआ कि 'ह-अ, न-उ, म-त'--

हनुमान-ओम् एक तत्व ही सिद्ध हुए।

इस प्रकार हनुमानजी की उपासना साक्षात् 'ॐ' तत्वोपासना होने से परब्रह्म की उपासना हुई।

'हनुमान' नाम पर किये गये अन्वेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि किसी बन्दर देवता की पूजा अनार्यों में प्रचलित थी। आर्यों को जब इस देवता का पता लगा तो उन्होंने इसे वृषाकपि की संज्ञा दी। इस देवता का नाम नर बन्दर था और इसे द्रविड़ भाषा में अणमन्ति कहते थे। इसी देवता की आर्यों के धर्म में समावेश की कथा ऋग्वेद के दसवें मण्डल में मिलती है। आगे चलकर अणमन्ति से हनुमत् शब्द बना, जिस रूप में आज भी वे हिन्दुओं द्वारा पूजे जाते हैं।

प्राचीन चरित्रकोश के अनुसार- 'रावण' शब्द की भाँति हनुमत् भी एक द्रविड़, शब्द है, जो आणमंदी अथवा आणमंती का संस्कृत रूप है, 'अण- का अर्थ है नर एवं मंदी का अर्थ है कपि। इस प्रकार एक नरवानर के प्रतीक़ रूप में हनुमत् की कल्पना सर्वप्रथम प्रसृत हुई। इसी नरवानर को आगे चलकर देवता का स्वरूप प्राप्त हुआ एवम् उत्तर कालीन साहित्य में राम एवं लक्ष्मण के समान हनुमत् भी एक देवता माना जाने लगा।

उपर्युक्त नाम विवेचन से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि हनुमानजी निरे बन्दर (कपि) नहीं, अपितु मानवीय गुणों से सम्पन्न (वानर वा+नर-विशेष+नर) देवकोटि की परमोज्ज्वल विभूति हैं, जिन्हें निस्सन्देह प्रार्थना, अभ्यर्थना, वन्दना एवं उपासना का सहज आलम्बन बनाया जा सकता है। मूर्धन्य कवियों ने भी हनुमानजी को मारुतसुत और अंजनीसुत के रूप में मान्यता दी है। हनुमन्नाटक में हनुमानजी को रुद्रावतार कहा गया है। किष्किन्धा पर्वत पर हनुमानजी को रौद्ररस के स्वरूप में देखकर राम कहते हैं-

किष्किन्धाद्रौ रौद्ररुद्रावतारं दृष्ट्वा रामो मारुतिं वाचमूचे।
सीता नीता केनचित्त्वापि दृष्ट्वा हृष्टाः कष्टं संहारप्राह वीरः।।

रावण ने हनुमानजी को ग्यारहें रुद्र का अवतार कहा है। नारदपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, भविष्यपुराण आदि पुराणों तथा कम्बरामायण, तत्वसंग्रह रामायण, कृत्तिवासीय रामायण, आनन्द रामायण में भी हनुमानजी के शिवावतार या रुद्रावतार होने की कथा उपलब्ध होती है। उड़िया साहित्य के सारलादास-कृत महाभारत तथा

अर्जुनदास-कृत रामविभा से यही प्रमाणित होता है कि हनुमानजी शंकरजी के ही अंश हैं। विदेशों में जो हनुमज्जन्म की कथा प्रचलित है, उसके अनुसार हनुमानजी श्रीराम के पुत्र हैं, परन्तु उसी स्थल पर यह भी देखने में आता है कि अंजनी के गर्भ से ही हनुमानजी की उत्पत्ति हुई, यद्यपि पिता सदृश श्रीराम हैं।

तुलसी साहित्य के अनुशीलन से भी यही प्रमाणित होता है कि श्रीहनुमान रुद्र के अवतार हैं। हृदयराम के हनुमन्नाटक से भी यही प्रमाणित होता है कि हनुमानजी उमापति के अवतार हैं। भक्तमाल में हनुमानजी को 'हरि वल्लभ' और 'रघुवीर सहचर' कहा गया है, वहीं पर हनुमानजी द्वारा दो रूपों में सेवा करने का उल्लेख मिलता है- (१) श्री निमिकुल कुमारी चारूशीला हो के सखीसेवा सुख अनुभव करते हैं। (२) श्री अंजनीनंदन रूप में दिव्य दम्पतिजी की दास्य सेवा का सुख लेते हैं। हनुमानजी का यह अजनीनंदन वाला कपिस्वरूप ही रामायण में गृहीत है, जिससे वे भगवान राम की सहायता करते हैं। चारुशीला सखी का रूप मधुर भाव के उपासकों ने ग्रहण किया। इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि हनुमानजी भगवान शिव के अवतार हैं। हनुमानजी के रुद्रावतार का प्रारम्भ आठवीं शताब्दी से मानने का उपक्रम किया गया है, परन्तु अर्वाचीन साहित्य में यह रुप इतना व्यापक और लोकप्रिय हो गया था कि इसकी परम्परा कुछ और प्राचीन प्रतीत होती है। वाल्मीकि रामायण के कई ऐसे स्थल हैं जहाँ हनुमानजी के अवतारी स्वरूप की व्यंजना होती है, सामान्य रूप में ये रुद्रावतार हैं। एक स्थल पर तो राक्षसों को ऐसा आभास होता जाता है कि कहीं बन्दर रूप में रुद्र ही तो नहीं है। अतएव यह कहा जा सकता है कि हनुमानजी के रुद्ररूप का आभास वाल्मीकि से ही मिलना प्रारम्भ हो गया था, परन्तु इसका प्रचार और प्रसार बाद के साहित्य में गृहीत हुआ।

भगवत्भक्ति की परम्परा में श्रीरामभक्त हनुमानजी का नाम अग्रगण्य है। उन्हें जिन विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है उनमें कतिपय ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध उनके जन्म अथवा अवतरण से है, उनमें विशेष कर शंकरसुवन (भगवान शिव के पुत्र), केसरीनन्दन (कपिराज केसरी के दुलारे), अंजनिपुत्र (अंजना के पुत्र) तथा पवनसुत (पवनदेव के सुत) अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इस सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास ने उनकी स्तुति करते हुये इन नाम संबोधनों का प्रयोग किया है-

"शंकरसुवन केसरीनन्दन।" तथा "अंजनिपुत्र पवनसुत नामा।।"

'अंजनिपुत्र का शव्दिक अर्थ है सती अंजनादेवी के पुत्र और इसी कारण हनुमानजी को आंजनेय तथा अंजनीनन्दन आदि विशेषणों से सम्बोधित किया गया है। दूसरे संवोधन पवनसुत का तात्पर्य वायुदेव के पुत्र से है और इसी कारण उन्हें वायुपुत्र, मारुतात्मज, पवनतनय आदि नामों से पुकारा गया है। ये दोनों ही संबोध्न हनुमानजी के पिता तथा माता की ओर इंगित करते हैं और इस तथ्य के भी साक्षी हैं कि उनका जन्म अथवा अवतरण ईश्वरीय विधान का अंग है और उनका स्वरुप आधिदैविक था। पुराणों के अनुसार माता अंजना अपने पूर्वजन्म में पुंजिकस्थला नामक एक परम रूपवती तथा गुणसम्पन्ना अप्सरा थी जो देवराज इन्द्र के दरबार की शोभा बढ़ाया करती थी। अत्यन्त रूपवती होने के साथ साथ वह अत्यन्त चंचल स्वभाव की थी। एक समय उसने एक ऋषि का उपहास कर दिया और उन्होंने क्रोध में आकर उसे शाप देते हुए कहा कि वह वानरी की तरह चंचला दिखती फिरती है अतः उनके शाप से वह वानरी के रुप में जन्म ग्रहण करेगी। शापग्रस्त अप्सरा भयभीत होकर ऋषि के चरणों में गिरकर क्षमायाचना करने लगी। ऋपि ने द्रवित होकर कहा कि उनका शाप तो मिथ्या नहीं हो सकता और उसे वानरी का जन्म तो लेना ही पड़ेगा किन्तु वह अपनी इच्छानुसार रूप धारण कर सकेगी अर्थात अपनी इच्छा के अनुसार जब चाहे वानरी और जब चाहे स्त्री का रूप धारण कर सकेगी। तदनुसार उसी पुंजिकस्थला नामक अप्सरा ने शाप के फलस्वरुप कपियोनि में कपिराज कुंजर की सुता के रूप में जन्म लिया और अंजना नामक से विख्यात हुई। कालान्तर में उसका विवाह वानरराज केसरी से सम्पन्न हुआ। विवाह के अनेक वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी अंजना को पुत्रलाभ नहीं हुआ। अतः पुत्रप्राप्ति की कामना से वह कठोर तप करने लगी। उसे घोर तप में लीन देखकर जब मंतग ऋषि ने उससे कठिन व्रत करने का कारण पूछा तब उसने अपनी सम्पूर्ण व्यथा बताई और उनसे पुत्र प्राप्ति का उपाय पूछा। ऋषि ने उसे वृषभाचंल (वेंकटाचल) जाकर भगवान वेंकटेश्वर के चरणों में प्रणाम करने का परामर्श दिया और आकांशगंगा नामक तीर्थ में स्नान करने के उपरान्त उसका पवित्र जल पीकर पवनदेव को प्रसन्न करने को कहा, जिसके परिणामस्वरुप उसे देव, राक्षस, ब्राह्मण तथा मनुष्यों से अविजित तथा अस्त्रशस्त्रों

से भी अबध्य पुत्र प्राप्त होगा। अंजना ने वैसा ही किया और प्रसन्न होकर वायुदेव पूर्णिमा के दिन प्रगट हुये और उसे आशीर्वाद दिया कि वे स्वयं उसके पुत्र के रुप में जन्म लेंगे। उसके पश्चात् जब एक दिन अंजना शृंगार करके पर्वत पर खड़ी प्रकृति की सुषमा निहार रही थी तभी सहसा वायु का तीव्र झोंका आया और उनकी साड़ी का अंचल कुछ खिसक गया। अंजना को लगा जैसे कोई उन्हें स्पर्श कर रहा है। पतिव्रता स्त्री के लिए इससे बढ़कर पाप की बात और क्या हो सकती थी और वह क्रोध में शाप देने को उद्यत हुई ही थी कि पवनदेव प्रगट हो गये और बोले- 'देवी मैं तुम्हारे पातिव्रत्य का नाश नहीं कर रहा हूं। मैंने तो केवल अव्यक्त रुप से तुम्हारा आलिंगन किया और मानसिक संकल्प द्वारा बल और वीरता से सम्पन्न एक अति बुद्धिमान पुत्र प्रदान किया है। तुम्हारा यह पुत्र महाबलशाली, तेजस्वी तथा छलांग में मेरे ही समान होगा।' पवनदेव के वर से प्रफुल्लित अंजना ने उन्हें क्षमा प्रदान कर दी और जब पति केसरी को सारी घटना का जानकारी दी तो उनके भी हर्ष का पारावार न रहा। शीघ्र ही अंजना गर्भवती हुई और समय आने पर महाबलशाली और बुद्धिमान हनुमानजी का जन्म हुआ। एक अन्य पौराणिक कथा के अनुसार कपिराज केसरी की पत्नी अंजना निस्संतान होने के कारण अत्यन्त दुखी होकर ऋषि मतंग की शरण में गई और अपनी पीड़ा बताने के उपरान्त उनसे पुत्रप्राप्ति का मार्ग पूछा। ऋषि ने कहा- "पम्पा सरोवर से पूर्व दिशा में पचास योजन पर नरसिंह नामक आश्रम स्थित है जिसके दक्षिण की ओर नारायणगिरि पर स्वामितीर्थ नामक एक स्थान है उससे एक कोस उत्तर में आकाशगंगा नामक तीर्थ है। वहाँ जाकर उसमें नित्य स्नान करो और बारह वर्ष तक तपस्या करो इसके फलस्वरुप तुम्हारे गुणवान पुत्र उत्पन्न होगा।" ऋषि के बताए हुये उपाय के अनुसार अंजना तपस्या में लीन हो गई। बारह वर्ष की घोर तपस्या के पश्चात वायुदेवता प्रसन्न हुये और पुत्र होने का वरदान दिया।

एक अन्य कथा के अनुसार केसरी नामक असुर की पुत्री अंजना और वानरराज केसरी के संयोग से हनुमानजी का जन्म हुआ था। उल्लेख है कि त्रेतायुग में केसरी नाम का एक असुर था, जिसने अपने तपोबल से शिवज़ी को प्रसन्न कर लिया और उन्हीं के वरदान से उसे अंजना नाम की कन्या उत्पन्न हुई। पिता ने वानरराज केसरी की प्रार्थना पर उन दोनों का विवाह कर दिया।

पुल्कसी के रुप में पधारे धर्मदेवता की भविष्यवाणी तथा उनके परामर्श के अनुसार अंजना पुत्रप्राप्ति हेतु केवल वायु का भक्षण करके वायुदेव का ध्यान करती हुई सात हजार वर्षों तक तपस्या करती रही। तब भविष्यवाणी हुई कि भगवान के राम के रुप में अवतरित होने पर उसे एक अत्यन्त गुणवान पुत्र उत्पन्न होगा। तदनन्तर अंजना ने यह सारा वृतांत अपने पति केसरी को बताया और वह बहुत प्रसन्न हुये। कालांतर में अंजना गर्भवती हुई तथा श्रावण मास की एकादशी के दिन उसने सूर्योदय के समान, कानों में कुंडल पहने, यज्ञोपवीत धारण किये हुये, कौपीनधारी, वानर की भाँति रुपवाले एक सोने जैसे वर्ण वाले सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। इसी बालक का नाम हनुमान पड़ा। वायुपुराण में भी हनुमानजी को माता अंजना के गर्भ से उत्पन्न पवनदेव का पुत्र बताया गया है तथा यह भी कहा गया है कि स्वयं भगवान शंकर हनुमानजी के रूप में अवतीर्ण हुए।

आदिकवि वाल्मीकि ने भी महावीर हनुमान के अंजनापुत्र तथा पवनसुत होने के सम्बन्ध में अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है। जाम्बवान ने उनके प्रादुर्भाव की कथा इस प्रकार बताई है:- पुंजिकस्थला नाम की अप्सरा समस्त अप्सराओं में अग्रगण्य थी। एक समय वह शापवश कपियोनि में अवतीर्ण हुई। उस समय वह वानरराज कुंजर की पुत्री थी तथा इच्छानुसार रुप धारण करने वाली थी। भूतल पर उसके रूप की समानता करने वाली दूसरी कोई स्त्री नहीं थी और वह तीनों लोकों में विख्यात थी। उसका नाम अंजना था और वह वानरराज केसरी की पत्नी हुई। एक दिन की बात है कि रुप और यौवन से सुशोभित होने वाली अंजना मानवी स्त्री का शरीर धारण करके एक पर्वत शिखर पर विचर रही थी। उसी समय वायु देवता ने उसके वस्त्र को धीरे से हटा लिया। तत्पश्चात उन्होंने उसके अंगों का बलात् अवलोकन किया और पवनदेव काम से मोहित हो गये। उनके सम्पूर्ण अंगों में कामभाव का आवेश हो गया और मन अंजना में ही लग गया। उन्होंने उस अवस्था में अनिन्द्य सुन्दरी को अपने हृदय से लगा लिया। अंजना उत्तम व्रत का पालन करने वाली सती नारी थी, अतः उस अवस्था में पड़कर वह घबरा उठी और बोली- "कौन मेरे इस पातिव्रत्य का नाश करना चाहता है?" अंजना की बात सुनकर पवनदेव ने उत्तर दिया- "सुश्रोणि, मैं तुम्हारे पतिव्रत का नाश नहीं कर रहा हूँ अतः तुम्हारे मन में यह भय दूर हो

जाना चाहिए। यशस्विनी, मैंने अव्यक्त रूप से तुम्हारा आलिंगन करके मानसिक संकल्प के द्वारा तुम्हारे साथ समागम किया है। इससे तुम्हें वल-पराक्रम से सम्पन्न एवं बुद्धिमान पुत्र प्राप्त होगा। वह महान धैर्यवान, महातेजस्वी, महावली, महापराक्रमी तथा लाँघने और छलांग भरने में मेरे ही समान होगा।" वायुदेव के ऐसा कहने पर अंजना प्रसन्न हो गई और उसने हनुमानजी को एक गुफा में जन्म दिया। वाल्मीकि रामायण के कतिपय अन्य प्रसंग भी उल्लेखनीय हैं। लंकायुद्ध में जब इंद्रजीत ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया तब श्रीराम लक्ष्मण सहित समस्त कपिसेना मूर्छित हो गई। तदनुसार वानरसेना की खोज खवर लेने के लिए विभीषण जाम्बवान के पास गए, उस समय उन्हें थोड़ी सी ही संज्ञा आई और उन्होंने हनुमानजी के संबंध में इस प्रकार पूछा- "उत्तम व्रत के पालक विभीषण! यह तो बताओ जिनको जन्म देने से अन्जना देवी उत्तम पुत्र की जननी और वायुदेव श्रेष्ठ पुत्र के जनक माने जाते हैं वे वानरश्रेष्ठ हनुमान कहीं जीवित हैं?' मैनाक-पर्वत हनुमानजी की प्रशंसा करते हुए कहता है- हे कपिश्रेष्ठ! आप देवशिरोमणि महात्मा वायु के पुत्र और वेग में भी उन्हीं के समान हैं। आपकी पूजा होने पर साक्षात वायुदेव का पूजन हो जायेगा। वायुदेवता तो देवताओं के दूत हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। वास्तव में वे भी भगवान विष्णु के राम-अवतार की दैवी योजना के ही एक अभिन्न अंग हैं जिसके अन्तर्गत भगवान शंकर के अंश के रुप में पवनदेव तथा अंजना देवी की सहायता से उन्होंने स्वयं हनुमान के रुप में अवतार ग्रहण किया था। इसी कारण उन्हें 'शंकर सुवन' भी कहा गया है। अध्यात्म- रामायण में भगवान श्रीराम हनुमानजी से कहते हैं- "हे महावीर! आप साक्षात पवनदेव के पुत्र हैं और उन्हीं के समान पराक्रमी हैं। अतः आज अपनी सामर्थ्य दिखलाइये। महात्मा वायु ने रामकार्य के लिए ही आपको उत्पन्न किया है।" आनन्द-रामायण में भी उन्हें रुद्र का अवतार तथा वायुदेव का पुत्र कहा गया है। वायुपुराण में उल्लेख है कि अंजना के गर्भ से उत्पन्न हनुमानजी पवनदेव के आत्मज हैं। गोस्वामीजी ने भी इसी तथ्य को उद्‌घाटित किया है- जब जाम्बवान श्रीहनुमानजी को उत्साहित करते हुए कहते हैं- "हे हनुमान, हे बलवान्! सुनो, तुमने यह क्या चुप साध रक्खी है? तुम पवन हो और बल में पवन के समान हो। तुम बुद्धि, विवेक और विज्ञान की खान हो। जगत में ऐसा कौन सा कार्य

है, हे तात! जो तुमसे न हो सके। श्रीरामजी के कार्य के लिए ही तो तुम्हारा अवतार हुआ है।" भरतजी को अपना परिचय देते हुए उन्होंने स्वयं कहा है कि वह मारुत के पुत्र हैं।

पुंजिकस्थला, (जो अगले जन्म में अंजना हुई) तथा हनुमानजी के आधिदैविक सम्बन्ध की भिन्न भिन्न व्याख्यायें उपलब्ध हैं। शतपथब्राह्मण के अनुसार "पुंजिकस्थला" का अर्थ दिशा अथवा अग्नि-सेना होता है। सर्वविदित है कि पवन अथवा वायु समस्त दिशाओं के स्वामी अथवा देवता हैं और उनके कण-कण में समाहित अथवा व्याप्त हैं, वही सम्पूर्ण विश्व का प्राण हैं तथा सभी के उत्पत्तिकर्ता और सभी कर्मों का कारक होने के कारण विश्वकर्मा कहलाते हैं। पुंजिकस्थला रुपी अंजना तथा पवनदेव का सम्मिलन स्वर्गरूपीदिशा अथवा दिव्यचेतना तत्व अथवा दैवीप्रकाश तत्व तथा वायु का सत्यरुपी दिशा और पवमान का तथा चेतन प्रकृति तथा विश्वात्मा का योग दर्शाता है। स्पष्ट है कि इन दोनों दिव्य शक्तियों के संयोग का ही फल है- अलौकिक शक्ति, ज्ञान एवं सत्य की चेतना से व्याप्त आंजनेय हनुमानजी का दैवी उद्देश्य से इस धरती पर अवतरित होना। अग्नि के प्रसंग में देखें तो पवन तथा अग्नि की मैत्री तो सर्वविदित है, और दोनों ही अन्योन्याश्रित है। वायु में सबको युक्त करने या मिलाने का गुण है। अतः अग्नि की शक्ति और वायु जब एक हो जाते हैं तब अग्नि के तेज तथा संहार करने की शक्ति और वायु के समान प्रबल वेग और शौर्य जैसे दैवीगुणों (लंका-दहन के सन्दर्भ में भी देखें) से सम्पन्न अद्भुत जीव की उत्पत्ति होती है। इसी कारण माता अंजना तथा पवनदेव के संयुक्त संयोग के फलस्वरूप उपयुक्त गुणों से युक्त आंजनेय हनुमानजी का अवतार संभव हुआ। अप्सरा पुंजिकस्थला रूपी अग्नि के अंश से जन्म लेने के कारण ही हनुमानजी के शरीर का वर्ण करोड़ों सूर्यों के समान लाल है और उन्हें कंचनवरण कहा गया है। तभी तो लंकादहन के समय भयानक अग्निज्वाला से जब एक ओर विभीषण के भवन को छोड़कर समूची लंका जलने लगती है, हनुमानजी स्वयं उससे अछूते रह जाते हैं। अंजनिपुत्र श्रीहनुमानजी की निम्नांकित स्तुति भी इसी तथ्य का संकेत देती है कि वे अग्निगर्भा माता अंजना द्वारा उत्पन्न किये गए हैं-

उल्लंघ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोक वह्निं जनकात्मजायाः।

आदाय तेनैव ददाह लंका नमामि तं प्रांजलिरांजनेयम्।।

अर्थात्- जिन्होंने लीलापूर्वक समुद्र की जलराशि का अतिक्रमण करके जनकजी की सुपुत्री सीताजी की शोकरुपी अग्नि से लंका कों जला दिया उन आंजनेय को मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं।

"पुंजिकस्थला" का एक और अर्थ है- पूंजीभूत भूमि या दूसरे शब्दों में सम्पूर्ण संसारिक चेतना शक्ति को एकत्रीकृत करके एक समन्वयात्मक व्यक्तित्व के रूप में प्रकट एकत्व को प्राप्त हुई सांसारिक चेतना की सत्ता। अंजना का अर्थ है जो सौन्दर्य प्रसाधन सहित सुषमा और गति से अभिव्यक्त हो। इस दृष्टि से विचार करें तो सुमेरु शिखर पर विराजमान अंजना सौन्दर्य की चेतना में दैवीस्वरूप को प्रकट करने वाली सक्रिय सांसारिक चेतना शिखरभूमि के रुप में दिखाई देती है, जहाँ वायुरुपी पवन देवता उसमें मानसिक संकल्प द्वारा दिव्य चेतनाका अंश प्रवेश कराते हैं, जिसके परिणामस्वरूप दिव्य कार्य की पूर्ति हेतु शोधित सिद्धमन्त्र रुप हनुमानजी जैसे अद्भुत योद्धा का जन्म होता है। अन्य शब्दों में, वायुदेवता और अंजना का सम्मिलन साधना की आग में तपायी तथा शुद्ध की हुई सांसारिक चेतना और ईश्वरीय चेतना का सम्मिलन है। जब भगवतकृपा स्वयं साधक योगी के भीतर अपना ही अंश रोप देती है तो उससे दैवी कार्य का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

श्री हनुमानजी को 'आंजनेय' सम्बोधन के साथ एक अन्य तथ्य भी जुड़ा हुआ है जो विचारणीय है। 'अंजना के पुत्र' शब्द का संदर्भ मातृपक्षीय है। अतः वह इस बात का भी प्रतीक है कि अंजनिपुत्र हनुमानजी में माता की जाति के कष्ट को दूर करने तथा उनकी सेवा करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति मुख्यरूप से विद्यमान है। इसीलिये उन्हें विशेपरूप से जगन्माता जानकीजी के शोक का नाश करने वाला कहा गया है-

अंजनानन्दनं वीरं जानकी शोकनाशनम्।
कपिशमक्षहन्तारं वन्दे लंका भयंकरम्।।

नारी जाती के प्रति अपार सम्मान, श्रद्धा तथा उनके प्रति व्यवहार में मातृत्व भाव रखने के अनेक दृष्टांत हनुमानजी के जीवन चरित्र में दिखाई देते हैं। यहाँ तक कि उन्हें अपना ग्रास बनाने को उद्यत सुरसा को भी वे माता ही कहकर सम्बोधित करते हैं और प्रथम बार लंका में प्रवेश करने पर रावण के अन्तःपुर

में अस्तव्यस्त पड़ी स्त्रियों को देखकर उनके मन में अपराध बोध अवश्य होता है, किन्तु मातृत्व भाव रखने के कारण तथा माता सीता की खोज को दृष्टि में रखते हुए उनके मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता।

अब "पवनसुत" नाम सम्बोधन की लाक्षणिक विवेचना करना भी प्रासंगिक होगा। "पवनसुत" के अनेक समानार्थी विशेषणों का प्रयोग विभिन्न ग्रन्थों में किया गया है तथा वातजातं, पवनमाननन्दनं, मारुतात्मजं, वायुपुत्र, पवनतनय आदि। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि "प" अक्षर से प्रारम्भ होने वाले विशेषणों (यथा पवनतनय, पवनसुत, पवन्मानन्दन) का एक विशेष भाव है। 'पू' धातु से निकला 'प' शुद्ध अथवा पवित्र करने के भाव में प्रयुक्त होता है और इस प्रकार इन सभी विशेषणों के माध्यम से हनुमानजी की उस विशेषता का संकेत मिलता है जिसके अन्तर्गत वे शुद्ध करके अथवा रजोगुणी व तमोगुणी दोषों का निवारण करते हैं। उनके सम्पर्क के प्रभाव से सभी दुर्गुणों का निवारण स्वतः हो जाता है। उनकी इसी चारित्रिक विशेषता के कारण सुरसा, कालनेमि आदिको परमगति प्राप्त हुई और उन्हीं के प्रभाव से सुग्रीव, विभीषण तथा अंगद आदि को उनका उद्देश्यलाभ हुआ। तभी तो उनकी स्तुति में कहा गया है- कुमति निवार सुमति के संगी।

इसी प्रकार "म" से आरम्भ होने वाले नाम विशेषण हैं- मारुतात्मजं, मारुतनन्दन आदि। मरुत शब्द का मूल मृ धातु है जिसका अर्थ होता है मरण- अर्थात मरुत पुत्र के रूप में हनुमानजी का स्मरण हमें उनकी संहार कारक अथवा मारक शक्तियों की याद दिलाता है। तभी तो अपने बल और बुद्धि के कारण उन्होंने सुरसा, लंकिनी तथा कालनेमि आदि का संहार किया था, रावण की स्वर्णनगरी लंका में आग लगाई थी और उसके विनाश का मार्ग प्रशस्त किया था। यहां उनकी प्रशंसा में गायी इस स्तुति का अर्थ अत्यन्त सारगर्भित है- "उदय होते हुये करोड़ों सूर्यों के समान आलोकित संसार को अत्यधिक क्षुब्ध करने वाले श्रीराम के चरणों के ध्यान में लीन, सुग्रीव आदि वानर प्रमुखों द्वारा पूजित एवं अपनी गर्जना से दैत्यों को भयभीत करने वाले मारुति का भजन ध्यान करें।"

वायुदेव और अग्निगर्भा अंजना के संयोग के फलस्वरूप उत्पन्न हुये हनुमानजी में स्वभाव से ही दुष्टों, पापियों, राक्षसों तथा शत्रुओं को नाश करने वाली अग्निदाहक शक्ति, पवन का निर्बाध वेग और सभी स्थलों में जा सकने की क्षमता

विद्यमान है। इस प्रसंग में माता की खोज में कपिसमूह के साथ हनुमानजी द्वारा समुद्र पार करना, नागमाता सुरसा द्वारा बलबुद्धिविवेक परीक्षण में सफल होना, सिहिंका राक्षसी का विनाश, लंकिनी पर मुष्टिका प्रहार, अशोक वाटिका में माता सीता को भगवान राम का संदेश देना तथा मुद्रिका समर्पण, वाटिका विध्वंस, अक्षयकुमार वध, लंकादहन, सेतुनिर्माण, युद्ध में धूम्राक्ष, अवनि, अकम्पन, अतिकाय, देवान्तक, त्रिशिरा आदि राक्षसों का संहार, अहिरावण को मृत्यु के घाट उतारना आदि हनुमानजी की संहारक शक्तियों के कितने ही दृष्टांत उल्लेखनीय हैं। हनुमानजी के इसी पक्ष को उजागर करने वाली एक अन्य स्तुति दर्शनीय है- 'अतुलित शक्ति के भण्डार, हेमगिरि सुमेरु पर्वत के समान, कांचन की कीर्ति युक्त शरीर वाले, दैत्यरुपी वन को जलाने के लिए अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ, सकलगुणनिधान, वानरों के अधीश्वर, श्रीराम के प्रिय भक्त पवनपुत्र को मैं प्रणाम करता हूँ।' तभी तो गोस्वामीजी ने इनके इस पक्ष की भूरि-भूरि प्रशंसा की हैं।

"संकट तें हनुमान छुड़ावैं"। अथवा "संकट कटै मिटै सब पीरा"।

यहाँ तक कि उनकी भक्ति करने वाला संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है (छूटहि बन्दि महासुख होई), मारुत के दुलारे हनुमानजी वास्तव में मंगल की मूर्ति हैं और समस्त अमंगलों का मूल से नाश कर देते हैं। विनय पत्रिका (१२८. २ और ४) में उनके लिये प्रयुक्त निम्नलिखित नाम विशेषण इसी पक्ष को उजागर करता है- 'वैस्मिदमत्त-कुंजर-पुज-कुंजरारी। हन्तार संसार संकट दनुज दर्पहारी।'

अब अंजनिपुत्र तथा पवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अन्य धार्मिक ग्रन्थों में क्या मान्यता है- यह देखना समीचीन होगा। अपभ्रंशरामायण पद्मचरित्र (पउमचिरत) के अनुसार चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की श्रावण नक्षत्र युक्त अष्टमी के दिन पवनंजय की पत्नी अंजना ने हनुमानजी को जन्म दिया था। जैन मान्यता के अनुसार भी हनुमान के पिता पवनकुमार और इनकी माता अंजना थी। मध्व सम्प्रदाय में हनुमानजी की परिकल्पना पवनदेव के अवतार के रुप में की गई है और यह मान्यता है कि भगवान विष्णु के रामावतार सम्बन्धी कार्यों की पूर्ति हेतु वासुदेव ने ही हनुमानजी के रुप में अवतार ग्रहण किया तथा प्रभु श्रीराम की सेवा की थी। महाकवि सूरदास भी हनुमानजी को मारुतपुत्र ही मानते हैं और शक्ति लगने के फलस्वरूप लक्ष्मणजी के मूर्च्छित होने पर श्रीराम उन्हीं पवनपुत्र

की ही पुकार लगाते हैं। रामानन्द सम्प्रदाय में उन्हें अंजनिपुत्र तथा वायुपुत्र कहा गया है और 'हनुमद् गायत्री' पाठ के समय यह कहा जाता है- 'आंजनेयाय विद्महे महाबलाय धीमहि तन्नो हनुमान प्रचोदयात्'। इसी प्रकार इस सम्प्रदाय में श्रीराम की उपासना के अन्तर्गत श्रीहनुमान के आवाहन करने की विधि का वर्णन करते समय उन्हें वायुपुत्र कहा गया है। श्रीरामदास समर्थ सम्प्रदाय, रामस्नेही सम्प्रदाय, भक्तमाल तथा स्वामीनारायण सम्प्रदाय में भी उन्हें मारुति, अंजनिसुत तथा पवनसुत कहा गया है। तेलुगु भाषा में लिखित रंगनाथ रामायण के अनुसार अंजनादेवी ने पुत्र प्राप्ति हेतु पवनदेव से प्रार्थना की और उन्हींकी कृपा से शिवजी का शुक्र ही सती अंजना के गर्भ में वास करने के पश्चात बालक हनुमान के रुप में जन्मा था। "मोल्ल रामायण" के अनुसार पवनदेव की कृपा से श्रीहनुमान का जन्म हुआ था। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'अंजनिपुत्र' तथा 'पवनसुत'- यह दोनों नाम सम्बोधन यदि एक ओर हनुमानजी के उद्भव अथवा जन्म को एक ईश्वरीय विधान से जोड़ते हैं, जिसमें स्वयं भगवान विष्णु, शिव, पवनदेव तथा अग्निदेव की महती भूमिका एक कारक तत्व बनी थी तो दूसरी और उक्त दैवी शक्तियों के प्रभाव के कारण हनुमानजी के उन अद्वितीय गुणों- जैसे अतुलित बल, बुद्धि, ज्ञान, भक्ति, शौर्य, नैतिकता आदि तथा अणिमा-लघिमा-महिमा-गरिमा जैसी सिद्धियों की ओर स्पष्टतः इंगित भी करते हैं। ये केवल नाम अथवा संबोधन नहीं वरन् भगवान के अवतार की अवधारणा की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि भगवान दुष्टों का विनाश करने, धर्म की रक्षा करने तथा उसकी पुनर्स्थापना करने के लिये समय-समय पर न केवल इस धरती पर जन्म लेते हैं वरन् उनके सांसारिक क्रियाकलापों की पूर्ति हेतु अन्य दैवी शक्तियाँ भी इस जगत में किसी न किसी रूप में अवतरित होती हैं। अंजनिपुत्र-पवनसुत हनुमानजी भी इसी प्रकार अवतरित उन्हीं महान विभूतियों में से हैं जिनका आदर्श अन्य किसी युग में दिखाई नहीं देता। भगवान के आशीर्वाद से जहाँ-जहाँ रामकथा है वहाँ-वहाँ हनुमानजी हैं और जब तक रामकथा इस संसार में रहेगी तब तक वे भी इस धरती पर निवास करते रहेंगे-

मत्कथा प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वरः।
तावद् रामस्व सुप्रीता मद्वाक्यमनुपालयन्।।

श्रीहनुमानजी के अनेक नामों को श्रीहनुमानचालीसा में प्रयुक्त किया गया है। यथा–हनुमान, पवनकुमार, कपीस, रामदूत, अंजनिपुत्र, पवनसुत, शंकरसुवन, केसरीनन्दन, महावीर, पवनतनय आदि नामों के उल्लेख प्राप्त होते है। 'हनुमत' शब्द का प्रयोग श्रीहनुमान चालीसा में ३ बार किया गया है। यथा–

- संकट कटे मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा।।
- नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा।।
- हनुमत् सेई सर्व सुख होई।।

उपर्युक्त स्थलों पर 'बलबीर हनुमत' एवं 'बीर हनुमत' से अर्थ स्वतः स्पष्ट हो जाता है। किन्तु 'हनुमत सेई' अंश पर किंचित विचार करना अभीष्ट है। हनुमत शब्द हनु–मत के योग से निर्मित है। जनमत, अल्पमत, बहुमत, साधुमत, लोकमत एवं वेदमत इसी प्रकार के निर्मित शब्द हैं। मानस की निम्नांकित चौपाई में 'मत' शब्द दृष्टव्य है–

'करब साधुमत लोकमत नृपमत निगम निचोरि'।

साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदों का सार निकाल कर उसी के अनुसार व्यवहार कीजिए।

प्रस्तुत स्थल पर 'मत' शब्द अपना स्वतंत्र अर्थ प्रकाशित करता है। श्रीहनुमानजी के लिये श्रीरामचरितमानस में मात्र एक स्थल पर 'हनू' शब्द अंकित है, जिससे उनका पूर्ण बोध हो जाता है। यथा–

'उभय भांति तेहि आनहु, हंसि कहि कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपिचले, अंगद हनू समेत।।'

तो प्रश्न उठता है कि 'हनुमत' क्या है? श्रीहनुमानजी के मत (अभिप्राय, विचार, राय) से सेवा का क्या तात्पर्य है? इसके लिए मानस की ओर उन्मुख होना पड़ेगा। यथा–

नाम जप– 'सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बसि करि राखे रामू।।'

भगवान के पावन नाम का निरन्तर स्मरण करते हुए श्रीराम की सेवा अर्थात् नामजप सेवा का एक स्वरूप है।

ध्यान– 'प्रनवउं पवन कुमार, खल बन पावक ज्ञान धन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर।।'

अपने हृदय में साधक भगवान श्रीराम की निखिल भुवन मोहनी मूर्ति को ध ाारण करके सेवा सम्पन्न कर सकता है।

गुण-चिन्तन- 'सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ।।

भगवान के गुण-चिन्तन (लीला स्मरण) में अहर्निश मन को अनुरक्त करके सत्सेवा सम्पन्न की जाती है।

लोकहित- 'रामकाज कीन्हें बिना, मोहिं कहां विश्राम।

इस विश्व के कण-कण में व्याप्त 'सीयराममय सब जग जानी" की उत्कृष्ट भावना को चित्त में धारण करके, निष्काम भावना से लोकहित के कार्य सम्पादित करके विश्वात्मा की पवित्र सेवा (आराधना) सम्पन्न की जा सकती है। इसके लिये सदैव स्वामी-सेवक भाव का आदर्श कर्म- साधना (अनन्योपासना में) सम्बल होता है, यथा-

'सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत।।'

'हनुमत' शब्द मानस के अन्तर्गत साभिप्राय प्रयुक्त किया गया है। मंदोदरी रावण को समझाती हुई कहती है, यथा-

'अंगद हनुमत अनुचर जाके। रन बांकुरे वीर अति बांके।।'

अभी तक लंका के अन्दर दो ही वानर प्रविष्ट हुये हैं। उन्होंने अपनी अपनी क्रिया प्रणाली से, कार्य कौशल के माध्यम से रावण की सभा के मध्य जो अमिट छाप अंकित की है, उसमें बल एवं बुद्धि का विशिष्ट समावेश है। लंका के अंदर भय एवं आतंक का वातावरण निर्मित करने में श्रीहनुमानजी की वैचारिक एवं क्रियात्मक शैली (मत सिद्धान्त) से सभी लंकावासी प्रताड़ित तथा प्रभावित हुए हैं। यहां तक कि सपरिवार रावण भी। तभी गोस्वामीजी ने मंदोदरी के मुख से 'हनुमत' संबोधन किया है।

सीतान्वेषण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है। चारों दिशाओं में वानरों के दल अन्वेषण के लिये प्रस्थान कर रहे हैं। दक्षिण-दिशा की टोली में नील, अंगद, हनुमान, जामवंत जैसे वीर हैं। भगवान श्रीराम से आज्ञा प्राप्त कर सभी वानर श्रीचरणों में प्रणाम करते हुए उनका स्मरण करते हुये हर्षित होकर चले। सबसे

अंत में श्रीहनुमानजी ने प्रणाम किया। कार्य का विचार करते हुये प्रभु ने अपने समीप श्रीहनुमानजी को बुलाया। कर-कमल ने सिर स्पर्श किया। कर मुद्रिका सेवक समझ कर प्रदान की। सीताजी को समझाने के सन्दर्भ में अपने बल एवं विरह को बताने के लिए कहा तथा अविलम्ब वापस लौटने के लिये संकेत किया। इस समस्त लीला-प्रक्रिया के उपरांत-

'हनुमत' जन्म सुफल करिमाना। चलेउ हृदय धरि कृपा निधाना।।

प्रस्तुत स्थल पर 'हनुमत' शब्द साभिप्राय अंकित किया गया है। अभी कार्य में कुछ सफलता मिली नहीं, कार्य पूर्ण भी नहीं हुआ तब श्रीहनुमानजी ने अपना जन्म कैसे सफल मान लिया? श्रीहनुमानजी 'ज्ञानिनामग्रगण्यम्' हैं। श्रीहनुमानजी ने मत-विचार (चिन्तन, मनन) किया कि प्रभु श्रीराम 'सत्य संघ' है।, उनकी वाणी असत्य का स्पर्श नहीं कर सकती। इसलिये प्रभुजी ने मेरे सिर पर कर-कमल का स्पर्श किया है। प्रत्यभिज्ञा के लिये कर मुद्रिका प्रदान की है। मां सीता को बल एवं विरह के माध्यम से समझा कर शीघ्र वापस लौटने को कहना इंगित करता है कि कार्य प्रभु मुझे ही निमित्त बनाकर सम्पादित करना चाहते हैं। मां सीता के दर्शन से मैं कृतार्थ हो जाऊंगा।

अब 'सेई' शब्द पर विचार करना है। मानस के अन्तर्गत इस शब्द के 'सेई', 'सेएं', 'सेइहु', 'सेइअ' तथा 'सेइहहिं' रूप प्राप्त होते हैं।

'सेई' शब्द का प्रयोग तत्काल सेवा के अर्थ में श्रीराम विवाह के अवसर पर जनक द्वारा पद-प्रक्षालित करते समय तथा त्रिजटा द्वारा राक्षसियों को शुभ सम्मति प्रदान करते हुये अवलोकनीय है-

- 'करि मधुपमन मुनि सेभिजन जे सेइ अभिमत गति लहै।
  ते पद पखारत भाग्य भाजनु जनकु जय जय सब कहै।'
- 'सीता सेइ करहु हित अपना।'

भविष्य काल में सेवा के अर्थ में 'सेइ+हि' तथा 'सेइ+हहिं' का प्रयोग दृष्टव्य है-

'होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोर तेहिसंकर देइहि।।'

जो निष्काम होकर छल त्यागकर सेवा करेगा, उसे मेरी भक्ति श्रीशंकरजी प्रदान करेंगे।

'भरत बंदिगृह सेइहहिं, लखनु राम के नेब।'

भरत कारागार की सेवा करेंगे, लक्ष्मण श्रीराम के नायब् (सहकारी-मंत्री) होंगे।

'सेएं' और 'सेएहु' रूप सेवार्थ अभिव्यक्त करते हैं-

'पालेहु प्रजाहि करन मन बानी। सेएहु मातु सकल सम जानी।।

मन, वाणी, कर्म से प्रजा को पालना तथा सभी माताओं को समान समझ कर सेवा करना।

'तरहिं न बिनु सेएं मन स्वामी। राम नमामि नमामि नमामि।।'

विना मेरे स्वामी (श्रीरामजी) की सेवा के (भाव से) तरा नहीं जा सकता। श्रीराम को नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार है।

सेवा और सत्संग अर्थाभिव्यक्ति 'सेई' तथा 'सेइअ' रूप से ध्वनित होती है-

'दोसु देहि जननी जड़ तेई। जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई।।'

वे ही मूर्ख कैकेयी मां को दोष देंगे, जिन्होंने गुरु एवं साधु-सत्संग नहीं किया है।

'जहँ बसि संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न।'

जहां पर श्रीशंकर पार्वती निवास करते हैं उस काशी का सेवन (वास) क्यों न किया जाय? अर्थात् काशीवास करके श्रीशिव-पार्वती की सेवा की जाय।

'भानु पीठ सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी।।'

सूर्य का पृष्ठ भाग से एवं अग्नि का सम्मुख सेवन करे। स्वामी की सेवा, समस्त रूप से छल त्याग कर, करे।

'तजि माया सेइअ परलोका।'

माया का सेवन त्याग कर परलोक सेइए या माया त्यागकर परलोक का सेवन कीजिए।

'सेइ' शव्द के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भानु एवं अग्नि (तैजस) के प्रति आगा पीछा प्रक्रिया त्यागकर अर्थात दुविधा (संशय) मुक्त होकर सेवा करना चाहिए। सेवक के लिये समस्त प्रकार के छल भावों एवं माया का त्याग कर निष्काम भावना तथा मन, वाणी, कर्म से श्रीहनुमान जी की सेवा करना अभीष्ट है।

सर्वसुख करई- 'सर्वसुख' विचारणीय है। सम्पूर्ण सृष्टि या विश्व के सारे सुख तो व्यक्ति को प्राप्त हो ही नहीं सकते। कल्पना करें कि यदि प्राप्त भी हो जांय

तो क्या नाशवान मरणधर्मा मानव उन्हें भोग सकता है? तब फिर 'सर्वसुख' है क्या? छान्दोग्योपनिषद् में बताया गया है- 'यो वैभूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं।' निश्चय जो भूमा है वही सुख है, अल्प में सुख नहीं है। सुख भूमा ही है। छान्दोग्योपनिषद् में 'भूमा' के रूप आत्मा का ही वर्णन किया गया है। इस प्रकार भूमा श्रीराम ही हैं। तुलसीदासजी ने मानस में श्रीराम को 'सुख-स्वरूप' तथा 'सुखमूल' के रूप में स्वीकृत और प्रतिपादित किया है। यथा-

- 'जो आनंद सिंधु सुख रासी। सीकर ते त्रैलोक्य सुपासी।।
- सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोकदायक विश्रामा।।'
- 'चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सील सुखसागर रामा।।'
- 'सुखमंदिर सुन्दर रमनं। मदमार मुधा ममता समनं।।'
- 'सुख-स्वरूप रघुवंस मनि मंगल मोद निधान।'
- 'सुख-मूल दूलह देखि दंपति पुलक तन हुलस्यो हियो।।'

निष्कर्षतः जिसके सुख-सीकर (बिन्दु) मात्र से त्रैलोक्य तृप्त हो जाता है, वह सुख मूल भगवान श्रीराम ही हैं। श्रीहनुमानजी के मत (सिद्धान्त विचार) अर्थात् हनुमत से निष्काम, छल-कपट, माया त्यागकर, निःसंशय मन-वाणी-कर्म से सेवा, भजन करके सर्वसुख स्रोत श्रीरामजी को प्राप्त किया जा सकता है।

ब्रह्मर्षि योगिराज श्रीदेवरहाबावा के लिये- ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मर्षि, ब्रह्ममूर्ति, ब्रह्मतत्त्ववेत्ता, ब्रह्मयोगी, योगी सम्राट, योगिराज, अध्यात्मतत्ववेत्ता, महायोगी, हिमयोगी, अवलहवा बाबा, स्वामी सच्चिदानन्द, कल्पान्तर के योगी, जलेसर बाबा, देवरिया बाबा, देवरहाबाबा, देवाबाबा, फकीर बाबा, दिगम्बर, फकीर, जंगली साधु, अष्टांग योगी, कीर्ति पुञ्ज, चलते-फिरते महादेव, साक्षात् हनुमानजी इत्यादि मानो सहस्रों सम्बोधन प्रचलित रहे हैं।

परमात्मा के साक्षात् विग्रहस्वरूप बाबा सरकार को जिन दिव्य नामों से विभूषित किया जाता है उपरोक्त सभी नामों के साथ बाबा का आदिनाम होने के कारण यह विलुप्त नहीं हुआ बल्कि अन्तिम सौ वर्षों के समय में कालंचक्र के साथ एक सुन्दर संयोग का आश्रय लेता हुआ वह श्रीदेवरहाबाबा के रूप में प्रकट हुआ। वास्तव में यह नाम शास्त्रों में कई जगह श्रीहनुमानजी के लिये प्रयुक्त हुआ है तथा यही नामरूपी आदि संज्ञा भगवत् प्रेरणा से अन्त में भी बाबा के

साथ भी रही।

श्री हनुमानजी का 'कपि' नाम-

वैसे तो हनुमानजी के लिये 'कपि' शब्द का प्रयोग प्रायः मिलता है, परन्तु सम्पूर्ण मानस में 'कपि' शब्द का प्रयोग २५६ बार किया गया है। जिसका सोपानानुसार विवरण निम्नांकित है-

प्रथम सोपान (बालकाण्ड)	४
द्वितीय सोपान (अयोध्या काण्ड)	२
तृतीय सोपान (अरण्य काण्ड)	०
चतुर्थ सोपान (किष्किन्धा काण्ड)	१५
पंचम सोपान (सुन्दर काण्ड)	६९
षष्टम् सोपान (लंका काण्ड)	१५२
सप्तम् सोपान (उत्तर काण्ड)	१४
योग	२५६

'कपि' का अर्थ सर्वत्र 'वन्दर' ही प्रदर्शित किया गया है किन्तु जब अंगद राक्षसेन्द्र रावण से यह कहते हैं कि- 'कस रे सठ हनुमान कपि....। तो यह पढ़कर मन में एक जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है कि क्या 'कपि' का अभिध ेय अर्थ सर्वत्र समीचीन रहेगा?

लंकादहन के समय नगर निवासी आर्त विह्वलवाणी में कहते हैं-

'हम जो कहा यह कपि नहिं होई। वानर रूप धरे सुर कोई।।'

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट ध्वनित होने लगता है कि देवताओं ने नर नाट्य में सहायतार्थ कपिवेश धारण किया था। अधर्म की चरम सीमा से व्याकुल धात्री धरणी धेनु रूप धारण करके पितामह ब्रह्मा के समीप गई। परमप्रभु के अन्वेषण के लिए सुरसभा ने विचार विमर्श कर अनेक विकल्प प्रस्तुत किए। बैकुंठ अथवा क्षीरसागर जाने की बात स्मृतिपटल पर आई। परन्तु शाश्वत जगद्गुरु शिव का निष्कर्ष सर्वोपरि सर्वमान्य रहा।

शिव (विश्वास के देवता) की बात को ब्रह्मा (बुद्धि के देवता) ने पूर्णरूपेण स्वीकृत किया। स्तुति-मग्न होकर शिवजी ने स्वयं को विनम्र विनत समर्पित कर दिया। अविलम्ब गम्भीर आकाशवाणी का उद्घोष शोक शमनार्थ हुआ। लोक पितामह ने

देवताओं को आदेशित किया- 'वानर तनु धरि धरि महि, हरिपद सेवहु जाइ।।

लीला मात्र के लिए ही सुरों ने वानर (कपि) तन का आवरण बाह्य दृष्टि से विनिर्मित किया। इस प्रकरण से भी सुस्पष्ट हो जाता है कि यदि हम 'कपि' का अर्थ सर्वत्र बन्दर करने लगें तो हनुमानजी के स्मरण के भावात्मक रसास्वादन में पर्याप्त गतिरोध उपस्थित हो जाएगा। कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं जिसमें 'कपि' शव्द का संबोधन श्री हनुमानजी, सुग्रीव एवं अंगद के लिए भी किया गया है। ऐसे स्थलों पर 'बन्दर' अर्थ करने पर सौन्दर्य सुस्पष्ट नहीं हो पाता है। यथा-

श्री हनुमानजी- सुग्रीव के आदेश देने पर जब श्रीहनुमानजी प्रथम बार श्रीराम-लक्ष्मण से भेंट करने जाते हैं-

- 'विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।' ब्राह्मण का वेश धारण करके श्रीहनुमानजी वहाँ गए।
- 'कपि तनु कीन्ह दुगुन विस्तारा।' श्रीहनुमानजी ने अपने शरीर को द्वय गुणित विस्तृत किया।
- 'सोइ छल हनुमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहि चीन्हा'।। उसकी माया को श्रीहनुमानजी ने अविलम्ब पहचान लिया।
- 'अट्टहास करि गर्जा, कपि बढ़ लाग अकास।' भयंकर गर्जना करते हुए श्रीहनुमानजी आकाश तक पहुँच गए।
- 'प्रभु कर पंकज कपि के सीसा'। श्रीरामजी का कर कमल श्रीहनुमानजी के सिर पर था।
- भरत ने अवधपुरी के नभ से हनुमानजी को शैल समेत गमन करते हुए, निशिचर अनुमान कर नोकविहीन वाण से आघात किया। श्रीहनुमानजी मूर्छित होकर धरणि पर गिर पड़े। भरत के करुण विलाप एवं प्रार्थना करने पर श्रीहनुमानजी चैतन्य अवस्था को प्राप्त हुए। तब- कपि तब चरित समास बखाने।' श्रीहनुमानजी ने समस्त चरित्र संक्षेप में बताया।
- 'कपि तब दरस सकल दुख बीते।' श्रीहनुमानजी के दर्शन से समस्त दुःख समाप्त हो गए।
- 'भरत चरन सिर नाई रति गयउ कपि राम पहि।' भरत के चरणों में मस्तक झुकाकर त्वरित गति से श्रीहनुमानजी श्रीराम के समीप गए।

सुग्रीव के लिए- श्रीहनुमानजी पीठ पर श्री राम-लक्ष्मण को लेकर सुग्रीव के समीप मैत्री के लिए ले जाते हैं, तब-

- 'कपि कर मन विचार एहि रीती। करिहहिं बिधि मो सन ए प्रीती।।' यहां पर 'कपि' सुग्रीव के लिए प्रयुक्त है।
- 'सुनि बिराग संजुत कपि बानी।' सुग्रीव की विरागयुक्त वाणी सुनकर. ....।
- 'कपिहिं तिलक करि प्रभुकृत, सैल प्रबरषन बास। बरनन बर्षा सरद अरु, राम रोस कपि त्रास।।' इस दोहे के चतुर्थ चरण में सुग्रीव के प्रमाद पर श्रीराम के क्रोध का वर्णन है।

अंगदजी के लिए

- सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी।।' अंगद की कठोर वाणी श्रवण कर दशमुख बंकिम नेत्र करके कहने लगा।
- 'कह कपि धर्म सीलता तोरी। हमहु सुनी कृत परत्रिय चोरी।।' अंगद (रावण की) धर्मशीलता कहने लगे।
- 'समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा माझ पन करि पद रोपा।।' श्रीराम का प्रताप समझ कर अंगद क्रोधित हुए और रावण की सभा-मध्य प्रतिज्ञा करके पैर जमा दिया।
- 'पुनि कपि कही नीति बिधि नाना।' श्री अंगदजी ने पुनः अनेक प्रकार से नीति को वर्णित किया।

यहां पर 'कपि' शब्द के प्रयोग सम्बन्धी मात्र कुछ स्थलों की ओर संकेत प्रस्तुत किया गया है।

श्रीहनुमान चालीसा में विग्रह चतुष्टय

'हनुमान चालीसा' एक सिद्ध स्तोत्र है।' 'हनुमान चालीसा' न केवल श्रीहनुमान का दिव्य चरित्र है बल्कि श्रीहनुमान का नित्यविग्रह है। श्रीहनुमान के नाम, रूप, लीला और धाम विग्रह चतुष्टय से युक्त 'हनुमान चालीसा' एक साधना सोपान है।' हनुमान चालीसा' में एकादश अंग हैं-

स्थान- "श्री गुरुचरन सरोज'....से....'कलेस विकार" तक,

नाम- "जय हनुमान ..... से .... "सुमति के संगी" तक,

रूप- "कंचन वरन' .... से.... "काज संवारे" तक,
लीला- "लाय संजीवन' ..... से ..... "काल संवारे" तक,
धाम- "राम दुआरे' .... से .... "हाँकते काँपै" तक,
फलश्रुति' "राम दुआरे' ... से ... "हाँकते कांपै" तक,
संबंध- "जै जै जै हनुमान' .... से .... "गुरुदेव की नाईं" तक,
क्रिया- "जो सत बार' ..... से .... "महासुख होई" तक,
साक्षी- "जो यह पढ़ै" ..... से.... "साखी गौरीसा" तक,
सारूप्य मुक्ति- "तुलसीदास सदा' ...से.... "बसहु सुरभूप" तक।

गुरु के बिना प्रभु की प्राप्ति असंभव है। गुरु ही शिष्य का संबंध प्रभु से कराकर उनके श्रीचरणों का दर्शन कराता है। गुरुकुपा से एक ओर मन विषय-मलों से मुक्त होता है, तो दूसरी ओर प्रभु के विग्रह चतुष्टय से युक्त। गुरु-कृपा एवं आज्ञा के बिना प्रभु का मिलना, यशोगान संभव नहीं है। अतः ध्यान में निष्ठ गुरु के चरणों से आज्ञा लेते हुए इष्ट पवन कुमार का ध्यान किया गया है। पवनकुमार हनुमान को 'रघुवर' अर्थात् रघुवंशी तथा उनके विमलयश (चरित) अर्थात् हनुमान चालीसा को पुरुषार्थ चतुष्टय-प्रदाता कहा गया है।

यह शरीर (जीव) अज्ञान-स्वरूप है। इसे न अपने मायिक वंन्धन का ज्ञान है, न बंधन से छुड़ाने वाले ईश्वर का ज्ञान और न अपने सच्चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान है- माया ईस न आपु कहँ जान कहिअ सो जीव।

यह सचमुच बुद्धिहीन है, बुद्धू है। बुद्धि का विकास स्वस्थ्य शरीर में होता है इसलिए पहले बल तथा बुद्धि की भिक्षा मांगी गई है। बुद्धियोग द्वारा ब्रह्मविद्या की प्राप्ति संभव है। पवन कुमार ! हमारे दैहिक-दैविक भौतिक क्लेशों और कामादिक विकारों को दूर कर, रघुवर विमल यशोगान के लिए बल, बुद्धि और विद्या प्रदान करें।

नाम- नाम पुकारने पर रूप सामने आ जाता है। जिस रूप को नहीं भी देखा है, नाम स्मरण करने पर वह अत्यंत स्नेह से हृदय में उभर उठता है- सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयं सनेह बिसेषें।।

चालीसा का आरम्भ छह नामों से हुआ है, जो षडैश्वर्यपूर्ण हैं। ये नाम हैं- हनुमान, कपीस, रामदूत, अंजनि-पुत्र, पवनसुत और महावीर। हनुमान, ज्ञान एवं

गुण ऐश्वर्य से से युक्त नाम हैं तो कपीस त्रिलोक उजागर ऐश्वर्य से। 'रामदूत अतुलित बलधामा' ऐश्वर्य-बोध का है तो अंजनिपुत्र और पवनसुत माता-पिता का ऐश्वर्य बोधक। महावीर नाम बजरंगी के विशेष पराक्रम ऐश्वर्य से युक्त है। ये छहों नाम श्रीहनुमान के जन्म एवं कर्म-सूचक नाम हैं, जिनके पीछे अलग-अलग कथाएँ हैं। श्रीहनुमानजी के इस नाम-स्मरण में इन नामों के अर्थ और महात्म्य का चिंतन-मनन करता हुआ जो चालीसा का पाठ करता है, उस पर श्रीहनुमानजी अपने इस नाम सम्बन्धी लीलाओं की भाँति कृपा करते हैं। जैसे- हनुमान नाम। 'हनु' का अर्थ हैं चिंबुक। 'बाल समय रवि भक्ष लियो' लीला में आपने एक साथ राहु, सूर्य, इन्द्र और वज्र सबके गर्व का खंडन किया- राहु-रवि-शुक्र-पवि-गर्व-खर्चीकरण। अपनी चिंबुक (हनु) की चोट (मान) से कठोर वज्र के मद को भी चूर कर दिया इसलिए आपका नाम हनुमान पड़ा- जाकी चिबुक चूरन किय रद-मद कुलिस कठोर को।"

'हनुमान' नाम के स्मरण से नामी श्रीहनुमानजी साधक पर आने वाले वज्रवत् प्रहारों को चकनाचूर कर देते हैं। श्रीहनुमानजी के विभिन्न नाम ही साधक की सभी दिशाओं में उसके विभिन्न अंगों की रक्षा करते हैं। श्रीहनुमान के ये नाम 'कवच' हैं। उदाहरणार्थ दिशा-कवच-

हनुमान पूर्वतः पातु, दक्षिणे पवनात्मजः।
पातु प्रतीच्यां रक्षोंघ्नः पातु सागर पारगः।।
उदीच्यामूर्ध्वर्वयः पातु केसरि प्रियनन्दनः।
अधश्च विष्णुभक्तस्तु पातु मध्ये च पांवनिः।
आर्वान्तदिशः पातु सीताशोक विनाशनः।

अंत-कवच में प्रयुक्त नाम इस प्रकार हैं-

सुग्रीव सचिवः पातु मस्तकं वायुनंदनः।
भालं पातु महावीरो भ्रुवोर्मध्ये निरन्तरम्।। आदि

सम्पूर्ण चालीसा में श्रीहनुमान के विविध नाम अठारह बार आए हैं, जो अष्टादशाक्षर मंत्रवत् हैं। इनके स्मरण एवं जप, नाम-महिमा-ज्ञान एवं नाम-साध ना से (नाम निरूपण नाम जतन से) जापक को कोई दुःख नहीं रहता, उसे ध र्मार्थ काम मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। बह्मर्षि योगिराज देवरहाबाबा के अनुसार

कलिकाल में श्रीहनुमानजी का नाम कल्पतरु की तरह है।

रूप- हनुमानजी की नाम-साधना से उनका रूप हृदय में धीरे-धीरे अत्यंत स्नेह-पूर्वक उतरने लगता है। तपाए हुए सोने की तरह श्रीअंगों से ज्योति फूट रही है। लगता है सुर्योदय हो रहा है। बालसूर्य की तरह प्रकाशमान सौम्य श्रीअंग हैं। साधक के हृदय में मानवाकृति में वे सुन्दर वेश धारण किंए विराजते हैं। राजकीय पोशाक पहने हैं। कानों में कुण्डल डोल रहे हैं। आपके कुण्डल जन्मजात एवं दिव्य हैं। लंगोट एवं कुण्डल पहने आपका जन्म हुआ है। आपके बाल लच्छेदार घुंघराले हैं। ये घुंघराले वाल ऐसे लगते हैं मानो शेष के फन हों। इन बालों के ऊपर मस्तक मणिमंडित मुकुट सुशोभित है। वक्ष पर हार विराजित है-

मन मुकुट मंडित शीश कच कुंचत फनिन्ह इव छावती।
दुहुँ कर्न कूंल रुचिर झूलहिं हार वक्ष विराजहीं।।

श्रीहनुमानजी के हाथ में श्रीराम के दक्षिण चरणांकित वज्र और ध्वजा की रेखाएँ हैं। जिसके हाथ में व्रज का चिह होगा, वह महान् बलवान, वज्र की तरह शरीर वाला, सर्वश्रेष्ठ युद्धवीर होगा। ध्वजांकित व्यक्ति जिसके पक्ष में होगा, वह सदा विजयी होगा। इनके कंधे पर मूंज का यज्ञोपवीत सुशोभित है। प्राचीनकाल में वनवासी महर्षि मूँज का यज्ञोपवीत धारण करते थे। अभी भी उपनयन संस्कार में प्रथम मूँज का जनेऊ धारण कराया जाता है। ब्रह्मचर्य में मूँज का जनेउ धारण किया जाता है। श्रीहनुमानजी बालब्रह्मचारी हैं।

रूप-प्राक्ट्य के बाद पुरुष के पिता का परिचय, उस व्यक्ति की योग्यता और व्यसन की जिज्ञासा होती है। श्रीहनुमंतलालजी शंकर के अंश से उत्पत्र केशरी के पुत्र हैं। रुद्र ने राम-प्रेमवश हनुमान शरीर धारण किया। अपने महान् तेज प्रताप के कारण आप जगत-वंदनीय हैं। आप में ब्रह्मा के समान सृष्टि निपुणता, विष्णु के समान पालन-क्षमता, रुद्र के समान संहार-शक्ति, अमृत के समान संजीवन शक्ति, पृथ्वी के समान धारण शक्ति, सूर्य के समान अंधकार-निवारण शक्ति, अग्नि के समान शोषण-शक्ति और सूर्य-चन्द्र के समान पोषण-शक्ति है-

रचिवे को विधि जैसे, पालिबो को हरिहर,
मीच मारिबे को, ज्याइबे को सुधापान भो।
धरिबे को धरनि, तरनि तम छलिबे को,

सीखिवे कृसानु, पोषिदे को हिम-भानु भी।

श्रीहनुमानजी वेदान्त के ज्ञाता, नाना प्रकार की विद्याओं में विशारद, चार वेद और छः वेदांग के जानने वाले एवं शुद्ध ब्रह्म-स्वरूप के निरूपणकर्ता हैं। आप ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य के पात्र हैं। इनके विमलगुणों का गान शुक-नारदादि ऋषि करते हैं-

जयति वेदान्तविद विविध विद्या-विशद,
वेद-वेदांग वित ब्रह्मवादी।
ज्ञान-विज्ञान वैराग्य भावन विभो,
विमल गुण गनित शुक नारदादी।।

श्रीहनुमानजी वेद, शास्त्र और व्याकरण पर भाष्य लिखनेवाले, काव्य-कौतुक कला और अन्य करोड़ों कलाओं के समुद्र हैं।

श्रीहनुमानजी की एकमात्र सेवा है अत्यंत आतुरता-पूर्वक राम-कार्य-संपादन। राम-चरित-श्रवण उनका व्यवसन है। साकेत-यात्रा के समय प्रभु से इन्होंने यही वर स्वीकार किया था कि 'जब तक पृथ्वी पर रामकथा का प्रचार रहेगा तक तक इस संसार में विचरण करता रंहुगा।'

श्रीहनुमंतलालजी के हृदय में लक्ष्मण-सहित श्रीसीतारामजी का वास है। श्रीहनुमानजी कामरूप हैं। वे आवश्यकतानुसार, विभिन्न शरीर धारण कर लेते हैं। हनुमानजी के तीन रूप हैं- (१) सूक्ष्म रूप, (२) विकट रूप और (३) भीम में रूप।

सूक्ष्म रूप ● मसक समान रूप कपि धरी।
लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।।
● नर-वानरहि संग कहु कैसे।
कही कथा भइ संगति जैसे।।

विकट रूप- भुज विसाल मुरति कराल कालहु को काल जनु।
गहन दहन निरदहन लंक निःसंक बंक भुव।
लूम लीलाहुनल-ज्वालमाला कुसित होलिकाकारण लंकेश-लंका।

भीमरूप- कनक चरन तन तेज विराजा।
मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा।।
सिंहनाद करि बारहिं बारा।

लीलहि नाघउँ जलनिधि खारा।।
कनक भूधराकार सरीरा।
समर भयंकर अतिबल वीरा।।

सूक्ष्मरूप प्रधानतः सेवारूप है, भीमरूप योद्धा रूप है और विकट रूप प्रलंयकारीरूप है।

लीला- संपूर्ण हनुमन्तकाव्य में श्रीहनुमानजी की निम्नलिखित लीलाओं का गुणगान हुआ है- (१) लाय संजीवन लखन जियावेए, (२) तुम उपकार सुग्रीवहि कीन्हा......, (३) तुम्हारो मंत्र विभीषण माना......., (४) जुग सहस्र जोजन पर भानु......, (५) प्रभु मुद्रिका मेलि मुख मांही.......,
इनके अतिरिक्त हनुमान की प्रसिद्ध लीलाएँ हैं- (६) संपाती को दिव्य शरीर प्रदान, (७) सिंहिका-सुरसा-लंकिनी लीला, (८) अशोकवाटिका-विध्वंस और रावण-प्रबोध ा, (९) लंका-दहन, (१०) राम को सीता-संदेश कथन, (११) युद्ध-लीला, (१२) सीता को रावण-वध एवं विभीषण-राज्य का संदेश, (१३) भरत को सीताराम का आगमन संदेश, (१४) रामराज्याभिषेक में 'निर्भर हरष नृत्यकारी' आदि।

आज भी रामभक्तों के साथ श्रीहनुमानजी की जो लीलाएं होती हैं, वे हैं- दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हारे तेते।

धाम- श्रीहनुमानजी का धाम है श्रीराम का द्वार और श्रीचरण। राम की राजध ानी दिव्य साकेत एवं अयोध्या में सीतारमण के संग श्रीहनुमानजी मिलेंगे- सीतारमण संग शोभित राम-राजधानी। दाहिने लक्ष्मण, बायें श्रीजानकी और सामने हनुमानजी- यही श्रीराम का ध्यान है-

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे जनकात्मजा।
पुरतो मारुतिर्यस्य तमू वन्दे रघुनन्दनम्।।

बिना श्रीहनुमानजी की आज्ञा कृपा के श्रीराम-कक्ष में प्रवेश निषिद्ध है। अतः जो राम की प्राप्ति करना चाहता है, वह श्रीहनुमानजी की शरण में आए। श्रीहनुमान की शरण में आ जाने पर जीव निर्भय हो जाता है। 'शरण' शब्द का अर्थ गृह और रक्षक होता है। जो श्रीहनुमान के पास (घर) आएगा, उसकी रक्षा श्रीहनुमानजी करते हैं। जब श्रीहनुमानजी अपना तेजस्वी स्वरूप सम्हारते (धारण करते) हैं तो तीनों लोक उनकी हाँक मात्र से काँपने लगते हैं। जिसके हृदय में

श्रीहनुमानजी की हाँक हुलसती है, उसका पालन-पोषण बालक की तरह मुनि और सिद्ध करते हैं, उसके सब दिन अच्छे होते हैं, चाहे वह जहाँ जाए-

बालक ज्यों पालिहैं कृपालु मुनि सिद्ध ताको,
जाके हिये हुलसत हांक हनुमान को।

फलश्रुति- फलश्रुति न केवल चालीसा पाठ की है बल्कि श्रीहनुमान के नाम, रूप, लीला, धाम की भी है।

नाम फलश्रुति- जो श्रीहनुमान का नाम मात्र जोर जोर से बोलेगा, भूत-प्रेत उसके निकट नहीं आएंगे। जो हमेशा श्रीहनुमान के नाम का जप करेगा उसके सभी रोग नष्ट हो जाएंगे और त्रिविध पीड़ाएँ नष्ट हो जाएंगी।

रूपफलश्रुति- ध्यान रूप का होता है जो मनसा वाचा कर्मणा श्रीहनुमानजी का ध्यान करता है, उसे श्रीहनुमानजी संकट से मुक्त कर देते हैं। शत्रुओं द्वारा किए जाने वाले यंत्रमंत्र, अभिचार, मारण प्रयोग हों अथवा शाकिनी-डाकिनी भूत-प्रेत बाधा, इन सबका नाश श्रीहनुमानजी करते हैं-

जयति पर यंत्र-मंत्राभिचार ग्रसन, कारमन, कूट कृत्यादि हँता।
साकिनी-डाकिनी पुतना प्रेत वेताल, भूंत प्रथम भूष भंग।

लीला फलश्रुति- जगत में प्रसिद्धि होती है कर्म, चरित अथवा लीला की। श्रीहनुमानजी साधुओं की रक्षा और असुरों के नाश हेतु ही लीला शरीर धारण करते हैं। इनके चरित का गुणगान करने वाला अष्टसिद्धि और रामरसायन की प्राप्ति करता है, उसे राम की प्राप्ति होती है। बार-बार जन्म के दुःख से वह मुक्त हो जाता है।

धाम फलश्रुति- जो हनुमानजी की मूर्ति विग्रह के समीप वास करता है, वह अंतकाल में अयोध्या-वास करेगा, साकेत लाभ करेगा। यदि कर्मवश उसे पुनः शरीर धारण करना पड़ा तो वह भगवान् का चरणानुरागी भक्त होगा- जेहि जोनि जन्मौ कर्मवस तहँ रामपद अनुरागउँ।

इस प्रकार, हनुमान चालीसा में श्रीहनुमंतलालजी के विग्रह चतुष्टय की प्रतिष्ठा और उसकी फलश्रुति है। उक्त विग्रह चतुष्टय भक्ति, भक्त, भगवंत गुरु विग्रह के समान है, जिसके स्मरण मात्र से अनेक विघ्न नष्ट हो जाते हैं-

भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर्नाम वपु एक।

इनके पद वंदन किए नासत विघ्न अनेक।।

दोनों विग्रह चतुष्टय में समन्वय इस प्रकार है- नाम-गुरु, रूप-भगवंत, लीला- भक्त, धाम-भक्ति।

श्रीगुरु चरणसरोज कृपा से श्रीहनुमान के नाम की प्राप्ति होती है। नाम-जप से भगवान श्रीहनुमान का रूप प्रकट होता है। तत्पश्चात् भक्त के साथ श्रीहनुमानजी की लीलाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं, वह पदे-पदे जीवन में श्रीहनुमानजी की कृपा लीला का अनुभव करता है। वह भक्त अंत में प्रभु का धाम (भक्ति) पाकर मुक्त हो जाता है।

प्रपत्ति- रामभक्तों को श्रीहनुमानजी की शरणागति स्वीकार करनी चाहिए। षडविद्या प्रपत्ति द्वारा श्रीहनुमानजी के प्रति अनन्यता इसका फल है। जो ऐसा करेगा, वह सभी सुखों का भागी होगा। जिन हनुमानजी के नित्य सहायक सीतापति हों, जो स्वयं शिव-स्वरूप हैं, उनकी शरण मनसा-वाचा, कर्मणा अनन्य भाव से ग्रहण करनी चाहिए-

सीतापति साहेब सहाय हनुमान नित, हित उपदेश को महेश मानो गुरु कै।
मानस वचन काय सरन तिहारे पाँय,तुम्हरे भरोसे सुर में न जानै सुर कै।।

संबंध- शरणागति में प्रभु से भाव जोड़ा जाता है। सबंध मुख्यतः पाँच होते हैं। श्रीहनुमानजी से दो में कोई एक संबंध जोड़े जाएँ- एक स्वामी (गोसाई) सेवक सम्बन्ध दुसरा गुरु-शिष्य सम्बन्ध।

क्रिया- इस चालीसा का अनुष्ठानिक प्रयोग किया जाय। इसका एक सौ पाठ किया जा सकता है। नित्य नियम में सात रखा जा सकता है।

साक्षी- चालीसा पाठ से सिद्धि मिलेगी, दुहाई गौरीपति की है। यदि सपने में भी शंकरजी की कृपा होगी तो यहपाठ फुर (सच-सिद्ध) होगा-

सपनेहुँ सांचेहु मोहिक पर जौ हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होइ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ।।

शाबर मंत्र में महादेव गौरा पार्वती की ही दुहाई (साक्षी) दी जाती है। यह सिद्ध शाबर चालीसा है।

सारूप्य मुक्ति- इष्टदेव से तादात्म्य-तदाकार की प्राप्ति साधना की सिद्धि है। हे प्रभु ! मैं तो सदा प्रभु का किंकर हूँ। हे नाथ ! मेरे हृदय में आप डेरा डालें।

डेरा थोड़े दिनों के लिए डाला जाता है। एक जगह डेरा डालकर पुनः उसे छोड़ भी दिया जाता है डेरा तो डेरा। पाठ करते-करते कुछ क्षणों के लिए इष्ट का साक्षात्कार आनन्द लाभ, तदाकार 'डेरा' है। इस पाठ का अनवरत श्रद्धा-प्रेम, अनन्यपूर्वक अभ्यास करने से पवनपुत्र सभी संकटों को नष्ट कर मंगलमय विधान करते हैं और भक्त की प्रीति-निष्ठा देखकर देवाधिदेव श्रीहनुमंत लालजी महाराज अपने इष्टदेव राम-लखन-सीता सहित हृदय में बस जाते हैं। दिव्य झाँकी है- भक्त के हृदय में हनुमानजी और हनुमानजी के हृदय में राम लक्ष्मण जानकी-

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम।।

'साधन-धाम' यह तन जो भगवान ने दिया, 'बिबुध-दुर्लभ' 'देवताओं को भी दुर्लभ'- 'साधन-धाम बिबुध-दुर्लभ तन मोहि कृपा करि दीन्हों।' हे भगवान्, आपने मुझे यह साधन-धाम मनुष्य शरीर दिया, जो देवताओं को भी दुर्लभ है। यह आपकी बड़ी अनुकम्पा है।"

मैं कहना यह चाहता हूँ कि यह कथन परम सत्य है और इस सत्य को हम स्वीकार करें, तो हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम सिंहावलोकन करके यह देखें कि हम यह शरीर पाकर ईश्वर की ओर आगे बढ, दैवी सम्पदा के निकट आये, चलें या पीछे हटें- यह जीवन के लिए बहुत आवश्यक निर्णय है।

नामजप करते-करते भगवदाकार वृत्ति हो जाती है क्योंकि जप में नामी का ध्यान रहता है। एक सबसे बड़ी बात नामजप में यह है कि इसमें विधि का बंधन नहीं है और आचार-विचार का कोई नियम नहीं है। केवल भगवच्चिन्तन ही शर्त है उसी से धीरे-धीरे भगवान् का साक्षात्कार हो जाता है।

उपदेश की लहर में बाबा ने कहा- "बच्चा! समझे? अच्छा तो फिर से सुनो- "भक्ति के साधनों में भगवान् का नाम-जप एक सरल, सहज और सुगम साधन है। भगवान् राम ने शबरी को नवधाभक्ति का उपदेश देते हुए नौ साधनों में नाम-जप को भी स्थान दिया है। भक्ति के नौ साधन बताते हुए, वे पांचवें साधन का उपदेश करते हैं- *"मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।"* भगवान् राम का अभिमत है कि दृढ़ विश्वास के साथ मेरे मंत्र का जाप करना ही भजन नामक पांचवा साधन है। भगवान् राम का कौन-सा मंत्र है? वही श्रीराम-नाम। भगवान्

कृष्ण ने यज्ञों में जपयज्ञ को प्रधानता दी है। वे गीता में अर्जुन से कहते हैं- *"यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।"*

भगवान् कृष्ण स्पष्ट घोषणा करते हैं कि जितने भी यज्ञ हैं- द्रव्ययज्ञ, योगयज्ञ, तपयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञानयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, देवपूजनयज्ञ, आत्म-संयमयज्ञ, जपयज्ञ आदि उनमें भगवान् की विभूति जप-यज्ञ में ही वास करती है। भगवान् उसे सुगमता से मिलते हैं, दर्शन देते हैं, उसके निकट पहुंचते हैं, जो अनन्यचित्त से नित्य, प्रतिपल, प्रतिक्षण भगवान् का स्मरण करता है। गीता में भगवान् कृष्ण का उद्घोष है- *"अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।"*

नाम का स्मरण नित्य हो, सतत, निरन्तर हो, तो भगवान् सुलभ हो जाते हैं। गोस्वामीजी तो स्पष्टतया साधन मार्ग बताते हुए कहते हैं कि कलियुग में केवल श्रीराम नाम का स्मरण, कीर्तन ही भगवद्भक्ति का एकमात्र साधन है-*"कलियुग केवल नाम अधारा।।"* तथा *"चहुँ जुग चहुँ अति नाम प्रभाऊ, कलि विशेषि नहिं आन उपाऊ। नहिं कलि करम न भगति विवेकू, राम नाम अवलम्बन एकू।।"*

नामजप में मनोयोग पर बल देते हुए सद्गुरु बाबा कहते हैं-"यदि मन नहीं साथ दे रहा हो तो भी भगवान् का नाम लेते जाओ। एक समय ऐसा आयेगा कि राम रोम-रोम में ठीक उसी प्रकार रम जायेंगे, जिस प्रकार हाथ द्वारा अग्नि के तापने पर उसकी गर्मी थोड़े समय में सारे शरीर में फैल जाती है। धूप शरीर के ऊपर से स्पर्श करती है, लेकिन उसकी गर्मी भीतर तक प्रवेश कर जाती है। स्नान करते समय शरीर के ऊपरी भाग से ही जल का संस्पर्श होता है, लेकिन थोड़े समय में ही जल की ठंढक भीतर तक पहुँचकर सारे शरीर को सुशीतल कर देती है। अस्तु, इसमें सन्देह नहीं कि ऊपर के मन से भी यदि भगवान् का नाम लिया जाय तो वह अन्तःस्थल को प्रभावित और अनुप्राणित करेगा। इस सम्बन्ध में एक कथा द्रष्टव्य है- एक जिज्ञासु ने एक महात्मा से इसी प्रकार का प्रश्न किया था। महात्मा ने प्रश्न सुनकर जिज्ञासु को एक पत्थर फेंक कर मार दिया। भक्त चोट का अनुभव कर क्रोध और आवेश से भर उठा। महात्मा ने शांत करते हुए कहा-देखो, पत्थर का आघात तो तुम्हारे शरीर के ऊपरी सतह पर हुआ पर चोट का अनुभव तुम्हारे भीतर हुआ, फलतः तुम कुपित हो गये !

यही बात परमात्मा के नाम लेने के साथ भी है। उनका नाम यदि ऊपरी मन से भी लिया जाये तो उसका असर अन्तःकरण पर निश्चय ही पड़ेगा। इसमें रंचमात्र भी संशय नहीं।" धर्मग्रन्थों का उल्लेख करते हुए बाबा वताते हैं-"सर्व धर्मग्रन्थों और वेदों में जो प्रतिपादित विषय है, उनमें सार वस्तु है भगवन्नाम स्मरण। गीता में स्वयं भगवान् ने कहा हैं-*"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां। योगक्षेमं वहाम्यहम्।।"* अर्थात् जो व्यक्ति अनन्य भाव से मुझ ईश्वर की उपासना करते हैं, उन भक्तों का योग-क्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ-*"तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत। तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।"* इसलिए सर्व-समर्पण कर भगवान् की शरण में जाना चाहिए। उन्हीं की एकमात्र कृपा से परमसुख शान्ति की प्राप्ति होगी, अन्यथा नहीं। कभी-कभी कोई भक्त शंका करता है कि भगवन्नाम-जप से हमें कोई सफलता नहीं मिली। ऐसा हो सकता है और उसमें कारण है, नामापराध। प्रायः लोग ऐसा करते हैं कि वे कुकर्म से परहेज नहीं करते, कुकर्म छोड़ना नहीं चाहते, पाप करते रहेंगे और नाम से उनको दूर करते रहेंगे। इस प्रकार नाम के बल पर जो कुकर्म करते हुए नाम लेते रहेंगे, उनकी मुक्ति कुकर्म से नहीं हो सकती। इसी को नामापराध कहा गया है- *"गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्रनिन्दनं, तथार्थवादो हरिनामकल्पनम्। नाम्नोबलाय यस्यहि पापबुद्धि, न विद्यते तस्य धर्मेहिं शुद्धिः।।"* अर्थात् "गुरु की अवज्ञा करना, श्रुति और धर्मशास्त्र की निन्दा करना, आचार्यों की बातों पर विश्वास न करना, हरि के नाम और यश को केवल कल्पना समझना, नामजप का आश्रय लेकर निषिद्ध कर्म करना- ये पाप बुद्धि हैं। ऐसे नाम-जापकों के मन कभी शुद्ध नहीं होंगे।" अतः साधक को नामापराध-दोष से बचकर भगवन्नाम का स्मरण और चिन्तन करना चाहिए, तभी वह लाभदायक और सुख-शान्ति-दायक हो सकता है।"

बावा ने भगवन्नाम को अमोघ शक्ति बताते हुए कहा है कि संसार में तीन प्रकार के कष्ट हैं- आधिदैहिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। शरीर सम्बन्धी जो कष्ट हैं, उन्हें 'आधिदैहिक' कहते हैं। आधिदैविक कष्ट वे हैं जो दैव द्वारा होते हैं- जैसे अग्निकाण्ड, सूखा पड़ जाना, बाढ़ आ जाना इत्यादि। आधिभौतिक कष्ट वे हैं, जो जीवों द्वारा मनुष्यों को भोगने पड़ते हैं जैसे सांप का काटना, बिच्छू का डंक मारना तथा अन्यान्य छोटे बड़े जीवों द्वारा मनुष्य शरीर पर आक्रमण। इन्हीं

तीन कष्टों या तापों से मनुष्य व्याकुल रहता है। इनसे मुक्ति पाने की सबकी सतत इच्छा होती है और तदनुकूल लोग भाँति-भाँति के प्रयत्न भी करते हैं। इन सब प्रयत्नों में सबसे सरल और सुलभ वस्तु है- भगवन्नाम। भगवन्नाम की महिमा और संतों द्वारा इसके अनुभव यदि विस्तार से बताये जायें तो अनेक पोथियाँ तैयार हो जायेंगी, लेकिन तब भी उसका अन्त नहीं होगा। संक्षेप में इतना कहना पर्याप्त होगा कि भगवन्नाम सभी अमंगलों का नाश करने वाला और जीवों को शाश्वत सुख देने वाला है। भगवान् के नाम और यश में अमोघ शक्ति है। भगवन्नाम के समान पुण्यप्रद संसार में अन्य कोई वस्तु नहीं है। इस कलिकाल में तो इसकी विशेष महत्ता है। अतएव हर व्यक्ति का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह ऐसा अभ्यास बना ले कि उसके द्वारा निरन्तर भगवान् का नाम स्मरण हो तथा सभी अवस्थाओं में भगवन्नाम का जप हो, उसमें कभी त्रुटि न हो। लोग संसार की भोग-वस्तुओं में अपना जीवन बिताते हैं, किन्तु जब भगवान् के नाम-स्मरण के लिए कहा जाता है तो उत्तर मिलता है- "अभी समय नहीं है, फिर कभी कर लिया जायेगा।" इस मनोवृत्ति से पतन और विनाश निश्चित है। यह लोक तो गया ही, परलोक भी चला जायेगा। मनुष्य जीवन साधन क्षेत्र है, ऐसा सबको स्मरण रखना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास ने यथार्थ ही कहा है- *"साधन धाम मोक्ष कर द्वारा, पाइ न जे परलोक संवारा।"* इसलिए सबको अपने जीवन में ऐसा नियम बना लेना चाहिए कि बिना किसी त्रुटि के वह प्रतिदिन जैसे अन्य सांसारिक काम करता है, भगवन्नाम का भी स्मरण अवश्य करे। सब धर्म-ग्रन्थों और वेदों का भी यही सार है-*'नामैव वेद सारांशं सिद्धान्तं सर्वदा शिवम्।'* भगवन्नाम स्मरण का फल क्या है, इसको भी थोड़ा समक्ष लेना चाहिए। ये वृहस्पति के वाक्य हैं, जो उन्होंने इन्द्र के प्रति कहे थे- *"स्नातं तेन समस्त तीर्थ सलिले दत्ता द्विजेभ्यो धरा, यज्ञानांच हुतं सहस्रमयुतं देवाश्च सम्पूजिताः। स्वाद्वन्नेन सुतर्पिताश्चः पितरः स्वर्गञ्च नीताः पुनः, यस्य ब्रह्म विचारणे क्षममपि आप्नोति धैर्य मनः।।"* अर्थात "जिसने क्षणमात्र भी परब्रह्म परमात्मा का समाहित मन से चिन्तन किया, उसने समस्त तीर्थों के जल में स्नान कर लिया, राजा बलि की तरह सम्पूर्ण पृथ्वी का सत्पात्र ब्राह्मणों को दान कर दिया, कोटि यज्ञों के अनुष्ठान का फल प्राप्त कर लिया और अपने पितरों को सुस्वादु अन्न से तृप्त

करके उन्हें स्वर्गलोक भी भेज दिया। ऐसा ही फल भगवन्नाम स्मरण करने वाले व्यक्ति को होता है।"

यजुर्वेद का मन्त्र है- *"न तस्य प्रतिमास्ति, यस्य नाम महद्यशः।"* अर्थात् जिस ब्रह्म के नाम और यश का महान् महत्व है उसकी प्रतिमा, अर्थात् नाम की कोई उपमा नहीं है। वैदिककाल से लेकर आज तक, सभी धर्माचार्यों ने उस परमात्मा को अनन्त शक्ति, अनन्त गुण, अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त सौन्दर्य-स्वरूप, सर्वाधार, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान कहा है। उसीका सान्निध्य प्राप्त करना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है, जिसको मनुष्य भूला हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है- *"कहँउ कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।"*

बाबा ने कहा है- "भगवान् की महिमा अनन्त है। स्वयं श्रीराम भी उसका वर्णन नहीं कर सकते। सारांश यह है कि भगवन्नाम के स्मरण और चिन्तन में अपूर्व बल है। इसके प्रभाव से आत्मा को दिव्य प्रकाश प्राप्त होता है, चित्त के सब विकार दूर हो जाते हैं और परमात्मा के साथ धीरे-धीरे एकात्मता का अनुभव होने लगता है। भगवन्नाम के प्रताप से ही अनेक ऋषि-मुनि, ध्रुव-प्रह्लाद आदि भक्त श्रेष्ठ परमगति को प्राप्त हुए। इस कलिकाल में तो उद्धार पाने का केवल एक ही साधन है और वह है भगवन्नाम का स्मरण और चिन्तन- *'कलियुग केवल नाम अधारा।'* इसको सदा याद रखते हुए सबको नित्य भगवन्नाम का नियमपूर्वक स्मरण करना चाहिए।"

सद्गुरुदेव ने कहा है- 'कठिन कलिकाल के पंजों से छूटना चाहते हो तो यथासा य श्रीहनुमान का स्मरण करो।'

आज विश्व में घोर कलियुगी अन्धकार है। बाहर के घोर अन्धकार में संसार के लोग शान्ति को बाहर टटोलकर प्राप्त करना चाहते हैं एवं भीतर के अन्धकार में वे शाश्वत सुखका अन्वेषण कर रहे हैं, किंतु सफलता उनको किसी ओर से प्राप्त नहीं होती। फिर इसका उपाय क्या है? गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसका एक सुन्दर उपाय बताया है कि "यदि तुम भीतर और बाहर दोनों ओर प्रकाश चाहते हो तो राम-नामरूपी मणिको इस शरीर के जिह्वारूपी द्वारपर रख लो।"

सचमुच नाम की ऐसी ही महिमा है। जब राक्षसराज हिरण्यकशिपुने भक्तप्रवर प्रह्लाद को धधकती हुई अग्नि में फेंक दिया और नाम महिमा से उसका बाल

भी बाँका न हुआ तब हिरण्यकशिपुको महान् आश्चर्य हुआ। उसको आश्चर्यनिमग्न देखकर प्रह्लाद ने कहा था- *"रामनाम जपतां कुतो भयं, सर्वतापशमनैकभेषजम्। पश्य तात मम गात्रसंनिधौ, पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना।।"* अर्थात् 'पिताजी! श्रीरामनाम का जप करने वालों को भय कहाँ; क्योंकि श्रीरामनाम सब प्रकार के तापों को शमन करने के लिये एकमात्र औषध है। फिर, पिताजी ! प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्? देखिये न, मेरे शरीर के सामीप्य में आकर आज अग्नि भी जलके समान शीतल हो रही है?'

आज जब कि चारों ओर नाना प्रकार के भंयकर एवं घातक रोगों से आक्रान्त होकर जनता पीड़ित हो रही है, विश्व भर में हाहाकार मचा हुआ है क्यों न इस 'सर्वतापशमनैकभेषजम्' का प्रयोग किया जाय।

सद्गुरु, सभी योगियों, संतों, महात्माओं एवं पीर-पैगम्बरों ने डंके की चोट पर यही उद्घोष किया है- *'निरामय कृष्णरसायनं पिब'*- 'परमात्मा के नामरूप रसायन को पीओ !' क्योंकि इसके पीने से कोई रोग नहीं रहता। यथार्थतः कोई भी कष्ट, रोग, ताप एवं शोकादि तभी आक्रमण करते हैं जब पूर्वजन्म अथवा इस जन्म के पापों का फल उदय होता है। यदि किसी युक्तिविशेष से पापों का क्षय हो जाय तो जीव को कष्ट ही क्यों हो, दुःख क्यों भोगना पड़े? जब नाम जप से लोगों के पापों का क्षय हो जायगा, तब उनके दण्डस्वरूप दुःख क्यों भोगने पड़ेंगे? कितना सरल उपाय है दुःख से बचने का ! शास्त्रों में कहा गया है कि-*"अनन्त वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण गोविन्द दामोदर माधवेति। वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिदहो जनानां व्यसनाभिमुख्यम्।।"*

नामजप में सबसे विलक्षण बात यह है कि भगवान् ने अपनी समस्त शक्ति का निक्षेप अपने नाम में कर दिया है। सम्भवतः जो काम नाम कर सकता है, वह श्रीराम भी नहीं कर सकते। इसका निर्णय गोस्वामीजी ने रामचरितमानस, बालकाण्ड में नाम-महिमा प्रसंग में किया है-*'कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।'*

नामजप के अथक प्रचारक तुलसीदासजी ने मानस के अन्त में अपने अनुभव की घोषणा इस प्रकार की है- *'रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।'* इतना ही नहीं जब उनसे पूछा गया कि मानव-जीवन का लक्ष्य क्या

है? उद्देश्य क्या है? फल क्या है? तो उन्होंने निष्पक्षभाव से कहा कि हम औरों की बात तो नहीं कहते, पर हमारे विचार से तो– *"सिय राम सरूप अगाध अनूप बिलोचन मीनन को जलु है। श्रुति राम कथा मुख राम को नामु हिएँ पुनि रामहि को थलु है।। मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति राम सों, रामहि को बलु है। सब की न कहै तुलसी के मतें इतनो जग जीवन को फलु है।।"*

चैतन्य महाप्रभु ने कातरस्वर में पुकारकर कहा है– 'हे प्रभो ! आपने-अपने नाम में अपनी समस्त शक्ति निहित कर दी है और आपकी दयालुता इतनी है कि अपने नाम का स्मरण करने के लिये कोई समय भी नियत नहीं किया है। आपकी मुझपर इतनी असीम कृपा है, पर मेरा यह दुर्भाग्य कि अभी तक आपके नाम में मुझे अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ।'

यों तो भगवन्नाम कैसे भी लिया जाय कल्याणकारक है– *'भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।'* पर श्रीभगवान् उसी प्रेमी को अपने हृदय में उच्चपद प्रदान करते हैं, जिसकी यह दशा हो– *"मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा।। काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें।।"*

सद्गुरु श्रीदेवरहाहंसबाबा कहते हैं कि "जिस भक्त की वाणी (नाम कीर्तन करते-करते) गदगद हो जाती है, जिसका चित्त नाम-स्मरण से द्रवित हो जाता है, जो भावावेश में क्षण-क्षण में रोता है और कभी-कभी हंसता भी है एवं लज्जा छोड़कर उच्चस्वर से नाम-संकीर्तन करता है तथा नृत्य भी करता है, ऐसा भक्त समस्त विश्व को पवित्र कर देता है।" उन्होंने तो भगवन्नाम की महिमा में यहाँ तक कहा है नामस्मरण करने से– *"मन ऐसा निर्मल भया, जैसे गंगा नीर। पाछे पाछे हरि फिरैं, कहत कबीर कबीर।।"*

हम उन श्रीहनुमानजी के चरणों का ध्यान करते हैं, जिनके नेत्र सदा-सर्वदा श्रीसीताराम के चरणों को सेवा-प्रेम-भक्ति से निहारते हैं और उनकी भक्ति, कृपा तथा दया प्राप्त करने के लिए बाबा श्रीहनुमानजी का नाम जपतें हैं।

●●●

अध्याय–ग्यारह

"ग्यारह में ग्यारह -बाबा तेरा न्यारा"

एक अवसर पर श्रीहनुमानजी के विषय में परावाणी गाते हुए बाबा ने गाया- "ग्यारह में ग्यारह, बाबा तेरा न्यारा।" मेरा निवेदन है कि आप पाठकगण इस सूत्र के रहस्य की गहराई में जायें।

एक बार रामकथा की चर्चा में मैंने एक प्रेमी भक्त से कहा कि अमुक ने रामकथा एवं उनके पात्रों पर बहुत अच्छे प्रवचन दिये हैं- उन्होंने उनका अच्छा विश्लेषण किया है। तो उस भक्त ने मुझसे कहा कि 'भाई, रामकथा को सुनो तो भक्ति से सुनो, रामकथा को पढ़ो तो भक्ति से पढ़ो। रामकथा के चरित्रों का विश्लेषण नहीं हो सकता।'

यह सच्ची बात हैं कि रामकथा भक्ति-भाव से ही पढ़नी चाहिए। भागवत भी भक्ति-भाव से पढ़नी चाहिए। किन्तु हमारी नयी पीढ़ी के लोग कुछ प्रश्न उठाते हैं- भक्ति तो ठीक है, हमें स्वीकार है, किन्तु कई कथाओं में जों वर्णन है, उससे मन में एक उलझन पैदा होती है। राम ने 'खर' और 'दूषण' के साथ चौदह हजार राक्षसों का थोड़ी सी देर में वध कर दिया- जब वे वनवास में थे तब। इसी तरह से कृष्ण के सम्बन्ध में भी। कृष्ण का जन्म कारावास में हुआ। फिर गोकुल ले जाये गये। नन्द और यशोदा के यहाँ बहुत छोटी-सी शैशव अवस्था में ही उन्होंने पूतना को मार डाला, नरकासुर को मारा। यमुना में जो कालिय नाग था उसको नाथा और दबा दिया। इसी तरह कंस को मथुरा में जाकर पछाड़ा।

जो नयी पीढ़ी के लोग शंका उठाते हैं और यह उचित भी है कि भाई, चौदह हजार राक्षसों का इतनी देर में कैसे वध कर दिया? चौदह हजार तीर अगर उनके पास थे, तो उनके तुणीर में या माथे में तो समा भी नहीं सकते थे। शैशवावस्था में कृष्ण ने पूतना को कैसे मारा, कैसे कालिया नाग का दमन किया, कैसे कंस को मारा? एक नन्हें से बालक का इतना पराक्रम, यह बुद्धि और तर्क के विपरीत बात है। प्रश्न सही है, पर उत्तर आसान है। उत्तर यह है कि 'भाई, ये जितनी कथाएँ हैं, उन सबके आध्यात्मिक अर्थ हैं। केवल लौकिक अर्थ ही नहीं हैं।'

उदाहरण के लिये, कृष्ण के जन्म से आरम्भ करें।

उनका जन्म कारावास में हुआ। हृदय को शास्त्रों ने गुहा बताया है। गुहा का अर्थ यह भी होता है कि कारावास- चारों ओर से घिरा हुआ है। वहाँ कृष्ण-वृत्ति जागृत होती है- कृष्ण-वृत्ति का जन्म हृदय में होता है और वहाँ से यह वृत्ति चलकर गोकुल अर्थात् इन्द्रियों के कुल को आच्छादित कर देती है।

पूतना राक्षसी थी, दुष्ट वृत्तिवाली थी, उसको कृष्ण-वृति नाश कर देती है, कृष्ण-वृत्ति शैशव थी, पर तो भी दुष्ट-वृत्तियों का नाश कर देती है। अघासुर का अर्थ भी वही है। 'अघ' माने पाप, पापवाला असुर। नरकासुर- नरक में ले जाने वाला असुर।

कालिय नाग, वह यमुना के जल के नीचे घर बनाकर रहता था। वहां उसकी नागिनियाँ भी थी, उसकी पत्नियाँ। नई पीढ़ी के लोग पूछ सकते हैं भाई, यमुना के पानी के भीतर घर कैसे ठहर सकता है।

लेकिन आध्यात्मिक अर्थ यह बताता है कि यमुना सूर्य की पुत्री है, प्रकाशमान है, अर्थात् यह जो हमारी आत्मा है, वही यमुना है। उसके नीचे विष रूपी सर्प या अहंकार छिपा हुआ है। उसको दबाकर कृष्ण उस यमुना जल को- आत्मा को विषहीन बना देते हैं। आत्मा को पापों से मुक्त कर देते हैं। यह आध्यात्मिक अर्थ है।

इसके बाद कृष्ण कंस को मारते हैं। 'कंस' भी अहंकार का प्रतीक है। इसकी दो पत्नियाँ थी। एक का नाम था 'प्राप्ति' और दूसरी का नाम था 'अस्ति'। संसार मिथ्या है, लेकिन कंस कहता है, 'अस्ति' है। 'प्राप्ति' जो प्राप्त कर लिया, इकट्ठा कर लिया, संग्रह कर लिया, उसमें आसक्ति। कंस को 'अस्ति' और 'प्राप्ति' से आसक्ति थी। तो यह कंस-वृत्ति थी। इन सब मूढ़ वृत्तियों को कृष्ण-वृत्ति ने चारों तरफ से नाश कर दिया। पूतना को मारा, अधासुर को मारा, नरकासुर को मारा और कंस को मारा- अर्थात् जो दृष्ट वृत्तियां थी, उनका कृष्ण-वृत्ति ने नाश किया। यह अध्यात्मिक अर्थ है।

राम ने चौदह हजार राक्षसों की 'खर-दूषण' के साथ मारा- 'खर' माने गधा- गधे की वृत्ति थी खर- 'दूषण' दूषित वृत्ति थी। और चौदह हजार दुष्ट वृत्तियाँ थीं। 'बहुशाखा ह्यनन्ताश्च'- गीताचार्य ने जैसा बताया- अस्थिर बुद्धि, अव्यवसायत्मिका

बुद्धि, यह चौदह हजार भ्रमित बुद्धियाँ। तो उन सब वृत्तियों का रामवृत्ति ने नाश किया।

यह सब आध्यात्मिक अर्थ हैं। किन्तु आप यह समझिये कि आध्यात्मिक अर्थ उन लोगों के लिए है, जो आगे बढ़ गये हैं, जिनको ज्ञान प्राप्त हो चुका है। उनके लिए आध्यात्मिक अर्थ ठीक हैं। किन्तु जो साधारण मनुष्य हैं, जो आगे नहीं बढ़े हैं, जो साधन-काल में हैं, उनके लिए कथाओं की, मूर्ति-पूजा की, सगुण-पूजा और लुभावनी कथाओं की बड़ी आवश्यकता है।

आप जब छोटे बच्चे को पढ़ाते हो, 'अ' माने अनार- 'आ' माने आम। अब यह जो पाठ पढ़ाते हो, तो जब लड़का कालेज में पहुँच जाता है, उसको भी आप इस तरह पढ़ाने लगो तो वह आपका मजाक होगा। इसलिए यह समझना चाहिए कि पात्र के अनुसार ही शिक्षा दी जाती है।

तो यह साधारण मनुष्यों के लिए कथाओं को रोचक या भयानक, कहीं-कहीं लुभावनी, कहीं-कहीं वैराग्य जागृत करने वाली यह कथाएँ हैं। सन्तवाणियों और भजन भी निर्मित हुए हैं- यह सब मन को समझाने की अनेक विधियाँ हैं।

'मन'- यह बड़ा अजीब पंछी है। इसको नियंत्रण करना बड़ा कठिन खेल है। अर्जुन ने कहा- हे कृष्ण, यह मन बड़ा चञ्चल है। तो कृष्ण ने कहा कि हाँ, यह चञ्चल है, किन्तु वैराग्य और अभ्यास से वश में आ सकता है।

हमारे शास्त्रों में, हमारे सन्तों ने, भक्तों ने मन के नियंत्रण के लिए जितने-जितने साधन बताये हैं, जितनी कथाएँ कहीं हैं, वह अन्य देशों के शास्त्रों में आपको नहीं मिलेंगी।

हम संसारी लोगों के पास मान होता है, लेकिन सन्त के पास गान होता है, वाणी होती है- मर्दाना छेड़, नानक के पास भी कोई गया हो तो उसने केवल एक ही बात कही, मर्दाना छेड़, बाला छेड़। बाला और मर्दाना दो शिष्यों को लेकर घूमते थे बादशाह। वाहे गुरु वाहे गुरु वाहे गुरु वाहे गुरु- 'सतगुरु के पास गान होता है, गुरु नानकदेव ने जो कहना था गाकर सुनाया। ब्रह्मवेत्ता श्रीदेवरहाहंस बाबा गाकर परावाणी सुनाते हैं। बहुत प्राचीन भारत की यह परम्परा रही है, लुप्त हो गई, फिर कभी आई, गा कर सुनाने की बात। अब तो केवल प्रतीक बचे हैं, नाटक के स्टेज, सिनेमा के स्टेज, जहाँ गा कर अपनी बातें की जाती हैं।

जीवन के वास्तविक रूप में यह नहीं रहा तो शिष्य के पास मान होता है, अपना मान, अपना थोड़ा अहंकार कि हमको यह सम्मान मिलना चाहिए, हमको यह स्थान मिलना चाहिए- ये स्वाभाविक है। लेकिन सन्त गाता रहता है, वो गान करता है। गान भी प्रवाह है, एक गंगा बहने लगती है और साधू संतों ने, सदगुरुओं ने वह गान किया। गंगा को किसी ने पूछा कि आप इतनों को पावन कर चुकीं, फिर भी क्यों बहती जा रही हैं, कितनों की तृषा तुमने समाप्त की फिर भी क्यों बहती हो, गंगा ने छोटा सा जवाब दिया कि मैं भी तृषातुर हूँ इसलिए सागर को मिलने जा रही हूँ तुम पी लो, पावन हो जाओ, निष्पाप हो जाओ, तृप्त हो जाओ, लेकिन मैं तो तृषातुर हूँ, जब तक सागर को नहीं मिलूंगी, मेरी तृप्ति नहीं हो सकती। सद्गुरु गाता रहता है, तुलसी ने गाया, काकभुशुण्डि ने गाया, सुकसनकादिकों ने गाया तथा श्रीदेवरहाहंस बाबा गा रहे हैं।

शुकदेवजी एक व्रत दे देते हैं, भागवतजी में कि करो चातुर्मास। इसमें और इतने में डूबे रहो कि और कुछ करने के लिए समय ही न मिल पाए। राबिया को जब हसन ने पूछा कि राबिया शैतानों से नफरत करती हो, कुरान में लिखा है, अब कहे कि नहीं करती तो कुरान का दोष हो जाए, कि शास्त्र को नहीं मानती और कहे कि नफरत करती हूँ, कि तो संतत्व को चोट लग जाए, तो जब पंडित हसन ने पूछा कि तुम शैतानों से नफरत करती हो तो उसने बहुत अद्भुत जवाब दिया उसने कहा कि इतना ही जवाब है कि खुदा को प्यार करने पर समय ही नहीं रहता कि मैं शैतान को नफरत करूँ। समय ही नहीं बचा फिर मैं किसे नफरत करूँ।

व्रत दिया शुक ने भागवत जी में, कि करो चातुर्मास। इससे ठीक लगे तो बारह मास कर लो, फिर पूरा जीवन कर लो। जब मौका मिले भगवान का चरित्र सुनो।

संसारी मनुष्य के पास काल होता है और सद्गुरु के पास काली होती है। जो कोई भी जीव है तो कालवश है, सन्त कालवश नहीं। शरीर चला जाए वो तो एक कपड़े बदलने वाली बात है। कपड़े बदलने की बात! भारतीयों ने, इस पूरब की सभ्यता ने, इस देश के अवतारों और आचार्यों ने मृत्यु को मृत्यु के रूप में देखा ही नहीं है। ये तो पुराने मैले कपड़े निकालने हैं, इतनी सहजता से मृत्यु

को इस देश ने स्वीकार किया। मनुष्य कालवश होता है लेकिन सन्त के पास काली होती है, और सद्गुरु के वश में काली होती है- प्रमाण रामकृष्ण परमहंस हैं जिनके पास काली थी। कोई पूछता कि ठाकुर आप सुबह-सुबह आज इतने सुन्दर क्यों लग रहे हैं तो बोले मैंने प्रातः कालनाथ को छू लिया, कभी कहते मैंने जानकी को देख लिया, उस पार गंगाजी से आ रही थीं, आज सुबह मेरा बड़ा भाग्य कि माँ दिखाई दी। कभी कहते थे राधा मिल गई। हम काल के वश में हैं, सन्त के वश में काल को खत्म करने वाली महाकाली होती है। जहां माँ रहती है, तो वहां ध्यान रखने वाली महाकाली होती है। कभी कोई ऐसे सद्गुरु का आश्रय हम कर लेते हैं तो वे देखभाल भी कर लेता है थोड़ी। श्रद्धा न टूट जाए। श्रद्धा गई तो आदमी गरीब हो जाएगा, बहुत बड़ी सम्पदा है यह। ऐसी क्रिया न करना जिससे श्रद्धा टूटे- ये घाटे का सौदा है। इतना चतुर यह समाज, प्रतिशतों में सतत् गिनती करने वाला अर्थ प्रधान जगत, उसमें मेरा कितना प्रतिशत, उस पर सतत् दृष्टि रखने वाला प्राणी श्रद्धा के बारे में क्यों नहीं सोचता कि कहीं मेरी श्रद्धा टूट गई हो ! मूल श्रद्धा, आदि श्रद्धा जो है उसकी मैं चर्चा कर रहा हूँ गलत रूप की नहीं। तो श्रद्धा टूटे ऐसी क्रिया न करे। श्रद्धा टूटे ऐसों का संग न करे। श्रद्धा टूट जाए ऐसे लोगों को न सुनें। चाहे उनकी बातें कितनी भी प्रीतिकर लगती हों, कुछ समय के लिए गुदगुदी करती हों, थोड़ा मनोरंजन भी दे दें, थोड़ा अच्छा लगे लेकिन जिससे श्रद्धा का घात हो जाए, ऐसा न सुने और जिससे श्रद्धा टूटे ऐसी घटनाओं को न देखें। बचाओ उनसे अपने को। मूल श्रद्धा को बचाने के लिए उनको न देखो। श्रद्धा व्यक्ति को परम् तत्व के पास पहुँचा देती है, खुद को परम बना देती है श्रद्धा। तो जिसके आधीन काली है, माँ जगदम्बा है, ऐसे सन्त भारत को मिलते रहे हैं और योगिराज श्रीदेवरहा बाबा, ब्रह्मवेत्ता श्रीदेवरहाहंसबाबा उसका शाश्वत उदाहरण हैं। माया के अधीन हम और आप काल कर्म सुभाव में घिरे हुए भटकते रहते हैं, सन्त सद्गुरु उससे बाहर निकाल देता है, सुरक्षा प्रदान करता है क्योंकि उनके पास काली है।

हमारे पास तो अनुमान होते हैं, कुछ सच्चा, कुछ झूठा। अनगिनत गणित होता है, अनुमान कर लेते हैं, अनुमान में जी लेते हैं लेकिन सन्त के पास अनुमान नहीं वह स्वयं हनुमान होता है और हनुमान कौन है?

भवानी शंकरौ बंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्

भगवान शंकर, विश्वास के धनीभूत स्वरूप हैं, श्रीहनुमानजी विश्वास हैं। बाबा के पास विश्वास है, अनुमान नहीं। पवित्रता का इतना भरपूर खजाना विश्व में कहीं नहीं, जितना बाबा में है, जैसे नदी के तट में, जितना खोदो बालू निकलेगी, समुद्र में जितना उलीचो तो जल मिलेगा, मणियों की खान की जितनी खुदाई की जाए, मणियाँ निकलेंगी। श्रीहनुमानजी से भी जितना लूटा जाए, पवित्रता मिलेगी। मेरी तो लेखनी गिर गई लिखते-लिखते कि मेरी भूल हो गई कि मैंने चेष्टा की, तेरा गुण कथन करने निकला।

सकल गुण निधानं वानराणामधीशं।
रघुपति प्रिय भक्तं वातजातं नमामि।।

सकल गुण निधानं। कलम छोड़ दी, कि गिना नहीं जाएगा, तू खजाना है, तू निधान है, गिनती नहीं हो सकती है। तो मेरे पास अनुमान हैं, बाबा में हनुमानजी होते हैं, एक विश्वास व एक सत्य, एक पवित्रता जो बाबा श्रीहनुमानजी में भरपूर है- इसलिए तो श्रीहनुमानजी को हम ये कहते हैं-

जय-जय-जय हनुमान गोसाईं
कृपा करहु गुरुदेव की नाईं
जय-जय-जय हनुमान गोसाईं

लकड़हारा लकड़ी काट रहा था, एक महापुरुष निकले तो बोले क्या कर रहा है तो वह बोला- लकड़ी काटता हूँ। महात्मा बोले- आगे जा थोड़ा, बात बन जाएगी। तो भरोसा कर लिया उसने महापुरुष की वाणी पर, आगे गया तो कुछ स्वर्ण मुद्राएँ मिली- बहुत राजी हो गया, खुश हो गया। लेकिन फिर पन्द्रह दिन हो गए तो वहाँ से महात्मा निकले। देखा तो वह उदास बैठा है- "अब क्या है भाई तू यहीं बैठा है आगे नहीं गया! अरे, जो एक बार आगे जाने से फायदा हुआ है तो जरा अनुभव करता चल।" तो फिर वह आगे गया तो स्वर्ण की खान मिली, बहुत सा स्वर्ण प्राप्त हुआ। कुछ दिनों के बाद महात्मा ने पूछा- "यहाँ रुक गया, इतने अनुभव के बाद भी यहाँ बैठा है, थोड़ा आगे बढ़", थोड़ा आगे गया तो मणियाँ मिलने लगीं। फिर कुछ दिन के बाद महापुरुष आये और बोले कि

तेरा प्रारब्ध कमजोर है, अभी भी यहाँ बैठा है और आगे बढ़ तो उसने पूछा कि अब आगे क्या मिलेगा, तो महापुरुष बोले- "उसके आगे मेरा आश्रम है, मैं मिल जाऊँगा, वहाँ मैं बैठा हूँ, वहाँ मेरा स्थान है, मेरा देश है, तू वहाँ पहुँच।" विश्वास है, धीरे-धीरे हम बाबा के पास और तब हम हनुमानजी तक पहुँचेंगे, विश्वास को सम्पन्न करेंगे।

व्यासजी ने प्रथम तो वेदों की संहिताओं का निर्माण किया और उसके बाद महाभारत रची। तब भी उनको सन्तोष नहीं हुआ, तो नारद आये। नारद ने कहा कि 'महाराज आपने बहुत कुछ किया, तो आप सुस्त क्यों मालूम होते हो?' तो उन्होंने नारद से कहा कि 'तुम बताओ मैं क्यों असन्तष्ट हूँ?' तब नारद ने कहा कि 'आपने सब कुछ किया, किन्तु भक्ति के सम्बन्ध में आपने कुछ नहीं लिखा। इसलिए लोगों को भक्ति की ओर प्रेरित करने के लिए आप भागवत् की रचना कीजिए।' तब उन्होंने भागवत् की रचना की।

हनुमानजी का स्वरूप भक्ति-प्रधान है। इसलिए बाबा के बारे में, बाबा श्रीहनुमान जी के बारे में भक्ति से पढ़ना चाहिए। परन्तु आप यह भी याद रखिए कि उसका जो आध्यात्मिक अर्थ है, उसको भूलना नहीं चाहिए। क्योंकि एक दिन जब आप आगे बढ़ोगे तब 'अ' माने अनार, 'आ' माने आम समाप्त हो जायेगा और 'ब' माने बाबा 'बा' माने हनुमान समझ में आने लगेगा।

आप जानते हो कि जब तक मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा नहीं होती तब तक उसमें भगवान की भावना नहीं होती। वह जब तक कारीगर के घर में पड़ी है तब तक वह केवल पत्थर है। जहाँ प्राण-प्रतिष्ठा हुई कि भावना जागृत हुई। भावना जब जागृत हो गयी, तब उस मूर्ति को हम ईश्वर का प्रतीक मानने लगे। यह कोई नहीं मानता कि यह मूर्ति है, तब वही ईश्वर है।

लेकिन ध्यानपूर्वक मनन करने से इस प्रतीक के पीछे भगवान ही हैं, ऐसी श्रद्धा की भावना जागृत हो जाती है। भगवान सर्वत्र व्याप्त है। भगवान एक जगह सीमित नहीं है, आप और हम सब के सब भगवान के रूप हैं। भगवान सबमें व्याप्त हैं, तो मूर्ति में भी भगवान व्याप्त हैं। भावना की यह महिमा अजीब है तो इसी तरह बाबा में श्रीहनुमान व्याप्त हैं। परन्तु इसको समझाना और समझना कठिन है।

आप यों समझिये कि रंगमञ्च पर रामायण का अभिनय हो रहा है। रामजी

का हनुमानजी से मिलाप होता है- इस प्रेम-मिलन को देखकर आप गद्गद हो जाते हैं और अश्रु बहाने लगते हैं। किन्तु अगर आपको यह ख्याल आ जाए कि यह जो राम बना बैठा है वह तो हमारे मुन्नी अहीर का लड़का है और जो हनुमान है वह हरिया माली का बेटा है, तो आपकी सारी भावनाएँ पलायित हो जाती हैं। यह भावना की लीला है।

मन के विरोध के लिए भावना का उद्भव आवश्यक है। मन की इस गूढ़ गति-विधिको समझना और समझाना दुष्कर कार्य है। भावना जागृत करने के लिए भी मन का नियंत्रण आवश्यक है और मन के निरोध के लिए भी भावना का विकास आवश्यक है। अद्भुत बात तो यह है कि मन ही मनुष्य को बन्धन में डालता है और मन ही उसे बन्धन से मुक्ति देता है। 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।'

गीता में ये बताया है कि - 'नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य, न चायुक्तस्य भावना' जिसने मन को नहीं संभाला, उसकी न तो बुद्धि निर्णायात्मक हो सकती है और न उसमें भावना ही जागृत होती है। मन को स्थिर करने के लिए शास्त्रों ने और सन्तों ने तरह-तरह की विधियाँ बतायी हैं। 'मन-तोहि केहि विधि कर समझाऊँ, घोड़ा हो तो लगाम लगाऊँ, पीठपर जीन कसाऊँ।' यह कबीर का उद्गार है। मन को स्थिर करने के लिए कभी तो विरक्ति जागृत करनी ही पड़ती है। भोग दुःखदायक है। इसके चक्कर से समझदारों को दूर रहना चाहिए।

यह संसार फूल सेमर को, सुन्दर देख लुभायो।
चाखन लाग्यो रूई गई उड़, हाथ कछू नहीं आयो।।

कबीर ने कहा- देख चुके इस दुनिया को, यह सब धोखे की टट्टी है।

यह सारे वैराग्य के वचन हैं- कहे कबीर प्रेम नहि उपज्यो, बांध्यो जमपुर जासी। यहाँ कबीर ने नरक का भय दिखाया है। गीता में भी इसी हेतु के वचन हैं-

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वव योनिषु।।

यह सारे वचन वैराग्य के हैं। मन को भोगों से विरक्त करने के लिए यह कहे गये हैं।

अजामील गीध व्याध, इनमें कहो कौन साथ,
पंछी सो पद पढ़ात गणिका सी तारी,
ध्रुव के सिर छत्र देत, प्रह्लाद को उबार लेत,
भक्त हेतु बांध्यो सेत, लंकापुरी जारी।

ये भक्त के लिए आश्वासन हैं, ये लुभावने हैं। चंचल मन को स्थिर करने के लिए अनेक विधियाँ बताई गई हैं। वैराग्य, आश्वासन, भय और लोभ के वचनों से मन को लोभों से विरक्त करना और भगवान की ओर ले जाना, यह प्रधान ध्येय है। इसका फल है शान्ति और सुख। सत्, चित् आनन्द। इसे कौन नहीं चाहता?

गीता में कहा है- जहाँ-जहाँ मन अपनी चंचलता से दौड़ता है, वहाँ वहाँ से इसे हटकार भगवान में लगाओ। मन चंचल है, पर अभ्यास से इसका नियंत्रण होता है, ऐसा शास्त्रों ने बताया है। यही मनुष्य के लिए परम पुरुषार्थ है।

श्रीकृष्ण से जब अर्जुन ने पूछा कि अव्यक्त और व्यक्त इसमें कौन सी उपासना करूँ, तो उन्होंने कहा कि भाई, यह अव्यक्त उपासना श्रेष्ठ तो है, पर 'क्लेशोधि ाकतरस्तेषो' इसलिए तुम व्यक्त की उपासना करो। तो इसका मतलब यह हुआ कि मूर्ति-पूजा सुगम है। रोचक कथाएँ सार्थक हैं, परन्तु आप यह भी साथ में याद रखिये कि अगर आपने इसमें अच्छी तरह प्रवेश न करके पूरा विचार नहीं किया, तो आपको इससे पूर्ण लाभ नहीं होगा। खांड कहने से मुख मीठा नहीं हो जाता और जल कहने से तृष्णा नहीं चली जाती और भोजन का नाम लेने से हमारी भूख नहीं मिट जाती है। यदि राम का प्रताप नहीं जानता है, तो खाली राम-राम रटता रहे, उससे लाभ नहीं होता। तो इसलिए हमको बताया गया कि मूर्ति को प्रतीक समझो और कथाओं को भक्ति से पढ़ो पर धर्म का मनन करते रहो।

राम सर्वत्र है- ईश्वर समान भाव से सब जगह व्याप्त है। गीता में भगवान ने बताया है कि जो व्यक्त है, वही अव्यक्त है। अव्यक्त की उपासना में क्लेश अधि ाक होता है, इसलिए व्यक्त की पूजा करो। पर अन्तिम परिणाम तो यह होता है कि व्यक्त की उपासना करते करते आप समझ लेते हैं कि हमको कहाँ जाना है? और जब इस मर्म को समझ लेते हैं कि जो व्यक्त है उसी के पीछे अव्यक्त है, मूर्ति है, उसके पीछे भगवान है, तो फिर आपकी पूजा सफल है।

शास्त्रों ने बताया कि तीन स्तर हैं ध्येय पर पहुँचने के। जैसे आपको हिमालय पर चढ़ना हो, तो नीचे से आगे बढ़ते जाते हैं। मध्वाचार्य के आश्रम से, जो भक्ति के प्रेरक है आप रामानुज के आश्रम पहुँचते हैं। रामानुज के बाद आप आदि-शंकर के आश्रम पहुंचते हैं। वहाँ पहुँचने के बाद आप भक्ति का अनुसरण करते हैं, तब तक आपका दृष्टिकोण बदल जाता है।

श्रीहनुमान ने श्रीराम से कहा कि भगवान्, जब मैं शरीर में स्थिर होता हूँ, तो अपने आपको आपका दास मानता हूँ। जब मैं बुद्धि में स्थिर होता हूँ, तो अपने आपको अंश मानता हूँ और जब मैं आत्मा में स्थिर होता हूँ, तो आपमें और मुझमें कोई भेद नहीं देखता, आप भी राम मैं भी राम। तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि जब आदिशंकर के आश्रम में आप पहुँच जाते हैं, तो सर्वत्र ब्रह्म को देखते हैं। भक्ति व्यापक हो जाती है, आत्मा और परमात्मा का भेद मिट जाता है। भक्ति बनी रहती है।

अब आप यह समझिये कि गीता में, जो उपनिषदों का सार है, उसमें और सन्तों की वाणियों में और शास्त्रों में यदि आप कर्मयोगी, भक्त और ज्ञानी के लक्षण देखेंगे, तो आपको सबके लक्षण समान मिलेंगे। लक्षण में कोई फर्क नहीं है।

सबके लक्षण समान हैं। सबका सार यही है कि संग और आसक्ति त्यागकर तुम कर्म किये जाओ- सिद्ध हो या असिद्ध- इसकी चिन्ता छोड़ो। इसी को 'समत्व योग' कहते हैं। बाबा इसी को मानते हैं। उदासीन, चिन्तारहित, कर्म-फलों की चिन्ता का त्याग- वही लक्षण ज्ञानी के भी हैं। मान आपमान में समान, मित्र-बैरी में अभिन्नता, कर्मफलों का त्याग वही लक्षण भक्त के हैं।

भक्त और ज्ञानी के लक्षण एक समान हैं। किन्तु साधन के लिए भक्ति सुगम यों है कि कर्मयोगी को साधन चाहिए। ज्ञानी को भी साधन चाहिए। मान लीजिये, किसी के हाथ-पाँव टूट गये हों, आँखें नहीं हैं, तो उसके पास अन्य साधन भी नहीं हैं। तो कर्मयोगी को कर्म करने में कठिनाई पड़ती है। ज्ञानी के लिए स्वाध्याय चाहिए, शास्त्रों का पठन चाहिए, बुद्धि चाहिए। उसमें भी कठिनाई होती है। लेकिन भक्त को कोई साधन नहीं चाहिए। किसी भी हालत में हो, भक्त भक्ति शुरू कर ही सकता है।

भगवान में श्रद्धा रखकर चलते जाओ। चलते जाओ, आगे बढ़ते चलो। अन्त में उसी जगह पहुँच जाओगे, जहां ज्ञानी पहुँचेगा। अन्त में इन तीनों में कोई भेद नहीं है। औरों को साधन चाहिए, पर भक्त को किसी साधन की जरूरत नहीं है। इसलिए भक्ति को सुगम बताया है।

यदि पूछो कि भक्ति का निरूपण क्या है, तो यह प्रश्न कठिन है। शांडिल्य ने निरूपण किया; व्यास ने किया, गर्ग ने किया और नारद ने किया। बात एक ही कही। तृष्णा छोड़ो- इन्द्रियों का दमन करो, सत्य मार्ग पर चलो, दया रखो, काम-क्रोध को छोड़ो और भगवान को याद रखो और सारा कर्म भगवान को समर्पण करो।

अब गीता में आप देखोगे कि किस तरह से भगवान ने एक-एक कदम चलाकर अर्जुन को समझाया। अर्जुन ने पूछा कि 'महाराज, मैं आपका किस भाव से चिन्तन करूँ, तो दसवें अध्याय में कृष्ण ने विभूति-योग बताया। और अलग-अलग विभूतियाँ बतायीं। और यह कहा- देखो अर्जुन, वासुकी साँप भी मैं ही हूँ, हिमालय भी मैं ही हूँ, गंगा भी मैं ही हूँ, समुद्र भी मैं ही हूँ।' यह भी कहा गया कि 'पाण्डवानां धनंजय' पांण्डवों में धनंजय जो तुम हो वह भी मैं ही हूँ और 'वृष्णिनां वासुदेवोऽस्मि' कृष्ण जो है वह भी मैं ही हूँ।

यह याद रखना चाहिए कि कृष्ण के माने यहाँ देवकी का पुत्र नहीं है। व्यास, भगवान, ब्रह्मा, शंकर, सारा विश्व, मच्छर, मक्खी, पत्थर, वृक्ष भी वही हैं। अश्वत्थ वृक्ष भी मैं ही हूँ। यह सब कुछ मैं ही हूँ। इसका तात्पर्य यह है कि मैं देवकी पुत्र नहीं, सारे संसार में व्याप्त ब्रह्म हूँ।

अर्जुन को कुछ और चाव चढ़ा तो उसने कहा कि 'अच्छी बात है, आप मुझको अपना विश्वरूप भी बताइये। आपका विराट स्वरूप क्या है? तो उन्होंने कहा कि 'शरीर की आँखों से, वह रूप नहीं देख सकते।' विराट स्वरूप को देखने के लिए 'दिव्यं ददामि ते चक्षुः'- मैं तुमको दिव्य चक्षु देता हूँ तो आप अपने में स्थित बाबा से याचना करें कि बाबा! आप अपना सच्चा-सच्चा स्वरूप देखने के लिये 'दिव्य ददामि ते चक्षुः।'' दिव्य चक्षु, माने भीतर की आँखें।

हमारे यहाँ एक कहावत है कि 'खुदा को कैसे पहचानें- खुदा को अकल से पहचाना जाता है। तो कहा कि मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूँ- तो दिव्य चक्षु दिया।

दिव्य चक्षु द्वारा विश्वरूप दिखाया। लाखों हाथ, सिर, लाखों पाँव, उदर देखे। आप सब यह विराट स्वरूप हो, वही विश्वरूप हो। क्योंकि अनेक बाहु, अनेक चक्षु, अनेक उदर, अनेक सिर, अनेक अंग प्रत्यंग।

जब विभूति बतायी थी, तब कृष्ण महाराज ने कहा था कि मृत्यु भी मैं ही हूँ, और यहाँ अर्जुन को यह बताया कि काल भी मैं ही हूँ। मैं सबको मार रहा हूँ। सबको मार रहा हूँ माने सबको जिन्दा कर रहा हूँ। आप देखिये कि जब आप नया मकान बनाना चाहते हैं, तो झोपड़ी हो या पुराना मकान हो, तो उसको तोड़ना पड़ता है। यह तो केवल मृत्यु ही है। मृत्यु और उसके साथ, जन्म उसके साथ मृत्यु तो उन्होंने ग्यारहवें अध्याय में विश्वरूप दिखाकर बारहवें अध्याय में भक्तियोग का वर्णन किया। योग का वही वर्णन है, जो मैंने आपको बताया।

पहले वेद, बाद में महाभारत आया और महाभारत के बाद अब व्यासजी को मालूम पड़ा कि इससे काम नहीं चलेगा, तो गीता कही। गीता से काम नहीं चला, तो उन्होंने भागवत् लिखी और भागवत् के बाद सन्त बन गये। उन्होंने यह सोचा कि भागवत् से भी काम नहीं चलेगा, तो उन्होंने तरह-तरह के भजन बनाये। जो चीज वेदान्त में है, जो चीज भागवत् में है, जो चीज गीता में है और पुराणों में है, वह सब-की-सब सन्तों की वाणियों में, सन्तों के भजनों में आ गयी है। सन्तों के रूप में आ गई। हनुमत्स्वरूप श्रीदेवरहाहंस बाबा की परावाणी में आ गयी-
"ग्यारह में ग्यारह, बाबा तेरा न्यारा।"

अब मैं कुछ स्पष्टीकरण करना चाहता हूँ। मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह असल में तो आपको नहीं- मैं अपने आपको ही कह रहा हूँ। आप मेरे लिखे को पढ़ रहे हो, इसलिए आपको सम्बोधन मात्र करता हूँ, लेकिन कथन तो अपने आपको ही है। जैसा सीताजी ने श्रीराम से कहा था कि 'स्मारये न स्वां शिक्षायें'- उसी तरह से मैं आपको केवल स्मरण करा रहा हूँ। सीख नहीं दे रहा हूँ। आप स्मरण करें, या न करें, सुमिरन करके अनुभव करें या न करें। जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करें तो ठीक, न करें तो ठीक। आपको सच लगे तो ठीक और .....।

●●●

